बीएड – 106

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

Learning and Teaching

अधिगम एवं शिक्षण

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

संरक्षक	अध्यक्ष
प्रो. अशोक शर्मा कुलपति वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**प्रो. एल.आर. गुर्जर** निदेशक (अकादमिक) वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संयोजक एवं सदस्य

** संयोजक	* संयोजक
डॉ. अनिल कुमार जैन सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ **वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**	**डॉ. रजनी रंजन सिंह** सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

प्रो. (डॉ) एल.आर. गुर्जर निदेशक (अकादमिक) वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**प्रो. जे. के. जोशी** निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
प्रो. दिव्य प्रभा नागर पूर्व कुलपति ज.रा. नागर राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय, उदयपुर	**प्रो. दामीना चौधरी (सेवानिवृत्त)** शिक्षा विद्यापीठ वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
प्रो. अनिल शुक्ला आचार्य शिक्षा , लखनऊ **विश्वविद्यालय**, लखनऊ	**डॉ. रजनी रंजन सिंह** सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
डॉ. अनिल कुमार जैन सह आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**डॉ. कीर्ति सिंह** सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
डॉ. पतंजलि मिश्र सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**डॉ. अखिलेश कुमार** सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

*डॉ. रजनी रंजन सिंह,सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ 13.06.2015 तक

**डॉ. अनिल कुमार जैन, सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ 14.06.2015 से निरन्तर

समन्वयक एवं सम्पादक

समन्वयक (बी.एड.)
डॉ. कीर्ति सिंह
सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सम्पादक
डॉ. अनिल कुमार जैन
निदेशक एवं सह आचार्य,शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम लेखन

1 **डॉ. श्वेता भारद्वाज** (इकाई सं.1,2,6,8,10,11)
सह आचार्य शिक्षा एन.एस.सी.बी. राजकीय
कन्या स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, लखनऊ

2 **प्रो. आर.आर. सिंह** (इकाई सं.3,4)
डीन, विशेष शिक्षा संकाय
डॉ. शकुंतला मिश्रा पुर्नवास विश्वविद्यालय, लखनऊ

3 **डॉ. अनिल कुमार जैन** (इकाई सं.5,7)
निदेशक, सह-आचार्य शिक्षा
व ,.वि.वि.खु.म.कोटा

4 **डॉ. स्मिता पंचोली** (इकाई सं.9,14,16)
व्याख्याता शिक्षा
विद्या भवन जी.एस. टीचर्स कॉलेज, उदयपुर

5 **प्रज्ञा त्रिपाठी** (इकाई सं.12**)**
व्याख्याता
शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, कानपुर

6 **डॉ. मितेश जुनेजा (**इकाई सं.15)
व्याख्याता शिक्षा
विद्या भवन जी.एस. टीचर्स कॉलेज, उदयपुर

7 **डॉ. मनीष पराशर** (इकाई सं. 13, 17,18)
व्याख्याता
शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, धौलपुर

8 **श्री संजय कुमार** (इकाई सं. 19)
सहायक आचार्य,
प्रारंभ शिक्षक शिक्षा विद्यापीठ
झझहरियाणा ,

आभार

प्रो. विनय कुमार पाठक
पूर्व कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. अशोक शर्मा
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

प्रो .एल.आर .गुर्जर
निदेशक (अकादमिक)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

प्रो. करण सिंह
निदेशक
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण प्रभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

डॉ. सुबोध कुमार
अतिरिक्त निदेशक
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण प्रभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

उत्पादन 2015, ISBN : 978-81-8496-526-1

इस सामग्री के किसी भी अंश को व.म.खु.वि.वि., कोटा, की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है। व.म.खु.वि.वि., कोटा के लिए कुलसचिव, व.म.खु.वि.वि., कोटा (राजस्थान) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पेज नं .
1	अधिगम: अर्थ, प्रकृतिप्रकार , एवं विशेषताऐं	1
2	अधिगम प्रक्रिया का बोध	17
3	अधिगम के सिद्धांत	47
4	अधिगम के जैविक आधार एवं शैक्षिक निहितार्थ	72
5	अधिगमकर्ता का विकास एवं अधिगम प्रक्रिया	92
6	प्रमुख संज्ञानात्मक एवं संवेगात्मक प्रक्रियाऐं	122
7	अधिगम को प्रभावित करने वाले विशिष्ट कारक	153
8	अधिगमकर्ता में सृजनात्मक चिंतन का विकास	172
9	विद्यालय का भौतिक तथा सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण एवं अधिगम प्रक्रिया	187
10	शिक्षण अधिगम की विधियाँ एवं अधिगम वातावरण	208
11	शिक्षण के आधार	227
12	अधिगम और शिक्षण में सम्बन्ध	248
13	शिक्षक के गुण एवं भूमिका	256
14	अध्यापक की सहभागिता और शिक्षण के लिये निहितार्थ	272
15	शिक्षण एक वृत्ति के रूप में	291
16	एकीकृत तकनीकी और वैयक्तिक अधिगम	308
17	समूह शिक्षण मे तकनीकी का प्रयोग	322
18	वृहद समूह शिक्षण में तकनीकी का प्रयोग	325
19	दूरस्थ विधि के द्वारा शिक्षण	354

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठकों से आग्रह

प्रिय पाठकों,

शिक्षक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2009 एवं 2010 में शिक्षक प्रशिक्षण के लिए दी गई अनुशंसाओं के क्रम में एनसीटीई द्वारा 2014 में तैयार किये गये पाठ्यक्रम की अनुपालना में विश्वविद्यालय ने अपनी विद्या परिषद् की स्वीकृति के पश्चात अन्तिम रूप में बने बी.एड. (ओडीएल) पाठ्यक्रम के अनुसार प्रथम वर्ष की स्व-अधिगम सामग्री (SLM) तैयार की है। यह पाठ्यसामग्री विश्वविद्यालय के शिक्षा संकाय के सदस्यों और विश्वविद्यालय से जुड़े हुए अन्य शिक्षाविदों के अथक प्रयास से तैयार की गई है। यह एनसीटीई द्वारा 2014 में सुझाये गये नये पाठ्यक्रम के प्रकाश में किया गया प्रथम प्रयास है। आप प्रबुद्ध पाठक हैं। आपको इस SLM के किसी विषय, उप विषय, बिन्दु या किसी भी प्रकार की त्रुटि दिखाई पड़ती है या इसके परिवर्द्धन हेतु आप कोई सुझाव देना चाहते हैं तो शिक्षा विद्यापीठ सहर्ष आपके सुझावों को अगले संस्करण में सम्मिलित करने का प्रयास करेगा। आप अपने सुझाव हमें निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा रावतभाटा रोड, कोटा - 324010 या मेल soe@vmou.ac.in पर भेजने का कष्ट करें।

धन्यवाद

(डॉ. अनिल कुमार जैन)
निदेशक
शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

इकाई – 1

अधिगम: अर्थ, प्रकृति, प्रकार एवं विशेषताऐं

(Learning: Meaning, Nature, types and Characteristics

इकाई रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 अधिगम का अर्थ एवं परिभाषा
1.4 अधिगम की प्रकृति
1.5 अधिगम की विशेषताएं
1.6 अधिगम के प्रकार
1.7 अधिगम को प्रभावित करने वाले सामान्य कारक
1.8 सारांश
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 निबंधात्मक प्रश्न
1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.1 प्रस्तावना

अधिगम मानव व्यवहार की एक प्रमुख प्रक्रिया है। मनुष्य एक अधिगमशील प्राणी है। वह जन्म से ही नहीं बल्कि मां के गर्भ से ही मृत्यु पर्यन्त कुछ न कुछ सीखता ही रहता है। प्रारम्भ में शिशु असहाय एवं पराश्रित होता है। किन्तु धीरे धीरे वह अपने वातावरण से समायोजन करना सीखता है। समायोजन की इस प्रक्रिया में वह अपने पूर्व अनुभवों से लाभ उठाता है। पूर्व अनुभवों से लाभ उठाने की इस प्रक्रिया को ही मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम का नाम दिया है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को सम्पन्न करने तथा अध्ययन करने के पश्चात आप को इस योग्य होना चाहिये कि आप -

- अधिगम के अर्थ से परिचित हो सकेंगे।

- अधिगम प्रक्रिया को समझ सकें तथा विश्लेषण कर सकेंगे।
- अधिगम के प्रकारों की व्याख्या कर सकेंगे।
- अधिगम को प्रभावित करने वाले शिक्षक सम्बन्धी, शिक्षार्थी सम्बन्धी व वातावरण सम्बन्धी कारकों की विवेचना कर सकेंगे।

1.3 अधिगम का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Learning)

अधिगम या सीखना एक बहुत ही सामान्य और आम प्रचलित प्रक्रिया है। जन्म के तुरन्त बाद से ही व्यक्ति सीखना प्रारम्भ कर देता है और फिर जीवनपर्यन्त कुछ ना कुछ सीखता ही रहता है। सामान्य अर्थ में 'सीखना' व्यवहार में परिवर्तन को कहा जाता है। (Learning refers to change in behaviour) परन्तु सभी तरह के व्यवहार में हुए परिवर्तन को सीखना या अधिगम नहीं कहा जा सकता।

वुडवर्थ के अनुसार,"नवीन ज्ञान और नवीन प्रतिक्रियाओं को प्राप्त करने की प्रक्रिया, सीखने की प्रक्रिया है। "

"The process of acquiring new knowledge and new responses in the process of learning."

गेट्स एवं अन्य के अनुसार, "अनुभव और प्रशिक्षण द्वारा व्यवहार में परिवर्तन लाना ही अधिगम या सीखना है।" "Learning is the modification of behavior through experience and training."

क्रो एवं क्रो के अनुसार, "सीखना या अधिगम आदतों, ज्ञान और अभिवृत्तियों का अर्जन है।" "Learning is the acquisition of habits knowledge and attitudes."

क्रॉनवेक के अनुसार, "सीखना या अधिगम अनुभव के परिणाम स्वरूप व्यवहार में परिवर्तन द्वारा व्यक्त होता है।" "Learning is shown by a change in behavior as a result of experience."

मॉर्गन और गिलीलैण्ड के अनुसार, "अधिगम या सीखना, अनुभव के परिणाम स्वरूप प्राणी के व्यवहार में कुछ परिमार्जन है, जो कम से कम कुछ समय के लिए प्राणी द्वारा धारण किया जाता है।"

"Learning is some modification in the behaviour of the organism as a result of experience which is retained for at least ascertain period of time."

जी.डी. बोआज के अनुसार, "सीखना या अधिगम एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति विभिन्न आदतें, ज्ञान एवं दृष्टिकोण अर्जित करता है जो कि सामान्य जीवन की माँगों को पूरा करने के लिए आवश्यक है।"

"Learning is the process by which the individual acquires various habits, knowledge and attitudes that are necessary to meet the demand of life in general."

हिलगार्ड के अनुसार,"सीखना या अधिगम एक प्रक्रम है जिससे प्रतिफल परिस्थिति से प्रतिक्रिया के द्वारा कोई क्रिया आरम्भ होती है या परिवर्तित होती है, बशर्ते कि क्रिया में परिवर्तन की विशेषताओं को जन्मजात प्रवृत्तियों,परिपक्वता और प्राणी की अस्थायी अवस्थाओं के आधार पर न समझाया जा सकता हो।"

"Learning is the process by which an activity originates or is changed through reacting to an encountered situation, provided that the characteristics of the change in activity cannot be explained on the basis of native tendencies, maturation or temporary status of organism."

ब्लेयर,जोन्स और सिम्पसन के अनुसार,"व्यवहार में कोई परिवर्तन जो अनुभवों का परिणाम है और जिसके फलस्वरूप व्यक्ति आने वाली स्थितियों का भिन्न प्रकार से सामना करता है- अधिगम कहलाता है।"

"Any change of behaviour which is a result of experience and which causes people to face later situation differently may be called learning." – Blair, Jones and Simpson

सरटैन,नार्थ, स्ट्रेंज तथा चैपमैन के अनुसार के अनुसार:- " सीखना एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा अनुभूति या अभ्यास के फलस्वरूप व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन होता है ।"

Learning may be defined as the process by which a relatively enduring change in behavior occurs as experience or practice".

मार्गन, किंग, विस्ज तथा स्कॉपलर के अनुसार:- "अभ्यास या अनुभूति के परिणामस्वरूप व्यवहार में होने वाले अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन को सीखना कहा जाता है ।"

Learning can be defined as any relatively permanent change in behavior that occurs as a result of experience".

ऊपर की परिभाषाओं एवं अनेक अन्य मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गयी लगभग समान परिभाषाओं का यदि एक संयुक्त (analysis) विश्लेषण किया जाय, तो सीखने का स्वरूप बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है। इस तरह के विश्लेषण करने पर हम निम्नांकित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

(i) **सीखना व्यवहार में परिवर्तन को कहा जाता है (Learning is the change in behaviour):-** प्रत्येक सीखने की प्रक्रिया में व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन होता है। अगर परिस्थिति ऐसी है जिसमें व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन नहीं होता है, तो उसे हम सीखना नहीं कहेंगें। व्यवहार में परिवर्तन एक अच्छा एवं अनुकूली (adaptive) परिवर्तन भी हो सकता है या खराब में कुसमंजित (Maladaptive) परिवर्तन भी हो सकता है।

(ii) **व्यवहार में परिवर्तन अभ्यास या अनुभूति के फलस्वरूप होता है (The change in behaviour occurs as a function of practice or experience) :-** सीखने की प्रक्रिया में व्यवहार में जो परिवर्तन होता है, वह अभ्यास या अनुभूति के फलस्वरूप होता है।

(iii) **व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन होता है (There is relatively permanent change in behaviour) :-** ऊपर दी गयी परिभाषाओं में इस बात पर विशेष रूप से बल डाला गया है कि सीखने में व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन होता है ।

अभ्यास प्रश्न 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये |

1. अधिगम व्यवहार में ………………… की प्रक्रिया है।
2. व्यक्ति में जब तक पर्याप्त शारीरिक ……………नहीं आती वह संतोषजनक रूप से नहीं सीख पाता।
3. अधिगम की प्रक्रिया में व्यक्ति और लक्ष्य के बीच में ………….रहती हैं।

1.4 अधिगम की प्रकृति (The Nature of Learning)

अधिगम एक मानसिक प्रक्रिया है जिसमें मानसिक प्रक्रियाओं की अभिव्यक्ति व्यवहारों द्वारा होती है। मानव व्यवहार अनुभवों के आधार पर परिवर्तित और परिमार्जित होते रहते हैं। अतः अधिगम प्रक्रिया में दो तत्व निहित होते है। - परिपक्वता और पूर्व अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता। अधिगम पूर्व अनुभव द्वारा व्यवहार में प्रगतिशील परिवर्तन है। अधिगम की क्रिया जीवन में सदा और सर्वत्र चलती रहती है, बालक परिपक्वता की ओर बढ़ता हुआ अपने अनुभवों से लाभ उठाता हुआ, वातावरण के प्रति जो उपयुक्त प्रतिक्रिया करता है वही अधिगम होता है।

मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम की प्रकृति, प्रक्रिया कोई व्यक्ति कैसे सीखता है आदि को समझने के लिए ढेर सारा साहित्य इकट्ठा किया है। जब हम अधिगम की विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण करते हैं तो अधिगम की प्रकृति के सन्दर्भ में निम्न बिन्दु स्पष्ट होते हैं -

1. अधिगम की क्रिया द्वारा व्यवहार में परिवर्तन होता है।
2. व्यवहार में जो परिवर्तन होता है वह कुछ समय तक बना रहता है, और अगर आलोप हो जाए तब भी व्यक्ति द्वारा कुछ प्रयासों के पश्चात फिर वह परिवर्तन हो जाता है।
3. व्यवहार में परिवर्तन पूर्व अनुभवों पर आधारित होता है।
4. अधिगम द्वारा व्यवहार में जो परिवर्तन आताहै वह बाह्य रूप से दिखाई देने वाला या न दिखाई देने वाला हो सकता है।

5. अधिगम द्वारा हुए व्यवहारों में होने वाले परिवर्तनों में परिपक्वता नशावृत्ति, थकान, तथा मूल प्रवृत्तियात्मकक व्यवहार शामिल नहीं होते।
6. एक बार व्यवहार में परिवर्तन होने के पश्चात नवीन परिस्थिति में उस परिवर्तित व्यवहार का संशोधन हो सकता है।
7. अधिगम के द्वारा व्यक्ति के ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा मनोक्रियात्मक क्षेत्रों में व्यवहारों का विकासात्मक परिवर्तन होता है।
8. अधिगम व्यक्ति में सामाजिक या असमाजिक दोनों प्रकार के व्यवहार पैदा कर सकता है।
9. अधिगम त्रुटि रहित या त्रुटिपूर्ण हो सकता है।

अभ्यास प्रश्न 2 –

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये |

1. अधिगम के फलस्वरूप व्यवहार में जो परिवर्तन होते हैं वह .... पर आधारित होते हैं।

2. अधिगम द्वारा व्यक्ति के ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा मनोक्रियात्मक क्षेत्रों में व्यवहारों का

.... परिवर्तन होता है।

1.5 अधिगम की विशेषताएँ (Characterstics of Learning)

अधिगम की प्रकृति को निम्न रूप में वर्णित किया जा सकता है -

1. **संपूर्णजीवन ही अधिगम है** - व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक वातावरण के साथ सक्रिय अन्तक्रिया करता रहता है जिसके फलस्वरूप वह जीवन पर्यन्त अधिगम करता है।
2. **अधिगम के फलस्वरूप व्यवहार में स्थायी परिवर्तन होते हैं -** व्यक्ति अपने अनुभवों के आधार पर सीखता है जैसे एक शिशु जिसका आग के बारे में कोई पूर्व अनुभव नहीं है वह आग की तरफ उत्सुकता से बढ़ता है वह उसे पकड़ने का प्रयास करता है जिससे वह जलन अनुभव करता है और इस अनुभव के आधार पर दुबारा आग को पकड़ने का प्रयास नहीं करेगा और यह व्यवहार पविर्तन ही अधिगम है।
3. **अधिगम एक समायोजन की प्रक्रिया है** - व्यक्ति हर हालत में अपने वातावरण में समायोजित होने का प्रयास करता है जिसके फलस्वरूप वह अपने व्यवहारों में संशोधन, नये व्यवहारों को ग्रहण करता है। ताकि वह अपनी समायोजित अवस्था में रह सके।
4. **अधिगम की प्रक्रिया सार्वभौमिक है** - प्रत्येक जीवित प्राणी अधिगम करता है। मनुष्य में अधिगम की क्षमता सर्वाधिक होती हैं
5. **अधिगम के फलस्वरूप जो परिवर्तन होते हैं वह स्थायी होते हैं -** अधिगम द्वारा व्यवहारों में परिवर्तन होते हैं जिनका स्वरूप स्थायी होता है अगर किसी व्यक्ति ने साइकिल चलाना सीखा है और कई वर्षों तक नहीं चलाई फिर भी वह थोड़े अभ्यास के बाद साइकिल पुनः चला पता है।

6. **अधिगम विकास की प्रक्रिया है** - अधिगम द्वारा व्यक्ति का निरन्तर विकास होता है। हर अवस्था पर व्यक्ति अपने भविष्य के विकास के लिए नए लक्ष्य बनाता है और उन्हें प्राप्त करने का प्रयास करता है और इन्हीं प्रयासों के फलस्वरूप उसके विकास की प्रक्रिया चलती रहती है।
7. **अधिगम को प्रत्यक्ष रूप से नहीं देखा जा सकता है** - अधिगम के बारे में जानने के लिए व्यक्ति के व्यवहारों का अध्ययन करना पड़ता है क्योंकि अधिगम को देखा नहीं जा सकता बल्कि व्यक्ति के व्यवहारों में हुए परिवर्तनों से उसके बारे में पता लगाया जा सकता है।
8. **अधिगम उद्देश्यपूर्ण एवं विवेकपूर्ण होता है** - सीखने में सफलता निश्चित उद्देश्यों की उपस्थिति में ही संभव है। सीखना एक विवेकपूर्ण कार्य है। बिना बुद्धि या विवेक के सीखने की प्रक्रिया संतोषजनक ढंग से नहीं चलती।
9. **अधिगम व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों ही हैं** - अधिगम एक व्यक्तिगत कार्य है। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं ही सीखने की प्रक्रिया में होकर निकलता है परन्तु व्यक्ति सामाजिक वातावरण में रहकर भी बहुत कुछ सीखता है।
10. **अधिगम उत्तेजना तथा अनुक्रिया के मध्य एक संबंधहै** - किसी उत्तेजना के साथ सही अथवा वांछित अनुक्रिया का संबंधस्थापित करना ही अधिगम है।
11. **अधिगम ज्ञानात्मक, भावात्मक व मनोक्रियात्मक पक्ष से संबंधितहै -** मनुष्य जो कुछ सीखता है उसका क्षेत्र ज्ञानात्मक, भावात्मक व मनोक्रियात्मक होता है क्योंकि वह ज्ञान का संग्रह करता है, भावनाओं को ग्रहण करता है तथा क्रियाओं को करने हेतु दक्षताओं को भी संकलित करता है।
12. **अधिगम स्थानान्तरणीय है** - एक प्रकार की परिस्थिति में सीखे गए कौशलों अथवा समस्या के समाधनों का उपयोग व्यक्ति मिलती-जुलती दूसरी परिस्थतियों में कर लेता है, अर्थात अधिगम का स्थानान्तरण हो जाता है। इस प्रकार अधिगम स्थानान्तरणीय है।

अधिगम केवल मनुष्यों तक ही सीमित नहीं है यह प्रक्रिया अनेक जानवरों में भी देखी जा सकती है। जैसे मदारी बंदों को नाचना सिखाता है, सर्कस में जानवरों द्वारा अनेक सीखे गये व्यवहारों का प्रदर्शन किया जाता है। मनुष्य व जानवरों के अधिगम में अधिगम के स्तर का अंतर होता है मनुष्य जहां अधिगम के उच्चतम स्तर तक जाने की योग्यता रखता है वहीं जानवर अधिगम के निम्न स्तरों तक ही रहते हैं। और यह अंतर उनकी मनोशारीरिक संरचनाओंके फलस्वरूप पाया जाता है।

अभ्यास प्रश्न 3

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये |

1. अधिगम एक .... की प्रक्रिया है।
2. अधिगम के फलस्वरूप व्यवहार में .... परिवर्तन होते हैं।
3. अधिगम को .... रूप में नहीं देखा जा सकता है।

4. अधिगम .... एवं .... होता हैं

1.6 अधिगम का प्रकार (Types of Learning)

अधिगम के प्रकार को बताना एक चुनौतीपूर्ण कार्य ही है क्योंकि इसका वर्गीकरण अनेक आधारों पर किया जा सकता है। प्रस्तुत इकाई में हम अधिगम के प्रकारों को निम्न आधारों की कसौटी पर रखकर अध्ययन करेंगे।

1.6.1 अधिगम के क्षेत्र में आधार पर अधिगम के प्रकार

1.6.2 अधिगम प्रक्रिया में घटित होने वाली दशाओं के आधार पर अधिगम

1.6.3 कठिनाई के स्तर पर आधारित अधिगम प्रकार

1.6.1 अधिगम के क्षेत्र के आधार पर अधिगम के प्रकार

जैसा कि हम अध्ययन कर चुके हैं कि अधिगम ज्ञानात्मक, भावात्मक व मनोक्रियात्मक क्षेत्रों से संबंधितरहता हैं। इसी आधार पर अधिगम के निम्न प्रकार देखे जा सकते हैं -

1. **संवेदनगति अधिगम (Sensory Motor Learning)**

इस अधिगम में कौशल अर्जन सम्बन्धी ज्ञान आता है और व्यक्ति द्वारा विभिन्न प्रकार की कुशलता अर्जित की जाती है। जैसे तैरना, साईकिल चलाना, टाइपिंग इत्यादि। इस प्रकार के अधिगम में तीन चरण होते है-

i. **ज्ञानात्मक (Cognitive Phase)** - इस चरण में व्यक्ति सीखे जाने वाले कौशल के बारे में सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त करता है। वह कौशल के अभ्यास करने की योजना बनाता है वह संभावित त्रुटियों के सन्दर्भ में विशलेषण करता है।

ii. **दृढ़ीकरण (Fixation)** - इस चरण में सही व्यवहार प्रारूपों का तब तक अभ्यास किया जाता है जब तक कि गलत अनुक्रिया की संभावना शून्य नहीं हो जाती। यह स्थिति दृढ़ीकरण कहलाती है।

iii. **स्वचलित स्थिति (Autonomous Phase)** - इस चरण में किसी कौशल में कार्य करने की गति में वृद्धि करने की आवश्यकता होती है। यह चरण कौशल में पूर्ण निपुणता का द्योतक है। इस स्थिति में व्यक्ति निपुणता के कारण किसी कार्य को यन्त्रवत रूप में करता है।

2. **गामक अधिगम (Motor Learning) -** गामक अधिगम में बालक विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में शरीर के अंगों के संचालन एवं गति पर नियंत्रण करना सीखता है।

3. **बौद्धिक अधिगम (Intellectual Learning)** - इसके अन्तर्गत ज्ञानोपार्जन सम्बन्धी समस्त क्रियाएं आती है। जो निम्नांकित है। -

4. **प्रत्यक्षीकरण अधिगम (Perceptual Learning) -** इसमें बालक प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक स्तर पर ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से सम्पूर्ण परिस्थिति को देखकर व सुनकर प्रतिक्रिया करता है व सीखता है।

5. **प्रत्ययात्मक अधिगम (Conceptual Learning)** - इस प्रकार के सीखने में उसे तर्क, कल्पना और चिन्तन का सहारा लेना पड़ता है।
6. **साहचर्यात्मक अधिगम (Associative Learning)** - प्रत्ययात्मक अधिगम इसी अधिगम की सहायता से सम्पन्न होता है। इस प्रकार का अधिगम स्मृति के अन्तर्गत आता है।
7. **रसानुभूतिपरक अधिगम (Appreciational Learning)** - इस प्रकार के सीखने में बालक में संवेगात्मक या भावुकतापूर्ण वर्णन या घटना से प्रभावित होकर मूल्यांकन करने अर्थात गुण - दोष विवेचना करने तथा सौन्दर्य बोध की क्षमता आ जाती है।

1.6.2 अधिगम प्रक्रिया में घटित होने वाली दशाओं के आधार पर अधिगम के प्रकार -

अधिगम प्रक्रिया में घटित होने वाली दशाओं के आधार पर निम्न प्रकार के अधिगम देखने को मिलते हैं-

1. **स्मृति अधिगम** - इस प्रकार के अधिगम में बालक अर्थपूर्ण तथ्यों को स्मृति में धारण करता है व यंत्रवत तरीके से तथ्यों को याद करता है।
2. **समझ स्तर अधिगम** - इस अधिगम में बालक तथ्यों का बोध करता है व उन्हें समझने के प्रयास करता है विभिन्न तथ्यों में अंततर करता है उनका वर्गीकरण करता है आदि। बोध द्वारा प्राप्त अनुभवा बालक की स्मृति का स्थायी अंग बनजाते हैं तथा वह समस्या समाधान में इन तथ्यों का प्रयोग कर पाता है।
3. **चिन्तन स्तर अधिगम** - इस प्रकार के अधिगम में बालक अपने समक्ष प्रस्तुत की गयी समस्या के समाधान के लिए प्रेरित होता हे। वह समस्या समाधान हेतु सीखे गए तथ्यों नियमों एवं सिद्धान्तों का विश्लेषण करके नियम आदि बनाता है।
4. **स्वायत्ता अधिगम** - इस प्रकार के अधिगम में बालक प्राकृतिक रूप में सीखता है। वह अपनी अंतदृष्टि के आधार पर समस्याओं का विश्लेषण कर उन्हें सुलझाता है।
5. **सरल अधिगम** - बालक जब स्वतः ही स्वतंत्र रूप से कार्य करते हुए कुछ सीख जाता है, तो उसे स्वतंत्र अधिगम कहते हैं।
6. **कठिन अधिगम** - कठिन अधिगम में संगठित एवं जटिल प्रक्रियाऐं शामिल होती है। इस अधिगम में कठिनता का स्तर बढ़ता ही जाता है। इसमें बालक को ज्ञान एवं क्रिया में सामन्जस्य करना होता है। जैसे संगीत में सुर, लय एवं ताल को सीखना तथा उसके बाद राग एवं अलाप आदि कठिन प्रक्रियाओं को सीखना।
7. **आकस्मिक अधिगम** - यह अधिगम अनायास ही घटित हो जाता है। इसमें अधिगम कर्ता न तो सचेत होता है और न ही उसके द्वारा अधिगम हेतु किसी प्रकार का प्रयास किया जाता है।

8. **उद्देश्यपूर्ण अधिगम** - इस प्रकार के अधिगम में जानबूझ कर एवं सचेत प्रयास करने पड़ते हैं। इसमें उद्देश्यों का पहले ही निर्धारण कर लिया जाता है। यह एक संगठित अधिगम होता है।

1.6.3 कठिनाई के स्तर पर आधारित अधिगम के प्रकार

गेने (Gagne) ने अपनी पुस्तक The Conditions of Learning में अधिगम के आठ भेद बताये हैं, जिसे वह निष्पादन परिवर्तन कहता है। गेने द्वारा बताये गये अधिगम के भेदों को कठिनता के स्तर के आधार पर एक क्रम में रखा जा सकता है।

गेने के अनुसार अधिगम के ये आठ भेद निम्नलिखित हैं -

1. **संकेतक अधिगम (Signal Learning)** - यह एक प्रकार का रूढ़िगत अनुकूलन है। इसमें एक संकेत विशेष से अधिगम हो जाता है। जैसे पावलोव के प्रयोगानुसार घण्टी रूपी उद्दीपन से लार स्त्राव की अनुक्रिया का घटित होना।
2. **उद्दीपन अनुक्रिया अधिगम (Stimulus Response Learning)** - इस प्रकार के अधिगम में बालक किसी विभेदकारी उद्दीपन के प्रति एक एक सही अनुक्रिया सीख लेता है। थार्नडाइक के बिल्ली के प्रयोग द्वारा इसे समझा जा सकता है।
3. **शाब्दिक साहचर्य अधिगम (Verbal Association Learning)** - शाब्दिक संयोजन, शाब्दिक श्रंखलाओं का अधिगम है।
4. **श्रंखला अधिगम (Chain Learning)** - इस प्रकार के अधिगम में अलग - अलग उद्दीपन अनुक्रियाओं के मध्य एक संयोजन स्थापित किया जाता है तथा उनके मध्य एक सम्बन्ध स्थापित कर सम्बन्धों की एक श्रंखला सी बन जाती है।
5. **विभेदन अधिगम (Discrimination Learning)** - इस अधिगम के अन्तर्गत बालक भिन्न - भिन्न उद्दीपनों के प्रति अनुकूलन से भिन्न - भिन्न प्रकार की अनुक्रियाऐं करना सीख जाता है तथा उसमें एक जैसे उद्दीपनों में भेद करने की एवं उनके अनुसार अनुक्रिया करने की क्षमता आ जाती है।
6. **सम्प्रत्यय अधिगम (Concept Learning)** - यह अधिगम विभेदन अधिगम पर आधारित है। इस अधिगम में बालक में उद्दीपनों के प्रत्ययों के अनुसार अनुक्रिया करने की क्षमता आ जाती है।
7. **नियम अधिगम (Rule Learning)** - इस अधिगम को महाप्रत्यय अधिगम भी कहते हैं क्योंकि नियम की शाब्दिक रूप में भी अभिव्यक्ति संभव है। इस अधिगम में बालकों द्वारा विचारों का समायेजन किया जाता है।
8. **समस्या समाधान अधिगम (Problem Solving Learning)** - इस अधिगम में बालक पूर्व में सीखे गये नियमों का संयोग खेजता है तथा उनका प्रयोग नवीन समस्यात्मक परिस्थितियों को हल करने के लिये करता है। यह अधिगम नियम अधिगम का प्राकृतिक विस्तार है।

अभ्यास प्रश्न 4

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये |

1. **......................** अधिगम में बालक अपनी अंतदृष्टि के आधार पर समस्याओं का विश्लेषण कर उन्हें सुलझाता है।
2. गेने द्वारा बताये गये अधिगम के भेदों को .... के आधार पर एक क्रम में रखा जा सकता है।
3. .... अधिगम में बालक पूर्व में सीखे गये नियमों का संयोग खोजता है तथा उनका प्रयोग नवीन समस्यात्मक परिस्थितियों को हल करने के लिये करता है।

1.7 अधिगम को प्रभावित करने वाले सामान्य कारक (General Factors Affecting Learning)

अधिगम एक व्यापक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया की सफलता प्रभावी शिक्षण पर ही नहीं अपितु शिक्षक, शिक्षार्थी व पर्यावरण सम्बन्धी अनेक कारकों पर निर्भर करती है। शिक्षक, शिक्षार्थी व पर्यावरण सम्बन्ध कारक ही अधिगम की मात्रा, प्रकृति और सीखने की गति निर्धारित करते हैं। अधिगम को प्रभावित करने वाले कुछ सामान्य कारकों का निम्न रूप से उल्लेख किया जा सकता है

1.7.1 शिक्षार्थी सम्बन्धी कारक

1.7.2 शिक्षक सम्बन्धी कारक

1.7.3. वातावरण सम्बन्धी कारक

1.7.1 शिक्षार्थी सम्बन्धी कारक (Factors Related with Learner)

शिक्षार्थी सम्बन्धी कारकों को निम्न रूप में निर्दिष्ट किया जा सकता है -

1. **बालक स्वयं** - बालक किसी भी सीखने की प्रक्रिया की धुरी है। सभी गतिविधियाँ उसके चारों ओर केन्द्रित रहती हैं। शिक्षा का उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास है इस दृष्टिकोण से बालक की जरूरतों, हितों, अभिरुचियों योग्यताओं क्षमताओं, बुद्धि पर आधारित गतिविधियों का बहुत महत्व है और यह अधिगम को प्रभावी बनाने में सहायक हैं। बालक शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया का आधार है, इसलिए किसी भी स्तर पर बालक के प्रति अज्ञानता सीखने की प्रक्रिया को व्यर्थ व कोरी कल्पना कर देगी। इसलिए अधिगम के लिए यह आवश्यक है कि बालक की रुचियों, आवश्यकताओं, शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं का पूर्ण ज्ञान शिक्षक को होना चाहिए।
2. **बुद्धि** - बुद्धि सीखने को प्रभावित करने वाला एक प्रमुख कारक है। इसको हम एक सामान्य कक्षा में भी अनुभव कर सकते हैं।
3. **आयु** - आयु और अधिगम के विषय में श्रृंखला बद्ध अध्ययनों के उपरान्त यह पाया गया है कि एक निश्चित सीमा तक सीखने की क्षमता उम्र के साथ बढ़ती है जिसके बाद यह कुछसमय तक स्थित रहती है व अंत में सीखने की क्षमता में बढ़ती उम्र के साथ कमी आती

है, इस प्रक्रिया को समझने के लिए विकास के चक्र को ध्यान देना आवश्यक है। व्यक्ति की परिपक्वता का भी उम्र के साथ सीधा सम्बन्ध रहता है।

4. **सीखने की इच्छा** - सीखने की इच्छा का सीधा संबंधसीखने की मात्रा से होता है। यह माना जाता है कि किसी भी विषय पर पकड़ बनाने के व्यक्ति में सीखने के लिए अंदर से इच्छा होनी चाहिए जो उसे उस विषय के बारे में जानने के लिए अभिप्रेरित करती रहे। और यह अभिप्रेरणा व्यक्ति की आवश्यकताओं रुचियों द्वारा निर्धारित होती है और इनके विकास में शिक्षक की अहम भूमिका होती है। एक बुद्धिमान शिक्षक अपने छात्रों को केवल ज्ञान प्रदान नहीं करता बल्कि उन्हें सीखने के लिए अभिप्रेरित करता है, जीवन के वृहद विषयों के संबंधमें रुचियों का विकास करता है। अगर एक शिक्षक अपने छात्रों में व्यापक रुचियाँ आदत, सीखने की इच्छा आदि के विकास में सहायक के रूप में सफल होता है तो वह अपने छात्रों को अच्छा अधिगमकर्ता बना सकता है।
5. **मार्गदर्शन** - आमतौर पर प्रयास एवं त्रुटि को सीखने की विधि माना जाता है। जहाँ व्यक्ति एक नये कार्य से परिचित होता है तो वह प्रयास करता है और असफल होने पर पुनः नयी विधि अपनाता है और कुछ प्रयासों और त्रुटियों के पश्चात वह उस कार्य को करने की सही विधि विकसित कर लेता है। पर व्यवहारिक रूप में एक छात्र काफी समय इस प्रक्रिया में बर्बाद करता है व असफलता का सामना करने पर वह तनाव और हताशा महसूस करता है। एक शिक्षक छात्रों को सही मार्गदर्शन देकर उनका समय व उनमें तनाव व हताशा को उत्पन्न होने से बचा सकता है। लेकिन मार्गदर्शन भी निश्चित सीमा में अधिगम को सुगम बनाने व अनावश्यक त्रुटियों से बचाने हेतु देना चाहिए। अत्याधिक मार्गदर्शन भी उद्देश्यों को विफल बना देता है। उचित मार्गदर्शन का उद्देश्य शिक्षार्थी में पहल करने की क्षमता का विकास व तैयार समाधान तलाश करने की प्रवृत्ति को हतोत्साहित करना चाहिए।
6. **शैक्षिक पृष्ठभूमि** - शिक्षार्थी की शैक्षिक पृष्ठभूमि उसके सीखने को प्रभावित करती है। शैक्षिक दृष्टि से बालक सामान्य रूप या विशिष्ट रूप में पिछड़े हो सकते हैं। कुछ छात्र सामान्यतः सभी विषयों में पिछड़े होते हैं जिन्हें सामान्य पिछड़ेपन की श्रेणी में रखा जाता है वही कुछ बालक किन्हीं विशिष्ट विषयों में पिछड़े होते हैं जो विशिष्ट पिछड़ेपन की श्रेणी में आते हैं, सामान्य पिछड़ेपन वाले बालकों से ज्यादा चुनौतीपूर्ण होती है। अगर एक बालक एक विषय में पिछड़ा है तो उसे उस विषय के नए प्रत्ययों को समझने में दिक्कत आती है और यदि कोई बालक प्रतिभाशाली है तो उसे उस विषय को सीखने में आसानी रहती है। इस प्रकार शैक्षिक पृष्ठभूमि आगे सीखने में योगदान देती है।
7. **अभिप्रेरणा** - अभिप्रेरणा का सीखने में बहुत योगदान होता है, कोई भी अर्थपूर्ण अधिगम अभिप्रेरणा के अभाव में नहीं हो सकता। मनुष्य का मस्तिष्क ज्ञान को स्पंजकी भांति नहीं सोख सकता, कुछ सीखने के लिए उसे सक्रिय गतिविधियों में लिप्त रहना होता है। और इन गतिविधियों के लिए अभिप्रेरणा का होना आवश्यक है इसके अभाव में गतिविधि रूक जाती है जिसके फलस्वरूप अधिगम भी रुक जाता है। अभिप्रेरणा के सन्दर्भ में कहा जाता

है जैसी अभिप्रेरणा होगी वैसा ही अधिगम होगा। यह कहावत स्पष्ट रूप् से अधिगम की प्रक्रिया में अभिप्रेरणा के महत्व को दर्शाती है।

8. **बालक का स्वास्थ्य** - एक स्वस्थ्य शरीर में स्वस्थ मन विकसित होता है। सीखने की पहली शर्त है कि अधिगमकर्ता शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ हो। एक कुपोषित, विकलांग अधिगमकर्ता अपनी समस्त क्षमताओं के अनुसार अधिगम करने में असफल होते हैं। अगर कोई बालक सवेगात्मक रूप से संतुलन में नहीं है तो उसका अधिगम भी प्रभावित होगा। सीखने में बालक की रुचि, दृष्टिकोण अवधान, शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य सीधे तौर पर अधिगम से सम्बन्धित रहते हैं।

9. **बालक की मनोवृत्ति** - अनुकूल या सकारात्मक मनोवृत्ति किसी भी क्षेत्र में सफलता पाने के लिए आवश्यक होती है। अधिगम के प्रति सकारात्मक मनोवृत्ति बालक को अधिक उत्साही और सक्रिय बनाती है, यदि छात्र का किसी विषय के प्रति सकारात्मक सोच है तो वह उस विषय में शिक्षक द्वारा दिए गए ज्ञान को पूरी दिलचस्पी से ग्रहण करेगा। परंतु यदि वह किसी विषय के प्रति नकारात्मक मनोवृत्ति रखता है तो वह उस विषय से नफरत करेगा। इसलिए अधिगम को प्रभावी बनाने के लिए यह आवश्यक है शिक्षक अधिगम गतिविधियों के प्रति छात्रों में सकारात्मक मनोवृत्ति को विकसित करने में सहायता प्रदान करें।

1.7.2 शिक्षक सम्बन्धी कारक (Factors Related withTeacher)

1. **विषय का ज्ञान** - शिक्षक का अपने विषय में विस्तृत ज्ञान, अनुभव आदि का अधिगमकर्ता के अधिगम करने की क्षमता से संबंधितरहता है। शिक्षक विषय सामग्री को छात्रों की योग्यता, रुचि, आयु आदि के अनुकूल बना कर अधिगम को प्रभावी बनाने में सहायक होता है परन्तु वह यह सब तभी कर सकता है जब उसे अपने विषय पर पकड़ हो।

2. **शिक्षक का व्यवहार** - शिक्षक के व्यवहार का भी छात्रों के अधिगम पर प्रभाव पड़ता है। यदि कोई शिक्षक बहुत ही मित्रवत व्यवहार द्वारा छात्रों को अधिगम के लिए प्रेरित करता है तो निश्चय ही उन छात्रों में अधिगम प्रभावी तरीके से होता है क्योंकि वह शिक्षक को अपने मित्र की तरह मानते हैं व भयमुक्त वातावरण में अपनी समस्याओं से शिक्षक को अवगत करा कर मार्गदर्शन लेते हैं दूसरी ओर यदि शिक्षक का व्यवहार कठोर व भय पैदा करने वाला हो तो छात्र अपनी समस्याओं को शिक्षक से नहीं बताते जिसके फलस्वरूप वह पिछड़ जाते हैं अतः इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शिक्षक के व्यवहार का अधिगम में महत्वपूर्ण योगदान होता है।

3. **मनोविज्ञान का ज्ञान** - शिक्षा में बालक द्वारा अधिगम क्रियाएँ करवाकर उसके व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाए जाने के प्रयास किये जाते हैं। इसलिए शिक्षक को जहां एक ओर अपने विषय का ज्ञान होना चाहिए वही उसे बाल मनोविज्ञान का भी ज्ञान होना चाहिए। यह माना जाता है कि शिक्षा बालक की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास है। अन्तर्निहित शक्तियों की पहचान और उसके विकास की सभ्यताओं का ज्ञान मनोविज्ञान द्वारा ही प्राप्त

किया जा सकता है। बालक की अधिगम क्रियाओं में उसकी बुद्धि, अभियोग्यता, अभिवृत्ति, अभिरुचि और आकांक्षा स्तर का अत्यधिक महत्व होता है। इनका पर्याप्त ज्ञान मनोविज्ञान से प्राप्त कर अधिगम क्रियाओं को प्रभावी बनाया जा सकता है।

4. **शिक्षण विधि** - शिक्षण विधियों का प्रयोग शिक्षक द्वारा विषय संबंधी नियोजन ज्ञान को छात्रों तक पहुंचाने के लिए किया जाता है। शिक्षण विधियां भी कई प्रकार की होती हैं पर मुख्यतः इन्हें दो श्रेणी में रखा जाता है। शिक्षक केन्द्रित व छात्र केन्दित। अधिगम इस बात पर निर्भर करता है कि सीखने की कैसी विधि का प्रयोग किया जा रहा है। शिक्षक द्वारा सिखाने के लिए यदि रुचिकर तथा आनंददायक विधियों का प्रयोग किया जाता है तो छात्र उस पाठ में अधिक रुचि लेकर सीखते हैं। इसके विपरीत यदि अरुचिकर और स्तरानुकुल विधियों का प्रयोग नहीं किया जाता है तो अधिगम में भी कठिनाईयाँ आती हैं। प्रारिम्भक कक्षाओं के छात्रों की खेल में अधिक रुचि होती है और उनमें क्रियाशीलता भी अधिक पायी जाती है। किन्तु उच्च कक्षाओं में मानसिक विकास अधिक होने से छात्रों को योजना विधि सहकारी अधिगम विधि आदि में अधिक रुचि होती है।
5. **व्यक्तिगत विभिन्नताओं का ज्ञान**- शिक्षक से अपेक्षा रखी जाती है कि वह प्रत्येक बालक-बालिका के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास में सहायक हो, किन्तु यह कार्य तब तक सम्भव नहीं है जब तक शिक्षक को व्यक्तिगत विभिन्नताओं का ज्ञान न हो। व्यक्तिगत विभिन्नताओं का ज्ञान होने पर शिक्षक बालकों के अनुरूप ही अधिगम अनुभवें का चयन कर सकता है। व्यक्तिगत विभिन्नताओं का ज्ञान प्राप्त करने में सहायक होता है। और इस ज्ञान के द्वारा वह अधिगम को प्रभावी बना कर नियोजित कर सकता है।
6. **शिक्षक का व्यक्तित्व** - अधिगम प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका अतुलनीय है। शिक्षक का व्यक्तित्व भी अधिगम को प्रभावित करते हैं। अधिगम की प्रक्रिया में सामाजिक अधिगम भी महत्वपूर्ण होता है बहुत सारी बातें शिक्षक अपने व्यवहार द्वारा ही छात्रों को सिखा सकता है। यदि छात्र शिक्षक के व्यक्तित्व से प्रभावित होते हैं तो वह उसका अनुकरण करने लगते हैं जिससे वह उस शिक्षक के गुणों कोआत्मसात करते हैं इसके विपरीत यदि शिक्षक का व्यक्तित्व छात्रों को प्रभावशाली नहीं लगता तो वह उसके द्वारा पढ़ाये गए विषय पर भी ध्यान नहीं देते और इससे अधिगम प्रभावित होता है।

1.7.3. वातावरण सम्बन्धी कारक (Factors Related with Environment)

1. **कक्षा-कक्ष वातावरण** - कक्षा-कक्ष ही वह स्थान है जहां शिक्षक और छात्रों के मध्य अन्तःक्रिया होती और शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयास किये जाते हैं। कक्षा-कक्ष का वातावरण अधिगम अनुकूल होना चाहिए, छात्रों के बैठने की उचित व्यवस्था, प्रकाश, हवा, आदि की उचित व्यवस्था अधिगम में सहायक होती है। कक्षा-कक्ष में उचित स्थानों पर डिस्प्ले बोर्ड, छात्रों के लिए बोर्ड, श्यामपट्ट, दृश्य-श्रव्य साधनों की व्यवस्था होनी चाहिए इन भौतिक तत्वों के अलावा कक्षा का मनोवैज्ञानिक वातावरण भी अधिगम के

अनुरूप होना चाहिए, कक्षा-कक्ष किसी प्रकार का भय, घबराहट आदि को छात्रों में व्याप्त न होने देकर उन्हें अधिगम के प्रति अभिप्रेरित करता है।

2. **सीखने का समय व थकान** - सीखने का समय सीखने की क्रिया को प्रभावित करता है, जैसे जब छात्र विद्यालय आते हैं तब उनका मन तरोताजा व उनमें स्फूर्ति होती है जो घण्टों के बीतने के साथ कम होती जाती है। व वे थकान अनुभव करने लगते हैं। प्रातः वह सुगमता से सीखते हैं व दोपहर तक उनकी सीखने की क्रिया मन्द हो जाती है। अतः सीखने के समय के अनुरूप छात्रों के कठिन विषयों का ज्ञान प्रातःकाल में व आसान व रुचिकर विषयों का ज्ञान बाद में देकर अधिगम में उनकी सक्रियता को बनाया रखा जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न 5 -

सही/गलत बताओ -

1) बालक की अभिरुचियों योग्यताओं का ज्ञान अधिगम की प्रक्रिया में सहायक नहीं होता।
2) सामान्य पिछड़ेपन वाले बालक विशिष्ट पिछड़ेपन वाले बालाकों की अपेक्षा अधिगम प्रक्रिया में अधिक चुनौतीपूर्ण होते हैं।
3) शिक्षक किसी भी शिक्षण विधि के उपयोग द्वारा अधिगम को सुगम बना सकता है।
4) सीखने के समय का अधिगम के साथ संबंधहोता है।

1.8 सारांश (Summary)

अधिगम एक मानसिक प्रक्रिया है जिसकी अभिव्यक्ति व्यक्ति के व्यवहार द्वारा होती है। अधिगम की प्रक्रिया जीवन पर्यन्त चलती रहती है इसीलिये व्यक्ति के व्यवहार में निरंतर परिवर्तन होता रहता है। अधिगम का प्रक्रिया में परिपक्वता एवं अनुभूतियों का महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। बालक परिपक्वता की ओर बढ़ता हुआ, अपने अनुभवों से लाभ उठाता हुआ, वातावरण के प्रति जो उपयुक्त प्रतिक्रिया करता है, वही अधिगम है।

अधिगम की प्रक्रिया में सर्वप्रथम कुछ आवश्यकताओं की अनुभूति होती है व उन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कुछ लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं और उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये व्यक्ति को विभिन्न बाधाओं को पार करना होता है। व्यक्ति बाधाओं को पार करने के लिये अनेक प्रकार की अनुक्रियाऐं करता हैं। जिन अनुक्रियाओं के फलस्वरूप वह बाधाओं को पार करके लक्ष्य तक पहुंच जाता है, उन अनुक्रियाओं का वह चयन कर लेता है और बार बार अभ्यास करके वह उन क्रियाओं की पुष्टि कर लेता है। जिसके परिणामस्वरूप उसके व्यवहार में परिवर्तन परिलक्षित होता है।

अधिगम की विशेषतायें है -संपूर्ण जीवन ही अधिगम है, अधिगम के फलस्वरूप व्यवहार में स्थायी परिवर्तन होते हैं, अधिगम एक समायोजन की प्रक्रिया है, अधिगम की प्रक्रिया सार्वभौमिक है, अधिगम के फलस्वरूप जो परिवर्तन होते हैं वह स्थायी होते हैं, अधिगम विकास की प्रक्रिया है, अधिगम को

प्रत्यक्ष रूप नहीं से देखा जा सकता है, अधिगम उद्देश्यपूर्ण एवं विवेकपूर्ण होता है, अधिगम व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों ही हैं। अधिगम के प्रकार अधिगम के क्षेत्र, अधिगम प्रक्रिया में घटित होने वाली दशाओं व कठिनाई के स्तर पर आधारित में आधार पर वर्गीकरण किया जा सकता है। अधिगम ज्ञानात्मक, भावात्मक व मनोक्रियात्मक क्षेत्रों से संबंधितरहता है । इसी आधार पर अधिगम के संवेदन गति, गामक, बौद्धिक, प्रत्यक्षीकरण, प्रत्ययात्मक, साहचर्यात्मक, रसानुभूतिपरक अधिगम आदि प्रकार देखे जा सकते हैं। अधिगम प्रक्रिया में घटित होने वाली दशाओं के आधार पर स्मृति, समझ स्तर, चिन्तन स्तर, स्वायत्ता, सरल, कठिन, आकस्मिक, उद्देश्यपूर्ण प्रकार के अधिगम देखने को मिलते हैं। गेने (Gagne) ने कठिनाई के स्तर पर आधारित संकेतक, उद्दीपन अनुक्रिया, शाब्दिक साहचर्य, श्रंखला, विभेदन, सम्प्रत्यय, नियम, समस्या समाधान अधिगम के आठ प्रकार बताये हैं।

अधिगम सफलता प्रभावी शिक्षण पर ही नहीं अपितु शिक्षक, शिक्षार्थी व पर्यावरण सम्बन्धी अनेक कारकों पर निर्भर करती है। शिक्षक, शिक्षार्थी व पर्यावरण सम्बन्ध कारक ही अधिगम की मात्रा, प्रकृति और सीखने की गति निर्धारित करते हैं।

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. परिवर्तन 2. परिपक्वता 3. बाधाएं

अभ्यास प्रश्न 2

1. पूर्व अनुभवों 2. विकासात्मक

अभ्यास प्रश्न 3

1. विकास 2. स्थायी 3. प्रत्यक्ष
4. उद्देश्यपूर्ण, विवेकपूर्ण

अभ्यास प्रश्न 4

1. स्वायत्ता 2.कठिनता के स्तर 3.समस्या समाधान

अभ्यास प्रश्न 5

1. गलत 2.सही 3.गलत 4.सही

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1) अधिगम के अर्थ तथा अधिगम प्रक्रिया की व्याख्या कीजिये?
2) अधिगम को प्रभावित करने वाले कारकों के बारे में चर्चा कीजिये?
3) अधिगम कितने प्रकार के होते हैं, गेने द्वारा दिए गए अधिगम के वर्गीकरण की व्याख्या कीजिये?

1.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

- माथुर, डा. एस.एस. (1999), शिक्षा मनोविज्ञान, आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।
- सिंह, अरूण कुमार. (1998), मनोविज्ञान के सम्प्रदाय एवं इतिहास, मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली।
- पाठक, डा. आर.पी.(2007), उच्च शिक्षा मनोविज्ञान,नई दिल्लीः राधा पब्लिकेशन्स।
- श्रीवास्तव, डा. रामजी, आलम, डा. काजी गौस (1998), आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान, मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली।

इकाई - 2

अधिगम प्रक्रिया का बोध

Understanding Learning Process

इकाई रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 अधिगम का व्यवहारवादी परिप्रेक्ष्य (Behavioural Perspective of learning)

2.3.1. अधिगम में व्यवहारवाद की व्याख्या

2.3.2. व्यवहारवाद की मान्यताएँ

2.3.3 अधिगम में व्यवहारवाद का प्रयोग

2.3.4 व्यवहारवाद की आलोचनाएँ

2.4 अधिगम का संज्ञानवादी परिप्रेक्ष्य (Cognitive Perspective of learning)

2.4.1 अधिगम के संज्ञानवादी परिप्रेक्ष्य की व्याख्या

2.4.2 संज्ञानवाद द्वारा अधिगम की मान्यताएं

2.4.3 अधिगम में सज्ञानवाद के प्रयोग

2.4.4 संज्ञानवाद की आलोचनाएँ

2.5 अधिगम का सूचना प्रक्रम परिप्रेक्ष्य (Information Processing Perspective of learning)

2.5.1 अधिगम के सूचना प्रक्रम परिप्रेक्ष्य की मान्यताएं

2.5.2 अधिगम में सूचना प्रक्रम की परिप्रेक्ष्य की व्याख्या

2.6 अधिगम का मानववादी परिप्रेक्ष्य (Humanistic Perspective of Learning)

2.6.1 अधिगम में मानववादी परिप्रेक्ष्य की व्याख्या

2.6.2 मानववाद द्वारा अधिगम की मान्यताएं -

2.6.3 अधिगम में मानववाद के प्रयोग -

2.6.4 मानववाद की आलोचनाएँ

2.7 अधिगम का जैविकवाद परिप्रेक्ष्य (Biological Perspective of Learning)

2.7.1 अधिगम में जैविक परिप्रेक्ष्य की व्याख्या

2.7.2 जैविक परिप्रेक्ष्य की मान्यताएं

2.7.3 अधिगम के जैविकवाद परिप्रेक्ष्य के प्रयोग -

2.7.4 जैविकवाद की आलोचनाएं

2.8. अधिगम का रचनावादी परिप्रेक्ष्य

2.8.1 अधिगम के रचनावाद परिप्रेक्ष्य की व्याख्या

2.8.2 अधिगम में रचनावाद की मान्यताएं

2.8.3 अधिगम में रचनावाद के प्रयोग

2.8.4 रचनावाद की आलोचनाएं

2.9 अधिगम सामाजिक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य (Socio - Cultural Perspective of Learning)

2.9.1 अधिगम में सामाजिक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य की व्याख्या

2.9.2 सामाजिक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य की मान्यताएं

2.9.3 सामाजिक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य के प्रयोग

2.9.4 सामाजिक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य की आलोचनाएं

2.10 अनुभवात्मक और चिंतनशील अधिगम (Experiential and Reflective Learning)

2.10.1 ज्ञान की रचना हेतु अनुभवात्मक अधिगम के प्रयोग -

2.10.2 कोल्ब के अनुभवात्मक अधिगम की आलोचनाएं

2.11 अधिगम में सामाजिक मध्यस्थता (Social Mediation in Learning)

2.12 संज्ञानात्मक पराक्राम्यता (Cognitive Negotiability)

2.13 स्थितिजनक अधिगम और संज्ञानात्मक शिक्षुता (Situated Learning and Cognitive Apprenticeship)

2.14 पराअनुभूति / परासंज्ञान (Metacognition)

2.14.1 पराअनुभूति / परासंज्ञान के तत्व

2.15 सारांश

2.16 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.17 निबंधात्मक प्रश्न

2.18 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.1 प्रस्तावना

अधिगम का विषय मनोवैज्ञानिक शिक्षाशास्त्रियों के लिए सदा से महत्वपूर्ण रहा है। कोई व्यक्ति कैसे किसी व्यवहार को सीखता यह वर्णन करना एक अपने आपमें गहन अध्ययन का विषय है। अधिगम प्रक्रिया को समझने के लिए अनेक विचारधाराएं हैं, इस इकाई में हम अधिगम प्रक्रिया संबंधी प्रमुख विचारधाराओं का अध्ययन करेंगे और साथ ही साथ ज्ञान के निर्माण हेतु प्रचलित अधिगम विधियों का भी विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को सम्पन्न करने तथा अध्ययन करने के पश्चात आप को इस योग्य होना चाहिये कि आप -

- अधिगम के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों को समझ सकें।
- अनुभवात्मक और चिंतनशील अधिगम से परिचित हो सकें तथा विश्लेषण कर सकें।
- अधिगम में सामाजिक मध्यस्थता के महत्त्व को जान सकें।
- संज्ञानात्मक पराक्राम्यता की अधिगम में भूमिका से परिचित हो सकें।
- स्थितिजनक अधिगम और संज्ञानात्मक शिक्षुता का अर्थ जान सकें।
- परासंज्ञान से परिचित हो सकें।

2.3 अधिगम का व्यवहारवादी परिप्रेक्ष्य (Behavioural Perspective of learning)

अधिगम का व्यवहारवादी परिप्रेक्ष्य के अनुसार व्यक्ति जो कुछ भी सीखता है वह वातावरण से सीखता है। और सीखने की इस प्रक्रिया व्यक्ति की अपनी आंतरिक क्षमता यथा चिन्तन तर्क विवेक आदि का महत्वपूर्ण योगदान नहीं होता है। अगर व्यक्ति द्वारा कोई चीज सीखी गयी है तो व्यवहारवादियों के अनुसार उस सीखने में 80 प्रतिशत वातावरण व सिर्फ 20 प्रतिशत उसकी अपनी क्षमताओं का योगदान होता है। इस विचारधारा के प्रवर्तक हैं जे0बी0 वाटसन जो कि एक अमेरिकी मनोवैज्ञानिक थे अपने अनेकों अध्ययनों के परिणाम स्वरूप उन्होंने इस विचारधारा का प्रतिपादन किया कि मनुष्य के व्यवहारों का भी वस्तुनिष्ठ तरीके से अध्ययन संभव है और मनोविज्ञान में केवल व्यवहारों का अध्ययन ही महत्वपूर्ण है, मन अथवा चेतना को उन्होंने महत्वपूर्ण नहीं माना।

अधिगम की व्यवहारवादी विचारधारा जैसा के नाम से ही स्पष्ट हो रहा है उन व्यवहारों से संबंधित है जिनका निरीक्षण किया जा सके। व्यवहारवाद चिंतन, संज्ञान आदि की अपेक्षा व्यवहार को प्रधान मानता है। इसका केन्द्र बिन्दु व्यवहार के वस्तुनिष्ठ व निरीक्षणात्मक तत्व होते हैं। अधिगम के जितने भी सिद्धान्त इस विचारधारा के अन्तर्गत आते हैं उनमें कहीं न कहीं अधिगम प्रक्रिया को उद्दीपक प्रतिक्रिया का प्रभाव दखने को मिलता है। अधिगम के व्यवहारवादी सिद्धान्तों में पॉवलाव का शास्त्रीय अनुबन्धन, उस

पर आधारित वाटसन के प्रयोग थार्नडाइक का प्रयोग प्रयत्न एवं भूल सिद्धान्त का प्रबलन सिद्धान्त स्किनर का क्रिया प्रसूत अनुबंधन का सिद्धान्त आदि मुख्य हैं। इन सभी सिद्धान्तों में स्किनर के सिद्धान्तों का विशेष महत्व है और आज अधिगम की व्यवहारवादी विचारधारा स्किनर के नाम से जुड़ चुकी है, स्किनर को इस क्षेत्र मे इतनी ख्याति वाटसन द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों की प्रयोगशाला में जांच करने के सराहनीय कार्य द्वारा प्राप्त हुई है। उन्होंने वाटसन द्वारा प्रतिपादित प्रतिक्रिया और अनुबन्धन की मान्यता का खण्डन किया और निष्कर्ष दिया कि मनुष्य सीखने की प्रक्रिया में वातावरण के साथ प्रतिक्रिया तो करता है परन्तु वह वातावरण के साथ कुछ कार्य भी करता जिसके फलस्वरूप कुछ परिणाम मिलते हैं। इस तरह से मनुष्य एक पृष्ठपोषीय चक्र में सम्मिलित रहता है जो कि सीखने की प्रणाली का एक महत्वपूर्ण भाग होता है। स्किनर के सिद्धान्त के अनुसार हम जिस भी तरीके से व्यवहार करते हैं उसकी पृष्ठभूमि में उस व्यवहार से संबंधितपूर्व परिणाम निहित रहते हैं।

2.3.1. अधिगम में व्यवहारवाद की व्याख्या

व्यवहारवाद एक सीखने का सिद्धान्त है जो मनुष्य द्वारा किये गए व्यवहारों को मान्यता देता है। व्यवहारवादियों के अनुसार मनुष्य के व्यवहारों का वैज्ञानिक विधियों द्वारा अध्ययन संभव है जिस पर उसके मन चिंन्तन, भावनाओं आदि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। एक सिद्धान्त के रूप में व्यवहारवाद प्रत्यक्ष और प्रेक्षण योग्य व्यवहारों पर केन्द्रित है और इसका यह भी तर्क है सार्वजनिक रूप से प्रक्षण योग्य व्यवहार (जैसे किये गए कार्य) और निजी तौर पर प्रेक्षण योग्य व्यवहार (जैसे सोच और भावनाओं के रूप में) कोई दार्शनिक मतभेद नहीं है।

2.3.2. व्यवहारवाद की मान्यताएँ

अधिगम प्रक्रिया में व्यवहारवाद निम्न मान्यताओं को प्रतिपादित करता है-

1. अधिगम व्यवहारों में हुए परिवर्तनों से प्रकट होता है।
2. वातावरण व्यवहारों को आकार देता है
3. सीखने की प्रक्रिया को समझने के लिए समीपता के सिद्धान्त (एक अनुबंध के गठन के लिए दो घटनाओं को कैसे समय में पास होना चाहिए) व पूर्वबलन (किसी भी साधन द्वारा एक घटना को दोहराए जाने की संभावना बढ़ाना) को केन्द्र में रखा जाता है।
4. अधिगम में नया व्यवहार अनुबन्धन द्वारा अपनाया जाता है।
5. मानव एक जैविक मशीन की तरह कार्य करता है जो मन और आत्मा के बिना वातावरण में विभिन्न उद्दीपकों के प्रति प्रतिक्रिया देता है।
6. अधिगम की प्रक्रिया में मानव व्यवहारों को उद्दीपकों और प्रतिक्रियाओं की कड़ियों में तोड़कर न केवल उसको समझना बल्कि उसका पूर्वानुमान लगाना व उस पर नियंत्रण करना भी संभव है।
7. हमारा व्यवहार हमारे अन्दर स्थापित अनुबन्धनों का परिणाम होते हैं। जिन पर हमारी सोच, इरादों भावनाओं आदि का प्रभाव नहीं पड़ता।

2.3.3 अधिगम में व्यवहारवाद का प्रयोग

अधिगम में व्यवहारवाद के प्रयोग निम्नलिखित है-

1. पुर्नबलन कार्यक्रम पर ध्यान केन्द्रित करना अधिगम अनुभवों के समय शिक्षक द्वारा पुर्नबलन को व्यवहार परिवर्तन के लिए उपयोग करना व्यवहारवाद की ही देन है।
2. बालक के वांछित व्यवहारों पर ध्यान केंद्रित करना।
3. कक्षा कक्ष के कम्प्यूटर की सहायता से छात्रों को व्यक्तिगत अनुदेशन में सक्रिय करना।
4. छात्रों को निरन्तर पृष्ठपोषण देना।
5. शिक्षक द्वारा प्रत्यक्ष अनुदेशन देना।
6. अनुदेशन प्रक्रिया का "अधिगम की स्थितियों" में विश्लेषण करना।

2.3.4 व्यवहारवाद की आलोचनाएँ

1. व्यवहारवाद सिद्धान्त अधिगम में अधिगमकर्ता की उन्मुक्त इच्छाओं और आन्तरिक प्रभाव जैसे मनोस्थिति विचार, भावनाओं की उपेक्षा करते हैं।
2. व्यवहारवादी सिद्धान्त सीखने की प्रक्रिया को यान्त्रिक बना देते हैं जो कि व्यवहार को उद्दीपक प्रतिक्रिया की कड़ियो में विश्लेषण करते हैं परन्तु बहुत सी प्रतिक्रियाएं मनुष्य बिना किसी बाह्य उद्दीपक के भी करता है।
3. व्यवहारवादी अपना ध्यान लक्ष्य व वांछित व्यवहार पर ध्यान केन्द्रित करते हैं जो कि अधिगम का परिणाम होते हैं पर यह सिद्धान्त अधिगम की प्रक्रिया कि कोई व्यक्ति कैसे सीखता है ?की व्याख्या करने में असफल रहते हैं।

अभ्यास प्रश्न 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये |

1. व्यवहारवाद परिप्रेक्ष्य के जन्मदाता ____________ हैं।
2. व्यवहारवाद मानव की आंतरिक क्षमताओं की अपेक्षा _________ को महत्व देता है।
3. सीखने की प्रक्रिया को समझने के लिए ______________ के सिद्धान्त व्यवहारवाद के लिए महत्वपूर्ण है।
4. व्यवहारवाद अधिगम प्रक्रिया मं मानव व्यवहार का न केवल अध्ययन करता है बल्कि उनके बारे में __________________ भी करता है।

2.4 अधिगम का संज्ञावादी परिप्रेक्ष्य (Cognitive Perspective of learning)

अधिगम के व्यवहारवादी परिप्रेक्ष्य की कमियों के रहते मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम की प्रक्रिया को समझने के लिए दूसरा परिप्रेक्ष्य प्रतिपादित किया जिसे संज्ञानवाद नाम से पुकारा गया। इस परिप्रेक्ष्य से जुड़े मनोवैज्ञानिकों का मत है कि उद्दीपक और प्रतिक्रिया के मध्य केवल यन्त्रवत् सम्बन्ध स्थापित नहीं होते बल्कि इन दोनों के मध्य व्यक्ति की वैयक्तिकता, उसकी इच्छाएँ, भावनाएँ क्षमता, अभिरुचि, अभिवृत्ति, मूल्य, पूर्व अनुभव एवं प्रशिक्षण आदि अनेक तत्व हैं जो सीखने की क्रिया को प्रभावित करते हैं यही कारण है कि एक ही उत्तेजक की स्थिति पर विभिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार से अनुक्रिया करते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में यह माना जाता है कि उद्दीपक तथा प्रतिक्रिया के मध्य व्यक्ति का मस्तिष्क नियंत्रण का कार्य करता है। वह विभिन्न क्रियाओं तथा व्यवहारों को नियंत्रित करता है, निर्देशित करता है तथा उनमें परिवर्तन लाता है। इस परिप्रेक्ष्य में मानव को जैविक मशीन (व्यवहारवाद के अनुरूप) न मानकर एक गत्यात्मक शक्ति के रूप में मानते हैं जो वातावरण से क्रिया-प्रतिक्रिया करके सीखता है। स्वावलम्बी अधिगम प्रक्रिया में वातावरण की अपेक्षा मनुष्य और उसकी आंतरिक क्षमताओं को महत्वपूर्ण मानते हैं।

2.4.1 अधिगम के संज्ञानवादी परिप्रेक्ष्य की व्याख्या

संज्ञानात्मक अधिगम सिद्धान्तकार यह विश्वास करते हैं कि अधिगम एक आंतरिक प्रक्रिया है, जिसमें जानकारी एकीकृत रूप में व्यक्ति के संज्ञानात्मक या बौद्धिक संरचना में रहती है। अधिगम सूचना के आंतरिक प्रसंस्करण के माध्यम से होता है। संज्ञानात्मक दृष्टिकोण से कोई नई जानकारी कैसे प्रस्तुत की गई है महत्वपूर्ण होता है। अधिगम के पहले या संज्ञानात्मक चरण में अधिगमकर्ता किए जाने वाले कार्य की समग्र तस्वीर और इसमें दृश्यों को सीखता है। अधिगम के दूसरे या निर्धारण चरण में कार्य प्रदर्शन के लिए कौशल हासिल करना शुरू करता है। एक भौतिक कार्य पूरा या अधूरा भाग सीखा जाना उस कार्य की जटिलता पर निर्भर करता है। अधिगम के अंतिम या स्वचालित चरण में अधिगमकर्ता कार्य प्रदर्शन में आत्मविश्वास व दक्षता हासिल करता है।

2.4.2 संज्ञानवाद द्वारा अधिगम की मान्यताएं

1. कुछ सीखने की प्रक्रिया मनुष्य के लिए अनूठी होती है।
2. मनुष्य की संज्ञानात्मक प्रक्रियाएं अध्ययन का केन्द्र होती हैं।
3. मानव व्यवहार के वस्तुनिष्ठ, व्यवस्थित निरीक्षण वैज्ञानिक जाँच का केन्द्र होते हैं, हालांकि अप्रेक्ष्य मानसिक प्रक्रियाओं के बारे में इस तरह के व्यवहारों के संबंधमें निष्कर्ष दिए जा सकते हैं।
4. अधिगमकर्ता सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से शामिल रहता है।
5. अधिगम में मानसिक संघों के गठन सम्मिलित रहते हैं जिनका परिलक्षण प्रत्यक्ष व्यवहारों में हो जरूरी नहीं है।

6. ज्ञान का एक संगठनात्मक रूप होता है।
7. अधिगम प्रक्रिया में नवीन ज्ञान पूर्व ज्ञान से संबंधितरहता है। अधिगमकर्ता को नवीन ज्ञान को हासिल करने में आसानी होती है यदि वह उस ज्ञान को पूर्व में सीखे गए ज्ञान से संबद्ध कर पाता है।
8. मनुष्य की संज्ञानात्मक प्रक्रियाएं उसके अधिगम को प्रभावित करती हैं।
9. अधिगमकर्ता का जैसे जैसे विकास होता है वह निरन्तर अधिक परिष्कृत सोच में सक्षम हो जाता है।
10. अधिगमकर्ता सीखी गई चीजों को व्यवस्थित करता है।
11. अधिगमकर्ता खुद के सीखने को नियंत्रितकरता है।

2.4.3 अधिगम में संज्ञानवाद के प्रयोग (Experiments of Cognitivisn in Learning)

अधिगम प्रक्रिया में अधिगमकर्ता के संज्ञानात्मक संरचना में परिवर्तन होता है। जिसमें वह अपने द्वारा सीखे गए नवीन ज्ञान या अनुबन्धों को अपनी दीर्घकालिक स्मृति में संग्रहितज्ञान से संबंधस्थापित करता है और अपने संज्ञानात्मक संरचना के अनुसार नवीन ज्ञान के अर्थ बनाता है। इस प्रकार यदि किसी अधिगमकर्ता के पास पूर्व ज्ञान का भण्डार होता है तो उसकी अधिगम प्रक्रिया भी सुगम रहती है। अधिगम दो प्रकार का हो सकता है, पहला अर्थपूर्ण अधिगम जिसमें नवीन ज्ञान का सम्बन्ध व्यक्ति की दीर्घकालिक स्मृति में संग्रहित पूर्व ज्ञान से हो व रटा हुआ अधिगम जिसमें नवीन सूचना का सम्बन्ध व्यक्ति की दीर्घकालिक स्मृति में संग्रहित किसी भी ज्ञान से नहीं होता। अधिगम को प्रभावी बनाने के लिए संज्ञानवाद में निम्न प्रयोग देखने को मिलते हैं -

1. छात्रों के नवीन ज्ञान संबंधी पूर्व ज्ञान का अनुमान लगाना उसको अधिगम प्रक्रिया में शामिल करना।
2. उपमाओं का इस्तेमाल करना। उपमाओं की सहायता से नवीन वस्तु व ज्ञात वस्तु की तुलना करना।
3. एक प्रमाणिक सन्दर्भ में ज्ञान प्रदान करना व ज्ञान को अधिगमकर्ता क वास्तविक जीवन के सन्दर्भ में प्रस्तुत करना।
4. अधिगमकर्ता के साथ व्यक्तिगत संबंधस्थापित करना।
5. अधिगमकर्ता के लिए सरल व आसानी से समझ में आने वाली भाषा का प्रयोग करना।

2.4.4 संज्ञानवाद की आलोचनाएँ (Criticism of Cognitivism)

1. संज्ञानवाद मनुष्य के पूर्ण व्यवहार की व्याख्या नहीं करता है यह सिर्फ संज्ञानात्मक संरचना को महत्व देता है।

2. संज्ञानवाद व्यक्ति के जटिल संज्ञानात्मक भावनात्मक अवधारणात्मक पहलुओं की व्याख्या करने में असमर्थ हैं।
3. संज्ञानवाद अधिगम प्रक्रिया में व्यक्ति पर बहुत ज्यादा ध्यान केन्द्रित करता है व उसके सामाजिक संदर्भ की उपेक्षा करता है।
4. संज्ञानवाद अधिगम प्रक्रिया में जैविक और अनुवांशिक प्रभावों की उपेक्षा करता है।

अभ्यास प्रश्न 2 –

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये |

1. संज्ञानवाद परिप्रेक्ष्य के अनुसार उद्दीपक और प्रतिक्रिया के मध्य ________ रहता है।
2. अधिगमकर्ता अधिगम प्रक्रिया में ___________ रूप में शामिल रहता है।
3. व्यक्ति का ____________ उसके द्वारा सीखे जाने वाले नवीन ज्ञान को सुलभ बनाता है।
4. अर्थपूर्ण अधिगम में नवीन ज्ञान __________ स्मृति में संग्रहित पूर्व ज्ञान से संबंधितरहता है।

2.5 अधिगम का सूचना प्रक्रम परिप्रेक्ष्य (Information Processing Perspective of learning)

इस परिप्रेक्ष्य में जोर्ज मिलर का महत्वपूर्ण योगदान है। वह संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र में अपने कार्य के लिए प्रख्यात है। प्रमुखतः उनका कार्य भाषा उत्पादन व प्रत्यक्षीकरण पर केन्द्रित रहा। मिलर ने सन 1960 में एक किताब "Plans and Structures of Behaviour" सह लेखक के रूप में प्रकाशित की। इस किताब ने अधिगम के अध्ययन में व्यवहारवादियों द्वारा जानवरों पर किए जाने वाले प्रयोगों से हटकर मानव पर शोध करने के लिए अलग से मार्ग प्रशस्त किया। इस किताब में मिलर के साथ कार्ल प्रिब्राम और यूजीन गैलेन्टर का भी सहयोग रहा। इन मनोवैज्ञानिकों द्वारा अधिगम के क्षेत्र में जो परिप्रेक्ष्य दिया वह सूचना प्रक्रम के नाम से जाना जाता है। सूचना प्रक्रम परिप्रेक्ष्य में मानव के संज्ञानात्मक कार्य प्रणाली को एक कम्प्यूटर की कार्यप्रणाली के समकक्ष मानकर समझा जाता है।

2.5.1 अधिगम के सूचना प्रक्रम परिप्रेक्ष्य की मान्यताएं

सूचना प्रक्रम परिप्रेक्ष्य द्वारा अधिगम की प्रक्रिया को समझने के लिए आधारभूत सैद्धान्तिक विचार दिए गए हैं-

1. इस परिप्रेक्ष्य का पहला मुख्य विचार है सूचना के टुकड़े करना (Chunking) और अल्पकालीन स्मृति (Short term memory) सूचना की क्षमता।
2. सूचना के टुकड़े से तात्पर्य है कोई भी अर्थपूर्ण इकाई। इस इकाई में अंक, शब्द आकृति, व्यक्तियों के चेहरे आदि कुछ भी सम्मिलित हो सकते हैं।
2. सूचना प्रक्रम में एक नियंत्रण प्रणाली की आवश्यकता होती है जो यह सुनिश्चित करती है कि किसी भी सूचना के संबंधमें कौन सी मानसिक प्रक्रियाएं सक्रिय होंगी।

3. एक नवीन सूचना में नियंत्रण प्रणाली को अधिक प्रसंस्करण क्षमता का उपयोग करना पड़ता है।
4. अधिगम की प्रक्रिया में सूचना का प्रवाह द्विमार्गीय होता है।
5. प्रत्येक व्यक्ति को सूचनाओं के प्रसंस्करण या प्रक्रम में अनुवांशिक रूप से विशिष्ट होते हैं।
6. मानव मस्तिष्क कम्प्यूटर की भांति सूचनाओं को ग्रहण करता है, उस पर कार्य करता है, उसके स्वरूप व विषय वस्तु में संशोधन करता है, उसका भण्डारण करता है, उसकी स्थिति जानकर सूचना के प्रति प्रतिक्रिया देता है।
7. इस प्रक्रम में सूचना के एकत्रीकरण व प्रतिनिधित्व प्रत्यास्मरण उसको संग्रहित करना व सूचना का जरूरत पड़ने पर बाहर निकालने की व्यवस्था सम्मिलित रहती है।
8. सूचना प्रक्रम का केन्द्र बिन्दु है कि सूचना का अधिगमकर्ता द्वारा एक निश्चित क्रमिक पदों के अनुरूप प्रसंस्करण किया जाता है।
9. सूचना प्रक्रम परिप्रेक्ष्य में अधिगम को समझने के लिए मुख्यतः स्मृति के अध्ययन संबंधी उपागमों का प्रयोग किया जाता है।

2.5.2 अधिगम में सूचना प्रक्रम की परिप्रेक्ष्य की व्याख्या

इस परिप्रेक्ष्य की व्याख्या मिलर द्वारा अल्पकालिक स्मृति पर किए गए अध्ययनों द्वारा की जा सकती है। इस परिप्रेक्ष्य के अनुसार व्यक्ति में कोई भी सूचना छोटी-छोटी इकाइयों या टुकड़ों में रहती है। एक समय में व्यक्ति की अल्पकालीन स्मृति इनमें से कुछ टुकड़ों पर ही कार्य कर सकती है। विभिन्न व्यक्तियों में अल्पकालीन स्मृति की यह क्षमता 7 + 2 रहती है जिसके द्वारा अलग व्यक्तियों के सीखने की क्षमता भी अलग होती है।

अभ्यास प्रश्न 3

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये |

1. सूचना प्रक्रम परिप्रेक्ष्य में मनुष्य के मस्तिष्क की तुलना ____________ से की जाती है।
2. अल्पकालिक स्मृति एक समय में _________ सूचना के टुकड़े इकट्ठा करती है।
3. सूचना परिप्रेक्ष्य में मानव मस्तिष्क की अल्पकालिक स्मृति कम्प्यूटर के _____________ के समान कार्य करती है।

2.6 अधिगम का मानववादी परिप्रेक्ष्य (Humanistic Perspective of Learning)

मनोविज्ञान के क्षेत्र में अब्राहम मैसलो को मानववाद परिप्रेक्ष्य के जन्मदाता के रूप मं माना जाता है। मैसलो और उनके सहयोगियों ने अपने इस परिप्रेक्ष्य को मनोविज्ञान का तीसरे बल की संज्ञा दी है, पहला व्यवहारवाद परिप्रेक्ष्य यथार्थवाद व मानववाद के दर्शन पर आधारित है। मानववाद इस बात पर बल देता

है कि अनुभव व्यवहारों और अधिगम के अध्ययन में मुख्य होते हैं। उन्होंने इस परिप्रेक्ष्य में अधिगम प्रक्रिया में व्यक्ति की रुचि, सृजनात्मकता, मूल्य स्वअनुभूति आदि मानव गुणों को महत्वपूर्ण माना हैं मानववादियों का तर्क है कि वस्तुनिष्ठत की अपेक्षा अर्थपूर्ण व वस्तुनिष्ठ अधिगम ज्यादा महत्वपूर्ण होता है। मैसलो के अनुसार अधिगम में व्यक्ति की क्षमताओं, गरिमा, मूल्य के अनुसार विकास ही परम लक्ष्य है। मैसलो के आवश्यकताओं को विभिन्न स्तरों में रखा गया है और एक स्तर की आवश्यकता की पूर्ति दूसरे स्तर की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रेरणा के रूप में कार्य करती है। जहां निम्न स्तर पर व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताएं यथा रोटी, कपड़ा और मकान है जो कि क्रमबद्ध रूप में बढ़ते बढ़ते स्नेह, स्व गरिमा से होते हुए स्वअनुभूति तक जाती है। स्व अनुभूति से तात्पर्य है कि व्यक्ति द्वारा अपनी पूर्ण क्षमताओं योग्यताओं का विकास व उसका ज्ञान होना।

मानववादी परिप्रेक्ष्य के अनुसार सीखने के चालक आंतरिक होते हैं। अधिगम का लक्ष्य अधिगमकर्ता को स्वअनुभूति कराना होता है। अधिगम व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य को निर्धारित करती है। मानववादियों के अनुसार अधिगम के अन्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं -

1. व्यक्ति द्वारा अपने लिए उचित व्यवसाय का चयन या भाग्य निर्धारण करना।
2. व्यक्ति को मूल्यों का ज्ञान प्रदान करना।
3. जीवन की सार्थकता व मूल्य की अनुभूति कराना।
4. उच्चस्तरीय अनुभवों की अनुभूति कराना।
5. जीवन में कुछ पा लेने की अनुभूति कराना।
6. मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति कराना।
7. जीवन की सुंदरता व रहस्यों के बारे में जागृत कराना।

मानववादी अनुभवों को केन्द्र में रखते हुए अधिगम प्रक्रिया को देखते हैं व इन के अनुसार अनुभवों द्वारा सीखा गया ज्ञान वैज्ञानिक ज्ञान की अपेक्षा ज्यादा प्रभावी होता है।

2.6.1 अधिगम में मानववादी परिप्रेक्ष्य की व्याख्या

अधिगम का मानववादी परिप्रेक्ष्य अधिगम प्रक्रिया में मानव की विशिष्टताओं जैसे उसके अनुभव, प्रत्यक्षीकरण की क्षमता, सीखने के तरीके को केन्द्र में रखते हैं। मानववादियों के अनुसार अधिगम अनुभवों का निर्माण अधिगमकर्ता के लिए है न कि अधिगमकर्ता पूर्व प्रायोजित अधिगम अनुभवों के लिए है। मानववादी परिप्रेक्ष्य अपना ध्यान अधिगमकर्ता के आत्म प्रत्यय व सीखने के लिए आंतरिक अभिप्रेरणा के विकास पर करता है। मानववादी परिप्रेक्ष्य में शिक्षक एक अधिगम के सुगमकर्ता के रूप में कार्य करते हैं। मानववादियों के अनुसार अधिगम प्रक्रिया में व्यक्ति अपने वातावरण के साथ अन्तःक्रिया करता है और अपनी पसन्द निर्णय क्षमता के अनुसार अपने व्यक्तिगत संसार व अधिगम को स्वरूप प्रदान करता है।

2.6.2 मानववाद द्वारा अधिगम की मान्यताएं -

1. अधिगम प्रक्रिया में अधिगमकर्ता के अनुभव मुख्य होते हैं।
2. अधिगमकर्ता अपनी रुचियों, निर्णय क्षमता, मूल्य आदि के अनुरूप अधिगम करता है।
3. अधिगम प्रक्रिया में अधिगमकर्ता सक्रिय होता है व वह अपने व्यक्तिगत अनुभवों द्वारा अपने विकास के पथ पर अग्रसर होता है।
4. अधिगम प्रक्रिया में यदि अधिगमकर्ता अपने बारे में अच्छी सोच रखता है तो अधिगम भी प्रभावी होगा।
5. अधिगम का मुख्य उद्देश्य अधिगमकर्ता के आत्मप्रत्यय को विकसित करना है।
6. अगर अधिगमकर्ता अपनी क्षमताओं और कमजोरियों का ज्ञान रखता है तो वह उचित प्रयासों द्वारा अपने आपमें सुधार ला सकता है।
7. अधिगम कोई साध्य नहीं परन्तु क्षितिज (अन्तिम लक्ष्य) तक पहुँचने का साधन मात्र है।
8. अधिगमकर्ता अपनी आंतरिक प्रेरणाओं के फलस्वरूप अधिगम करता है।
9. मानववादी अधिगम में अधिगमकर्ता के भीतर आवश्यकताओं की अनुभूति कराना एक प्रेरणा का स्रोत मानते हैं जिसकी पूर्ति के लिए अधिगमकर्ता अधिगम प्रक्रिया में सक्रिय रहता है व प्रभावी अधिगम की ओर अग्रसर होता है।

2.6.3 अधिगम में मानववाद के प्रयोग (Use of Humanism in Learning)

1. शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में छात्र का केन्द्र में होना।
2. अधिगम प्रक्रिया में अधिगमकर्ता की वैयक्तिकता का विकास, व वैयक्तिक विभिन्नताओं का ध्यान रखना।
3. अधिगमकर्ता को समझने के प्रयासों का किया जाना।
4. छात्र-केन्द्रित अधिगम विधियों का प्रयोग।
5. छात्रों में स्वअनुशासन को बढ़ावा देना।
6. अधिगम प्रक्रिया विषय वस्तु या शिक्षक केन्द्रित न होकर छात्र केन्द्रित होना, और शिक्षक की गौण भूमिका होनी चाहिए।
7. अधिगम प्रक्रिया में लोकतांत्रिक उपागमों का समावेश करना।

2.6.4 मानववाद की आलोचनाएँ (Criticism of Humanism)

1. अधिगम की प्रक्रिया में अधिगमकर्ता की क्षमताओं का एकपक्षीय विकास व अधिगम पर वातावरण और शिक्षा के प्रभावों की उपेक्षा।
2. छात्र पर अत्याधिक बल देकर शिक्षक व शिक्षण की उपादेयता की अवहेलना करना।

3. छात्र की रुचियों पर अत्यधिक बल देना व समाज व शिक्षा के प्रभाव को नकारना।

4. शिक्षक को गौण भूमिका में रखना।

अभ्यास प्रश्न 4

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये |

1. मानववादी परिप्रेक्ष्य के जन्मदाता ____________हैं।
2. मानववाद के अनुसार अधिगमकर्ता के ___________ अधिगम प्रक्रिया के केन्द्र में रहते हैं।
3. अधिगम का मुख्य उद्देश्य अधिगमकर्ता को ___________ कराना है।

2.7 अधिगम का जैविकवादी परिप्रेक्ष्य (Biological Perspective of Learning)

अधिगम एक जैविक प्रक्रिया है जिसमें अधिगमकर्ता का मस्तिष्क कार्य करता है। अधिगम का जैविक परिप्रेक्ष्य तीन आपस में संबंधितउपागमों से मिलकर बना हुआ ये उपागम हैं -

1. मस्तिष्क एवं इसकी कार्य प्रणाली का अध्ययन,
2. मानव के विकास को व्याख्यात्मक उपकरण के रूप में प्रयुक्त करना
3. अनुवांशिकी के क्षेत्र में आधुनिक विधियों का मानव के अनुवांशिक संरचना और कार्य प्रणाली का अध्ययन।

इन तीनों उपागमों में से जैविक परिप्रेक्ष्य में मस्तिष्क एवं इसकी कार्यप्रणाली का अध्ययन ज्यादा महत्वपूर्ण है क्योंकि, मानव के उद्विकास के कोई सर्वमान्य प्रमाण नहीं है व डीएनए एवं अनुवांशिकी में व्यवहारों को गुणसूत्र से संबंधितहोने की दिशा में अभी और अध्ययनों की आवश्यकता है । तो हम यह कह सकते हैं अधिगम का जैविक परिप्रेक्ष्य अधिगमकर्ता के मस्तिष्क एवं उसकी कार्यप्रणालियों से संबंधितहै।

मानव का मस्तिष्क एक बहुत ही जटिल जैविक अंग है। जब तक कम्प्यूटर का विकास नहीं हुआ था मानव मस्तिष्क के अध्ययन की विधियां जानवरों पर प्रयोग, व्यक्तिगत अध्ययन व शल्य क्रिया तक ही सीमित थी। और इनमें कोई भी विधि मस्तिष्क की पूरी कार्यप्रणाली को समझने के लिए पर्याप्त नहीं थी। परन्तु आधुनिक स्केनिंग विधियों ने मस्तिष्क की जैविक जांच और अध्ययन के क्षेत्र में क्रांति पैदा की है। आज विज्ञान के विकास के फलस्वरूप हम यह बता सकते हैं कि कोई व्यक्ति कैसे अधिगम करता और अधिगम प्रक्रिया के समय उसके मस्तिष्क की कार्य प्रणाली को वर्णित कर सकते हैं। अधिगम के जैविकवाद परिप्रेक्ष्य में यह माना जाता है कि मनुष्य के जैविक तत्व जैसे- गुणसूत्र, हार्मोन, मस्तिष्क आदि का महत्वपूर्ण प्रभाव उसके व्यवहार पर पड़ता है, और व्यक्ति का व्यवहार अनुवांशिकी और विरासत से प्रभावित होता है।

2.7.1 अधिगम में जैविक परिप्रेक्ष्य की व्याख्या

अधिगम की प्रक्रिया में मस्तिष्क में भौतिक परिवर्तन होते हैं। अध्ययनों द्वारा यह प्रदर्शित किया जाता है कि अधिगम मस्तिष्क में तंत्रिका नेटवर्क के निर्माण में सुविधा प्रदान करता है, जिनमें व्यक्ति का ज्ञान, शारीरिक और मानसिक प्रक्रिया, कौशल, हमारी यादें आदि सम्मिलित होती हैं। समृद्ध और चुनौतीपूर्ण अधिगम वातावरण अधिक तंत्रिका कनेक्शन का उत्पादन करने में सहायक होता है व उबाऊ और प्रभावहीन अधिगम वातावरण में यह कनेक्शन नहीं बन पाते हैं। मानव के बहुमुखी मस्तिष्क के अलग-अलग भाग अलग अलग उद्दीपकों के प्रति संवेदनशील होते हैं व क्रियाएं करते हैं इसलिए प्रभावी अधिगम के लिए मस्तिष्क के भागों व उनसे संबंधित उद्दीपकों का ज्ञान अधिगम को सुगम बनाने का कार्य करता है। अगर हम अधिगम प्रक्रिया में बालक के पूर्ण मस्तिष्क की क्रियाओं को सम्मिलित करना चाहते हैं तो हमें बहुमुखी उद्दीपकों द्वारा दिमाग के रास्तों को सक्रिय करने की आवश्यकता होती है। अधिगम हमेशा बाहरी पर्यावरणीय उत्तेजनाओं और आंतरिक न्यूरोलाजिकल (तंत्रिका संबंधी) शारीरिक एवं मनावैज्ञानिक प्रक्रियाओं की जटिल सारणी में अन्तर्निहित रहती है। जैविक परिप्रेक्ष्य में अधिगम प्रक्रिया का उद्देश्य मसितष्क द्वारा प्राकृतिक अधिगम प्रक्रिया को सक्रिय करना, मौजूदा और नए ज्ञान के बीच संबंध बनाना और छात्रों द्वारा अर्थ निर्माण और टिकाऊ यादों के विकास में सहायता करना है। मस्तिष्क की कार्यप्रणाली का विस्तारपूर्वक विवरण इकाई 4 में दिया गया है।

2.7.2 जैविक परिप्रेक्ष्य की मान्यताएं

1. व्यवहार पर मनुष्य की अनुवांशिकी और आनुवांशिक विरासत का प्रभाव पड़ता है।
2. व्यवहार को मानव विकास के इतिहास के सन्दर्भ में समझाया जा सकता है।
3. व्यवहार को मस्तिष्क की विशिष्ट संरचनाओं के सन्दर्भ में समझाया जा सकता है।
4. विभिन्न प्रकार की उत्तेजनाओं पर सक्रियता के लिए मस्तिष्क के विभिन्न भाग निश्चित हैं।
5. व्यवहार की कार्यप्रणाली को न्यूरोट्रांसमीटर की रासायनिक कार्यवाही के द्वारा भी समझाया जा सकता है।
6. अधिगम अनुभवों को समृद्ध करके अधिगमकर्ता के मस्तिष्क के विभिन्न भागों को सक्रिय किया जा सकता है।

2.7.3 अधिगम के जैविकवाद परिप्रेक्ष्य के प्रयोग -

1. छात्रों की सीखने की शैली का निर्धारण करना।
2. अधिगम अनुभवों को समृद्ध बनाने के लिए मल्टीमीडिया का प्रयोग।
3. पाठ्यक्रम के समृद्धिकरण हेतु
4. अधिगम प्रक्रिया में निर्देशित खोज सहकारी समूह में काम करने का प्रोत्साहन आदि।

2.7.4 जैविकवाद की आलोचनाएं

1. जैविकवाद व्यवहार पर जैविक प्रभाव के अलावा किसी और प्रभाव की ओर ध्यान नहीं देता और विशेष रूप से व्यवहार के सामाजिक कारणों की अवहेलना करता है जो इसे एक न्यूनीकारक परिप्रेक्ष्य बना देता है।
2. जैविकवाद व्यक्तिगत विभिन्नताओं को नजर अंदाज करता है और सभी मनुष्यों के लिए एक तरह का सामान्यीकरण का निर्माण करता जो अधिगम प्रक्रिया में अधिगमकर्ता को नजर अंदाज और उसकी भूमिका का कम कर देता है।

अभ्यास प्रश्न -5

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये |

1. जैविक परिप्रेक्ष्य में मस्तिष्क और इसकी ________ का अध्ययन किया जाता है।
2. मस्तिष्क के विभिन्न भाग विभिन्न ____________ के प्रति संवेदनशील होते हैं।
3. अधिगम अनुभवों को _________ करके अधिगम को सुलभ बनाया जा सकता है।

2.8. अधिगम का रचनावादी परिप्रेक्ष्य (Constructive Approach of Learning)

रचनावाद सिर्फ अधिगम के क्षेत्र का अलग परिप्रेक्ष्य ही नहीं अपितु सीखने के संबंधमें जानने की एक नई दिशा है। रचनावाद के अनुसार अधिगम एक सक्रिय प्रक्रिया है जो प्रत्येक अधिगमकर्ता के लिए विशिष्ट होती है जिसमें अधिगमकर्ता अपने पूर्व अनुभवों व ज्ञान के आधार पर प्रत्ययों में संबंधस्थापित करे उनके अर्थो की रचना करता है। रचनावादियों का मत है कि प्रत्येक अधिगमकर्ता ज्ञान की रचना वैयक्तिक और सामाजिक सन्दर्भ में करता है। विभिन्न प्रत्ययों की रचना में उनके अर्थ गोंद की तरह कार्य करते हैं। रचनावादियों के अनुसार ज्ञान बाह्य जगत में न होकर अधिगमकर्ता के भीतर होता है, अधिगमकर्ता को अपने आस-पास की दुनिया का ज्ञान होता है बस उसको नाम देने और बाहर निकालने की आवश्यकता होती है जो कार्य शिक्षक द्वारा रचनावादी अधिगम अनुभवों में कराया जाता है। रचनावाद के क्षेत्र में पियाजे व वाइगोत्सकी का नाम उल्लेखनीय है। पियाजे ने रचनावाद के संज्ञानात्मक रचनावाद का विचार रखा जिसके अनुसार ज्ञान की रचना सक्रिय रूप से अधिगमकर्ता द्वारा की जाती है ज्ञान को निष्क्रिय रूप में बाह्य वातावरण से ग्रहण नहीं किया जाता। पियाजे के अनुसार प्रत्येक अधिगम के फलस्वरूप अधिगमकर्ता की मानसिक संरचनाओं (*स्कीमा*) का निर्माण होता है व जब नई परिस्थिति में अधिगमकर्ता पहुंचता है तो उसके अनुसार व अपनी इन संरचनाओंमें संशोधन कर परिस्थिति के साथ समायोजन स्थापित करता है। वाइगोत्सकी ने सामाजिक रचनावाद का विचार दिया जिसके अनुसार अधिगम प्रक्रिया में अधिगमकर्ता द्वारा अन्य सहपाठियों, शिक्षकों तथा वातावरण के साथ अंतःक्रिया प्रमुख होती है। अधिगम अतःक्रियाओं पर आधारित होता है। रचनावाद परिप्रेक्ष्य भी अधिगम की प्रक्रिया के केन्द्र में बालक को रखता है व शिक्षक की भूमिका अधिगम के सुगमकर्ता के रूप में होती है।

2.8.1 अधिगम के संरचनावाद परिप्रेक्ष्य की व्याख्या

संरचनावाद के अनुसार प्रत्येक शिक्षार्थी अपने स्वयं के लिए ज्ञान का निर्माण करता है, अर्थ निर्माण ही अधिगम है। अधिगम का कोई और मतलब नहीं है संरचनावादी परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत छात्र एक कोरी स्लेट नहीं होता है बल्कि वह अपने साथ पूर्व अनुभव लाता है, वह किसी परिस्थिति के सांस्कृतिक तत्व और पूर्व ज्ञान के आधार पर ज्ञान का निर्माण करता है। संरचनावाद परिप्रेक्ष्य में छात्रों की समालोचनात्मक चिंतन व अभिप्रेरणा को विकसित कर उन्हें स्वतंत्र अधिगमकर्ता के रूप में ढाला जाता है। संरचनावादी परिप्रेक्ष्य में शिक्षण युक्तियां व गतिविधियां अधिगम प्रक्रिया पर आधारित होती हैं। संरचनावादी परिप्रेक्ष्य का केन्द्र है छात्र सशक्तीकरण। जैसे अभिभावक बालक के जन्म के बाद उसके स्वतंत्र जीवन यापन के लिए हर संभव आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, ऐसे ही रचनावादी परिप्रेक्ष्य का उद्देश्य अधिगमकर्ता का निर्माण होता है और शिक्षक उसी के लिए प्रयासरत रहता है।

2.8.2 अधिगम में संरचनावाद की मान्यताएं

1. अधिगमकर्ता ज्ञान की रचना में अपने संवेदी अंगों को इनपुट की तरह उपयोग करता है।
2. अधिगम परतों में होता है जिसमें दो बातें अर्थों की रचना व अर्थों की प्रणाली की रचना निहित रहती है।
3. अधिगम की प्रक्रिया भाषा पर आधारित होती है। शारीरिक गतिविधियों का प्रयोग भी आवश्यक होता है पर वह अपने में पूर्ण नहीं होता।
4. अधिगम एक सामाजिक प्रक्रिया है।
5. अधिगम के लिए ज्ञान आवश्यक है यही प्रत्ययों के अर्थ रचना का आधार होता है।
6. अधिगमकर्ता जितना अधिक जानता है उतना अधिक सीखता है।
7. अधिगम की प्रक्रिया में समय लगता है यह अचानक नहीं होती।
8. अधिगम प्रक्रिया में अधिगमकर्ता सूचनाओं को ग्रहण करता है उन पर विचार करता है, उनका उपयोग करता है व अभ्यास करता है।
9. अधिगम में प्रेरणा एक आवश्यक तत्व है जिससे अधिगमकर्ता के संवेदी संरचनाएं सक्रिय रहती हैं।
10. अधिगमकर्ता दूसरे अधिगमकर्ताओं व शिक्षक से सीखता है।
11. छात्रों के पास अपना एक संसार के प्रति दृष्टिकोण होता है।
12. छात्रों का संसार के प्रति दृष्टिकोण उनके अनुभवों और नई सूचनाओं के लिए छलनी की तरह कार्य करता है।

2.8.3 अधिगम में रचनावाद के प्रयोग

1. संरचनावाद के फलस्वरूप कई सारी शिक्षण विधियों का विकास हुआ है जो संरचनावाद के सिद्धान्तों के अनुरूप हैं।
2. छात्रों को अपने अधिगम के लिए उत्तरदायित्व देना।
3. छात्रों को अधिगम की तैयारी से अधिगम के मूल्यांकन तक सक्रिय रूप से सम्मिलित रखना।
4. छात्रों को सामूहिक गतिविधियों क लिए अभिप्रेरित करना।
5. छात्रों में जिज्ञासा को प्रोत्साहित करना व उसकी तृप्ति हेतु प्रयास करवाना।

2.8.4 संरचनावाद की आलोचनाएं

1. संरचनावाद प्रत्येक अधिगमकर्ता को विशिष्ट मानता है जिसके अनुरूप उसके अधिगम अनुभवों का नियोजन होना चाहिए, परन्तु एक कक्षा में एक समय में एक से अधिक छात्र होते हैं जिनके अनुसार अधिगम अनुभवों का नियोजन वास्तविक में संभव प्रतीत नहीं होता।
2. पाठ्यक्रम के विस्तार और विविधता के चलते इस परिप्रेक्ष्य के अनुसार पाठ्यक्रम समय से पूर्ण करना भी एक चुनौती है क्योंकि इस परिप्रेक्ष्य में अधिगम में समय ज्यादा लगता है।

2.9 अधिगम सामाजिक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य (Socio - Cultural Perspective of Learning)

अधिगम का सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य अधिगम प्रक्रिया में ज्ञान के निर्माण में सामाजिक और व्यक्तिगत अन्तर्सम्बन्ध को महत्व देता है। इस परिप्रेक्ष्य के प्रवर्तक के रूप में एल0एस0 वाइगोत्सकी को जाना जाता है जो रूसी मनोवैज्ञानिक थे। इस परिप्रेक्ष्य का विचार है कि मानव व्यवहार सांस्कृतिक संदर्भ में होता है जिनकी मध्यस्थता भाषा और अन्य प्रतीकों द्वारा होती है, इन व्यवहारों को ऐतिहासिक विकास के सन्दर्भ में समझा जा सकता है। इस परिप्रेक्ष्य द्वारा एक समृद्ध, बहुमुखी सिद्धान्त को जन्म दिया है जिसके द्वारा भाषा, सोच और उनके विकास को समझा जा सकता है। ज्ञान के निर्माण में व्यक्तित्व और सामाजिक प्रक्रियाओं के बीच के अन्तर्सम्बन्ध को तीन प्रमुख विषयों की जांच से स्पष्ट किया जा सकता है -

1. व्यक्तिगत विकास उच्च मानसिक प्रक्रियाओं सहित सामाजिक स्रोतों द्वारा उद्विकसित होता है।
2. मानव व्यवहार - सामाजिक और व्यक्तिगत दोनों में ही उपकरणों और संकेतों की मध्यस्थता होती है।
3. उपरोक्त दोनों विषयों की जांच अनुवांशिक या विकास विश्लेषण द्वारा की जा सकती है।

सामाजिक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य इस बात पर बल देता है कि प्रत्येक संस्कृति अपने बालकों के लिए मूल्यवान गतिवधियाँ प्रस्तुत करती है जो उनकी शिक्षा और समाज में भागीदारी क लिए महत्वपूर्ण होती हैं। इन गतिविधियों का निर्माण अस्पष्ट या स्पष्ट रूप से बालकों के व्यक्तिगत क्षमताओं के विकास के लिए किया जाता है। अपनी संस्कृति की प्राथमिकताओं के अनुसार बालक इन गतिविधियों में भागीदारी करता है। बालकों की इन गतिविधियों में भागीदारी भाषा, तकनीकी और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष मार्गदर्शन द्वारा निर्धारित होती है। इन गतिविधियों में शामिल होकर बालक अपनी संस्कृति का अर्थ, समझने उसको स्वीकार, खारिज या उन्हें बदलने का प्रयत्न करता है। यह परिप्रेक्ष्य विकास को पूर्व निर्धारित रूप में नहीं देखता है। सामाजिक वातावरण ही एक विकासशील मन जिसमें गतिशील और पारस्परिक रूप से उत्पन्न संदर्भ उसका निर्माण करता है, यह परिप्रेक्ष्य व्यक्तिगत विभिन्नता को मानता है। अधिगमकर्ता की विशिष्ट सांस्कृतिक और जैविक विशेषताएं अधिगम में सामाजिक और सांस्कृतिक सन्दर्भों के साथ जुड़कर उसके विशिष्ट संज्ञानात्क विकास का निर्धारण करती हैं जो कि अधिगमकर्ता क रहन सहन से समन्वय रखती हैं।

2.9.1 अधिगम में सामाजिक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य की व्याख्या

सामाजिक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य का दावा है कि शिशु बौद्धिक विकास के लिए बुनियादी क्षमताओं के साथ जन्म लेते हैं जैसे ध्यान, संवेदनाएं प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण में इन बुनियादी क्षमताओं के अन्तक्रिया के फलस्वरूप अधिक परिष्कृत और प्रभावी मानिसक क्षमताओं का विकास होता है। उदाहरण के लिए बालक की स्मृति जैविक तत्वों द्वारा निर्धारित होती है। हालांकि संस्कृति हमारी स्मृति के विकास के लिए रणनीति निर्धारित करती है जैसे साक्षर समाज में नोट लेने से सीखा जाता है और स्मृति के विकास में सहायता होती है। परन्तु असाक्षर समाज स्मृति विकास करने के वैकल्पिक तरीके जैसे गांठ बांधना, पत्थर इकट्ठे करना आदि प्रक्रिया अपनाता है। इस परिप्रेक्ष्य का मत है कि बालक अपने अधिगम, खोज और नई मान्यता विकास के प्रति जिज्ञासू रहता है। हालांकि इस परिप्रेक्ष्य में अधिगम के सामाजिक योगदान पर अधिक जोर दिया जाता है।

उदाहरण के लिए यदि कोई बालक किसी पहेली को अकेले हल करता है तो उसका प्रदर्शन खराब रहता है यदि उसी प्रक्रिया में उसे शिक्षक, साथियों का मार्गदर्शन प्राप्त हो तो वह अपने प्रदर्शन को सुधारता है धीरे-धीरे स्वतंत्र रूप से कार्य करने में सक्षम हो जाता है।

बालकों में प्रभावी अधिगम प्रक्रिया में अपने शिक्षक, सहपाठियों के साथ कुशल सवांदों पर आधारित होता है। अतः इस परिप्रेक्ष्य में अधिगम को सहकारी या सहयोगी रूप में वर्णित किया जाता है।

2.9.2 सामाजिक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य की मान्यताएं

1. अधिगमकर्ता का सामाजिक व सांस्कृतिक वातावरण अधिगम के सुगमकर्ता के रूप में कार्य करता है।
2. अधिगमकर्ता के विभिन्न मानसिक क्षमताओं का विकास उसके सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण के साथ अन्तःक्रिया के फलस्वरूप होता है।

3. अधिगम की शुरुआत सामाजिक अन्तःक्रियाओं के साथ होती है जिस पर आधारित होकर ही ज्ञान का निर्माण होता है।
4. अधिगम में अधिगमकर्ता की बुनियादी मानसिक योग्यताओं सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण से जुड़कर विशिष्ट मानसिक योग्यताओं का विकास होता है।
5. विकास सामाजीकरण की ओर अग्रसारित नहीं होता अपितु यह सामाजिक प्रक्रियाओं का मानसिक प्रक्रियाओं में परिवर्तन है।
6. सामाजिक वातावरण अपने उपकरणों जैसे सांस्कृतिक तत्व, भाषा और सामाजिक संस्थाओं द्वारा व्यक्ति की मानसिक योग्यताओं को प्रभावित करता है।

2.9.3 सामाजिक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य के प्रयोग

1. पारस्परिक शिक्षण विधियों को प्रोत्साहन जिसमें पाठ के क्षेत्रों के सन्दर्भ में शिक्षक और छात्रों के मध्य संवाद स्थापित किया जाता है।
2. सहकर्मी सहयोग द्वारा अधिगम को सुगम बनाना।
3. संज्ञानात्मक प्रशिक्षण द्वारा अधिगमकर्ता की मानसिक प्रक्रियाओं का विकास करना।

2.9.4 सामाजिक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य की आलोचनाएं

1. अधिगम में केवल सामाजिक अन्तःक्रियाओं पर बल इस परिप्रेक्ष्य को सीमित करता है।
2. यह परिप्रेक्ष्य सीखने से ज्यादा सिखाने के लिए आधारित है।
3. अधिगम के लिए सामाजिक सांस्कृतिक सन्दर्भ की अपेक्षा अधिगमकर्ता पर उसके जैविक तत्वों का प्रभाव होता है।
4. यह परिप्रेक्ष्य विकासात्मक परिवर्तनों में निहित संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का वर्णन नहीं करता।
5. अधिगम भाषा पर ही आधारित नहीं होता बल्कि निरीक्षण और अभ्यास भी प्रभावी अधिगम के लिए महत्वपूर्ण होते हैं।
6. यह परिप्रेक्ष्य सभी संस्कृतियों पर समान रूप से लागू नहीं होता है।

अभ्यास प्रश्न – 6

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये |

1. अधिगम का सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य ज्ञान के निर्माण में सामाजिक और व्यक्तिगत _________ को महत्व देता है।
2. अधिगम ____________________ पर आधारित होता है।
3. बालकों में प्रभावी अधिगम प्रक्रिया अपने शिक्षक, सहपाठियों के साथ कुशल __________ पर आधारित होता है।

2.10 अनुभवात्मक और चिंतनशील अधिगम (Experiential and Reflective Learning)

अनुभवात्मक अधिगम अनुभव के माध्यम से सीखने की प्रक्रिया है और विशेष रूप से इसको किए गए कार्यों पर चिन्तनशील होकर सीखने के रूप में परिभाषित किया जाता है। अनुभवात्मक अधिगम उपदेशात्मक शिक्षण से अलग है जिसमें शिक्षार्थी एक अपेक्षाकृत निष्क्रिय भूमिका में होते हैं। अनुभवात्मक अधिगम व्यक्तिगत सीखने की प्रक्रिया पर विचार करता है। इस प्रकार के अधिगम में अधिगमकर्ता स्वयं निरीक्षण करता है, खोज करता है, और ज्ञान के साथ प्रयोग करता है न कि सिर्फ दूसरों से ज्ञान के बारे में सुनता व पढ़ता है। वह ज्ञान को अनुभव करके सीखता है जैसे एक बालक चिड़ियाघर में जाकर विभिन्न जानवरों का निरीक्षण करके उनके बारे में प्रभावी ढंग से सीखता है, अगर यही ज्ञान पुस्तकों या शिक्षक द्वारा सुनकर प्राप्त करें तो वह उतना प्रभावी नहीं होगा। अनुभवात्मक अधिगम एक पारंपरिक अधिगम व्यवस्था से हटकर छात्रों के प्रत्यक्ष अनुभवों से ज्ञान, कौशल और मूल्यों के विकास की एक प्रक्रिया है। किसी अधिगम को 'अनुभवात्मक'' होने के लिए निम्नलिखित तत्व होने चाहिए -

1. चिन्तनशीलता, तर्कपूर्ण विश्लेषण और संश्लेषण।
2. छात्रों के लिए पहल करने के, निर्णय करने, और परिणामों की जवाबदेही लेने के अवसर।
3. छात्रों को बौद्धिक रचनात्मक, भावनात्मक सामाजिक या शारीरिक रूप से संलग्न करने के अवसर
4. एक नियोजित अधिगम अनुभव जिसमें प्राकृतिक परिणामों, गलतियों और सफलताओं से सीखने की संभावनायें शामिल हों।

अनुभवात्मक अधिगम का प्रत्यय मनोवैज्ञानिक डेविड कोल्ब द्वारा दिया गया है। उन्होंने अनुभवात्मक अधिगम को ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया है जिसमें ज्ञान का अनुभवों के परिवर्तन के माध्यम से निर्माण किया जाता है। ज्ञान अनुभवों के ग्रहण व परिवर्तन के संयोजन से निर्मित होता है। अपने अनुभवात्मक अधिगम माडल में कोल्ब ने अनुभव को ग्रहण करने के दो तरीके - ठोस अनुभव व अमूर्त अवधारणाएं बताएं हैं। उन्होंने अनुभवों में परिवर्तन के भी दो तरीकों की पहचान की - चिन्तनशील अवलोकन और सक्रिय प्रयोग। कोल्ब ने अधिगम के इन चार तरीकों को चक्र के रूप में चित्रित किया है। (चित्र 2.10.1)

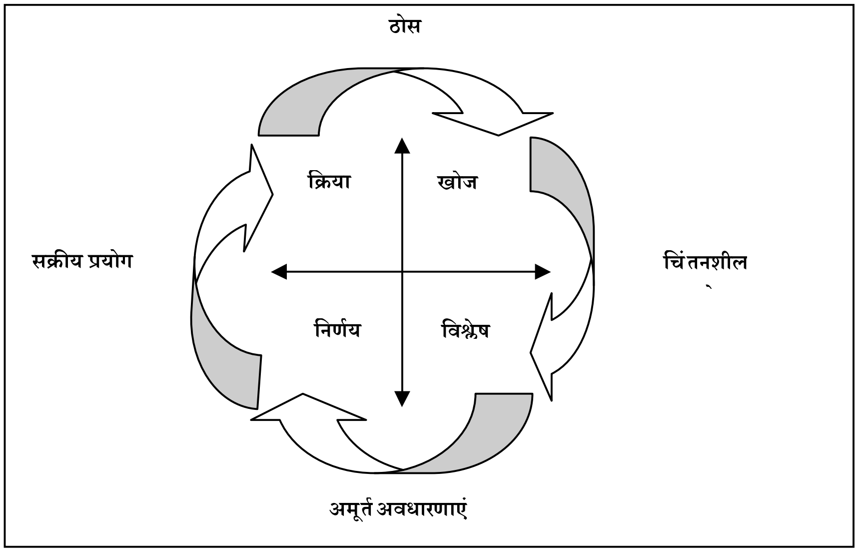

चित्र 2.10.1: कोल्ब का अनुभवात्मक अधिगम चक्र

इस चक्र के अनुसार व्यक्ति के ठोस अनुभव जो जानकारी उसे देते हैं वह चिन्तनशील अवलोकन के आधार के रूप में कार्य करते हैं। इन चिन्तनशील अवलोकनों के आधार पर सूचनाओं को आत्मसात करता है व अमूर्त अवधारणाओं को बनाता है। व्यक्ति इन अवधारणाओं का प्रयोग दुनिया क बारे में सिद्धान्त बनाने के लिए करते है। फिर उनका सक्रिय रूप से परीक्षण करते हैं। अपने विचारों के परीक्षण से व्यक्ति फिर कुछ सूचनाओं को ग्रहण करता है जो इस चक्र को दुबारा से शुरू कर देता है।

यह जरूरी नहीं है कि यह प्रक्रिया हमेशा अनुभवों से ही शुरू हो बल्कि यह व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह परिस्थिति के अनुसार अधिगम के किस तरीके का इस्तेंमाल करता है। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति कार चलाना सीखना चाहता है तो सीखने के कई तरीके हो सकते हैं पहला यह कि व्यक्ति चिन्तनशील होकर अन्य व्यक्तियों को कार चलाते हुए अवलोकन करे और उन अवलोकनों से सीखे। दूसरा व्यक्ति इस अधिगम प्रक्रिया को अमूर्त रूप देते हुए कार चलाने के बारे में ड्राइविंग निर्देश पुस्तिका आदि का अध्ययन कर सीखे। इसके अलावा एक व्यक्ति सीधा सीट पर बैठकर कार चलाने का अनुभव व अभ्यास कर सकता है। व्यक्ति के लिए कौन सा अनुभवात्मक अधिगम का तरीका सबसे अच्छा काम करेगा इसमें स्थितिजन्य कारकों के अलावा व्यक्ति की अपनी पसंद और वरीयता एक बड़ी भूमिका निभाते हैं।

कोल्ब के अनुसार जो व्यक्ति निरीक्षणकर्ता होते हैं वह चिन्तनशील अवलोकन व जो कर्ता होते है वह सक्रिय प्रयोग द्वारा चक्र की शुरूआत करते हैं। व्यक्ति अपने सीखने के तरीकों का चयन अपने अनुवांशिक तत्वों व पूर्व अनुभवें के आधार पर करता है।

2.10.1 ज्ञान की रचना हेतु अनुभवात्मक अधिगम के प्रयोग -

1. अधिगम प्रक्रिया में अधिगम अनुभवों को पूर्व में नियोजित किया जाना चाहिए और उन अनुभवों से संबंधितविषयों की मूल सामग्री जो छात्रों को पता होनी चाहिए छात्रों को पहले से दी जाए।
2. छात्रों को यथार्थ अनुभवों में व्यस्त किया जाए ताकि वह विषय के बारे में गहनता से जान सकें।

3. छात्रों को अपने अनुभवों पर चर्चा करने के अवसर दिए जाएं।
4. छात्रों द्वारा अवधारणाओं के निर्माण को प्रोत्साहित किया जाय जिससे सामूहिक चर्चा व व्यक्तिगत चिंतन प्रक्रिया इस्तेमाल की जाए।
5. छात्रों को अपने द्वारा बनाई गई अवधारणाओं पर सक्रिय प्रयोग करने क अवसर दिए जाएं।
6. अपने द्वारा किए गए प्रयोगों से अवधारणाओं के प्रति निर्णय लेने की क्षमता को प्रोत्साहन दिया जाए।

2.10.2 कोल्ब के अनुभवात्मक अधिगम की आलोचनाएं

1. अनुभवात्मक अधिगम के सिद्धान्त में गैर चिन्तनशील अनुभवों की भूमिका का अधिगम प्रक्रिया में पर्याप्त वर्णन नहीं किया गया।
2. वह सिद्धान्त एक व्यक्ति द्वारा सीखने का विश्लेषण तो करता है पर एक समूह में होने वाले अधिगम को नहीं समझा पाता।
3. यह सिद्धान्त इस सवाल का भी कोई सतोषप्रद जबाव नहीं देता कि व्यक्ति के अधिगम पर एक सामाजिक समूह की अन्तःक्रिया का क्या प्रभाव पड़ता है ?

अभ्यास प्रश्न 7 –

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये |

1) अनुभवात्मक अधिगम को किए गए कार्यों पर ____________ होकर सीखने के रूप में परिभाषित किया जाता है।
2) कोल्ब के अनुभवात्मक अधिगम माडल में अनुभव को ग्रहण करने के दो तरीके - ________________________बताएं हैं।
3) व्यक्ति अपने सीखने के तरीकों का चयन अपने अनुवांशिक तत्वों व _________ के आधार पर करता है।

2.11 अधिगम में सामाजिक मध्यस्थता (Social Mediation in Learning)

वाइगोस्की के सामाजिक संरचनावाद के सिद्धान्त से अधिगम के सामाजिक मध्यस्थता की अवधारणा निकल कर आती है। सामाजिक संरचनावाद के अनुसार अधिगम मूल रूप में सामाजिक मध्यस्थता और समाज निर्मित क्रिया है। अधिगम की प्रक्रिया में मध्यस्थ के रूप में शिक्षक छात्र, छात्र-छात्र, शिक्षक-समूह के बीच होनेवाली अन्तःक्रियाएं शामिल रहती हैं। इन अन्तःक्रियाओं के फलस्वरूप बाहरी सामाजिक प्रक्रियाएं अधिगमकर्ता की मानसिक क्षमताओं में आत्मसात हो जाती है। इन्हीं अन्तःक्रियाओं की मध्यस्थता के कारण अधिगमकर्ता का संज्ञानात्मक प्रदर्शन का स्तर ऊपर उठता है,

जो वह सिर्फ अपने दम पर नहीं पा सकता। अधिगम प्रक्रिया में शिक्षार्थी इन्हीं मध्यस्थाताओं के माध्यम से ज्ञान का निर्माण करता है। अधिगम के सामाजिक मध्यस्थता में शिक्षक एक मार्गदर्शक के रूप में कार्य करता है जिसे अपने छात्र की आवश्यकताओं का ज्ञान होता है और वह छात्र की ज्ञान निर्माण प्रक्रिया में सहायक रहता है।

सामाजिक मध्यस्थता में निर्देशन की उन पद्धतियों को उपयोग किया जाता है जिससे कि अधिगमकर्ता समीपस्थ विकास के क्षेत्र में रहता है। समीपस्थ विकास का क्षेत्र में अधिगमकर्ता क्या जानता है और सामाजिक मध्यस्थता की सहायता से कितना जानने में या करने में सक्षम है इन दोनों क बीच के अंतर दर्शाता है।

अधिगम के क्षेत्र में प्रगति करने के लिए अन्तःक्रियाओं को बढ़ावा देना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 8 –

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये |

1. सामाजिक संरचनावाद के अनुसार अधिगम मूल रूप में सामाजिक मध्यस्थता और ___________ क्रिया है।
2. अधिगम प्रक्रिया में शिक्षार्थी ______________ के माध्यम से ज्ञान का निर्माण करता है।
3. अधिगम के क्षेत्र में प्रगति करने के लिए ________________ को बढ़ावा देना चाहिए।

2.12 संज्ञानात्मक पराक्राम्यता (Cognitive Negotiability)

एक अधिगमकर्ता अपने अनुभव और संज्ञानात्मक पराक्राम्यता के स्तर पर अर्थ निर्माण करता है। पराक्राम्यता का अर्थ होता है अपने स्वामित्व वाली चीज को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरित करना। संज्ञानात्मकम पराक्राम्यता से तात्पर्य है कि अधिगम प्रक्रिया के दौरान व्यक्ति में जो स्तरीकृत मानसिक संरचनाएं बनती हैं उन्हें अन्य व्यक्ति में अधिगम की सुगमता के लिए हस्तांतरित करना। यह हस्तांतरण सहयोगपूर्ण, तर्कसंगत होता है। संज्ञानात्मक पराक्राम्यता के लिए आवश्यक है कि अधिगम प्रक्रिया अतःक्रिया आधारित हो और अन्तःक्रिया का स्तर उनकी संस्थाओं से नहीं बल्कि इस बात पर निर्भर हो कि वह अन्तःक्रिया अधिगमकर्ताओं के संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को कितना प्रभावित करता है। संज्ञानात्मक पराक्राम्यता द्वारा ज्ञान निर्माण के लिए यह भी आवश्यक है कि अधिगमकर्ता एक सामय में एक साथ मिलकर ज्ञान निर्माण के लिए कार्य करें। संज्ञानात्मक पराक्राम्यता में सहपाठी या शिक्षक अपने विचारों को अधिगमकर्ता पर थोपते नहीं हैं बल्कि उनके पक्ष में तर्क देते हैं अगर अधिगमकर्ता उन तर्कों से सहमत होता है तभी वह उन विचारों संबंधीमानसिक संरचनाओंका निर्माण करता हैं।

अभ्यास प्रश्न 9

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये |

1) पराक्राम्यता का अर्थ होता है अपने स्वामित्व वाली चीज को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को _____________करना।

2) संज्ञानात्मक पराक्राम्यता में हस्तांतरण सहयोगपूर्ण, _____________ होता है।

3) संज्ञानात्मक पराक्राम्यता के लिए आवश्यक है कि अधिगम प्रक्रिया ___________ आधारित हो।

2.13 स्थितिजनक अधिगम और संज्ञानात्मक शिक्षुता (Situated Learning and Cognitive Apprenticeship)

स्थितिजन्य अधिगम, अधिगम के सामाजिक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य से संबंधित है। अधिगम उन्हीं परिस्थितियों में उत्पन्न होता है जिनमें वह कराया जाता हैं। स्थितिजन्य अधिगम - अधिगम को अमूर्त और सन्दर्भरहित ज्ञान के संचरण के रूप में नहीं देखता बल्कि ज्ञान को अधिगम की एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है जिसमें उसका एक विशिष्ट संदर्भ होता है और ज्ञान अधिगम के विशिष्ट भौतिक और सामाजिक वातावरण में निहित होता है जिसका अधिगमकर्ता उसके साथियों और विशेषज्ञों द्वारा सह निर्माण किया जाता है। स्थितिजन्य अधिगम और संज्ञानात्मक शिक्षुता पर आधारित अधिगम का प्रमुख विचार है कि अधिगम प्रक्रिया में अधिगमकर्ता अपने साथियों और विशेषताओं से किए गए संवाद और प्रामाणिक सन्दर्भों के माध्यम से कौशल हासिल किए जा सकते हैं। स्थितिजन्य अधिगम से तात्पर्य है वह अधिगम जो स्वाभाविक रूप से प्रमाणिक गतिविधि, प्रसंग और संस्कृति से जुड़ा रहता है। संज्ञानात्मक शिक्षुता स्थितिजन्य अधिगम का ही एक मॉडल है, जो स्थितिजन्य अधिगम के उपयोग के व्यवहारात्मक पदों के बारे में बताता है। जीन लाव को स्थितिजनित अधिगम के प्रत्यय को जन्म देने का श्रेय जाता है।

संज्ञानात्मक शिक्षुता विशेषज्ञ द्वारा निर्देशित अनुभवों के माध्यम से सीखने का तरीका है। स्थितिजन्य अधिगम और संज्ञानात्मक प्रशिक्षुता में केन्द्रीय विचार है कि अधिगमककर्ता अभ्यास के बारे में सीखता नहीं है वरन अभ्यास करता है।

संज्ञानात्मक शिक्षुता किसी भी अधिगम वातावरण के गठन के चार आयामों पर केन्द्रित है-

1. **विषयवस्तु (ज्ञान का प्रकार)** - इसके अन्तर्गत विषयवस्तु का विश्लेषण किया जाता है जो निम्नवत है -

    1. **ज्ञान के क्षेत्र** - किस प्रकार का ज्ञान अधिगमकर्ता को सिखाना है उसमें कौन सी अवधारणाएं तथ्य और प्रक्रियाएं निहित हैं इसका वर्णन किया जाता है।
    2. **अनुमानित रणनीतियाँ** - अधिगम अनुभवों के लिए कौन सी प्रक्रिया अपनाई जाए व कार्य को पूरा करने के लिए सामान्य रणनीतियों का निर्णारण।
    3. **नियंत्रण रणनीति** - के अन्तर्गत अधिगमकर्ता द्वारा समाधान प्रक्रिया के निर्देशन हेतु सामान्य चरणां का निर्धारण किया जाता है।

2. **विधि (सीखने का तरीका)** - इसके अन्तर्गत विशेषज्ञों द्वारा सीखने की उपयुक्त विधियों का चयन किया जाता है। इस प्रकार के अधिगम हेतु प्रमुख विधियां निम्नवत हैं -

1. **मॉडलिंग** - माडलिंग के अन्तर्गत विशे षज्ञों के तर्कों का अवलोकन करके छात्र निर्णय लेना सीखते हैं।
2. **कोचिंग** - इस विधि के अन्तर्गत छात्र विशेषज्ञों द्वारा सलाह, संकेत, मौखिक वर्णन, चित्र सहायता, समर्थन, स्पष्टीकरण आदि में मार्गदर्शन लेते हैं।
3. **मचान बनाना (Scaffolding)** - मचान बनाना भी कोचिंग का ही एक रूप है। इस विधि में विशेषज्ञ छात्रों की आवश्यकता पड़ने पर सहायता करते हैं फिर जैसे जैसे छात्र ज्ञान निर्माण में अग्रसर होता है वह अपनी सहायता के धीरे धीरे हटाते हैं। मचान बनाने की विधियां भी दो प्रकार की होती हैं निर्देशक (यह शिक्षक केन्द्रित होती है व इसमें विशेषज्ञ छात्रों को सफल् कराने हेतु रणनीति बनाता है। सहायक (यह शिक्षार्थी केन्द्रित होती है, जहां छात्र की वर्तमान जरूरतों के लिए रणनीतियाँ प्रदन की जाती हैं।
4. **अभिव्यक्ति** - इसके अन्तर्गत शिक्षार्थी को ज्ञान निर्माण हेतु अपनाई गई प्रक्रियाओं का वर्णन करना होता है।
5. **चिंतन** - इसमें छात्र समस्या समाधान हेतु अपने द्वारा अपनाई विधियों का दूसरों द्वारा अपनाई विधियों से तुलनात्मक अध्ययन करता है।
6. **अन्वेषण** - इसके अन्तर्गत शिक्षक छात्रों की अपने स्वयं द्वारा रचित समस्याओं को हल करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

   संज्ञानात्मक शिक्षुता में सीखने के लिए उपरोक्त विधि में से कौनसी सर्वश्रेष्ठ है इसका कोई सूत्र नहीं है। यह शिक्षक पर निर्भर करता है कि वह विषयवस्तु और अधिगम गतिविधि के अनुसार कौन सी विधि का नियोजन करता है।

3. **अनुक्रमण (अधिगम गतिविधियों का क्रम निर्धारण)** - इसके अन्तर्गत विशेषज्ञ अधिगम गतिविधियों का क्रम निर्धारण करता है जैसे गतिविधियां जटिलता के बढ़ते क्रम में हो, गतिविधियों में विविधता हो, गतिविधियाँ सामान्य से विशिष्टता के क्रम में हों आदि।

4. **अधिगम वातावरण का समाजशास्त्र** - इसके अन्तर्गत अधिगम के सामाजिक व सांस्कृतिक सन्दर्भों पर ध्यान दिया जाता है जैसे छात्रों के कार्यों के संदर्भ स्पष्ट करना, अर्थपूर्ण क्रिया करने के विभिन्न तरीकों का सम्प्रेषण करना, आन्तरिक अभिप्रेरणा को प्रोत्साहन देना आदि।

इस प्रकार से उपरोक्त चार आयामों के सन्दर्भ में अधिगम प्रक्रिया का नियोजन करके छात्रों में ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया को सुगम बनाया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न 10

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये |

1. स्थितिजन्य अधिगम _____________ परिप्रेक्ष्य से संबंधितहै।
2. स्थितिजन्य अधिगम ज्ञान को अधिगम की एक _______________ के रूप में देखता है।
3. संज्ञानात्मक शिक्षुता स्थितिजन्य अधिगम के उपयोग के ________________पदों के बारे में बताता है।

2.14 पराअनुभूति/ परासंज्ञान (Metacognition)

पराअनुभूति / परासंज्ञान को सरल शब्दों में "*जानने के बारे में जानना*" या "*सोचने के बारे में सोचना*" से समझा जा सकता है। पराअनुभूति / परासंज्ञान से तात्पर्य उस उच्च स्तरीय चिंतन से है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को समझ पाता है, उनका विश्लेषण व उन पर नियन्त्रण कर सकता है। विशेषकर जब वह अधिगम में व्यस्त रहता है। Metacognition शब्द meta से बना है जिसका मतलब होता है 'परे'। पराअनुभूति में अधिगम प्रक्रिया या समस्या समाधन हेतु कब, कैसे और कौन सी प्रविधियों का उपयोग होना है इसका ज्ञान निहित होता है। पराअनुभूति में व्यक्ति अपनी चिंतन प्रक्रिया जैसे अध्ययन, कौशल, स्मृति और अधिगम की जांच आदि के बारे में सोचता है। पराअनुभूति का ज्ञान हमें अपने संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं और उनको नियंत्रित करने की प्रविधियों के बारे में बताता है ताकि व्यक्ति अधिगम के स्तर को अधिकतम सीमा तक पहुंचा सके। छात्रों को विषय वस्तु के ज्ञान के साथ ही पराअनुभूति के बारे में भी बताया जाना चाहिए ताकि वह अपनी अधिगम प्रक्रिया को समझ सकें।

2.14.1 पराअनुभूति/ परासंज्ञान के तत्व

पराअनुभूति / परासंज्ञान के तीन प्रमुख तत्व होते हैं -

1. पराबोधिक ज्ञान
2. पराबोधिक नियंत्रण
3. पराबोधिक अनुभव

1. **पराबोधिक ज्ञान** में निम्न तथ्यों का ज्ञान निहित रहता है -

    1. **व्यक्तिगत ज्ञान (वर्णनात्मक ज्ञान)** इसके अन्तर्गत व्यक्ति का अपनी योग्याताओं संबंधितज्ञान शामिल होता है।
    2. **कार्यात्मक ज्ञान (प्रक्रियात्मक ज्ञान)** इसके अन्तर्गत कार्य संबंधीज्ञान सम्मिलित रहता है जैसे कोई व्यक्ति किसी कार्य के बारे में क्या सोचता है, कार्य की जटिलता, कार्य का प्रकार आदि।
    3. **रणनीतिक ज्ञान** - इस प्रकार के ज्ञान से तात्पर्य उस ज्ञान से है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी क्षमताओं अनुरूप सूचनाओं को सीखने हेतु रणनीति बनाता है।

2. **पराबोधिक नियंत्रण** - पराबोधिक नियचंत्रण से तात्पर्य उन नियंत्रित संज्ञानात्मक व अधिगम अनुभव संबंधीगतिविधियों से है जिन्हें व्यक्ति अपनी अधिगम प्रक्रिया को नियंत्रित करने के लिए प्रयोग करता है। पराबोधिक नियंत्रण में निम्न कौशल आवश्यक होते हैं -

    1. **नियोजन** - किसी कार्य के निष्पादन के लिए उपयुक्त व प्रभावी रणनीतियों का निर्धारण व चुनाव।
    2. **जांच** - जांच से तात्पर्य है कि कार्य निष्पादन के प्रति जागरूकता व उसके बारे में जानकारी होना।

3. **मूल्यांकन** - यह किसी कार्य के अंतिम उत्पाद और कार्य प्रदर्शन की दक्षता को संदर्भित करता है।
4. उपरोक्त के अलावा कार्य को पूरा करने के लिए प्रेरणा को बनाए रखना भी एक पराबोधिक कौशल होता है। कार्य निष्पादन में ध्यान भग करने वाली उत्तेजनाओं दोनों- आंतरिक और बाह्य के बारे में पता होना भी पराबोधिक कार्यों में शामिल होता है। अधिगम में पराबोध की महत्वपूर्ण भूमिका के सिद्धान्त से तात्पर्य है कि अधिगम प्रक्रिया में पराबोध का प्रदर्शन शिक्षक व छात्रों द्वारा किया जाना चाहिए।

3. **पराबोधिक अनुभव** - यह वह अनुभव है जिनका संबंध वर्तमान और चालू संज्ञानात्मक प्रयासों से संबंधितहोते हैं। पराबोध का संबंधसोच के स्तर द्वारा अधिगम स्थितियों पर सक्रिय नियंत्रणसे होता है। पराबोधिक अनुभव एक व्यक्ति के लिए मायने रखने वाली पहचान बनाने के लिए जिम्मेदार होते हैं। एक व्यक्ति के लिए पहचान महत्वपूर्ण होती है क्योंकि यह अर्थ निर्माण और कार्यवाहियों के लिए एक आधार प्रदान करती है।

उदाहरण के लिए यदि कोई छात्र गणित के सवालों को अच्छे से हल करता है और गणित में विद्वान बनना चाहता है तो वह गणित को और अच्छे से सीखने के प्रयास करेगा और यदि वह अपनी इस गणित के विद्वान की पहचान को छोड़ता है तो वह गणित को सीखने के प्रयासों को भी छोड़ देगा।

अभ्यास प्रश्न 11

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये |

1. परासंज्ञान का ज्ञान हमें अपने संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं और उनको ___________ करने की प्रविधियों के बारे में बताता है ताकि व्यक्ति अधिगम के स्तर को अधिकतम सीमा तक पहुंचा सके।
2. परासंज्ञान के तीन प्रमुख तत्व होते हैं पराबोधिक ज्ञान, ______________ और पराबोधिक अनुभव
3. पराबोधिक अनुभव का संबंधवर्तमान और चालू__________________ से संबंधितहोते हैं।

2.15 सारांश

अधिगम के व्यवहारवादी परिप्रेक्ष्य के अनुसार व्यक्ति जो कुछ भी सीखता है वह वातावरण से सीखता है। और सीखने की इस प्रक्रिया व्यक्ति की अपनी आंतरिक क्षमता यथा चिन्तन तर्क विवेक आदि का महत्वपूर्ण योगदान नहीं होता है। इस विचारधारा के प्रवर्तक हैं जे0बी0 वाटसन जो कि एक अमेरिकी मनोवैज्ञानिक थे अपने अनेकों अध्ययनों के परिणाम स्वरूप उन्होंने इस विचारधारा का प्रतिपादन किया कि मनुष्य के व्यवहारों का भी वस्तुनिष्ठ तरीके से अध्ययन संभव है और मनोविज्ञान में केवल व्यवहारों का अध्ययन ही महत्वपूर्ण है, मन अथवा चेतना को उन्होंने महत्वपूर्ण नहीं माना।

अधिगम के व्यवहारवादी परिप्रेक्ष्य से जुड़े मनोवैज्ञानिकों का मत है कि उद्दीपक तथा प्रतिक्रिया के मध्य व्यक्ति का मस्तिष्क नियंत्रण का कार्य करता है। वह विभिन्न क्रियाओं तथा व्यवहारों को नियंत्रित करता है, निर्देशित करता है तथा उनमें परिवर्तन लाता है।

संज्ञानात्मक अधिगम सिद्धान्तकार यह विश्वास करते हैं कि अधिगम एक आंतरिक प्रक्रिया है, जिसमें जानकारी एकीकृत रूप में व्यक्ति के संज्ञानात्मक या बौद्धिक संरचना में रहती है। अधिगम सूचना के आंतरिक प्रसंस्करण के माध्यम से होता है। संज्ञानात्मक दृष्टिकोण से कोई नई जानकारी कैसे प्रस्तुत की गई है महत्वपूर्ण होता है।

सूचना प्रक्रम परिप्रेक्ष्य में मानव के संज्ञानात्मक कार्य प्रणाली को एक कम्प्यूटर की कार्यप्रणाली के समकक्ष मानकर समझा जाता है। इस परिप्रेक्ष्य का पहला मुख्य विचार है सूचना के टुकड़े करना (Chunking) और अल्पकालीन स्मृति (Short term memory) सूचना की क्षमता। मानव मस्तिष्क कम्प्यूटर की भांति सूचनाओं को ग्रहण करता है, उस पर कार्य करता है, उसके स्वरूप व विषय वस्तु में संशोधन करता है, उसका भण्डारण करता है, उसकी स्थिति जानकर सूचना के प्रति प्रतिक्रिया देता है।

मानववाद परिप्रेक्ष्य इस बात पर बल देता है कि अनुभव व्यवहारों और अधिगम के अध्ययन में मुख्य होते हैं। उन्होंने इस परिप्रेक्ष्य में अधिगम प्रक्रिया में व्यक्ति की रुचि, सृजनात्मकता, मूल्य स्वअनुभूति आदि मानव गुणों को महत्वपूर्ण माना है मानववादियों का तर्क है कि वस्तुनिष्ठत की अपेक्षा अर्थपूर्ण व वस्तुनिष्ठ अधिगम ज्यादा महत्वपूर्ण होता है।मानववादी परिप्रेक्ष्य के अनुसार सीखने के चालक आंतरिक होते हैं। अधिगम का लक्ष्य अधिगमकर्ता को स्वअनुभूति कराना होता है। अधिगम व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य को निर्धारित करती है।

अधिगम का जैविक परिप्रेक्ष्य अधिगमकर्ता के मस्तिष्क एवं उसकी कार्यप्रणालियों से संबंधितहै। मानव के बहुमुखी मस्तिष्क के अलग-अलग भाग अलग अलग उद्दीपकों के प्रति संवेदनशील होते हैं व क्रियाएं करते हैं इसलिए प्रभावी अधिगम के लिए मस्तिष्क के भागों व उनसे संबंधितउद्दीपकों का ज्ञान अधिगम को सुगम बनाने का कार्य करता है। अगर हम अधिगम प्रक्रिया में बालक के पूर्ण मस्तिष्क की क्रियाओं को सम्मिलित करना चाहते हैं तो हमें बहुमुखी उद्दीपकों द्वारा दिमाग के रास्तों को सक्रिय करने की आवश्यकता होती है।

संरचनावाद सिर्फ अधिगम के क्षेत्र का अलग परिप्रेक्ष्य ही नहीं अपितु सीखने के संबंधमें जानने की एक नई दिशा है। संरचनावाद के अनुसार अधिगम एक सक्रिय प्रक्रिया है जो प्रत्येक अधिगमकर्ता के लिए विशिष्ट होती है जिसमें अधिगमकर्ता अपने पूर्व अनुभवों व ज्ञान के आधार पर प्रत्ययों में संबंधस्थापित करे उनके अर्थों की रचना करता है।

अधिगम का सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य अधिगम प्रक्रिया में ज्ञान के निर्माण में सामाजिक और व्यक्तिगत अन्तर्सम्बन्ध को महत्व देता है। इस परिप्रेक्ष्य का विचार है कि मानव व्यवहार सांस्कृतिक संदर्भ में होता है जिनकी मध्यस्थता भाषा और अन्य प्रतीकों द्वारा होती है, इन व्यवहारों को ऐतिहासिक विकास के सन्दर्भ में समझा जा सकता है।

अनुभवात्मक अधिगम अनुभव के माध्यम से सीखने की प्रक्रिया है और विशेष रूप से इसको किए गए कार्यों पर चिन्तनशील होकर सीखने के रूप में परिभाषित किया जाता है। इस प्रकार के अधिगम में अधिगमकर्ता स्वयं निरीक्षण करता है, खोज करता है, और ज्ञान के साथ प्रयोग करता है न कि सिर्फ दूसरों से ज्ञान के बारे में सुनता व पढ़ता है। वह ज्ञान को अनुभव करके सीखता है।

सामाजिक संरचनावाद के अनुसार अधिगम मूल रूप में सामाजिक मध्यस्थता और समाज निर्मित क्रिया है। अधिगम की प्रक्रिया में मध्यस्थ के रूप में शिक्षक छात्र, छात्र-छात्र, शिक्षक-समूह के बीच होनेवाली अन्तःक्रियाएं शामिल रहती हैं। अधिगम प्रक्रिया में शिक्षार्थी इन्हीं मध्यस्थताओं के माध्यम से ज्ञान का निर्माण करता है।

संज्ञानात्मकम पराक्राम्यता से तात्पर्य है कि अधिगम प्रक्रिया के दौरान व्यक्ति में जो स्तरीकृत मानसिक संरचनाएं बनती हैं उन्हें अन्य व्यक्ति में अधिगम की सुगमता के लिए हस्तांतरित करना। यह हस्तांतरण सहयोगपूर्ण, तर्कसंगत होता है। संज्ञानात्मक पराक्राम्यता के लिए आवश्यक है कि अधिगम प्रक्रिया अतःक्रिया आधारित हो और अन्तःक्रिया का स्तर उनकी संस्थाओं से नहीं बल्कि इस बात पर निर्भर हो कि वह अन्तःक्रिया अधिगमकर्ताओं के संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को कितना प्रभावित करता है।

स्थितिजन्य अधिगम, अधिगम के सामाजिक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य से संबंधित है। अधिगम उन्हीं परिस्थितियों में उत्पन्न होता जिनमें वह कराया जाता हैं। स्थितिजन्य अधिगम - अधिगम को अमूर्त और सन्दर्भरहित ज्ञान के संचरण के रूप में नहीं देखता बल्कि ज्ञान को अधिगम की एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है जिसमें उसका एक विशिष्ट संदर्भ होता है और ज्ञान अधिगम के विशिष्ट भौतिक और सामाजिक वातावरण में निहित होता है जिसका अधिगमकर्ता उसके साथियों और विशेषज्ञों द्वारा यह निर्माण किया जाता है।

पराअनुभूति / परासंज्ञान को सरल शब्दों में "*जानने के बारे में जानना*" या "*सोचने के बारे में सोचना*" से समझा जा सकता है। पराअनुभूति / परासंज्ञान से तात्पर्य उस उच्च स्तरीय चिंतन से है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को समझ पाता है, उनका विश्लेषण व उन पर नियन्त्रण कर सकता है।

2.16 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. वॉटसन 2. व्यवहार 3. पुनर्बलन व समीपता
4. पुर्वानुमान व नियंत्रण

अभ्यास प्रश्न 2 -

1. व्यक्ति 2. सक्रिय 3. पूर्वज्ञान
4. दीर्घकालिक

अभ्यास प्रश्न 3

1. कम्प्यूटर 2. 5-9 3. सीपीयू

अभ्यास प्रश्न 4

1. अब्राह्म मैसलो 2. अनुभव 3. स्व अनुभूति

अभ्यास प्रश्न 5

1. कार्यप्रणाली 2. संवेदनाओं 3. समृद्ध

अभ्यास प्रश्न 6

1. अन्तर्सम्बन्ध 2. सामाजिक अन्तःक्रियाओं

3. सवांदों

अभ्यास प्रश्न 7

1. चिन्तनशील 2. ठोस अनुभव व अमूर्त अवधारणाएं

3. पूर्व अनुभवों

अभ्यास प्रश्न 8

1. समाज निर्मित 2. मध्यस्थाताओं

3. अन्तःक्रियाओं

अभ्यास प्रश्न 9

1. हस्तान्तरित 2. तर्कसंगत

3. अतःक्रिया

अभ्यास प्रश्न 10-

1. सामाजिक सांस्कृतिक 2. सामाजिक प्रक्रिया

3. व्यवहारात्मक

अभ्यास प्रश्न 11

1. नियंत्रित 2. पराबोधिक नियंत्रण

3. संज्ञानात्मक प्रयासों

2.17 निबंधात्मक प्रश्न

1. अधिगम में व्यवहारवाद की व्याख्या कीजिये?
2. अधिगम में सूचना प्रक्रम परिप्रेक्ष्य की व्याख्या कीजिये?
3. अधिगम के जैविकवाद परिप्रेक्ष्य की व्याख्या कीजिये?
4. अधिगम के संज्ञानवादी परिप्रेक्ष्य की व्याख्या कीजिये?
5. अधिगम में सूचना प्रक्रम परिप्रेक्ष्य की व्याख्या कीजिये?
6. अधिगम के मानववादी और रचनावादी परिप्रेक्ष्य में अंतर कीजिए?
7. संक्षिप्त टिप्पणी कीजिये -
    a) अनुभवात्मक और चिंतनशील अधिगम

b) अधिगम में सामाजिक मध्यस्थता
c) संज्ञानात्मक पराक्राम्यता
d) स्थितिजनक अधिगम और संज्ञानात्मक शिक्षुता
e) पराअनुभूति / परासंज्ञान

2.18 संदर्भ ग्रंथ सूची

- वर्मा, डा. रामपाल सिंह.(2006),शिक्षण एवं अधिगम का मनोविज्ञान, आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।
- सारस्वत, डा. मालती.(1999),शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, लखनऊः आलोक प्रकाशन।
- पाठक,पी.डी.(2006),शिक्षा मनोविज्ञानए आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।
- बैरन, राबर्ट ए.; बायर्न, डौन. आर. (2004), सामाजिक मनोविज्ञान, दिल्लीर: पीयर्सन एजूकेशन प्रा. लि.।
- श्रीवास्तव, डा. डी. एन., समाज मनोविज्ञान।
- माथुर, डा. एस.एस. (1999), शिक्षा मनोविज्ञान, आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।

इकाई - 3

अधिगम के सिद्धांत

Principles of Learning

जीन पियाजे, ब्रूनर, बायगोत्सकी, रोजर्स तथा चॉम्स्की द्वारा प्रतिपादित अधिगम के सिद्धांत तथा उनके शैक्षिक निहितार्थ

Jean Piaget, Bruner, Vygotsky, Rogers and Chomsky Theory of Learning and their educational implications

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 अधिगम के सिद्धान्त

3.4 व्यवहारवादी साहचर्य सिद्धान्त (Behavioural Associationist Theories)

3.5 ज्ञानात्मक एवं क्षेत्र संगठनात्मक सिद्धान्त (Cognitive Organisational Theory)

3.6 मानवतावादी उपागम

3.7 निर्मितवादी उपागम

3.8 जीन पियाजे का अधिगम सम्बंधित सिद्धांत

3.9 ब्रूनर का अधिगम सम्बंधित सिद्धांत

3.10 बायगोत्सकी का अधिगम सम्बंधित सिद्धांत

3.11 रोजर्स का अधिगम सम्बंधित सिद्धांत

3.12 चॉम्स्की का अधिगम सम्बंधित सिद्धांत

3.13 सारांश

3.14 शब्दावली

3.15 निबंधात्मक प्रश्न

3.16 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

सीखना या अधिगम एक बहुत ही व्यापक एवं महत्वपूर्ण शब्द है। मानव के प्रत्येक क्षेत्र में सीखना जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक पाया जाता है। दैनिक जीवन में सीखने के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। सीखना मनुष्य की एक जन्मजात प्रकृति है।प्रतिदिन प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में नये अनुभवों को एकत्र करता रहता है, ये नवीन अनुभव, व्यक्ति के व्यवहार में वृद्धि तथा संशोधन करते हैं। इसलिए यह अनुभव तथा इनका उपयोग ही सीखना या अधिगम करना कहलाता है। इस इकाई में आप अधिगम के विभिन्न परिप्रेक्ष्य, अवधारणा तथा सिद्धांतों तथा इनका विभिन्न अधिगम परिस्थितियों में अनुप्रयोग का अध्ययन करेंगे तथा साथ ही जीन पियाजे, ब्रूनर, वैगोत्स्की, रोजर्स तथा चॉम्स्की द्वारा प्रतिपादित अधिगम के सिद्धांत तथा उनके शैक्षिक निहितार्थ का भी अध्ययन कर उनके शैक्षिक निहितार्थों को जान पायेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- अधिगम का अर्थ स्पष्ट कर सकेंगें।
- अधिगम की विशेषताओं की व्याख्या कर सकेंगें।
- अधिगम सिद्धांत के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों को समझ सकेंगे|
- अधिगम के सिद्धान्तों की चर्चा कर पायेंगें।
- जीन पियाजे के अधिगम सम्बंधित सिद्धांत को स्पष्ट कर सकेंगे|
- ब्रूनर के अधिगम सम्बंधित सिद्धांत को स्पष्ट कर सकेंगे|
- वैगोत्स्की के अधिगम सम्बंधित सिद्धांत को स्पष्ट कर सकेंगे|
- रोजर्स के अधिगम सम्बंधित सिद्धांत को स्पष्ट कर सकेंगे|
- चॉम्स्की के अधिगम सम्बंधित सिद्धांत को स्पष्ट कर सकेंगे|
- विभिन्न सिद्धान्तों के शैक्षिक निहितार्थ लिख पायेंगें।

3.4 अधिगम के सिद्धान्त

सीखने के आधुनिक सिद्धान्तों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है-

(अ) व्यवहारवादी साहचर्य सिद्धान्त (Behavioural Associationist Theories)

(ब) ज्ञानात्मक एवं क्षेत्र संगठनात्मक सिद्धान्त (Cognitive Organisational Theory)

(स) मानवतावादी उपागम (Humanistic Approach)

(स) निर्मितवादी उपागम (Constructivistic Approach)

विभिन्न उद्दीपनों के प्रति सीखने वाले की विशेष अनुक्रियायें होती हैं। इन उद्दीपनों तथा अनुक्रियाओं के साहचर्य से उसके व्यवहार में जो परिवर्तन आते हैं उनकी व्याख्या करना ही पहले प्रकार के सिद्धान्तों का उद्देश्य है। इस प्रकार के सिद्धान्तों के प्रमुख प्रवर्तकों में थोर्नडाइक, वाटसन और पैवलोव तथा स्किनर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जहॉ थोर्नडाइक द्वारा प्रतिपादित विचार प्रणाली को संयोजनवाद (Connectionism) के नाम से जाना जाता है, वहॉ वाटसन और पैवलोव तथा स्किनर की प्रणाली को अनुबन्धन या प्रतिबद्धता (Conditioning) का नाम दिया गया है।

3.5 व्यवहारवादी साहचर्य सिद्धांत(Behavioural Associationist Theories)

थॉर्नडाइक ने सीखना की व्याख्या करते हुए कहा है कि जब कोई उद्दीपक (stimulus) व्यक्ति के सामने दिया जाता है तो उसके प्रति वह अनुक्रिया (response) करता है। अनुक्रिया सही होने से उसका संबंध (connection) उसी विशेष उद्दीपक (stimulus) के साथ हो जाता है। इस संबंध को सीखना (learning) कहा जाता है तथा इस तरह की विचारधारा को संबंधवाद (Connectionism) की संज्ञा दी गयी है। थार्नडाइक के अधिगम के सिद्धांत को प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धांत तथा सबन्धवाद के नाम से जाना जाता है।

आई0पी0 पैवलव (I.P. Pavlov) एक रूसी शरीर- वैज्ञानिक (physiologist) थे जिन्होंने अपनी जीवन-वृत्ति (career) हृदय के कार्यो के अध्ययन से शुरू की परन्तु बाद में उन्होंने पाचन क्रिया (digestion) के दैहिकी (physiology) का विशेष रूप से अध्ययन करना प्रारम्भ किया और उनका यह अध्ययन इतना महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय हुआ कि 1904 में इसके लिए उन्हें नोबल पुरस्कार (Nobel Prize) भी दिया गया । बिल्कुल ही संयोग से (incidentally) पैवलव ने इन अध्ययनों के दौरान लारमय अनुबन्धन (salivary conditioning) की घटना (phenomenon) का अध्ययन किया और इससे संबंधित सीखने के एक सिद्धान्त का भी प्रतिपादन किया जिसे अनुबन्धित अनुक्रिया सिद्धान्त (conditioned response theory) कहा जाता है ।

पैवलव ने अपने सीखने के सिद्धान्त का आधार अनुबन्धन (conditioning) को माना है । पैवलव के सीखने के इस अनुबन्धन सिद्धान्त को शास्त्रीय अनुबन्धन सिद्धान्त (classical conditioning theory) या प्रतिवादी अनुबन्धन सिद्धान्त (Respondent conditioning theory) या टाइप- एस (Type- S) अनुबन्धन भी कहा जाता है। इसे क्लासिकल अनुबंधन इसलिए कहा जाता है क्योंकि पैवलव ने ही अधिगम का क्लासिक प्रयोगशाला अध्ययन किया था ।

क्लासिकल अनुबन्धन में प्रतिमान की शुरूआत एक उद्दीपक (stimulus) तथा इससे उत्पन्न अनुक्रिया के बीच के संबंध से होता है । पैवलव के अनुसार जब कोई स्वाभाविक एवं उपर्युक्त उद्दीपक को जीव के सामने उपस्थित किया जाता है तो वह उसके प्रति एक स्वाभाविक अनुक्रिया (natural response)

करता है। जैसे गर्म बर्तन को छूते ही हाथ खींच लेना तथा भूखा होने पर भोजन देखकर मुँह में लार आना, कुछ ऐसी अनुक्रियाओं (responses) के उदाहरण है। जब इस स्वाभाविक एवं उपयुक्त उद्दीपक के ठीक कुछ सेकेण्ड पहले एक दूसरा तटस्थ उद्दीपक (neutral stimulus) बार-बार उपस्थित किया जाता है तो कुछ प्रयास (trials) के बाद उस तटस्थ उद्दीपक द्वारा ही स्वभाविक अनुक्रिया (लार आना या हाथ खींच लेना जो सिर्फ स्वाभाविक उद्दीपक के प्रति होती थी) उत्पन्न होने लगती है। जैसे, एक भूखे व्यक्ति के सामने घंटी बजाकर बार-बार भोजन दें तो कुछ प्रयासों के बाद मात्र घंटी बजते ही उस व्यक्ति के मुँह में लार आना प्रारंभ हो जायेगा। पैवलव ने तटस्थ उद्दीपक (घंटी) तथा स्वाभाविक अनुक्रिया (लार आना) के बीच स्थापित इस नये साहचर्य को सीखने की संज्ञा दिया है।

पैवलव का यह निष्कर्ष कि यदि तटस्थ उद्दीपक (neutral stimulus) को किसी उपयुक्त एवं स्वाभाविक उद्दीपक (neutral stimulus) के साथ बार-बार दिया जाता है तो तटस्थ उद्दीपक के प्रति व्यक्ति वैसी ही अनुक्रिया (responses) करना सीख लेता है जैसा कि वह उपयुक्त एवं स्वाभाविक उद्ददीपक के प्रति करता है। यह निष्कर्ष एक प्रयोग पर आधारित है।

स्किनर (1938) द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त नैमित्तिक अनुबंधन, सक्रिय अनुबन्धन या क्रिया प्रसूत अनुबन्धन भी कहा जाता है। यह प्राचीन अनुबंधन की अपेक्षा अधिक उपयोगी तथा व्यावहारिक है। प्राचीन अनुबंधन में वांछित व्यवहार उत्पन्न करने के लिए सम्बन्धित उद्दीपक पहले प्रदर्शित किया जाता है। इसके विपरीत सक्रिय अनुबंधन की अवधारणा यह है कि प्राणी को वांछित उद्दीपक या परिणाम प्राप्त करने या कष्टादायक उद्दीपक से बचने के लिए प्रत्याशित, उचित या सही अनुक्रिया (व्यवहार) पहले स्वयं प्रदर्शित करना होता है। अर्थात् उद्दीपक या परिस्थिति के निमित्त प्राणी द्वारा किया जाने वाला व्यवहार ही परिणाम का स्वरूप निर्धारित करता है। इसी कारण इसे नैमित्तिक अनुबंधन कहते हैं (Hulse et. al. 1975)। इसी आधार पर इसे संक्रियात्मक या क्रियाप्रसूत अधिगम (Operant learning) भी कहा जाता है (Hilgard and Bower, 1981)। पोस्टमैन एवं इगन (1967) ने भी लिखा है कि नैमित्तिक अनुबंधन में धनात्मक पुनर्बलन (S+) का प्राप्त होना या नकारात्मक पुनर्बलन (S-) से बचना इस बात पर निर्भर (Contingent) करता है कि किसी अधिगम परिस्थिति में प्रयोज्य कैसा व्यवहार (उचित/अनुचित) करता है।

दूसरे प्रकार के सिद्धान्त सीखने को उस क्षेत्र में, जिसमें सीखने वाला और उसका परिवेश शामिल होता है, आये हुये परिवर्तनों तथा सीखने वाले द्वारा इस क्षेत्र के प्रत्यक्षीकरण किये जाने के रूप में देखते हैं। ये सिद्धान्त सीखने की प्रक्रिया में उद्देश्य (Purpose), अन्तर्दृष्टि (Insight) और सूझबूझ (Understanding) के महत्व को प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार के सिद्धान्तों के मुख्य प्रवर्तकों में वर्दाईमर (Werthemier), कोहलर (Kohler), और लेविन (Lewin) के नाम उल्लेखनीय है।

3.6 मानवतावादी परिप्रेक्ष्य में सीखना(Learning in Humanistic Perspectives)

मानव एक जागृत प्राणी है, वह जीवन भर सीखता रहता है और अपने सीखे हुए ज्ञान को आने वाली पीढ़ी को स्थानान्तरित करता रहता है। मनोवैज्ञानिक मासलो 1968 और रोजर 1983 ने बताया कि मनुष्य अपनी आकांक्षा और आवश्यकताओं के आधर पर सीखता है। इसके लिए मजबूत धारणा, आत्मसम्मान तथा आत्म यर्थाथीकरण का होना आवश्यक है। मनुष्य को उच्च स्तर पर पहुंचने के लिए सही दिशा या मार्ग का ज्ञान होना आवश्यक है। मासलो के अनुसार जब व्यक्ति की बुनियादी आवश्यकता की पूर्ति व उनसे संतुष्ट हो जाता है तब वह अपनी उच्च आकांक्षायें, आत्मसम्मान और यर्थाथीकरण के बारे में सोचेगा। उनका सिद्धान्त इस बात पर निर्भर करता है कि व्यक्ति क्या अपील कर रहा है अर्थात् वह किस वस्तु की कमी महसूस कर रहा है। जैसे-एक छात्र जो थका, भूखा, प्यासा, चिन्तित, धमकाया हुआ है, वह पूर्ण रूप से सीखने में अपनी शक्ति नहीं लगा सकता। जबकि दूसरा छात्र पूर्ण सुरक्षित व स्वस्थ है, वह उस छात्र की अपेक्षा अधिक सीख पायेगा। रोजर ने बताया कि छात्रों की आवश्यकता के अनुसार उन्हें सीखने का स्वतंत्रतापूर्वक मौका दिया जाए और अध्यापकों से उनके व्यक्तिगत संपर्क अच्छे होने चाहिए और अध्यापक को छात्रों की भावनाओं को पहचानकर उनके साथ घुल-मिल जाना चाहिए। अध्यापक की भूमिका छात्र की पसन्द को ध्यान में रखते हुए उनके उचित मार्गदर्शन दिया जाना चाहिए। एक वयस्क सीखने वाले द्वारा इन सिद्धान्तों का पालन किया जाना चाहिए। जैसे-सक्रिय, आत्म निर्देशित, समस्या केंद्रित, अनुभव से संबंधित, प्रासंगिक रूप में जरूरती, आन्तरिक रूप से प्रेरित, प्रभावशाली तरीके से सीखने का वातावरण उसमें होना आवश्यक है, तभी अधिगम अधिक होगा।

3.7 अधिगम का सर्जनवादी परिप्रेक्ष्य (Constructivism Perspective of Learning)

आजकल शिक्षण शास्त्र की परिधि में सबसे प्रचलित शब्द सर्जनवाद है | सर्जनवाद मूलतः 'मानव कैसे सीखता है' से सम्बंधित एक सिद्धांत है जो अवलोकन तथा वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित है| इसके अनुसार कोई भी व्यक्ति इस संसार के सन्दर्भ में जो भी ज्ञान अथवा अवधारणा का विकास करता है वह स्वयं के अनुभव पर ही आधारित होता है| किसी भी ज्ञान का आधार उसके स्वयं का ही अनुभव होता है| अर्थात अनुभव ही ज्ञान कुंजी होती है| यदि कोई व्यक्ति किसी कार्य को पूरा करता है तो उसे किसी न किसी प्रकार का अनुभव प्राप्त होता है और यही अनुभव उस व्यक्ति के लिए ज्ञान सृजन का आधार होता है| अर्थात, व्यक्ति अपने अनुभव के आधार पर ही ज्ञान का सृजन करता है| किसी घटना का अनुभव करना तथा उस अनुभव की मीमांसा ही ज्ञान सृजन की आधारशिला होती है| अधिगमकर्ता की क्रियाशीलता ही सर्जनवाद का मूल तत्त्व है| ज्ञान परोसने की विषयवस्तु नहीं है वरन ज्ञान की रचना स्वयं के अनुभव से की जाती है| प्राप्त किए गए ज्ञान में स्थायित्व नहीं होता है बल्कि स्वयं से रचित ज्ञान में स्थायित्व होता है|

चूँकि शिक्षा के क्षेत्र में सृजनवाद ने अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है, अतः शिक्षक के लिए इसे समझना बेहद आवश्यक है| सृजनवाद को अर्थ निर्माण के ऐसे सिद्धांत के रूप में देखा जा रहा है जो ज्ञान की प्रकृति और सीखने की प्रक्रिया का स्पष्टीकरण देता है| अधिगम की इस व्याख्या के अनुसार, "व्यक्ति अपनी नई समझ अथवा ज्ञान की रचना अथवा निर्माण, जितना वह जानते एवं मानते हैं और जिन विचारों, घटनाओं एवं गतिविधियों के संपर्क में आते हैं, दोनों संवादों के माध्यम से करते हैं| (रिचार्डस १९९७)| ज्ञान को यहाँ जिस प्रकार से देखा जा रहा है उसे दोहराव की शुरुआत करने के बजाय विषय में संलिप्त होकर प्राप्त किया जाता है| (करोल और लोबास्की, १९९६)| सृजनवादी स्थितियों में अधिगम गतिविधियाँ सक्रिय भागीदारी, पूछताछ, समस्या समाधान और अन्यों से साझेदारी से विभूषित होती हैं| तदनुसार, इस प्रकार की परिस्थिति में शिक्षक की भूमिका ज्ञान के वितरक मात्र की ही नहीं होती बल्कि एक मार्गदर्शक, प्रेरणादायी, और साथी अन्वेषक के रूप में होता है जो छात्रों को प्रश्न करने, चुनौती लेने, अपने विचार निर्माण करने, राय बनाने और निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए प्रेरित करता है| इस प्रकार से एक शिक्षक जो अधिगम में सृजनवादी दृष्टिकोण को मानता है वह सही उत्तरों की और नहीं देखेगा और एकमात्र व्याख्याओं पर जोर नहीं देगा| अतः सृजनवादियों के अनुसार अधिगम एक सक्रिय एवं गतिशील प्रक्रिया है जिसके केंद्र में अधिगमकर्ता अथवा विद्यार्थी का ही स्थान होता है तथा शिक्षक मार्गदर्शक तथा अभिप्रेरक का कार्य करता है|

3.8 जीन पियाजे का अधिगम सिद्धांत(Learning theory of Jean Piaget)

विकासात्मक मनोविज्ञान के अनेक सिद्धान्तों में से एक बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्धान्त जीन पियाजे (Jean Piaget) का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त है जिसका मूल उद्देश्य बच्चों के विकास के अंतर्गत जो क्रमिक परिवर्तन होते हैं, जिसके कारण मानसिक क्रियाएं और भी जटिल (Complex/ Sophisticated) हो जाती हैं, सरलता से व्याख्या करना है। संज्ञानात्मक विकास के अध्ययन में जीन पियाजे (Jean Piaget)का अभूतपूर्व योगदान है। पियाजे ने अपने सिद्धान्त में शैश्वावस्था से वयस्कावस्था के बीच चिन्तन-क्रिया में जो विकास होते हैं व्याख्या किया है। प्रस्तुत इकाई में आप जीन पियाजे (Jean Piaget) के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के महत्वपूर्ण पहलुओं का अध्ययन करेंगे।

संज्ञान (Cognition) का तात्पर्य उन सारी मानसिक क्रियाओं से हैं जिसका संबंध चिंतन (Thinking), समस्या-समाधान, भाषा संप्रेषण तथा और भी बहुत सारे मानसिक प्रक्रिया से है। निस्सर (Neisser 1967)ने कहा है कि 'संज्ञान' संवेदी सूचनाओं (Sensory Information)को ग्रहण करके उसका रूपान्तरण (Transformation), विस्तारण (Elaboration), संग्रहण (Storage), पुनर्लाभ (Recovery) तथा इसके समुचित प्रयोग करने से होता है।

3.9 संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाएँ (Stages of Cognitive Development)

1. संवेदी पेशीय अवस्था (Sensory Motor stage)

2. पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था (Pre-operational stage)
3. मूर्त-सक्रिय अवस्था (Period of concrete operation)
4. औपचारिक सक्रिय अवस्था (Period of formal operation)

1. संवेदी-पेशीय अवस्था (Sensory Motor stage)

यह अवस्था जन्म से दो साल तक की होती है। इस अवस्था में बालक कुछ संवेदी-पेशीय क्रियाएँ जैसे पकड़ना, चूसना, चीजों को इधर-उधर करना आदि स्वत: सहज क्रियाओं से व्यवस्थित क्रियाओं की ओर अग्रसित होता है। पियाजे के अनुसार इस अवस्था में शिशुओं का बौद्धिक और संज्ञानात्मक विकास निम्नलिखित छ: उप-अवस्थाओं से होकर गुजरता है-

i. पहली अवस्था को **प्रतिवर्त्त क्रिया की अवस्था (Stage of Reflex Actions)**कहा जाता है जो जन्म से एक महीना तक की होती है। इस प्रतिवर्त्त क्रिया की अवस्था में शिशु अपने को नये वातावरण में अभियोजन करने की कोशिश करता है। इस समय चूसने की क्रिया सबसे प्रबल होती है।

ii. दूसरी अवस्था को **प्रमुख वृत्तीय प्रतिक्रिया की अवस्था (Stage of secondary circular reaction)** कहा जाता है जो 1 से 4 महीने तक होती है। इस अवस्था में शिशुओं की प्रतिवर्त्त क्रियाएॅं (Reflex activities) में कुछ हद तक परिवर्तन होता है। शिशु अपने को नये वातावरण में अभियोजन करने की कोशिश करता है। वह अपने अनुभवों को दोहराता है तथा उसमें रूपान्तरण लाने का प्रयास करता है। इसे प्रमुख (Primary)इसलिए कहा जाता है क्योंकि ये प्रतिवर्त्त क्रियाएॅं प्रमुख होती है एवं उन्हें वृतीय (Circular) इसलिए कहा जाता है क्योंकि इन क्रियाओं को वे बार-बार दोहराते हैं।

iii. तीसरी अवस्था **गौण तृतीय प्रतिक्रिया की अवस्था (Stage of secondary circular reaction)** – होती है जो 4 से 8 महीने तक की होती है। इस अवस्था में शिशु ऐसी क्रियाएॅं करता है जो रूचिकर होते हैं तथा अपने आस-पास की वस्तुओं को छूने की कोशिश करता है। जैसे चादर पर पड़ी खिलौना को पाने के लिए चादर को खींचकर अपने तरफ करता है, और फिर खिलौना को लेता है।

iv. चौथी अवस्था **गौण – स्कीमटा के समन्वय की अवस्था (Stage of coordination of secondary schemata)**जो 6 महीने से 12 महीने तक होती है। इस अवधि में शिशु अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सहज क्रिया को इच्छानुसार प्रयोग करना सीख जाता है। वह वयस्कों द्वारा किये गये कार्यों को अनुकरण (Imitation)करने की कोशिश करता है। जैसे यदि हम बच्चों के सामने हाथ हिलाते हैं तो वह उसी तरह हाथ हिलाता है। वह इस अवधि में स्कीमाटा का उपयोग कर एक परिस्थिति से दूसरे परिस्थिति के समस्या का हल करता है।

v. **तृतीय वृत्तीय प्रतिक्रिया की अवस्था (Tertiary circular reaction)** – 12 महीने से 18 महीने तक होती है। इस अवस्था में बालक प्रयास एवं त्रुटि के आधार पर अपनी परिस्थितियों को समझाने की कोशिश करने से पहले सोचना प्रारंभ कर देता है। इस अवधि

में बच्चों में उत्सुकता (Curiosity) उत्पन्न होती है तथा भाषा का भी प्रयोग करना शुरू कर देता है।

vi. **मानसिक संयोग द्वारा नए साधनों की खोज अवस्था (Stage of the new means through mental combination)** 18 महीनों से 2 साल तक में शिशु प्रतिमा (Image) का उपयोग करना सीख जाता है। अब वह खुद ही समस्या का हल प्रतीकात्मक चिंतन क्रिया (Symbolic thought process) द्वारा ढूंढ लेता है। इस अवस्था में संज्ञानात्मक विकास के साथ बौद्धिक-विकास भी बहुत तेजी से होता है।

2. **पूर्व संक्रियात्मक अवस्था (Pre operational stage)**

संज्ञानात्मक विकास की पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था लगभग दो साल से प्रारंभ होकर सात साल तक होती है। इस अवस्था में संकेतात्मक कार्यों की उत्पत्ति (Emergence of symbolic functions) तथा भाषा का प्रयोग (Use of language) होता है। पियाजे ने इस अवस्था को दो भागों में बॉटा है।

i. **प्राकसंप्रत्यात्मक अवधि (Pre conceptual period)** – जो कि 2 से 4 साल तक होता है। यह अवस्था वस्तुत: परिवर्तन की अवस्था है जिसे खोज (Exploration)की अवस्था भी कही जाती है। इस अवस्था में बच्चे जो संकेत (Symbol)का प्रयोग करते हैं वह थोड़ी-सी अव्यवस्थित (Disorganized)होती है। इस अवस्था में बच्चे बहुत सारी ऐसी क्रियाऍं करते हैं जिसे इससे पहले वह नहीं कर सकते थे। जैसे संकेत (Symbol), व चिन्ह (Signs)का प्रयोग कब और कहॉं किया जाता है। वे शब्दों (Words)का प्रयोग कर समस्याओं का समाधान करते हैं। बालक विभिन्न घटनाओं या कार्यों के संबंध में क्योंतथा कैसे (Why and How)जैसे प्रश्नों को जानने में रूचि रखते हैं। वे जिस कार्य को दूसरों के द्वारा करते हैं या होते देखते हैं उस कार्य को करने लगते है। उनमें बड़ों का अनुकरण (Imitation)करने की प्रवृति होती है। लड़के अपने पिता का अनुकरण कर स्कूटर चलाने या समाचार-पत्र पढ़ने तथा लड़कियॉं अपनी मॉं की तरह गुडियॉं को खिलाना, तैयार करना जैसे काम करते हैं। इस अवस्था में भाषा का सबसे ज्यादा विकास होता है जिसके लिए समृद्ध भाषायी वातावरण (Rich verbal Environment)की जरूरत होती है जहॉं बालक को अपने भाषा के विकास के लिये अधिक अवसर मिल सके।

ii. **अंतर्दर्शी अवधि (Intuitive period)** – यह अवधि 4 साल से 7 साल तक होता है। इस अवधि में बालक की चिन्तन और तार्किक क्षमता पहले से अधिक सृदृढ़ हो जाता है। पियाजे के अनुसार अंतर्दर्शी चिन्तन ऐसा चिन्तन है जिसमें बिना किसी तार्किक विचार द्वारा प्रक्रिया के किसी बात को तुरन्त स्वीकार कर लेना। अर्थात वह अगर कोई समस्या का हल करता है तो इसके समाधान का कारण वह नहीं बता सकता है।

मूर्त सक्रिय अवस्था (Period of concrete operation) –

यह अवस्था 7 साल से 12 साल तक चलती है। इस अवस्था में बच्चे का अतार्किक चिन्तन संक्रियात्मक विचारों का स्थान ले लेता है। बच्चे अब जोड़ना (Addition)घटाना (Subtraction) गुणा करना (Multiplication) और भाग करना (Division) कर सकते हैं। लेकिन अगर उसे शाब्दिक कथन

(Verbal statement) के आधार पर मानसिक क्रियाएँ करने को कहा जाये तो वे नहीं कर सकते हैं। इस अवस्था के दौरान बालकों द्वारा तीन मानसिक निपुणता हासिल कर ली जाती है। ये तीन योग्यताएँ विचारों की विलोमता (Reversibility of Thought), संरक्षण (Conservation) तथा वर्गीकरण व पूर्ण अंश प्रत्ययों का उपयोग (Classification and part whole conception) हैं। इस अवस्था में विचारों की विलोमता में बालक सक्षम हो जाते हैं। भौतिक वस्तुओं में संरक्षण (Conservation in physical objects) बालकों की मानसिक प्रक्रिया का एक अंग बन जाता है। सबसे महत्वपूर्ण विकास उनकी क्रमबद्धता अर्थात विभिन्न वस्तुओं को उनके आकार व भार आदि के दृष्टि से अलग करना तथा छोटे से बड़े क्रम में वर्गीकरण करना इस अवस्था में होती है। इस अवस्था के दौरान बालक अंश तथा पूर्ण दोनों के संबंध में विचार करना प्रारंभ कर देता है। अर्थात् बालकों में यह क्षमता विकसित हो जाती है कि वह वस्तुओं को कुछ भागों में बांट सके और उस भागों के समस्या का समाधान तार्किक ढंग से कर सकें।

मूर्तसक्रिय अवस्था में बालक का ध्यान अपनी ओर से हटकर दूसरे की ओर जाने लगता है। अर्थात् उसके सामाजीकरण (Socialization)की शुरूआत होती है।
इस अवस्था में मानसिक विकास की दो सीमाएँ पायी जाती हैं-

a. इस अवस्था में बालक तार्किक चिन्तन (Logical Thinking) तभी कर सकते हैं जब उसके सामने वस्तु ठोस रूप से उपस्थित किया गया हो।
b. दूसरा, इस अवस्था में ठोस संक्रियात्मक चिन्तन की दूसरी परिसीमा यह है कि यह बहुत क्रमबद्ध नहीं होती है। किसी समस्या के तार्किक रूप से संभावित सभी समाधान के बारे में बालक नहीं सोच पाता है (ब्राउन तथा कूक,1986)।

औपचारिक – सक्रिय अवस्था (Period of formal operations):

यह संज्ञानात्मक विकास की अंतिम अवस्था है जो लगभग 11 साल से 15 साल की आयु तक होती है। इस अवस्था के दौरान बालक अमूर्त बातों के संबंध में तार्किक चिन्तन करने की क्षमता विकसित कर लेता है। इस अवस्था को किशोरावस्था (Period of Adolescence) कहा जाता है। बच्चे अब वर्तमान, भूत एवं भविष्य (Present Past & Future)के बीच अन्तर समझने लगते हैं। समस्या का समाधान सुव्यवस्थित ढंग से करने लगते हैं। इस अवस्था में बालक परिकल्पनाएँ (Hypothesis)बनाने के योग्य हो जाता है। उसकी व्याख्या करता है तथा व्याख्यान के आधार पर निष्कर्ष भी निकालता है। अब बालक बड़ों की उत्तर दायित्व लेने के योग्य हो जाता है। पियाजे के अनुसार इस अवस्था में बालकों में बौद्धिक संगठन अधिक क्रमबद्ध हो जाता है। बालक एक साथ अधिक से अधिक बातों को समझाने तथा उसका विचार करने में समर्थ हो जाता है। वे अपने बारे में विचार करते हैं इसलिए वे अक्सर स्व आलोचक बन जाते हैं। धीरे-धीरे उनमें नैतिकता के गुण भी विकसित होने लगता है जिसके आधार पर वे नैतिक निर्णय (Moral Judgment)भी लेने लगते हैं।

इस तरह पियाजे द्वारा बताई गई संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त की चार अवस्थाएँ इस बात का द्योतक है कि किसी भी बालक का संज्ञानात्मक विकास चार विभिन्न अवस्थाओं से होकर गुजरती है जिसमें कुछ बालकों का बौद्धिक विकास तीव्र गति से होता है। कुछ का औसत गति से तथा कुछ का धीमी गति से।

पियाजे (Piaget) के संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त शिक्षण – अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है| इस सिद्धांत के शैक्षिक निहितार्थ निम्नवत हैं-

1. पियाजे (Piaget) के संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त बालकों के बौद्धिक विकास की प्रक्रिया को समझने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है |
2. इस सिद्धांत के द्वारा शिक्षण– अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाया जा सकता है|
3. संज्ञानात्मक विकास अवस्था के आधार पर पाठ्यक्रम के संगठन में यह सिद्धांत काफी मदद पहुँचाती है|
4. संज्ञानात्मक विकास की समुचित व्याख्या करने में यह सिद्धान्त एक सफल आधार प्रदान करता है।
5. पियाजे (Piaget) के संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त शैक्षिक शोध का एक बहुत बड़ा क्षेत्र है|

3.10 जिरोम सेमौर ब्रूनर का अधिगम सिद्धांत (Learning theory of J S Bruner)

अमेरिकी मनोवैज्ञानिक जिरोम सेमौर ब्रूनर (जन्म 1915) ने प्रत्यक्षण , संज्ञान एवं शिक्षा के अध्ययन में उल्लेखनीय योगदान दिया। वे अमेरिका एवं इंगलैण्ड के विश्वविद्यालयों में अध्ययन कार्य किये तथा शिक्षा एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र में बहुत सारी पुस्तकों एवं लेखोके रचयिता है।

ब्रूनर, जिन्होंने बालकों के संज्ञानात्मक विकास का अध्ययन किया, ने बालकों की बाहरी दुनिया के संज्ञानात्मक प्रदर्शन (प्रस्तुतीकरण) से संबंन्धित एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया। ब्रूनर का सिद्धान्त वर्गीकरण पर आधारित है वर्गीकरण हेतु प्रत्यक्षीकरण , वर्गीकरण हेतु संप्रत्ययीकरण, वर्ग बनाने हेतु अध्ययन, वर्गीकरण हेतु निर्णय लेना'' ब्रूनर मानते है कि लोग दुनिया को उसकी समानताओं एवं विषमताओ के पदो में व्याख्यायित करते है।

वे दो प्रकार के चिन्तन क प्राथमिक तरीकों कथन माध्यम एवं रूपदर्शन माध्यम, का सुझाव देते हैं। कथन चिन्तन में मस्तिष्क क्रमागत , क्रिया - उन्मुख एवं विवरण प्रेरित विचार में व्यस्त होता है।

रूप दर्शन चिन्तन(Paradigmatic Thinking) में मन व्यवस्थित व वर्गीकृत संज्ञान को प्राप्त करने हेतु विशिष्टताओं का अतिक्रमण करता है। प्रथम स्थिति में चिन्तन कहानी एव ग्रीपिंग ड्रामा का रूप लेता है। बाद वाली स्थिति में चिन्तन तार्किक प्रवर्तकों (Logical operators) से जुडे कथनों (Propositons) के रूप में संरचित है।

3.11 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के मूल भूत आयाम (Fundamental Aspects of Bruner's Theory of Cognitive Development)

ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त की सटीक गतिकी को समझने हेतु निम्नलिखित कारक प्रमुख स्थान रखते हैं।

वर्गीकरण (Categorisation)

ब्रूनर के विचार वर्गीकरण पर आधारित हैः ''वर्गीकरण के लिए प्रत्यक्षण, वर्गीकरण के लिए संप्रत्यायीकरण , वर्गीकरण करने हेतु अधिगम, वर्गीकरण के लिए निर्णयीकरण'' । मस्तिष्क सूचनाओं का सरलीकरण कैसे करता है जो कि लघु-अवधि स्मृति में प्रवेश करता है , वर्गीकरण है। ब्रूनर ने आन्तरिक संज्ञानात्मक मानचित्रो की संरचना में सूचनाओं के वर्गीकरण पर ज्यादा जोर दिया। उनका विश्वास है कि प्रत्यक्षण, संप्रत्ययीकरण, अधिगम, निर्णयीकरण और अनुमानीकरण ये सभी वर्गीकरण में सम्मिलित होते है।

संगठन (Organisation)

संगठन से तात्पर्य सूचनाओं को कूटकृत तन्त्र में व्यवस्थित करने से है। कूट-कृत तन्त्र संवेदी निवेश को पहचानने हेतु प्रेषित वर्ग होते हैं। ये उच्चतर संज्ञानात्मक क्रियाएं, प्रमुख संगठनात्मक चर होते हैं। इससे परे तात्कालिक संवेदी ऑकड़े संबन्धित वर्गों के आधार पर अनुमान लगाने में सम्मिलित हैं। संबन्धित वर्ग एक कूट-कृत तन्त्र बनाते है। ये संबन्धित वर्गों की क्रमबद्धित व्यवस्थाएं हैं। ब्रूनर ने एक कूट-कृत तंत्र का सुझाव दिया जिसमें लोग संबन्धित वर्गों की श्रेणी बद्ध व्यवस्था बनाते है। प्रख्यात बेन्जामीन ब्लूम की ज्ञानार्जन की समक्ष एंव अनुदेशानात्मक स्कैफोल्डिंग से सम्बन्धित विचार के प्रत्येक क्रमागत उच्चतर स्तर और भी विशेष हो जाते है ।(ब्लूम टैक्सोनॉमी)

मानसिक प्रदर्शन के माध्यम (Modes of Mental Representations)

ब्रूनर के विचारों में मानसिक प्रदर्शन के तीन माध्यम है- दृश्य, शब्द तथा प्रतीक। बच्चे आन्तरिक सूचना संसाधन एवं संग्रहण तंत्र द्वारा बाहरी वास्तविकता के मानसिक प्रदर्शन का विकास करते हैं। मानसिक प्रदर्शन हेतु भाषा बहुत सहायक होती है।

भाषा (Language)

ब्रूनर के तर्क के अनुसार संज्ञानात्मक प्रदर्शन के आयाम भाषा से मदद प्राप्त करते हैं। उन्होंने भाषा-ज्ञान में सामाजिक व्यवस्था के महत्व पर जोर दिया इनके विचार पियाजें के विचारों के समान हैं, परन्तु वे विकास के सामाजिक प्रभावों पर ज्यादा जोर देते हैं। भाषा प्रतीकों का तंत्र है जो संज्ञानात्मक विकास या बृद्धि के विकास में मुख्य स्थान रखती है। यह आन्तरिक संप्रत्ययों के संचार में सहायक होती है।

शिक्षक एवं शिक्षार्थी के मध्य अन्तःक्रिया (Interaction Between Teacher and Taught)

शिक्षक-शिक्षार्थी के मध्य प्रगाढ़ अन्तःक्रिया, शिक्षार्थी के संज्ञानात्मक विकास में सार्थक अन्तर स्थापित करती है। समाज का कोई भी सदस्य शिक्षक हो सकता है। माता, पिता, मित्र या वह कोई जो कुछ सीखा सकता है, शिक्षक हो सकता है।

अधिगमकर्ता का अभिप्रेरण (Motivation of Learner)

ब्रूनर, पियाजे के बच्चों के संज्ञानात्मक विकास के विचारों से प्रभावित थे। 1940 के दशक के दौरान उनके प्रारम्भिक कार्य आवश्यकता, अभिप्रेरण एवं प्रत्याशा (मानसिक प्रवृत्ति) और उनके प्रत्यक्षण पर प्रभाव पर केन्द्रित रहे। उन्होंने यह दृष्टिकोण प्रस्तुत किया कि बच्चे सक्रिय समाधानकर्ता होते है तथा 'कठिन विषयों' के अन्वेषण में सक्षम होते है जैसा कि बच्चे आन्तरिक अभिप्रेरणा से ओत-प्रोत होते हैं।

संरचनावादी प्रक्रिया की तरह अधिगम (Learning as Constructivist Process)

अधिगम वास्तविकताओं को संरचित करने की प्रक्रिया है जो कि अन्ततः संज्ञानात्मक विकास में जुड़ जाती है। ब्रूनर का सैद्धान्तिक ढ़ॉचा इस विषय-वस्तु पर आधारित है कि अधिगमकर्ता विद्यमान ज्ञान के आधार पर नये विचार या संप्रत्यय संरचित करते है। अधिगम एक सक्रिय प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के आयामों में सूचनाओं का चयन एवं रूपान्तरण, निर्णयीकरण, परिकल्पनाएं बनाना और सूचनाओं एवं अनुभवों से अर्थ निकालना सम्मिलित है।

सूझपूर्ण एवं विशलेषणात्मक चिन्तन (Intuitive and analytic Thinking)

ब्रूनर का विश्वास है कि सूझपूर्ण एवं विश्लेषणात्मक दोनों चिन्तन प्रोत्साहित एवं पुरस्कृत किये जाने चाहिए। उनका विश्वास था कि सूझपूर्ण (अर्न्तज्ञात) कौशलों को कम-बल दिया जाता था और वे प्रत्येक क्षेत्र में सूझ पूर्ण छलांग (कदम) हेतु विशेषज्ञों की क्षमताओं पर चिन्तन करते हैं। यह एक बिना विश्लेषणात्मक कदम के मुक्तिपूर्ण लेकिन तात्कालिक प्रतिपादन पर पहुंचने की बृद्धिपूर्ण तकनीकी है जिससे इस तरह के प्रतिपादन वैध या अवैध निष्कर्ष पाये जायेंगे। (दण्डपाणी, 2001) सूझपूर्ण चिन्तन बृद्धि पूर्ण अनुमान, अटकलों आदि से प्रदर्शित होती है।

खोज-अधिगम (Discovery learning)

खोज अधिगम संज्ञान की क्रियात्मक क्षमता को बढाता है। ब्रूनर में 'खोज-अधिगम' को विख्यात किया। खोज-अधिगम एक पूछ-ताछ आधारित संरचनावादी अधिगम सिद्धान्त है जो कि समस्या समाधान परिस्थितियों में होता है जहाँ अधिगमकर्ता अपने स्वयं की अनुभूतियों एवं विद्यमान ज्ञान के प्रयोग से तथ्यों, उनके सम्बन्धों एवं नये सत्यों को सीखने हेतु खोजता है।

अनुभवजन्य अधिगम (Experiential Learning)

अनुभवजन्य अधिगम बौद्धिक विकास में बहुत सहायक होती है। यह आगमनात्मक, अधिगमकर्त्ता-केन्द्रित एवं क्रिया-कलाप उन्नमुखित होती है। अनुभव के बारे में वैयक्तिक चिन्तन और दूसरी परिस्थितियों में अधिगमित ज्ञान का प्रयोग करने में योजनाओं का प्रतिपादन (सुत्रीकरण) प्रभावी अनुभवजन्य अधिगम के लिए क्रान्तिक (विवेचनात्मक) कारण है। अनुभवजन्य अधिगम में अधिगम के

प्रक्रिया पर जोर दिया जाता है न कि अधिगम के उत्पाद पर संज्ञानात्मक विकास पर अधिगम की प्रक्रिया का अत्याधिक (अवश्य) प्रभाव होता है।

ब्रूनर ने संज्ञानात्मक विकास की तीन अवस्थाओं को बताया।

प्रथम अवस्था को उन्होंने 'सक्रियता' (Enactive) नाम दिया। सक्रियता एक ऐसी अवस्था है, जिसमें एक व्यक्ति भौतिक वस्तुओं पर क्रिया करके एवं उन क्रियाओं के उत्पादों के द्वारा वातावरण को समझता है। द्वितीय अवस्था '' दृश्य प्रतिमा (Iconic) " कहलायी जिसमें प्रतिमानों एवं चित्रों के प्रयोग से अधिगम होता है।

अन्तिम अवस्था ''सांकेतिक' (Symbotic) अवस्था थी जिसमें अधिगमकर्त्ता अमूर्त पदों में चिन्तन करने की क्षमता का विकास करता है। इस त्रि-अवस्थीय मत के आधार पर ब्रूनर ने मूर्त, चित्रात्मक और फिर सांकेतिक क्रियाओं जो कि अधिक प्रभावी अधिगम को अग्रसर होगी, के संगठनात्मक प्रयोग की अनुशंसा की।

सक्रियता प्रदर्शन (Enactive Representation) बालक में प्रकट होने वाले प्रथम प्रकार के प्रदर्शन को ब्रूनर ने 'सक्रियताप्रदर्शन' (Enactive representations) का नाम दिया है। 'चलन' या 'पेशीय स्मरण' के लिए यह प्रथम प्रकार उपयोगी चिन्तन का तरीका है। भूत-अनुभवों को सांकेतिक रूप में संग्रहित नहीं किया जा सकता है। एक शिशु अपने भूत-अनुभवों को केवल पेशीय ढांचा (Motor Pattern) के रूप में व्यक्त (Represent) कर सकता है।

प्रतिमा प्रदर्शन (Iconic Representations) दूसरे प्रकार के प्रकट होने वाले प्रदर्शन को प्रतिमा प्रदर्शन (Iconic Representations)नाम दिया गया। प्रतिमा का अंग्रेजी पर्याय आइकॉनिक (Iconic) है जो कि आइकन शब्द से बना है जिसका अर्थ है समानता या साम्य। ज्ञानेन्द्रियों तक पहुंचने वाले उद्दीपकों के विश्वसनीय प्रदर्शन के रूप में अब बालक दृश्य-श्रवण या स्पर्श-प्रतिमाओं को याद करने की क्षमता का विकास करता है। यह विधि वातावरण के बारे में सूचनाओं के संग्रहित करने की सबसे अच्छी विधि है। वे बच्चे जो प्रतिमा प्रदर्शन (Imaging)का प्रयोग करते हैं, चित्र व नामांकन के सुस्पष्ट विश्वसनीय प्रदर्शन बनाने में और आवश्यकतानुसार प्रत्यास्मरित करने में सक्षम होते हैं। दूसरी तरफ वे बच्चे जो प्रमिता नहीं बना पाते या प्रतिमा बनाने में बहुत कमजोर होते हैं नामांकन को याद करने में तथा इसे सही चित्र में स्थापित (Fit) करने में कठिनाई महसूस करते है क्योंकि शब्द अपने आप में किंचित इंगित नही कर पाते कि वे किस चित्र में स्थापित होंगे। प्रतिमा-कल्पना इतनी अपरिवर्तनीय (कठोर) है कि यह बालक को प्रायः वातावरण के भागों के केवल विशेष चित्रों को सीखने के लिए स्वीकृत करती है और वस्तुओं में निहित साम्यता को निष्कर्षित करना कठिन बना देती है। अतः प्रतिमा कल्पना करने वाले बच्चों को प्रतिमा-कल्पना न करने वाले बच्चों की अपेक्षा वस्तुओं का वर्गीकरण करने में अधिक कठिनाई होती है।

सांकेतिक प्रदर्शन (Symbolic representation) जैसा कि नाम से स्पष्ट है समस्या का समाधान प्रतीकों के प्रयोग द्वारा करते हैं। एक प्रतीक कुछ अतिरिक्त को प्रदर्शित करता है, उदाहरण के लिए दो व्यक्तियों का हाथ मिलाना यह प्रदर्शित करता है कि वे एक दूसरे पर आक्रमण नहीं करेंगें (हम प्रायः दाहिने हाथ को मिलाते है जिससे युद्ध की स्थिति में हथियार उठाये जाते है।) अतः ब्रूनर का विश्वास है कि मानव

भाषा-शब्द एवं वाक्यों के रूप में प्रतीकोंका एक क्रम, जिससे इस निरन्तर परिर्वतनशील वातावरण की सूचनाओं को प्रदर्शित एवं संग्रहित किया जा सकता है। ‘सब्जीयाँ‘ शब्द कागज पर टंकित एक शब्द विन्यास मात्र हो सकता है किन्तु जब आप इसे पढते हैं तथा इसके अर्थ को निष्कर्षित करते है तो यह एक बड़ी मात्रा की सूचना का प्रत्यास्मरण करता है। वास्तव में ब्रूनर सांकेतिक प्रदर्शन के विकास में भाषा को एक महत्वपूर्ण सहायक उपकरण मानते हैं क्योंकि भाषा वर्गीकरण एवं क्रम निश्चित करने में हमें सक्षम बनाती है।ब्रूनर द्वारा प्रतिपादित संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं का आरेखी प्रदर्शन यहाँ इस प्रकार से किया जा रहा है कि इसके निश्चित क्रम की सही कल्पना की जा सके।

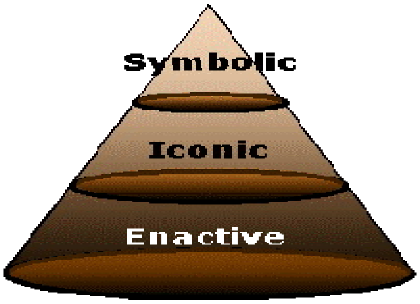

चित्र- संज्ञानात्मक विकास की तीन अवस्थाये (ब्रूनर)

- सक्रियता **(Enactive)**जहां एक व्यक्ति वस्तुओं पर संक्रिया के द्वारा वातावरण के बारे में सीखता है।
- प्रतिमा **(Iconic)**जहां अधिगम प्रतिमानों एवं प्रतिमाओं के द्वारा होता है।
- सांकेतिक **(Symbolic)**जो अमूर्त रूप में चिन्तन करने की क्षमता की व्याख्या करता है।

जिरोम ब्रूनर ने शिक्षा की प्रक्रिया एवं पाठ्यचर्या सिद्धान्त के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनका कार्य औपचारिक, निरौपचारिक, अनौपचारिक शिक्षकों तथा उन सभी जीवन पर्यन्त अधिगम (LLL) से सम्बन्धित लोगों के लिए महत्वपूर्ण पाठों पर प्रकाश डालता है। शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के संगठन एवं इसे जारी रखने हेतु ब्रूनर का सिद्धान्त बहुत ही सहायक है। ब्रूनर सिद्धान्त के पदानुक्रमानुसार प्रभावी अधिगम-उत्पाद हेतु अधिगम अनुभवों को सक्रियता (Enactive) प्रतिमा (Iconic) सांकेतिक (Symbolic) क्रम में रखा जाना चाहिए। ठीक यही गुणार्थ, एक प्राचीन चीनी लोकोक्ति से भी संप्रेषित होती है।

‘‘जो मैं सुनता हूँ, भूल जाता हूँ, (सांकेतिक प्रदर्शन)
जो मैं देखता हूँ, याद हो जाती है, (प्रतिमा प्रदर्शन)
जिसे मैं करता हूँ, समझ जाता हूँ।‘‘ (सक्रियता प्रदर्शन)

अतः शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में किसी भी अधिगम-पाठ का उचित तरीके से समझने हेतु ‘‘करके सीखना (Learning by doing) ‘‘विधि को प्राथमिकता देनी चाहिए।

यह एक स्थापित तथ्य भी है कि ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को, किये गये कार्य द्वारा सीखना (सक्रियता अधिगम माध्यम) दूसरे सीखने के तरीकों की तुलना में अधिक स्थायी होता है, को बल प्रदान करता है। लोगों को 10 प्रतिशत जो वे पढ़ते हैं, 20 प्रतिशत जो वे सुनते हैं, 30 प्रतिशत जो वे देखते है, 50 प्रतिशत जो वे देखते और सुनते हैं, 70 प्रतिशत जो वे कहते हैं या लिखित है तथा 90 प्रतिशत वे किसी कार्य को करके कहते है, याद रहता है।

3.12 लेव बायगोत्सकी का अधिगम सिद्धांत (Learning theory of Lev Vygotsky)

लेव सेमोनोविच बायगोत्सकी एक सोवियत मनोवैज्ञानिक थे जिन्हें मानव के सांस्कृतिक तथा जैव-सामाजिक विकास के सिद्धांत के प्रवर्तक के रूप में जाना जाता है| इन्हें बायगोत्सकी सर्कल के नेतृत्वकर्ता के रूप में भी जाना जाता है| इनका जन्म नवंबर 17, 1896 में बेलारूस के ओर्शा में हुआ| इनकी मृत्यु जून 11, 1934में मास्को में हुई| इनके जीवन दर्शन पर जीन पियाजे, अल्फ्रेड एडलर, कर्ट लेविन जैसे मनोवैज्ञानिकों का अत्यधिक प्रभाव पड़ा| इनके मुख्य विचारों को निम्न बिंदु के अंतर्गत देखा जा सकता है –

- बिना किसी सन्दर्भ के अधिगम संभव नहीं हो सकता अर्थात सन्दर्भगत अधिगम ही मौलिक अधिगम है|
- किसी भी व्यक्ति तथा वातावरण के मध्य पृथकता कृत्रिम होता है
- अधिगम में परासंज्ञान (Meta Cognition) की भूमिका महत्वपूर्ण होती है|
- सहकारी अधिगम (cooperative learning) प्रभावशाली होती है|
- अधिगम उत्पाद से ज्यादा महत्वपूर्ण अधिगम प्रक्रिया होती है अर्थात अधिगम प्रक्रिया को रुचिकर बनाकर इसे प्रभावशाली बनाया जा सकता है|
- अधिगम को गत्यात्मक तरीके से आकलन करना चाहिए|
- बायगोत्सकी के अनुसार मानव विकास के लिए सामाजिक सन्दर्भ बहुत ही आवश्यक है, इसलिए बायगोत्सकी को सामाजिक सृजनवाद का जनक भी माना जाता है|
- बच्चों द्वारा ज्ञान का सृजन किया जाता है न कि उनके द्वारा प्राप्त किया जाता है|
- बायगोत्सकी के अनुसार किसी भी बच्चे का विकास सामाजिक परिस्थिति में ही संभव है|
- बायगोत्सकी के सिद्धांत को सामाजिक विकास का भी सिद्धांत कहा जाता है|
- बच्चों का संज्ञानात्मक विकास सामूहिक प्रक्रिया द्वारा संभव हो पाता है
- बच्चे सामाजिक अंतःक्रिया द्वारा ही सीखते हैं|

- बायगोत्सकी के अनुसार विकास जन्म से शुरू होकर मृत्युपर्यंत चलता रहता है|
- बायगोत्सकी के अनुसार विकास एक आजीवन प्रक्रिया है जो सामाजिक अंतःक्रिया पर निर्भर करता है तथा इस सामाजिक अधिगम के फलस्वरूप संज्ञानात्मक विकास संभव होता है|
- बायगोत्सकी ने अधिगम के क्षेत्र में समीपस्थ विकास क्षेत्र (Zone of Proximal Development) के संप्रत्यय को लोकप्रिय बनाया| किसी भी अधिगमकर्ता हेतु समीपस्थ विकास क्षेत्र से आशय उन दो क्षेत्रों के अंतर से है, अर्थात वह क्षेत्र जहां अधिगमकर्ता बिना किसी सहायता से सीखता है तथा जहाँ अधिगमकर्ता को सीखने हेतु किसी की मदद की आवश्यकता होती है| इस संप्रत्यय को समझने हेतु निम्न चित्र की मदद ली जा सकती है -

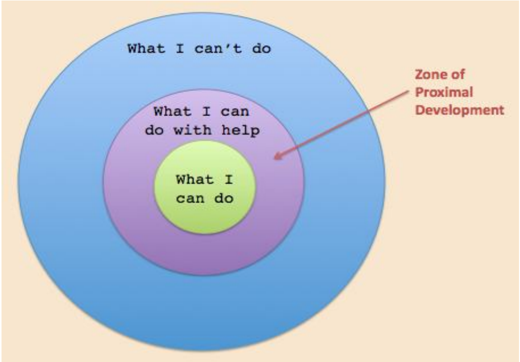

समीपस्थ विकास क्षेत्र (Zone of Proximal Development)

बच्चा जो कार्य खुद कर सकता है तथा जिस कार्य को करने में उसे अपने साथी या किसी वयस्क से मदद लेनी होती है, इन दोनों क्षेत्रों के मध्य अंतर को समीपस्थ विकास क्षेत्र की संज्ञा दी जाती है| (The gap between what (child) can do alone and what a child can do with help from adults or peers who are more capable than the child.)

बायगोत्सकी के शब्दों में Zone of Proximal Development को निम्न प्रकार से परिभाषित किया गया है *"the distance between the actual developmental level as determined by independent problem solving and the level of potential development as determined through problem solving under adult guidance, or in collaboration with more capable peers."*

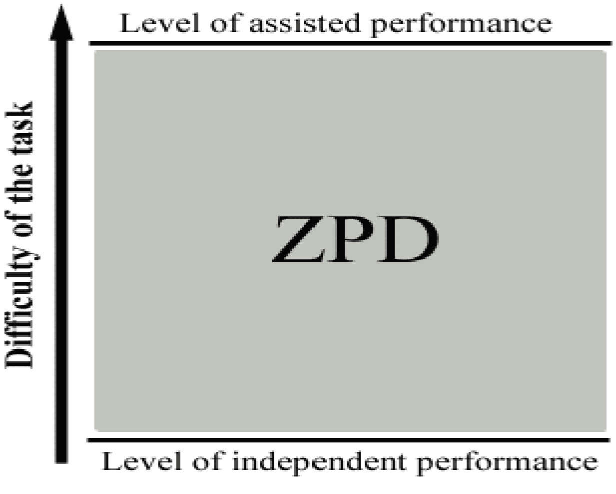

Zone of Proximal Development को इस रेखाचित्र के माध्यम से भी और स्पष्ट रूप से समझा सकता है|

बायगोत्सकी का मानव अधिगम का सामाजिक-सांस्कृतिक सिद्धांत

अधिगम को सामाजिक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित करता है और यह उद्घोषित करता है कि मानव बुद्धि का उद्भव बिंदु समाज तथा संस्कृति है| इनके सिद्धांत का सार तत्त्व है कि संज्ञान के विकास में सामाजिक अंतःक्रिया का मुख्य योगदान होता है| उनका विश्वास था कि कोई भी अधिगम दो स्तरों पर संपन्न होता है –

पहला, एक दूसरे के साथ अंतःक्रिया तथा दूसरा, अंतःक्रिया के फलस्वरूप प्राप्त अनुभव को मानसिक सरंचना में समाविष्ट करना |

> बायगोत्सकी के शब्दों में *Every function in the child's cultural development appears twice: first, on the social level, and later, on the individual level; first, between people (interpsychological) and then inside the child (intrapsychological). This applies equally to voluntary attention, to logical memory, and to the formation of concepts. All the higher functions originate as actual relationships between individuals.* (Vygotsky, 1978, p.57)

बायगोत्सकी के सिद्धांत का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू है कि संज्ञानात्मक विकास की संभावना समीपस्थ विकास क्षेत्र (**zone of proximal development**" (ZPD) तक सीमित होती है| यह क्षेत्र ऐसा अन्वेषण क्षेत्र है जिसके लिए छात्र संज्ञानात्मक रूप से तो तैयार होता है लेकिन उसके पूर्ण विकास के लिए उसे सामाजिक अंतःक्रिया की आवश्यकता पड़ती है| छात्र के संज्ञानात्मक विकास के लिए एक अध्यापक अथवा अधिक अनुभवी सहयोगी के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है जिसे बायगोत्सकी ने स्केफोल्डिंग "scaffolding" की संज्ञा दी है| स्केफोल्डिंग "scaffolding" की अवधारणा को निम्न चित्र के माध्यम से समझा जा सकता है –

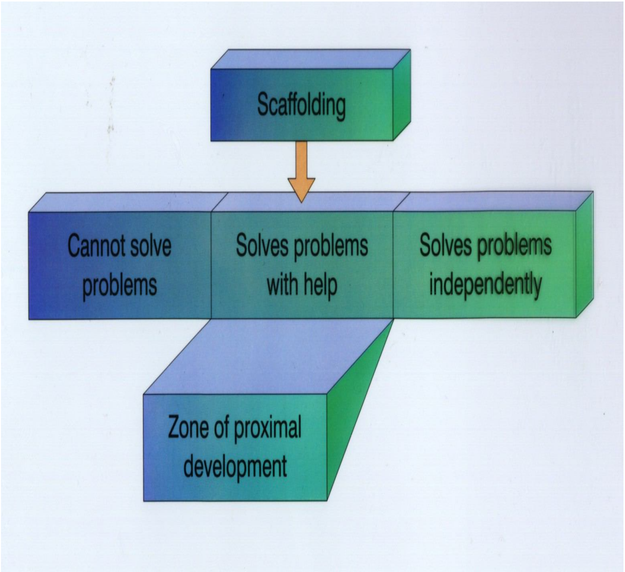

स्केफोल्डिंग: किसी भी कार्य को पूर्ण करने के लिए ऐसा सहयोग जिसके बिना उस कार्य को किसी भी व्यक्ति द्वारा स्वतंत्र रूप से नहीं किया जा सकता है |

Scaffolding: Assistance that allows individuals to complete tasks they are not able to complete independently!

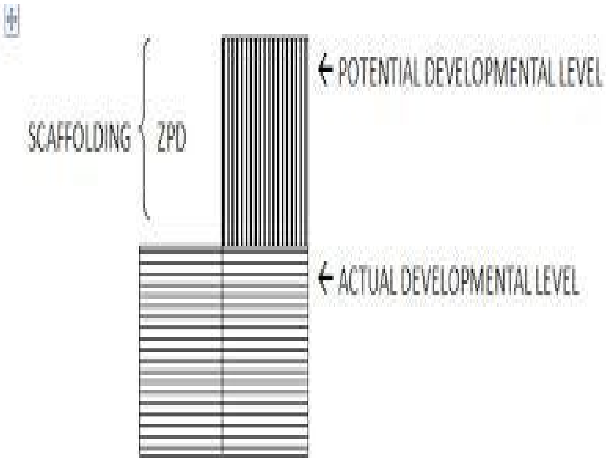

समीपस्थ विकास क्षेत्र (**zone of proximal development**" (ZPD) तथा स्केफोल्डिंग "scaffolding" के अंतर्संबंध को इस बगल के रेखाचित्र से समझा जा सकता है|

3.13 कार्ल रोजर्स का अधिगम सिद्धांत (Learning theory of Carl Ransom Rogers)

कार्ल रोजर्स (Carl Ransom Rogers) (8 जनवरी 1902 – 4 फ़रवरी 1987) अमेरिका के प्रसिद्ध मानवतावादी चिन्तक तथा मनश्चिकित्सक थे। वे मनश्चिकित्सा में मानवीय संवेदना को स्थान देने के लिये प्रसिद्ध हैं।

उपचारार्थी केंद्रित मनश्चिकित्सा नामक मानसिक रोगों के निवारण की एक मनोवैज्ञानिक विधि कार्ल रोजर्स द्वारा प्रतिपादित की गई है। रोजर्स का स्व-वाद प्रसिद्ध है जो अधिकांशत: उपचार प्रक्रिया या परिस्थितियों से उद्भूत प्रदत्तों पर अवलंबित है। रोजर्स की मूल कल्पनाएँ स्वविकास, स्वज्ञान, स्वसंचालन, बाह्य तथा आंतरिक अनुभूतियों के साथ परिचय, सूझ का विकास करना, भावों की वास्तविक रूप में स्वीकृति इत्यादि संबंधी हैं। वस्तुत: व्यक्ति में वृद्धिविकास, अभियोजन एवं स्वास्थ्य लाभ तथा स्वस्फुटन की स्वाभाविक वृत्ति होती है। मानसिक संघर्ष तथा संवेगात्मक क्षोभ इस प्रकार की अनुभूति में बाधक होते हैं। इन अवरोधों का निवारण भावों के प्रकाशन और उनको अंगीकार करने से सूझ के उदय होने से हो जाता है।

इस विधि में ऐसा वातावरण उपस्थित किया जाता है कि रोगी अधिक से अधिक सक्रिय रहे। वह स्वतंत्र होकर उपचारक के सम्मुख अपने भावों, इच्छाओं तथा तनाव संबंधी अनुभूतियों का अभिव्यक्तीकरण करे, उद्देश्य, प्रयोजन को समझे और संरक्षण के लिए दूसरे पर आश्रित न रह जाए। इसमें स्वसंरक्षण अथवा अपनी स्वयं देखरेख आवश्यक होती है। उपचारक परोक्ष रूप से, बिना हस्तक्षेप के रोगी को

वस्तुस्थिति की चेतना में केवल सहायता देता है जिससे उसके भावात्मक, ज्ञानात्मक क्षेत्र में प्रौढ़ता आए। वह निर्देश नहीं देता, न तो स्थिति की व्याख्या ही करता है।

इन्होंने इस बात पर जोर दिया कि किसी भी व्यक्ति की वृद्धि व विकास के लिए एक जीवंत वातावरण की आवश्यकता होती है जिसमें उस व्यक्ति को खुलापन तथा आत्माभिव्यक्ति का अवसर मिले, उसे अन्य व्यक्तियों से स्वीकृति तथा सम्मान मिले, तथा साथ ही उसे तदनुभूति (उसे लोगों द्वारा सुना जाय तथा समझा जाय) का एहसास हो| रोजर्स का मानना है कि एक व्यक्ति आकांक्षा, इच्छा तथा अपना लक्ष्य हासिल कर सकता है जब वह स्व यथार्थीकरण की स्थिति में पहुँच जाए|

"***The organism has one basic tendency and striving - to actualize, maintain, and enhance the experiencing organism***" (Rogers, 1951, p. 487).

रोजर्स ने मानव प्रकृति के सम्बन्ध में मनोविश्लेषणवादी तथा व्यवहारवादी के नियतिवादी प्रकृति को मानने से इनकार कर दिया| उनका मानना था कि व्यक्ति का प्रत्यक्षण ही उसके वृद्धि और विकास की कुंजी है| हमारे प्रत्यक्षण के सम्बन्ध में कोई दूसरा व्यक्ति पता नहीं कर सकता क्योंकि हम स्वयं ही अपना जज हैं अथवा मूल्यांकन कर्ता हैं|

कार्ल रोजर्स (1959) के अनुसार प्रत्येक मानव की एक मूल प्रवृत्ति होती है, वह है आत्म यथार्थीकरण अर्थात अपनी अन्तःशक्ति को विकसित कर सफलता के उत्कर्षतम स्थिति पर पहुंचना ठीक उसी तरह जिस तरह एक बीज को वृक्ष बनने हेतु अनुकूल वातावरण का मिलना आवश्यक हो जाता है|

प्रत्येक मानव की अन्तःशक्ति विशिष्ट होती है तथा इसका विकास प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के अनुसार करता है| रोजर्स के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति स्वभाव से अच्छा तथा सृजनशील होता है| वह विघटनकारी तब बनता है जब उसका स्व संप्रत्यय अच्छा नही बन पाए अथवा बाह्य अवरोधों द्वारा उसके मूल्य विकास प्रक्रिया में बाधा पहुंचे| रोजर्स का मानना है कि आत्म यथार्थीकरण की स्थिति में पहुँचने के लिए समरूपता की स्थिति में पहुंचना आवश्यक है| इसका अर्थ है कि एक व्यक्ति आत्म यथार्थीकरण की स्थिति में तब पहुंचेगा जब 'वह क्या बनना चाहता है अर्थात आदर्श स्व ideal self'' तथा 'उसके वास्तविक व्यवहार अर्थात स्व प्रतिमा (self-image) के मध्य समरूपता विद्यमान हो| रोजर्स के अनुसार वही व्यक्ति आत्म यथार्थीकरण की स्थिति में होता है जो पूर्ण रूप से कार्यात्मक हो ओर इसमें व्यक्ति के बचपन का अनुभव बहुत ही महती भूमिका अदा करता है|

रोजर्स के अनुसार पूर्ण रूप से कार्यात्मक व्यक्ति में निम्नांकित विशेषताएँ पाई जाती हैं-

1. अनुभव के प्रति खुलापन (Open to experience)
2. अस्तित्वपरक जीवन जीना (Existential living)
3. भावनाओं पर भरोसा (Trust feelings)
4. सृजनात्मकता (Creativity)
5. संतुष्ट जीवन (Fulfilled life)

रोजर्स यह मानते हैं कि पूर्ण रूप से कार्यात्मक व्यक्ति समाज में पूर्ण रूप से समायोजित होता है तथा समाज में ऐसे व्यक्ति उच्च उपलब्धि वाले भी होते हैं|

रोजर्स के सिद्धांत का केंद्र बिंदु उसका स्व-संप्रत्यय है, स्व-संप्रत्यय का अर्थ है व्यक्ति के स्वयं के बारे में उसके प्रत्यक्षण का संगठित तथा संगतिपूर्ण समुच्चय व उसका विश्वास|

रोजर्स (1959), यह मानते हैं कि हम अपने स्व-प्रतिमा के अनुसार महसूस, अनुभव तथा व्यवहार करते हैं और यह प्रतिबिंबित करता है कि हमारा स्व आदर्श कैसा है| स्व-प्रतिमा तथा स्व आदर्श में जितनी संगति होगी उतना ही हमारा व्यक्तित्व संगठित होगा तथा इसके विपरीत इन दोनों में विसंगति होने पर व्यक्तित्व कुसमायोजित हो जाता है|

रोजर्स का उपागम स्व-संप्रत्यय के तीन अवयवों पर प्रकाश डालता है

स्व-मूल्य अथवा आत्म सम्मान (Self worth or self-esteem) –अर्थात हम अपने बारे में क्या सोचते हैं| यह पूर्व बाल्यावस्था के दौरान माता-पिता से अंतःक्रिया के फलस्वरूप विकसित होता है|

स्व-प्रतिमा (Self-image) – अर्थात हम अपने आपको कैसे देखते हैं| स्व-प्रतिमा के रूप में साधारण तौर पर हम अपने आपको अच्छा या बुरा व्यक्ति के रूप में देखते हैं| स्व-प्रतिमा का प्रभाव हमारे सोचने तथा व्यवहार पर होता है

आदर्श स्व (Ideal self) – अर्थात जैसा हम बनना चाहते हैं| यह हमारे उद्देश्य तथा आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करता है जो गतिशील प्रकृति का होता है|

कार्ल रोजर्स (1951) के अनुसार किसी बच्चे की दो मूलभूत आवश्यकताएं होती हैं – अन्य लोगों से सकारात्मक सम्बन्ध तथा स्व-मूल्य अथवा आत्म सम्मान|

हम अपने बारे में कैसे सोचते हैं, तथा स्व-मूल्य अथवा आत्म सम्मान के बारे स्वयं की अवधारणा मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य तथा स्व यथार्थीकरण के लिए बहुत ही आवश्यक है | स्व-मूल्य अथवा आत्म सम्मान एक सत्य के रूप में बहुत अधिक से बहुत कम के स्तर तक पाया जाता है| अधिक स्व-मूल्य अथवा आत्म सम्मान वाले व्यक्ति का आत्म विश्वास का स्तर काफी अधिक तथा सोच सकारात्मक होता है| कम स्व-मूल्य अथवा आत्म सम्मान वाले व्यक्ति का आत्म विश्वास का स्तर काफी निम्न तथा सोच नकारात्मक होता है|

अतः एक अध्यापक को विद्यार्थियों के स्व-मूल्य अथवा आत्म सम्मान(Self worth **or self-esteem),** स्व-प्रतिमा (Self-image) तथा आदर्श स्व (Ideal self) के निर्माण तथा उनके संगतिपूर्ण विकास के लिए प्रयासरत रहना चाहिए ताकि वे समाज का पूर्ण रूप से कार्यात्मक व्यक्ति बने| रोजर्स के अनुसार एक अध्यापक छात्रों के आत्म यथार्थीकरण की वृद्धि में महती भूमिका अदा कर सकता है तथा उन्हें आदर्श नागरिक बनाने में सार्थक भूमिका अदा कर सकता है|

3.14 चोम्स्की का भाषा अधिगम सिद्धांत (Chomsky's Language Learning Theory)

चॉम्स्की (जन्म 7 दिसंबर, 1928) को अमरीका में हुआ था एवं ये अत्यंत प्रमुख भाषावैज्ञानिक, दार्शनिक, राजनैतिक एक्टीविस्ट, लेखक, एवं व्याख्याता हैं। संप्रति वे मसाचुएटस इंस्टीट्यूट आफ टेक्नालजी के अवकाश प्राप्त प्रोफेसर हैं।

चॉम्स्की को जेनेरेटिव ग्रामर के सिद्धांत का प्रतिपादक एवं बीसवीं सदी केभाषाविज्ञान में सबसे बड़ा योगदानकर्ता, माना जाता है। उन्होंने जब मनोविज्ञान के ख्याति प्राप्त वैज्ञानिक बी एफ स्कीनर के पुस्तक वर्बल बिहेवियर की आलोचना लिखी, जिसमें 1950 के दशक में व्यापक स्वीकृति प्राप्त व्यवहारवाद के सिद्दांत को चुनौती दी, तो इससे काग्नीटिव मनोविज्ञान में एक तरह की क्रांति का सूत्रपात हुआ, जिससे न सिर्फ़ मनोविज्ञान का अध्ययन एवं शोध प्रभावित हुआ बल्कि भाषाविज्ञान, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र जैसे कई क्षेत्रों में आमूलचूल परिवर्तन आया।

चॉम्स्कीय भाषाविज्ञान की शुरुआत उनकी पुस्तक ***सिंटैक्टिक स्ट्रक्चर्स*** से हुई मानी जा सकती है जो उनके पीएचडी के शोध, ***लाजिकल स्ट्रक्चर आफ लिंग्विस्टिक थीयरी*** (1955, 75) का परिमार्जित रूप था। इस पुस्तक के द्वारा चॉम्स्की ने पूर्व स्थापित संरचनावादी भाषावैज्ञानिकों की मान्यताओं को चुनौती देकर **ट्रांसफार्मेशनल ग्रामर** की बुनियाद रखी। इस व्याकरण ने स्थापित किया कि शब्दों के समुच्च्य का अपना व्याकरण होता है, जिसे औपचारिक व्याकरण द्वारा निरुपित किया जा सकता है और खासकर संदर्भमुक्त व्याकरण द्वारा जिसे *ट्रांसफार्मेशन* के नियमों द्वारा व्याख्या किया जा सकता है।

चॉम्स्की ने अपने **प्रिंसिपल्स ऐंड पैरामीटरस** का माड्ल अपने पीसा के व्याख्यान के बाद 1979 में विकसित की थी जो बाद में *लेक्चर्स आन गवर्नमेंट ऐंड बाइंडिंग* के नाम से प्रकाशित हुई। इसमें चॉम्स्की ने सार्वभौम व्याकरण के बारे में काफी अकाट्य दावे एवं तर्क पेश किये।

चॉम्स्की के अधिगम सम्बंधित सिद्धांत से जुड़े महत्वपूर्ण तथ्य को निम्न रूप में व्यक्त किया जा सकता है-

- उन्होंने माना कि प्रत्येक मानव शिशु में व्याकरण की संरचनाओं का एक अंतर्निहित एवं जन्मजात (आनुवांशिक रूप से) खाका होता है जिसे **सार्वभौम व्याकरण** की संज्ञा दी गयी। ऐसा तर्क दिया जाता है कि भाषा के ज्ञान का औपचारिक व्याकरण के द्वारा माडलिंग करने पर भाषा उत्पादकता के बारे में काफी जानकारी इकट्ठा की जा सकती है, जिसके अनुसार व्याकरण के सीमित नियमों द्वारा कैसे असीमित वाक्य निर्माण कैसे संभव हो पाता है। चामस्की ने प्राचीन भारतीय वैय्याकरण पाणिनी के प्राचीन जेनेरेटिव ग्रामर के नियमों के महत्व भी स्वीकृत करते हैं।

- मानव भाषा की सबसे महत्वपूर्ण पहलू सृजनात्मकता है|

- हमलोग सही वाक्यों का असीमित निर्माण कर सकते हैं जिनका निर्माण अभी तक शायद नहीं हुआ है|
- चॉम्स्की का मानना है कि एक साधारण या औसत स्तर का बच्चा भी भाषा के क्षेत्र में अच्छी उपलब्धि हासिल कर सकता है|
- कोई भी बच्चा कुछ सीमित वाणी को ही सुनता है, उनमें से भी कुछ अच्छे से सरंचित भी नहीं होने, के बावजूद उसके अंदर असीमित वाक्यों के निर्माण की सरंचना मस्तिष्क के अंदर विकसित हो जाती है|
- बच्चे के अंदर ज्ञान का विकास उसके अनुभव से भी अधिक होता है |
- मानव के अंदर भाषा का विकास पूर्ण रूप से उसके अनुवांशिक पूंजी का ही प्रतिफलन होता है|
- मानव मस्तिष्क जन्म के समय एक कोरे स्लेट की भांति नहीं होता| मनुष्य की अनुवांशिक पूंजी बाह्य वातावरण से अंतःक्रिया कर भाषा तथा अन्य विकास को गति प्रदान करता है|

अतः एक शिक्षक को अपने छात्र की भाषा विकास के लिए चॉम्स्की के भाषा विकास सिद्धांत के सार तत्त्व को समझना महती आवश्यक है |

3.15 शब्दावली

- **सीखना या अधिगम** अनुभव के परिणाम स्वरूप व्यवहार में परिवर्तन द्वारा व्यक्त होता है।
- **स्कीमाटा (Schemata)** – पियाजे के अनुसार अनुभव (Experience) या व्यवहार (Behavior) को संगठित करने की ज्ञानात्मक संरचना को स्कीमाटा कहते हैं। एक नवजात शिशु में स्कीमाटा एक सहजात प्रक्रिया है, जैसे शिशु की चूसने की प्रतिक्रिया।
- **संगठन (Organization)**– संगठन से तात्पर्य प्रत्यक्षीकृत तथा बौद्धिक सूचनाओं (perceptual and cognitive information) को सही तरीके से बौद्धिक संरचनाओं (cognitive structure) में व्यवस्थित करने से है जो इसे वाह्य वातावरण के साथ समायोजन करने में उसके कार्यों को संगठित करता है|
- **अनुकूलन (Adaptation)** – पियाजे के अनुसार अनुकूलन वह प्रक्रिया है जिसमें बालक अपने को बाहरी वातावरण (External Environment) के साथ समायोजन करने की कोशिश करता है। यह एक जन्मजात, प्रवृत्ति (Inborn Tendency) है जिसके अंतर्गत दो प्रक्रियाऍं सम्मिलित हैं-
- **आत्मसातीकरण (Assimilation)** मूलरूप से आत्मसातीकरण एक नयी वस्तु अथवा घटना को वर्तमान अनुभवों में सम्मिलित करने की प्रक्रिया है। उदाहरण के लिए यदि एक

बालक के हाथ में टॉफी रख दिया जाता है तो उसे वह तुरंत मुँह में डाल देता है। क्योंकि उसे यह पता है कि टॉफी एक खाद्य वस्तु है। यहाँ बालक ने अनुकूलन के द्वारा खाने की क्रिया को आत्मसात कर रहा है अर्थात् पुरानी बौद्धिक क्रिया को नवीन क्रिया के साथ समायोजित करता है। अनुकूलन की यह प्रक्रिया जीवनपर्यंत चलती रहती है।

- समाविष्टिकरण (Accommodation)से तात्पर्य वह प्रक्रिया है, जिसमें बालक नये अनुभवों की दृष्टि से पूर्ववर्ती संरचना में सुधार लाने या परिवर्तन लाने की कोशिश करता है। जिससे वह वातावरण के साथ समायोजन कर सके। उदाहरण के लिए जब बालक को टॉफी के स्थान पर रसगुल्ला देते हैं तो बालक यह जानता है, टॉफी मीठी होती है पर अब वह अपने मानसिक सरंचना (Mental structure) में परिवर्तन लाता है, और इसमें नयी बातें जोड़ता है कि टॉफी और रसगुल्ले दोनों अलग-अलग खाद्य-पदार्थ हैं जबकि कि दोनों का स्वाद मीठा है।

- **साम्यधारण (Equilibration)** –साम्यधारण (Equilibration) वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक आत्मसातीकरण (Assimilation) और समाविष्टिकरण (Accommodation) के बीच संतुलन (Balance) स्थापित करता है।

- **संरक्षण (Conservation)** –प्याजे के अनुसार संरक्षण का अर्थ वातावरण में परिवर्तन तथा स्थिरता को समझने और वस्तु के रंग-रूप में परिवर्तन तथा उसके तत्व के परिवर्तन में अन्तर करने की प्रक्रिया से है।

- **संज्ञानात्मक सरंचना (Cognitive structure)** – प्याजे ने मानसिक योग्यताओं के सेट (Set) को संज्ञानात्मक संरचना की संज्ञा दी है। भिन्न-भिन्न आयु में बालकों की संज्ञानात्मक संरचना भिन्न-भिन्न हुआ करती है। बढ़ती हुई आयु के साथ यह संज्ञानात्मक संरचना सरल से जटिल बनती जाती है।

- **मानसिक प्रचालन (Mental Operation)** –मानसिक-प्रचालन का अर्थ संज्ञानात्मक संरचना की सक्रियता से है। जब बालक किसी समस्या का समाधान करना शुरू करता है तो उसकी मानसिक संरचना सक्रिय बन जाती है। इसे ही मानसिक संक्रिया या मानसिक प्रचालन कहते हैं।

- **स्कीम्स (Schemes)** –प्याजे के सिद्धान्त का यह संप्रत्यय वास्तव में मानसिक प्रचालन (Mental operation) संप्रत्यय का बाह्य रूप है। जब मानसिक प्रचालन बाह्य रूप से अभिव्यक्त (Expressed) होता है तो इसी अभिव्यक्त रूप को स्कीम्स कहते हैं।

- **स्कीमा (Schema)** –प्याजे के अनुसार स्कीमा का अर्थ ऐसी मानसिक संरचना है, जिसका समान्यीकरण (Generalization) संभव हो। यह संप्रत्यय वस्तुत: संज्ञानात्मक संरचना तथा मानसिक प्रचालन के संप्रत्ययों से गहरे रूप से सम्बद्ध है।

- **विकेन्द्रण (De centering)** –इस संप्रत्यय का संबंध यथार्थ चिंतन से है। विकेन्द्रण का अर्थ है कि कोई बालक किसी समस्या के समाधान के संबंध में किस सीमा तक वास्तविक ढंग से सोच-विचार करता है। इस संप्रत्यय का विपरीत (Opposite) आत्मकेन्द्रण (Ego centering) है। शुरू में बालक आत्मकेन्द्रित रूप से सोचता है और बाद में उम्र बढ़ने पर विकेन्द्रित ढंग से सोचने लगता है।
- **पारस्परिक क्रिया (Interaction)** –प्याजे के अनुसार बच्चों में वास्तविकता (Reality) को समझने तथा उसकी खोज करने की क्षमता न केवल बच्चों की प्रौढ़ता (Maturity) पर बल्कि उनके शिक्षण पर निर्भर करती है। यह दोनों की पारस्परिक क्रिया (Interaction)पर आधारित होती है।
- **समीपस्थ विकास क्षेत्र (Zone of Proximal Development):** बच्चा जो कार्य खुद कर सकता है तथा जिस कार्य को करने में उसे अपने साथी या किसी वयस्क से मदद लेनी होती है, इन दोनों क्षेत्रों के मध्य अंतर को समीपस्थ विकास क्षेत्र की संज्ञा दी जाती है|
- **स्केफोल्डिंग (Scaffolding):** किसी भी कार्य को पूर्ण करने के लिए ऐसा सहयोग जिसके बिना उस कार्य को किसी भी व्यक्ति द्वारा स्वतंत्र रूप से नहीं किया जा सकता है |

3.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. अधिगम का विभिन्न सन्दर्भों में अर्थ स्पष्ट कीजिये।
2. अधिगम की विशेषताओं की व्याख्या कीजिये।
3. अधिगम सिद्धांत के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों की अवधारणा को स्पष्ट कीजिये |
4. जीन पियाजे के अधिगम सम्बंधित सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये|
5. ब्रूनर के अधिगम सम्बंधित सिद्धांत का वर्णन कीजिये|
6. बायगोत्सकी के अधिगम सम्बंधित सिद्धांत को स्पष्ट कीजिये |
7. रोजर्स के अधिगम सम्बंधित सिद्धांत को स्पष्ट कीजिये |
8. चॉम्स्की के अधिगम सम्बंधित सिद्धांत को स्पष्टकीजिये |
9. अधिगम सिद्धांत के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों के शैक्षिक निहितार्थ का वर्णन कीजिये।

3.17 सन्दर्भ ग्रन्थ

- *Jean Piaget : The Language and Thought of the Child* (London: Routledge & Kegan Paul, 1926) [*Le Langage et la pensée chez l'enfant* (1923)]
- *Jean Piaget : The Child's Conception of the World* (London: Routledge and Kegan Paul, 1928) [*La Représentation du monde chez l'enfant* (1926, orig. pub. as an article, 1925)]

- *Jean Piaget : The Moral Judgment of the Child* (London: Kegan Paul, Trench, Trubner and Co., 1932) [*Le jugement moral chez l'enfant* (1932)]
- *Jean Piaget : The Origins of Intelligence in Children* (New York: International University Press, 1952) [*La naissance de l'intelligence chez l'enfant* (1936), also translated as *The Origin of Intelligence in the Child* (London: Routledge and Kegan Paul, 1953)].
- *Bruner: A Study of Thinking*. 1956.
- *Bruner:The Process of Education*. 1960. ISBN 9780674710016.
- *Bruner: Studies in Cognitive Growth*. 1966.
- *Bruner: Toward a Theory of Instruction*. 1966. ISBN 9780674897014.
- *Bruner: Processes of Cognitive Growth: Infancy*. 1968.
- Rogers, Carl. (1942). *Counseling and Psychotherapy: Newer Concepts in Practice*.
- Rogers, Carl. (1951). *Client-centered Therapy: Its Current Practice, Implications and Theory*. London: Constable. ISBN 1-84119-840-4.
- Rogers, Carl. (1961). *On Becoming a Person: A Therapist's View of Psychotherapy*. London: Constable. ISBN 1-84529-057-7.Excerpts
- Chomsky, Noam (1959). "Reviews: *Verbal behavior* by B. F. Skinner". *Language* **35** (1): 26–58.JSTOR 411334.
- Chomsky, Noam (1965). *Aspects of the Theory of Syntax*. Cambridge, MA: MIT Press. ISBN 978-0-262-53007-1
- Rogers, Carl. (1969). *Freedom to Learn: A View of What Education Might Become*. (1st ed.) Columbus, Ohio: Charles Merill.
- Vygotsky (1934). Thinking and Speech,
- Vygotsky (1934). Tool and symbol in child development.
- Vygotsky (1978). Mind in Society: The Development of Higher Psychological Processes,
- Vygotsky (1986), Thought and Language.

इकाई - 4

अधिगम के जैविक आधार एवं शैक्षिक निहितार्थ

Biological bases of learning and educational implications

मस्तिष्क कैसे सीखता है, मस्तिष्कीय अर्धगोलार्द्धत्व तथा सीखने की प्रक्रिया का अवबोध, संज्ञानात्मक चयापचय, मस्तिष्कीय अर्धगोलार्द्धत्व तथा अधिगम के लक्षण

How brain learns: Understanding brain hemisphericity and process of learning, cognitive metabolism, brain hemisphericity and learning traits

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 सीखने (अधिगम) के जैविक आधार

4.4 मानव मस्तिष्क के वैज्ञानिक विश्लेषण हेतु उपकरण

4.5 संज्ञानात्मक चयापचय

4.6 मस्तिष्कीय अर्धगोलार्द्धत्व तथा सीखने की प्रक्रिया का अवबोध

4.7 अधिगम के सन्दर्भ में हुए मस्तिष्क से सम्बंधित नवीनतम शोध

4.8 मस्तिष्क सम्बन्धी कुछ विशिष्ट तथ्य

4.9 लिंग भिन्नता और मस्तिष्क

4.10 मस्तिष्क एवं बोल-चाल संबंधी भाषा का विशिष्टीकरण

4.11 मस्तिष्क और कलाएँ

4.12 कलाओं का शिक्षण क्यों आवश्यक है?

4.13 सारांश

4.14 शब्दावली

4.15 निबंधात्मक प्रश्न

4.16 संदर्भ ग्रन्थ

4.1 प्रस्तावना

मानव व्यवहार एक जटिल प्रक्रिया है। इसको अंतर्विषयक उपागमों की मदद से ही समझा जा सकता है। व्यवहारिक विज्ञान व प्राकृतिक विज्ञान ने मानव व्यवहार को समझने में काफी सहायता की है। मानव व्यवहार आनुवांशिक गुणों तथा वातावरण का प्रतिफल होता है। मानव व्यवहार चाहे वो संज्ञानात्मक, भावात्मक या मनोगत्यात्मक हो, जीवविज्ञान की न्यूरोविज्ञान शाखा में हुए शोधों ने इसे समझ्ने में अग्रसारित किया है। न्यूरोविज्ञान ने मन मस्तिष्क के करिश्माई गुणों को समझने में सफलता प्राप्त की है और इससे मानव व्यवहार की जटिलतम गुत्थियों को भी सुलझा लिया गया है। जैसा कि आप जानते हैं कि मानव मस्तिष्क मानव के समस्त व्यवहार यथा देखना, सुनना, सूंघना, स्वाद जानना, पढ़ना, लिखना, सीखना, प्रत्यक्षण करना, किसी भी तथ्य को स्मरण करना इत्यादि को नियंत्रित एवं समन्वित करता है| मानव व्यवहार के मूल में सीखने की प्रक्रिया है| विभिन्न समयों पर मनोवैज्ञानिकों ने सीखने की प्रक्रिया को विभिन्न तरीके से परिभाषित किया है| सीखने की प्रक्रिया को मस्तिष्क के जैविक आधार से सम्बंधित कर अच्छी तरह समझा सकता है| प्रस्तुत इकाई में आप न्यूरोविज्ञान के क्षेत्र में सीखने की प्रक्रिया से सम्बंधित निष्कर्षों को जान पायेंगे जिससे मानव व्यवहार के जैविक आधार को समझने में आपको सहायता मिलेगी। इस इकाई में आप यह अध्ययन करेंगे कि मस्तिष्क कैसे सीखता है, सीखने (अधिगम) के जैविक आधार क्या हैं, मस्तिष्कीय अर्धगोलार्द्धत्व तथा सीखने की प्रक्रिया में क्या सम्बन्ध है, संज्ञानात्मक उपापचय क्या है, मस्तिष्कीय अर्धगोलार्द्धत्व से अधिगम के लक्षण कैसे निर्धारित होते हैं तथा सीखने (अधिगम) के जैविक आधार का अध्यापक के लिए क्या निहितार्थ हैं, का विस्तृत अध्ययन करेंगे|

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- न्यूरोविज्ञान के क्षेत्र में सीखने की प्रक्रिया से सम्बंधित निष्कर्षों को जान पायेंगे
- मानव व्यवहार के जैविक आधार को समझने में आपको सहायता मिलेगी।
- इस इकाई में आप यह अध्ययन करेंगे कि मस्तिष्क के सीखने की प्रक्रिया को समझ पायेंगे
- सीखने (अधिगम) के जैविक आधार को स्पष्ट कर पायेंगे
- मस्तिष्कीय अर्धगोलार्द्धत्व तथा सीखने की प्रक्रिया में सम्बन्ध को जान पायेंगे
- संज्ञानात्मक उपापचय को स्पष्ट कर सकेंगे
- मस्तिष्कीय अर्धगोलार्द्धत्व से अधिगम के लक्षण कैसे निर्धारित होते हैं, इसको जान पायेंगे
- सीखने (अधिगम) के जैविक आधार के निहितार्थ को स्पष्ट कर सकेंगे |

4.3 सीखने (अधिगम) के जैविक आधार (Biological base of learning)

व्यवहार में अभ्यास या अनुभूति से उत्पन्न होने वाली परिवर्तन को अधिगम कहते हैं| अधिगम के सहारे व्यक्ति नए ज्ञान को अर्जित करता है| प्रत्येक अधिगम में न्यूरोदैहिक प्रक्रियाएं (neuro physiological process) सम्मिलित होती हैं जिनका अध्ययन आवश्यक है| अधिगम मोटे तौर पर दो भागों में बांटे जाते हैं –

१. असह्चर्यात्मक अधिगम (non associative learning) तथा
२. सह्चर्यात्मक अधिगम (associative learning)

अधिगम का जिस प्रकार का अध्ययन चाहे किया जाय, न्यूरो मनोवैज्ञानिकों का मत है कि उसका स्पष्ट न्यूरोदैहिक आधार होता है| इस न्यूरोदैहिक आधार का अध्ययन तीन विभिन्न तरीकों से करके कुछ महत्वपूर्ण एवं उत्तेजनपूर्ण तथ्य सामने लाये गए हैं| अधिगम के न्यूरोदैहिक आधार को एक अध्यापक द्वारा समझा जाना बहुत ही आवश्यक है ताकि अधिगम प्रक्रिया की तकनीकियों को समझ कर इसे प्रभावशाली बनाया जा सके| अधिगम के न्यूरोदैहिक आधार को समझने हेतु निम्न तथ्यों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है –

१. **शरीर रचनात्मक प्रविधियों पर आधरित न्यूरोदैहिक सबूतें (Neurophysiological evidences based upon anatomical techniques):** इस प्रविधि में न्यूरो वैज्ञानिक मस्तिष्क के कुछ अंश के क्षतिग्रस्त होने के आधार पर या उनके विलोपन के आधार पर प्रभावित व्यवहार का अध्ययन करते हैं| इसमें मूलतः दो तरह से अधिगम के न्यूरोदैहिकी (neurophysiology) का अध्ययन किया जाता है – घाव या चोट (lesion) के आधार पर तथा विभक्त मस्तिष्क के अध्ययन (split brain studies) के आधार पर |

   निम्न शंख कार्टेक्स (inferior temporal cortex) जब क्षतिग्रस्त हो जाता है तो प्राणी में विभिन्न चाक्षुष उद्दीपकों (visual stimuli) के बीच विभेदन करने की क्षमता में कमी आ जाती है

   जब प्राणियों के पश्च हैपोथेलेमस (posterior hypothalamus) क्षतिग्रस्त हो जाता है तो पहले की अनुबंधित अनुक्रिया (conditioned response) का लोप हो जाता है|

   विभक्त-मस्तिष्क अध्ययन (split brain studies) से भी कुछ ऐसे तथ्य प्राप्त हुए हैं जिनसे अधिगम के जैविक आधार का पता चलता है| प्रमस्तिष्क कार्टेक्स सरंचना (cerebral cortex structure) के ख्याल से द्विपक्षीय (bilateral) रूप से सममित (symmetrical) होता है| दूसरे शब्दों में कार्टेक्स का बायां गोलार्द्ध (left hemisphere) तथा दायाँ गोलार्द्ध (right hemisphere) सरंचना के ख्याल से लगभग एक सामान होते हैं| एक भाग से दूसरे भाग में सूचनाएं तंत्रिका तंतु (nerve fibre) के एक बण्डल द्वारा आते जाते हैं| इसे कोर्पस कोलेजम (corpus callosum) कहा जाता है| जब कोर्पस कोलेजम क्षतिग्रस्त या इसे काटकर हटा दिया जाता है तो एक खोपड़ी में दो मस्तिष्क होनी की स्थिति हो जाती है क्योंकि अब बायाँ गोलार्द्ध

तथा दायाँ गोलार्द्ध में बिल्कुल ही संचार नहीं हो पाता है| इस स्थिति को विभक्त मस्तिष्क (split brain) कहा जाता है|

विभक्त मस्तिष्क के अध्ययनों से यह पता चला है कि बायाँ गोलार्द्ध तथा दायाँ गोलार्द्ध द्वारा अलग अलग प्रकार के कार्य किये जाते हैं| फलस्वरूप दोनों गोलार्द्धों द्वारा विभिन्न प्रकार के अधिगम कार्य संपन्न होते हैं| इन अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि शाब्दिक सीखना (verbal learning), तार्किक (logical) एवं विश्लेषणात्मक (analytical) सीखना, विवेकी (rational) क्रियाएँ एवं वस्तुनिष्ठ (objective)क्रियाएँ बायाँ गोलार्द्ध द्वारा किया जाता है जबकि अशाब्दिक (nonverbal) सीखना, संश्लेषिक (synthetic) सीखना एवं आत्मनिष्ठ (subjective) तथा अंतर्ज्ञान (intuitive) क्रियाएँ दायाँ गोलार्द्ध द्वारा संपन्न किया जाता है| अतः यह स्पष्ट है कि विभिन्न तरह के व्यवहार एवं अधिगम कार्टेक्स के दो गोलार्द्धों द्वारा अलग अलग ढंग से संपन्न किये जाते हैं|

२. **वैद्युतीय प्रविधियों पर आधरित न्यूरोदैहिक सबूतें (Neurophysiological evidences based upon electrical techniques):** इस प्राविधि में मस्तिष्क के कुछ भागों को वैद्युतीय प्रवाह द्वारा उत्तेजित करके या मस्तिष्कीय सतह पर मौजूद वैद्युतीय क्रियाओं का रिकार्ड करके उनका अधिगम पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है तथा इसके न्यूरोदैहिक आधार का पता लगाया जाता है| मस्तिष्कीय स्तर पर मौजूद विद्युतीय क्रियाओं का रिकार्डिंग जिस प्राविधि द्वारा किया जाता है, उसे इलेक्ट्रोइन सिफैलोग्राफ (Electroencephalograph or EEG) कहा जाता है| अनुबंधन में मस्तिष्क के वैद्युतीय उत्तेजन को स्वाभाविक उद्दीपक के रूप में प्रयोग करने पर अनुबंधित अनुक्रिया प्रभावित होती है| मस्तिष्क के वैद्युतीय उत्तेजन से गत अनुक्रियाओं को पुनर्बलन मिलता है तथा उस अनुक्रिया को फिर से करने की अभिप्रेरणा भी मिलती है| ओल्ड्स एवं फोबेस ने अपने शोधों के आधार पर यह बतलाया है कि मस्तिष्क के कई हिस्सों का विद्युतीय उत्तेजन करके उसके पुनर्बलनात्मक प्रभाव को देखा जा सकता है|

३. **रासायनिक प्रविधि पर आधरित न्यूरोदैहिक सबूतें (Neurophysiological evidences based upon chemical techniques):** कुछ रसायनिक संरचनाएं ऐसी हैं जिनसे अधिगम तथा स्मृति की प्रक्रिया संपन्न होती हैं| इनमें सबसे महत्वपूर्ण डी एन ए (DNA), आर एन ए (RNA) तथा प्रोटीन हैं | नवीनतम शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि किसी सूचना को सीखने में या उसे स्मृति में संचित करने में ये तीनों तत्त्व सम्मिलित होते हैं| प्रोटीन संश्लेषण के अवरोधक तत्त्व दीर्घकालीन स्मृति को अवरुद्ध करती है| मार्टिनेज एवं डेरिक ने दीर्घकालीन प्रभावकारिता (Long Term Potentiation LTP) तथा अधिगम एव इससे सम्बंधित स्मृति प्रक्रिया पर इस तरह का निष्कर्ष प्रदान किया है "संधि स्थलीय परिवर्तन (synaptic change) के प्रमुख कोशीय प्रक्रिया जो रीढ़दार प्राणियों के मस्तिष्क के अधिगम तथा स्मृति में होता है|

उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि अधिगम की प्रक्रिया की न्यूरो दैहिक आधार काफी मजबूत और स्पष्ट है |

4.4 मानव मस्तिष्क के वैज्ञानिक विश्लेषण हेतु उपकरण

आर्युविज्ञान के उन्नत उपकरणों ने जीवन्त तथा अधिगम में संलग्न मानव मस्तिष्क के वैज्ञानिक विश्लेषण को सम्भव कर दिया है। दो प्रकार के उपकरण निर्मित किये जा चुके हैं-

टाइप 1:- मस्तिष्क की संरचना के अध्ययन में उपयोग में लाये जाने वाले उपकरण मस्तिष्क की आंतरिक संरचना के कम्प्यूटर निर्मित चित्रों को प्राप्त करने हेतु निम्नलिखित दो तकनीकों को उपयोग में लाया जा रहा है:-

(अ) कम्प्यूटेराइज्ड एक्सियल टोमोग्राफी (Computerized Axial Tomography-CAT)

(ब) मैग्नेटिक रेज़ोनेन्स इमेजिगं (Magnetic Resonance Imaging- MRI)

टाइप 2:- मस्तिष्क की कार्यप्रणाली के अध्ययन में उपयोग में लाये जाने वाले उपकरण इसके अन्तर्गत निम्नलिखित तकनीकों को उपयोग में लाया जा रहा है:-

(अ) इलेक्ट्रोइनसेफेलोग्राफी (Electroencephalography)- EEG

(ब) मैग्नेटोइनसेफेलोग्राफी (Magnetoencephalography) –MEG

(स) पोजीट्रोन ऐमिशन टोनोग्रोफी (Positron Emission Tomography)- PET

(द) फंक्सनल मैग्नेटिक रेजीनेन्स इमेजिगं (Functional Magnetic Resonance Imaging)- FMRI

(य) फंक्सनल मैग्नेटिक रेजीनेन्स स्पेक्ट्रोस्कोपी (Functional Magnetic Resonance Spectroscopy)- FMRS

अधिगम के जैविक शास्त्र (Biology of Learning) से सीखने की प्रक्रिया को समझने, उसे सहज-सरल-सुगम बनाने की विधियों को विकसित करने में सफलता प्राप्त होने की अपार सम्भावनाएँ हैं।

4.5 संज्ञानात्मक चयापचय (Cognitive Metabolism)

संज्ञानात्मक चयापचय को समझने से पूर्व दो शब्दों अर्थात संज्ञान तथा चयापचय को समझना आवश्यक है -

संज्ञान (cognition, कोग्निशन) कुछ महत्वपूर्ण मानसिक प्रक्रियाओं का सामूहिक नाम है, जिनमें ध्यान, स्मरण, निर्णय लेना, भाषा-निपुणता और समस्याएँ हल करना शामिल है। संज्ञान का अध्ययन मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र, भाषाविज्ञान, कंप्यूटर विज्ञान और विज्ञान की कई अन्य शाखाओं के लिए ज़रूरी है। मोटे तौर पर संज्ञान दुनिया से जानकारी लेकर फिर उसके बारे में अवधारणाएँ बनाकर उसे समझने की प्रक्रिया को भी कहा जा सकता है।

चयापचय (metabolism) जीवों में जीवनयापन के लिये होने वाली रसायनिक प्रतिक्रियाओं को कहते हैं। ये प्रक्रियाएं जीवों को बढ़ने और प्रजनन करने, अपनी रचना को बनाए रखने और उनके पर्यावरण के प्रति सजग रहने में मदद करती हैं। साधारणतः चयापचय को दो प्रकारों में बांटा गया है। अपचय कार्बनिक पदार्थों का विघटन करता है, उदा. कोशिकीय श्वसन से ऊर्जा का उत्पादन. उपचय ऊर्जा का प्रयोग करके प्रोटीनों और नाभिकीय अम्लों जैसे कोशिकाओं के अंशों का निर्माण करता है।

चयापचय की रसायनिक प्रतिक्रियाएं चयापचयी मार्गों में संचालित होती हैं जिनमें एक रसायन को एंजाइमों की श्रंखला द्वारा कुछ चरणों में दूसरे रसायन में बदला जाता है। एंजाइम चयापचय के लिये महत्वपूर्ण होते हैं, क्योंकि वे जीवों को ऐसी अपेक्षित प्रतिक्रियाएं, जिनमें ऊर्जा की आवश्यकता होती है और जो स्वतः नहीं घट सकती हैं, उन्हें उन स्वतः होने वाली प्रतिक्रियाओं के साथ युगल रूप में होने में मदद करते हैं, जिनसे ऊर्जा उत्पन्न होती है। चूंकि एंजाइम उत्प्रेरक का काम करते हैं, इसलिये वे इन प्रतिक्रियाओं को तेजी से और य़थेष्ट रूप से होने देते हैं। एंजाइम कोशिका के पर्यावरण में परिवर्तनों या अन्य कोशिकाओं से प्राप्त संकेतों के अनुसार चयापचयी मार्गों के नियंत्रण में भी सहायता करते हैं।

किसी जीव का चयापचय यह निश्चित करता है कि उसके लिये कौन सा पदार्थ पौष्टिक होगा और कौन सा विषैला. उदा.कुछ प्रोकैर्योसाइट हाइड्रोजन सल्फाइड का प्रयोग करते हैं, जबकि यह गैस पशुओं के लिये जहरीली होती है। चयापचय की गति, या चयापचय दर इस बात को भी प्रभावित करती है कि किसी जीव को कितने भोजन की जरूरत होगी|

जानवरों, पौधों और सूक्ष्मजीवों को बनाने वाली अधिकांश रचनाएं अणुओं के तीन मूल वर्गों से बनी होती हैं-अमीनो एसिड, कार्बोहाइड्रेट और लिपिड (जो वसा के नाम से भी जाना जाता है). चूंकि ये अणु जीवन के लिये महत्वपूर्ण होते हैं, इसलिये चयापचयी प्रतिक्रियाएं कोशिकाओं और ऊतकों के निर्माण के समय इन अणुओं को बनाने, या भोजन के पाचन और प्रयोग में उन्हें विघटित करने व उन्हें ऊर्जा के स्रोत के रूप में उपयोग में लाने में जुटी होती हैं। कई महत्वपूर्ण जैवरसायन मिलकर डीएनए और प्रोटीनों जैसे पॉलिमरों का उत्पादन करते हैं। ये महाअणु अत्यावश्यक होते हैं।

अणु का प्रकार	मोनोमर प्रकारों के नाम	पॉलिमर प्रकारों के नाम	पॉलिमर प्रकारों के उदाहरण
अमीनो एसिड	अमीनो एसिड	प्रोटीन(पॉलिपेप्टाइड)	रेशायुक्त प्रोटीन और ग्लॉबुलार प्रोटीन
कार्बोहाइड्रेट	मोनोसैक्राइड	पॉलिसैक्राइड	स्टार्च, ग्लायकोजन और सेलूलोज
न्यूक्लिक एसिड	न्यूक्लियोटाइड	पॉलिन्यूक्लियोटाइड	डीएनए और आरएनए

संज्ञानात्मक अस्तित्व (cognitive existence) को बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण मानसिक प्रक्रियाओं यथा ध्यान, स्मरण, निर्णय लेना, भाषा-निपुणता और समस्याएँ हल करना जैसे क्रियाओं को अंजाम देना मनुष्य के लिए अनिवार्य हो जाता है| इन प्रक्रियाओं के बिना मनुष्य का संज्ञानात्मक अस्तित्व संभव नहीं है| इन संज्ञानात्मक क्रियाओं को अंजाम देने के लिए मनुष्य को असीम ऊर्जा की आवश्यकता होती है और ये ऊर्जा जिस रासायनिक प्रतिक्रियाओं के माध्यम से संपन्न होती है उसे संज्ञानात्मक चयापचय (cognitive metabolism) की संज्ञा दी जाती है| दूसरे शब्दों में संज्ञानात्मक चयापचय प्रक्रियाएं महत्वपूर्ण मानसिक प्रक्रियाओं यथा ध्यान, स्मरण, निर्णय लेना, भाषा-निपुणता और समस्याएँ हल करने जैसे क्रियाओं को अंजाम देकर मनुष्य अपनी संज्ञानात्मक वृद्धि, एवं अपना संज्ञानात्मक अस्तित्व को बनाए रखने और पर्यावरण के प्रति सजग रहने में मदद करती हैं।

एक अध्यापक होने के नाते आपको संज्ञानात्मक चयापचय (cognitive metabolism) से सम्बंधित समस्त प्रक्रियाओं को समझना चाहिए ताकि विद्यार्थियों के संज्ञानात्मक स्तर में वृद्धि लाई जा सके|

यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि मस्तिष्क के अन्दर की दो सरंचनाएँ जो दीर्घ अवधि की स्मृति के लिए उत्तरदायी होती हैं वे मस्तिष्क के संवेगात्मक भाग में स्थित होती हैं। मस्तिष्क कोशिकाएँ इंधन के रूप में आक्सीजन तथा ग्लूकोज का उपयोग करती हैं। मस्तिष्क का कार्य जितना अधिक चुनौतीपूर्ण होता है मस्तिष्क उतने ही अधिक इंधन का उपयोग करता है। अत: मस्तिष्क की सर्वोच्च क्रियाशीलता अर्थात **संज्ञानात्मक अपचय (cognitive catabolism)** हेतु यह महत्वपूर्ण है कि इन पदार्थो को उपयुक्त मात्रा में लिया जाये। रक्त में आक्सीजन तथा ग्लूकोज की कमी आलस्य और निद्रा को उत्पन्न करती है। ग्लूकोज युक्त पदार्थ (फल इसके सबसे अच्छे श्रोत हैं) कार्य सम्पन्न करने की प्रक्रिया को तीव्र करते हैं तथा क्रियात्मक स्मृति, अवधान और माँसपेशियों के कार्यो को ठीक प्रकार से सम्पन्न करने में सहायक हो सकते हैं।

जल, मस्तिष्क की क्रियाशीलता के लिये आवश्यक है। तंत्रिका संकेतों के मस्तिष्क में प्रवाह हेतु शरीर को जल की आवश्यकता होती है। शरीर में जल की कमी से इन संकेतों की गति तथा प्रभावशीलता कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त जल से फेफड़ों में तरावट रहती है और इसकी वजह से रक्त में

आक्सीजन स्थानान्तरित होती है। यह अत्यन्त चिंता का विषय है कि कई विद्यार्थी (तथा उनके अध्यापक) न तो प्रात:काल पर्याप्त ग्लूकोज युक्त नाश्ता करते हैं और न ही दिन में पर्याप्त जल पीते हैं। ग्लूकोज तथा जल मस्तिष्क की क्रियाशीलता हेतु आवश्यक हैं।

4.6 मस्तिष्कीय अर्धगोलार्द्धत्व तथा सीखने की प्रक्रिया का अवबोध (Brain Hemisphericity and Understanding of Learning)

मस्तिष्क के दो गोलार्द्ध (Hemisphere) प्राप्त सूचनाओं को अलग-अलग प्रकार से संश्लेषित-विश्लेषित करते हैं। वास्तव में मानव मस्तिष्क कुछ इकाइयों का एक समूह है। इन इकाइयों द्वारा प्राप्त सूचनाओं को प्रशाधित (processing)किया जाता है। मस्तिष्क की इस विशेषता को **मस्तिष्कीय अर्धगोलार्द्धत्व (brain hemisphericity)** की संज्ञा दी जाती है| बोलने की क्रिया, आंकिक गणनाओं की क्रिया, चेहरों को पहचानने की क्रिया हेतु मस्तिष्क में अलग-अलग इकाइयाँ विद्यमान हैं। प्राप्त सूचनाओं को मस्तिष्क एक एकल इकाई (Singular Unit) के रूप में प्रसाधित नहीं करता है और न ही सभी विभिन्न इकाइयां अलग-अलग प्रकार की सूचनाओं को प्रसाधित कर सकती हैं।

दूसरे शब्दों में, मानव मस्तिष्क में दो गोलार्द्ध होते हैं| मस्तिष्क के दायें और बायें गोलार्द्ध के कार्य अलग-अलग हैं। मस्तिष्क की इस विशेषता को **मस्तिष्कीय अर्धगोलार्द्धत्व (brain hemisphericity)** की संज्ञा दी जाती है| मस्तिष्क में स्थित महासंयोजिका (Corpus Callosum) इन दो गोलार्द्धों के मध्य स्मृति तथा सीखने की साझेदारी करवाती है। ये दो गोलार्द्ध सूचनाओं को संग्रहित एवं संसाधित भिन्न-भिन्न तरीके से करते हैं अर्थात ये दोनों गोलार्द्ध भिन्न भिन्न अधिगम प्रक्रियाओं को संपन्न करती है|

निम्न रेखा चित्रों तथा **गोलार्द्धों की कार्य विशिष्टता दर्शाती तालिका** से मस्तिष्क के दायें और बायें गोलार्द्ध की संरचना तथा उनके कार्य को आप समझ सकते हैं -

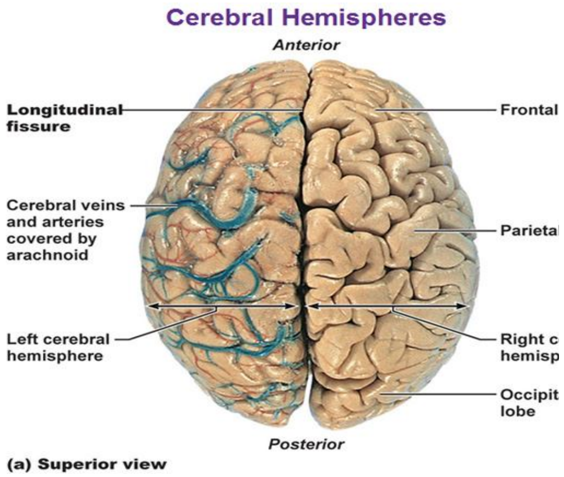

गोलार्द्धों की कार्य विशिष्टता (Work Specialization of Hemispheres)	
बायाँ गोलार्द्ध	**दायाँ गोलार्द्ध**
विश्लेषण (Analysis)	समग्र प्रत्यक्षण (Holistic perception)
क्रम (Sequence)	पैटर्न (Patterns)
समय (Time)	स्थानिक (Spatial)
वाक् (Speech)	भाषा का संदर्भ (Context of language)
शब्दों की पहचान- Recognizes Words	चेहरों को पहचानना (Recognizes faces)
अक्षरों की पहचान- Recognizes Letters	स्थानों को पहचानना (Recognizes places)
अंकों की पहचान (Recognizes Numbers)	वस्तुओं को पहचानना (Recognizes objects)
बाह्य उद्दीपकों को प्रसाधित करता है (Processes External stimuli)	आन्तरिक संवादों को प्रसाधित करता है (Processes internal messages)

छोटा चित्र (Small Picture)	बड़ा चित्र (Big Picture)
गणित परिकलन(Math Calculation)	गणितीय तर्क (Math Reasoning)
समय सारणी पसंदीदा, समानता (Like Routines, sameness)	नवीनता पसंद (Likes newness)
रेखीय एवं तर्कपरक चिंतन - Linear and logical thinking	अमूर्त चिंतन (Abstract thinking)
सुखद गंध प्रसंस्करण (Pleasant smell processing)	अप्रिय गंध प्रसंस्करण(Unpleasant smell processing)
शब्द अक्षरों की पहचान (Reading words (decoding)	स्थानों को पहचानना (Reading comprehension)
अंकों की पहचान (Explicit memory)	वस्तुओं को पहचानना (Implicit memory)

शाब्दिक अर्थ (Literal meaning)	अलंकारिक अर्थ (Metaphorical meaning)
क्रम आधारित प्रसाधन (Serial processing)	सामानांतर प्रसाधन (Parallel processing)
शाब्दिक सम्प्रेषण (Verbal communication)	अशाब्दिक सम्प्रेषण (Non verbal communication)
नियोजन (Planning)	क्रियान्वयन (Doing)
तार्किक स्थानिक जागरूकता (Logical spatial awareness)	वैश्विक स्थानिक जागरूकता (Global spatial awareness)
व्यावहारिक एवं विचारपूर्ण (Practical, deliberate)	सहजज्ञ एवं साहसिक भाव (Intuitive, gut feeling)
अधिक आवृति श्रव्य (High frequency sound)	कम आवृति श्रव्य (Low frequency sound)
अधिक आवृति दृष्टि (High frequency vision)	कम आवृति दृष्टि (Low frequency vision)

	Right Hemisphere	**Left Hemisphere**
Specialities	• Copying of designs, • Discrimination of shapes e.g. picking out a camouflaged object, • Understanding geometric properties, • Reading faces, • Music, • Global holistic processing, • Understanding of metaphors, • Expressing emotions, • Reading emotions.	• Language skills, • Skilled movement, • Analytical time sequence processing.
Shared	• Sensations on both side of face, • Sound perceived by both ears, • Pain, • Hunger, • Position.	
Emotions	Negative emotions (fearful mournful feelings),	Positive emotions
neurotransmitters	Higher levels of norepinephrine	Higher levels of dopamine
Grey Matter White Maatter ratio	More white-matter (longer axons) on right	more grey-matter (cell bodies) on the left.

उपरोक्त तालिका से आप जैसे अध्यापक को किसी भी अधिगमकर्ता की अधिगम से सम्बंधित मस्तिष्क की विशेषताओं का पता चलेगा ताकि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी तथा अधिगमकर्ता केंद्रित बनाया जा सके|

4.7 अधिगम के सन्दर्भ में हुए मस्तिष्क से सम्बंधित नवीनतम शोध (Recent researches in regard to Learning and Brain)

मस्तिष्क के सन्दर्भ में पिछले कुछ वर्षो में प्राप्त जानकारियों से ज्ञात हुआ है कि-

- मस्तिष्क प्राप्त सूचनाओं के आधार पर अपने को निरंतर पुर्नसंगठित करता रहता है। यह प्रक्रिया स्नायु नमनीयता (spinal plasticity) कहलाती है। यह जीवन पर्यन्त चलती है, परन्तु मानव जीवन के प्रारम्भिक वर्षो में अति तीव्र होती है। शिशु को घर-परिवार में प्राप्त अनुभवों, उस स्नायु परिपथ को प्रभावित करते हैं, जो यह निश्चित करता है कि विद्यालय में तथा बाद के जीवन में मस्तिष्क कैसे और क्या सीखता है।
- मानव मस्तिष्क बोल-चाल की भाषा (Spoken Language) को कैसे ग्रहण करता है।
- संवेग सीखने, स्मृति तथा पुर्नस्मरण को कैसे प्रभावित करते हैं।
- शाररिक क्रियाएँ एवं व्यायाम मनोदशा में सुधार कैसे करती हैं, मस्तिष्क के द्रव्यमान में कैसे वृद्धि करती हैं तथा संज्ञानात्मक कार्यप्रणाली को कैसे उन्नत करती हैं।
- किशोरावस्था में मानव मस्तिष्क में वृद्धि तथा विकास कैसे होता है तथा इस अवस्था में व्यवहार के सन्दर्भ में पुर्वानुमान लगाने में आने वाली कठिनाइयों को कैसे और अधिक अच्छे ढंग से समझा जा सकता है।
- निद्रा से वंचित होने तथा तनाव के सीखने तथा स्मृति पर क्या प्रभाव पड़ते हैं।

स्नायु विज्ञान में लगातार होती जा रही उन्नति के सन्दर्भ में अब यह आवश्यक हो गया है कि शिक्षाशास्त्र के अर्न्तगत मानव मस्तिष्क सम्बन्धी कुछ आधारभूत सूचनाओं को पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर लिया जाय। सभी शिक्षक स्नायु विज्ञानी नहीं हो सकते हैं, लेकिन सभी शिक्षक उस व्यवसाय से सम्बन्धित अवश्य हैं जिसका कार्य मानव मस्तिष्क को प्रतिदिन परिवर्तित करना है। अत: जितना अधिक वे मानव मस्तिष्क के बारे में जानेंगें उतना ही उन्हें उसे परिवर्तित करने में सफलता मिलेगी।

मानव मस्तिष्क एक अदभुत सरंचना है। इसमें अन्त सम्भावनाएँ हैं तथा यह वास्तव में रहस्यमय है। प्राप्त अनुभवों के आधार पर यह निरंतर स्वयं को परिविर्तित तथा पुर्नपरिवर्तित करता रहता है। बाहृय जगत से सूचनाएँ प्राप्त न होने की दशा में भी यह स्वंय कार्य कर सकता है। यद्यपि यह इतनी ऊर्जा भी उत्पन्न नहीं करता है कि जिससे एक छोटा सा भी बल्ब जल सके तथापि यह इस धरती का सर्वाधिक शक्तिशाली यंत्र है।

एक प्रौढ़ मानव मस्तिष्क मात्र 1.36 किलोग्राम का ही होता है। यह एक छोटे से चकोतरे के आकार का होता है तथा अखरोट की आकृति जैसा होता है। यह आपकी हथेली में समा सकता है। खोपड़ी के अन्दर यह झिल्लियों में सुरक्षित रहता है तथा रीढ़ की हड्डी के ऊपरी भाग में अवस्थित रहता है। मस्तिष्क निरंतर कार्य में लगा रहता है-

उस समय में भी जब हम सोये हुए होते हैं। यद्यपि यह हमारे शरीर के द्रव्यमान का मात्र 2 प्रतिशत के लगभग ही होता है तथापि यह हमारी कुल कैलोरी के लगभग 20 प्रतिशत का उपभोग कर लेता है।

किशोरावस्था में संवेगों के बाहुल्य को नियंत्रित करने के लिये उत्तरदायी मस्तिष्क प्रणाली पूर्ण रूप से संक्रियात्मक नहीं होती है। यह एक महत्वपूर्ण कारण है जिसकी वजह से किशोर-किशोरियॉ अपने संवेगों के अत्यधिक नियन्त्रण में रहती हैं और इसी वजह से वे अधिक जोखिम युक्त व्यवहारों की ओर उन्मुख हो जाती है।

पाठ्यक्रम सामग्री के संज्ञानात्मक संयन्त्रण में स्वयं को केन्द्रित करने में निम्नलिखित की वजह से कठिनाई होती है-

- नींद की कमी- निद्रा वंचित
- भूखे होने की स्थिति – भोजन वंचित
- प्यासे होने की स्थिति- जल से वंचित
- महत्वपूर्ण तथा संवेगों से जुड़ी घटनाएँ दीर्घ अवधि तक याद रहती हैं।

4.8 मस्तिष्क सम्बन्धी कुछ विशिष्ट तथ्य

एक अध्यापक होने के नाते मस्तिष्क सम्बंधित कुछ विशिष्ट तथ्यों को आपके लिए जानना आवश्यक है ताकि अपने विद्यार्थियों के अधिगम को आप प्रभावशाली बना सकें| ये विशिष्ट तथ्य निम्नवत हैं -

- यदि कोई मानव मस्तिष्क जन्म से लेकर दो वर्ष की आयु तक आंखों के माध्यम से दृश्यात्मक उद्दीपक प्राप्त नहीं करता है तो यह बच्चा हमेशा के लिए दृष्टिहीन हो जायेगा। जन्म से लेकर बारह वर्ष की आयु तक सुनने से वंचित रह गया तो कभी भी कोई भाषा नहीं सीख पायेगा।
- बुद्धि, सामाजिकता अथवा विखंडितमनस्कता तथा आक्रामकता सम्बन्धी आनुवांशिक प्रवृत्तियों को पालन-पोषण के तौर-तरीकों तथा वातावरण से प्रभावित किया जा सकता है।
- मानव मस्तिष्क भाषा के प्रति आनुवांशिक रूप से पूर्व निर्धारित (predisposed)होता है।
- जैसा पहले माना जाता था कि नवजात शिशु का मस्तिष्क खाली स्लेट (Clean Slate-Tabula Rasa)होता है वैसा नहीं है। मस्तिष्क के कुछ भाग विशिष्ट उद्दीपकों हेतु पूर्व निर्धारित होते हैं। बोल-चाल की भाषा के सन्दर्भ में ऐसा ही है। बोल-चाल की भाषा को प्राप्त करने की खिड़की जन्म के तुरन्त बाद से ही खुल जाती है और लगभग 10-12 वर्ष तक खुली

रहती है। इस उम्र के बाद किसी भाषा को प्राप्त करना कठिन हो जाता है। ऐसे भी प्रमाण मिले हैं कि व्याकरण को पकड़ने की मानव योग्यता के लिए भी प्रारम्भिक वर्षो में एक विशिष्ट खिड़की सम्भवत: होती है। अत: विद्यालय में किसी दूसरी भाषा के शिक्षण में देरी करना उपयुक्त नहीं है। यह कार्य जितनी जल्दी प्रारम्भ कर दिया जाय उतना ही अच्छा है।

- शिशु के मस्तिष्क में जन्म के समय से ही संख्या ज्ञान सम्बन्धी विशिष्ट भाग उपलब्ध रहता है। अंक सम्बन्धी चिन्तन के लिए पूर्ण रूप से क्रियाशील भाषा सम्बन्धी योग्यता की आवश्यकता नहीं है। मानव मस्तिष्क नये-नये उद्दीपकों को पसन्द करता है। यदि लगातार एक ही प्रकार के उद्दीपक सामने आते हैं तो मस्तिष्क की रूचि उनमें कम होती चली जाती है।
- मल्टी मीडिया युक्त वातावरण विद्यार्थियों के ध्यान को विभाजित कर देता है। विद्यार्थी एक समय में कई चीजों पर ध्यान तो देते हैं परन्तु वे किसी एक चीज पर ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाते। याद रखना और सीखना जैविक प्रक्रियाएँ हैं न कि यांत्रिक प्रक्रियाएँ।
- संवेग इन प्रक्रियाओं तथा सृजनात्मकता के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। यदि विद्यार्थी को सीखी गयी सामग्री से सृजनात्मक विचारों तथा वस्तुओं को उत्पन्न करने के अवसर प्रदान किये जायें तो इससे उन्हें समझने में अधिक आसानी होती है और वे सीखने में आनन्द प्राप्त करते हैं।
- देखने, सुनने, गंध ग्रहण करने, स्पर्श करने तथा चखने से सम्बन्धित पाँच ज्ञानेन्द्रियों के अतिरिक्त मानव शरीर में आन्तरिक संकेतों को पहचानने के लिये विशिष्ट व्यवस्था है। कान के अन्दर तथा माँसपेशियों में शारिरिक गति तथा शरीर की स्थिति को समझने के लिये भी व्यवस्था विद्यमान है।
- विद्यार्थी पाठ्यवस्तु पर ध्यान केन्द्रित कर सकें इसके लिए आवश्यक है कि वे स्वयं को शारीरिक और संवेगात्मक रूप से सुरक्षित महसूस करें।
  संवेग ध्यान केन्द्रित करने तथा सीखने को निरंतर प्रभावित करते हैं। संवेगों को बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से उपयोग में लाने को सीखना महत्वपूर्ण हैं।आवेगों को नियंत्रित करना, परितोषण को लंबित रख सकना, भावनाओं को व्यक्त कर सकना, मानव-सम्बन्धों का उचित प्रबन्धन करना तथा तनाव को कम कर सकने के सन्दर्भ में भी विद्यार्थियों को शिक्षित करना आवश्यक है।जीवन में सफलता प्राप्त कर सकने तथा योग्यताओं का सम्यक और महत्तम उपयोग करने के लिये संवेगों के उचित प्रबन्धन से विद्यार्थियों को परिचित कराना होगा।
- मानव मस्तिष्क उन सूचनाओं को ही संचय करता है जो उसके लिये अर्थपूर्ण तथा महत्व की होती है।
- विद्यार्थी सीखने से सम्बन्धित उन क्रियाओं में भागीदारी करते हैं जिनसे उन्हें सफलता मिलती है। जहॉ असफल होने का भय रहता है विद्यार्थी उन क्रियाओं से बचने का प्रयास करते हैं।

- मानव मस्तिष्क में सूचनाओं को संचित रखने की असीम क्षमता है। जिस प्रकार माँसपेशियाँ व्यायाम करने से सुदृढ़ होती हैं उसी प्रकार मस्तिष्क भी उपयोग में लाये जाने से अधिकाधिक सूचनाओं का संग्रह कर सकता है।
  स्नायु विज्ञानियों के अनुसार बुद्धि एकल इकाई (singular entity) न होकर विभिन्न प्रकार की होती है। मानव प्राणी विविध प्रकार से बुद्धिमान हो सकते हैं।
  विस्मरण सीखने में सदैव बाधक नहीं है। अधिक महत्वपूर्ण तथा अर्थपूर्ण अनुभवों को संचित रखने के लिये गैर जरूरी बातों का विस्मरण उपयोगी सिद्ध होता है।
- शैशवावस्था तथा बाल्यावस्था में बाल मस्तिष्क की बोलचाल की भाषा को ग्रहण करने की अत्यधिक क्षमता होती है। इस आयु में एक से अधिक भाषाओं को पकड़ना अपेक्षतया सरल होता है। लेकिन इस आयु में टेलीविजन उपकरण का अधिक उपयोग बाद में पढ़ने की योग्यता तथा अंक सम्बन्धी गणनाएँ करने की योग्यता को कम कर देता है।
- मस्तिष्क के ये दो गोलार्द्ध यद्यपि सूचनाओं को भिन्न-भिन्न प्रकारसे संशाधित करते हैं तथापि जटिल कार्यों को ये मिल-जुलकर सम्पादित करते हैं। मस्तिष्क गोलार्द्ध सम्बन्धी वरीयता के सन्दर्भ में अधिकतर व्यक्तियों में अन्तर पाया जाता है। कुछ दायें गोलार्द्ध को वरीयता देते हैं और कुछ बायें गोलार्द्ध को। वरीयता में इस अन्तर के कारण व्यक्तित्व, योग्यताएँ और सीखने के ढंग प्रभावित होते हैं। शिक्षक के लिये विद्यार्थी की गोलार्द्ध सम्बन्धी वरीयता की जानकारी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इस जानकारी से विद्यार्थी के सीखने के ढंग के आधार पर शिक्षण कार्य करने से विद्यार्थी को अधिक सहायता प्रदान की जा सकती है।
- यहाँ आपका यह जानना आवश्यक है कि गोलार्द्ध सम्बन्धी वरीयता का बुद्धि तथा सीखने की योग्यता से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार यह भी सत्य नहीं है कि दायें हाथ का अधिक उपयोग करने वाले व्यक्ति (Right handed people) बायें गोलार्द्ध वरीयता वाले होते हैं। बायें हाथ का अधिक उपयोग करने वाले व्यक्ति (Left handed people) दायें गोलार्द्ध वरीयता वाले होते हैं।

4.9 लिंग भिन्नता और मस्तिष्क(Gender difference and the brain)

एक ही प्रकार के कार्य को करते समय महिला और पुरूष अपने-अपने मस्तिष्क के भिन्न-भिन्न भागों का उपयोग करते हैं। महिला मस्तिष्क दो गोलार्द्धों के मध्य संवाद में बेहतर होता है तथा पुरूष मस्तिष्क प्रत्येक गोलार्द्ध के अन्दर के संवाद में बेहतर होता है। अधिकतर महिलाओं तथा पुरूषों में भाषा सम्बन्धी क्षेत्र बायें गोलार्द्ध में होता है लेकिन महिलाओं को दायाँ गोलार्द्ध भी भाषा के प्रसाधन हेतु सक्रिय रहता है। महिलाओं के मस्तिष्क में भाषा सम्बन्धी क्षेत्र में न्यूरोन्स का घनत्व पुरूषों की तुलना में अधिक होता है।

टेस्टोस्टेरोन ग्राहाकों (Testosterone receptors) से परिपूर्ण एमिगडाला (amygdala), जो संवेगात्मक उद्दीपकों के प्रति प्रतिक्रिया करता है, किशोरियों की तुलना में किशोरों में अधिक तीव्रता से

बढ़ता है और इसका पूर्ण आकार किशोरों में अधिक बड़ा होता है। किशोरों द्वारा अपेक्षतया अधिक बाह्य आक्रामक व्यवहारों को प्रदर्शित करने का सम्भवत: एक आंशिक कारण यह ही है।

संवेगात्मक घटनाओं का पूर्ण विवरण याद रख सकने की योग्यता महिलाओं में अधिक होती है जबकि ऐसी घटनाओं का मुख्य पक्ष अथवा सार याद रखने की योग्यता पुरूषों में अधिक होती है।

पूर्व किशोरावस्था की बालिकाओं में भाषा सम्बन्धी योग्यता, अर्थगणितीय गणनाएँ सम्बन्धी योग्यता तथा क्रमबद्ध कार्यों के सम्पादन की योग्यता बालकों की अपेक्षा अधिक होती है। महिलाओं में दूसरों के संवेगों को पहचानने की योग्यता अधिक होती है।
अधिकतर महिलाएँ बायें गोलार्द्ध वरीयता (left-hemisphere preference)वाली होती हैं तथा अधिकतर पुरूष दायें गोलार्द्ध वरीयता(left-hemisphere preference) वाले होते हैं।

महिलाओं की तुलना में बायें हाथ का अधिक उपयोग करने में पुरूषों की संख्या अधिक होती है। महिला मस्तिष्क मुख्य रूप से सहानुभूति के प्रति अधिक उन्मुख होता है जबकि पुरूष मस्तिष्क व्यवस्थाओं की समझ तथा निर्माण हेतु अधिक उन्मुख होता है।

यह स्मरण रखना होगा कि गोलार्द्ध सम्बन्धी वरीयता में अन्तर होते हुए भी किसी भी कार्य का सफलतापूर्वक सम्पादन किसी के द्वारा भी किया जा सकता है। इसी प्रकार व्यक्तियों अथवा समूहों को अनिवार्य रूप से गोलार्द्ध वरीयता वर्गों में विभाजित करना भी उपयुक्त नहीं है। प्राथमिक स्तर के अधिकतर विद्यालय बायें गोलार्द्ध वरीयता के अनुरूप निर्मित हैं। समय सारिणी, तथ्यों तथा नियमों के अनुसार चलाये जाने वाले ये विद्यालय मौखिक शिक्षण आधारित होते हैं। अत: बायें गोलार्द्ध वरीयता वाले विद्यार्थियों (जिनमें बालिकाओं की संख्या अधिक होती है) को ये विद्यालय अधिक पसन्द आते हैं और बालक इन विद्यालयों में स्वयं को असहज महसूस करते हैं। सम्भवत: यह भी एक कारण है कि माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में बालिकाओं की तुलना में बालकों में अनुशासनहीनता अधिक मिलती है।

4.10 मस्तिष्क एवं बोल-चाल संबंधी भाषा का विशिष्टीकरण(Spoken Language Specialization and Brain)

विश्व की लगभग 6500 बोलियों हेतु जिन स्वरों और व्यंजनों की आवश्यकता है उन सभी का उच्चारण दुनिया का प्रत्येक मानव कर सकता है।

विभिन्न बोलियों का निर्मित होना तथा तदनुरूप उच्चारण कर सकना एक बेहद जटिल प्रक्रिया है। बोले जाने वाले एक वाक्य को निर्मित कर उसका उच्चारण करने में मस्तिष्क के विभिन्न भागों (ब्रोकाज एरिया तथा वरनिकी एरिया) सहित बायें गोलार्द्ध में बिखरे तंत्रिका तंत्रों(Neural Net Works) का उपयोग होता है।

संज्ञाओं का प्रसाधन पैटर्नस् के एक सैट द्वारा किया जाता है। सर्वनामों को दूसरे अलग न्यूरल नैटवर्क्स से प्रसाधित किया जाता है। वाक्य संरचना जितनी क्लिष्ट होती है, मस्तिष्क के उतने ही अधिक भाग सक्रिय होते हैं।

एक शिशु के मस्तिष्क के न्यूरोन्स इस दुनिया की सभी भाषाओं की ध्वनियों के सन्दर्भ में प्रतिक्रिया देने की क्षमता युक्त होते हैं। प्रसिद्ध भाषा विज्ञानी नॉम चोम्सकी (Noam Chomsky)का मानना है कि मानव मस्तिष्क में वाक्य संरचना के नियमों के प्रति उपयुक्त प्रतिक्रिया करने हेतु पूर्वनियोजित परिपथ (pre programmed circuits)विद्यमान रहते हैं।

शब्दों के अर्थ पकड़ने के लिये बाल मस्तिष्क को जीवन्त मानव अर्न्तक्रिया की आवश्यकता होती है। मानव जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में बोल चाल की भाषा ग्रहण करने की योग्यता उच्चतम होती है। अत: अभिभावकों द्वारा संवाद सम्बन्धी क्रियाओं यथा बातचीत, गायन तथा पढ़ने से युक्त वातावरण बच्चों के लिये सृजित किया जाना चाहिए।

मातृ भाषा के अतिरिक्त दूसरी भाषा में बोलने की योग्यता अर्जित करने के लिये जीवन के प्रारम्भिक वर्ष सर्वाधिक उपयुक्त होते हैं। यद्यपि बाद में भी दूसरी भाषा में बोलने की योग्यता अर्जित की जा सकती है लेकिन यह कार्य कालान्तर में कठिन होता जाता है।

क्या पढ़ना एक प्राकृतिक क्रिया है?

वास्तव में नहीं ! शीघ्रता पूर्वक तथा ठीक प्रकार से बोल –चाल की भाषा अर्जित करने की योग्यता आनुवांशिक हार्डवायरिंग (genetic hardwiring) तथा विशेषीकृत सेरिब्रल भागों (specialized cerebral areas) के इस कार्य में केन्द्रित होने का प्रतिफल है। लेकिन मस्तिष्क में ऐसा कोई भाग नहीं है जो पढ़ने के लिए विशेषीकृत हो। वास्तव में पढ़ना मानव विकास की यात्रा में अपेक्षाकृत नयी क्रिया है। पढ़ना जींस के कोडेड स्ट्रक्चर (coded structure) में अभी समावेशित नहीं हुआ है, क्योंकि यह क्रिया (पढ़ना) 'अस्तित्व कौशल' (survival skill) अभी तक नहीं पायी है।

शोध परिणामों से ज्ञात हुआ है कि दूसरी भाषा में बोलने की योग्यता अर्जित करने से मातृ भाषा में बोलने की योग्यता पर कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता है। अनेक शोध कार्य बताते हैं कि वास्तव में इससे मातृभाषा में बोलने की योग्यता पर धनात्मक प्रभाव पड़ता है।

4.11 मस्तिष्क और कलाएँ (The brain and the Arts)

इस पृथ्वी ग्रह में अतीत की या वर्तमान की कोई ऐसी संस्कृति नहीं है, जिसमें कलाएँ विद्यमान न हो। जबकि कुछ शताब्दियों पूर्व तथा आज भी कई संस्कृतियॉ ऐसी हैं जिनमें 'लिखने-पढ़ने' की योग्यता विद्यमान नहीं है। वास्तव में 'कलाएँ' (जिनके अन्तर्गत नृत्य, संगीत, नाटक तथा दृश्य-कला (विजुवल आर्ट्स) आते हैं) मानव अनुभव की बुनियाद हैं तथा मानव अस्तित्व के लिये आवश्यक हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो 40000 वर्ष पूर्व के गुफा मानव समुदायों से लेकर 21 वीं शताब्दी के अत्याधुनिक मानव समूहों में ये "कलाएँ" क्यों विद्यमान रहतीं ? इनका निरन्तर मौजूद रहना सम्भवत: यह प्रदर्शित करता है कि इनका हमारे अस्तित्व में बने रहने में कुछ न कुछ योगदान अवश्य है।

4.12 कलाओं का शिक्षण क्यों आवश्यक है?

- मानव के संज्ञानात्मक, संवेगात्मक तथा शारीरिक विकास में 'कलाएँ' महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती हैं।
- इन कलाओं में संलग्न होने के अवसर प्रदान करना विद्यालयों का प्रमुख उत्तरदायित्व है।
- एक व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन में ये कलाएँ एक उच्च कोटि के मानव अनुभव प्रदान करती हैं।

छोटे बच्चे खेलने के लिए जो कुछ करते हैं- गाना, ड्राइंग, नृत्य- सभी प्राकृतिक कलाओं के रूप हैं। ये क्रियाएँ सभी ज्ञानेन्द्रियों का उपयोग करती हैं तथा मस्तिष्क को सीखने की क्रिया में सफलता प्राप्त करने में सहायता करती हैं। बच्चों के विद्यालय में आने पर इन क्रियाओं को चलते रहना चाहिए तथा उनमें यथा सम्भव वृद्धि की जानी चाहिए।

मस्तिष्क में संज्ञानात्मक विकास हेतु निश्चित भाग गीत-संगीत के लय-ताल, ड्राइंग-पेंटिंग की क्रिया में संलग्न होने से विकसित होते हैं। खेल-कूद में संलग्न होने के अवसर मिलने से शारीरिक कौशलों में वृद्धि होती है तथा इससे संवेगात्मक विकास में भी सहायता प्राप्त होती है।

चित्रकला में संलग्न होने के अवसर मिलने पर बच्चे मानव अनुभवों के विभिन्न प्रकारों को समझ सकते हैं। वे यह जान पाते हैं कि मानव अपनी संवेदनाओं को विभिन्न प्रकार से कैसे व्यक्त करते हैं। साथ ही वह चिंतन करने के जटिल एवं सूक्ष्म तरीकों को भी विकसित करने में सक्षम हो जाते हैं।

कलाओं में संलग्न होना मात्र भावात्मक ही नहीं है। कहीं बहुत गहरे इसका संज्ञानात्मक महत्व भी है। चिंतन करने हेतु आवश्यक उपादान भी इससे उपलब्ध होते हैं-

- पैटर्न की पहचान और विकास।
- देखी गयी तथा सोची गयी चीजों का मानसिक प्रतिनिधित्व।
- सांकेतिक दृश्यों-कल्पित वर्णनों की समझ।
- बाह्य जगत का सूक्ष्म अवलोकन।
- जटिलता से अर्मूतता की ओर उन्मुख होना।

'कला' सीखने के अनुभवों को प्रतिदिन के कार्यों के जगत से जोड़ती हैं। विचारों को उत्पन्न करने की योग्यता, जीवन में विचारों को लाने तथा दूसरों तक उन्हें पहुँचाने की योग्य ता कार्यस्थल में सफलता प्राप्ति हेतु महत्वपूर्ण हैं।

संगीत (Music)

संगीत से आनन्द प्राप्त करना मानव का जन्मजात गुण है। जीवन के प्रारम्भिक वर्षों से ही इस गुण की झलक मिलने लगती है।

मस्तिष्क में संगीत के लिये विशिष्ट स्थान निर्धारित है। संगीत के प्रति प्रतिक्रिया जन्मजात है तथा इसके मजबूत जैविक आधार हैं।संगीत बौद्धिक तथा संवेगात्मक उद्दीपन कर मस्तिष्क पर शक्तिशाली प्रभाव डालता है। संगीत सुनने से पुर्नस्मरण, ध्यान, कल्पनशीलता पर धनात्मक प्रभाव पड़ता है।
अन्य अकादमिक विषयों की तुलना में गणित का संगीत से सीधा सम्बन्ध है। संगीत की ट्रेनिंग मस्तिष्क के उन्हीं भागों को क्रियाशील करती है जो गणितीय प्रक्रियाओं के प्रशाधन में संलग्न होते हैं। गणित में उपलब्धि तथा संगीत शिक्षण के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध है।पढ़ने की योग्यता तथा संगीत शिक्षण के मध्य भी घनिष्ठ सम्बन्ध पाया गया है।

व्यायाम (खेलकूद)

संज्ञानात्मक सीखने के लिए शारीरिक कसरत महत्वपूर्ण है। एक परीक्षा में सम्मिलित होने से पहले हल्के व्यायाम उपयोगी है। कुछ ही समय का हल्का-फुल्का व्यायाम भी मस्तिष्क की क्रियाशीलता में वृद्धि कर देता है। पौष्टिक भोजन, संतुलित आहार, ग्लूकोज से परिपूर्ण फल, पर्याप्त मात्रा में पानी, सीखने की क्रिया को सहज, सरल तथा सुगम बना सकते हैं।

4.13 सारांश

अधिगम के न्यूरोदैहिक आधार को समझने हेतु निम्न तथ्यों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है –

१. **शरीर रचनात्मक प्रविधियों पर आधारित न्यूरोदैहिक सबूतें (Neurophysiological evidences based upon anatomical techniques):** इस प्रविधि में न्यूरो वैज्ञानिक मस्तिष्क के कुछ अंश के क्षतिग्रस्त होने के आधार पर या उनके विलोपन के आधार पर प्रभावित व्यवहार का अध्ययन करते हैं| इसमें मूलतः दो तरह से अधिगम के न्यूरोदैहिकी (neurophysiology) का अध्ययन किया जाता है – घाव या चोट (lesion) के आधार पर तथा विभक्त मस्तिष्क के अध्ययन (split brain studies) के आधार पर |

२. **वैद्युतीय प्रविधियां पर आधारित न्यूरोदैहिक सबूतें (Neurophysiological evidences based upon electrical techniques):** इस प्रविधि में मस्तिष्क के कुछ भागों को वैद्युतीय प्रवाह द्वारा उत्तेजित करके या मस्तिष्कीय सतह पर मौजूद वैद्युतीय क्रियाओं का रिकार्ड करके उनका अधिगम पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है तथा इसके न्यूरोदैहिक आधार का पता लगाया जाता है|

३. **रासायनिक प्रविधि पर आधारित न्यूरोदैहिक सबूतें (Neurophysiological evidences based upon chemical techniques):** कुछ रसायनिक संरचनाएं ऐसी हैं जिनसे अधिगम तथा स्मृति की प्रक्रिया संपन्न होती हैं| इनमें सबसे महत्वपूर्ण डी एन ए (DNA), आर एन ए (RNA) तथा प्रोटीन हैं | नवीनतम शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि किसी सूचना को सीखने में या उसे स्मृति में संचित करने में ये तीनों तत्त्व सम्मिलित होते हैं|

   आयुर्विज्ञानके उन्नत उपकरणों ने जीवन्त तथा अधिगम में संलग्न मानव मस्तिष्क के वैज्ञानिक विश्लेषण को सम्भव कर दिया है।अधिगम के जैविक शास्त्र (Biology of Learning) से सीखने की प्रक्रिया को समझने, उसे सहज-सरल-सुगम बनाने की विधियों को विकसित करने में

सफलता प्राप्त होने की अपार सम्भावनाएँ हैं। मस्तिष्क प्राप्त सूचनाओं के आधार पर अपने को निरंतर पुर्नसंगठित करता रहता है। यह प्रक्रिया स्नायुनमनीयता कहलाती है।

स्नायु विज्ञान में लगातार होती जा रही उन्नति के सन्दर्भ में अब यह आवश्यक हो गया है कि शिक्षाशास्त्र के अर्न्तगत मानव मस्तिष्क सम्बन्धी कुछ आधारभूत सूचनाओं को पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर लिया जाय। जितना अधिक वे मानव मस्तिष्क के बारे में जानेंगें उतना ही उन्हें उसे परिवर्तित करने में सफलता मिलेगी। एक प्रौढ़ मानव मस्तिष्क मात्र 1.36 किलोग्राम का ही होता है। यह एक छोटे से चकोतरे के आकार का होता है तथा अखरोट की आकृति जैसा होता है। मस्तिष्क निरंतर कार्य में लगा रहता है- उस समय में भी जब हम सोये हुए होते हैं। यद्यपि यह हमारे शरीर के द्रव्यमान का मात्र 2 प्रतिशत के लगभग ही होता है तथापि यह हमारी कुल कैलोरी के लगभग 20 प्रतिशत का उपभोग कर लेता है।

यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि मस्तिष्क के अन्दर की दो सरंचनाएँ जो दीर्घ अवधि की स्मृति के लिए उत्तरदायी होती हैं वे मस्तिष्क के संवेगात्मक भाग में स्थित होती हैं। मस्तिष्क कोशिकाएँ ईधन के रूप में ऑक्सीजन तथा ग्लूकोज का उपयोग करती हैं। मस्तिष्क का कार्य जितना अधिक चुनौतीपूर्ण होता है मस्तिष्क उतने ही अधिक ईधन का उपयोग करता है।

जल, मस्तिष्क की क्रियाशीलता के लिये आवश्यक है। तंत्रिका संकेतों के मस्तिष्क में प्रवाह हेतु शरीर को जल की आवश्यकता होती है। शरीर में जल की कमी से इन संकेतों की गति तथा प्रभावशीलता कम हो जाती है। ग्लूकोज तथा जल मस्तिष्क की क्रियाशीलता हेतु आवश्यक हैं।

मस्तिष्क के दो गोलार्द्ध प्राप्त सूचनाओं को अलग-अलग प्रकार से संश्लेषित-विश्लेषित करते हैं। वास्तव में मानव मस्तिष्क कुछ इकाइयों का एक समूह है। इन इकाइयों द्वारा प्राप्त सूचनाओं को प्रशाधित किया जाता है। बोलने की क्रिया, आंकिक गणनाओं की क्रिया, चेहरों को पहचानने की क्रिया हेतु मस्तिष्क में अलग-अलग इकाइयाँ विद्यमान हैं। प्राप्त सूचनाओं को मस्तिष्क एक एकल इकाई के रूप में प्रशाधित नहीं करता है और न ही सभी विभिन्न इकाइयाँ अलग-अलग प्रकार की सूचनाओं को प्रशाधित कर सकती हैं।

मस्तिष्क गोलार्द्ध सम्बन्धी वरीयता के सन्दर्भ में अधिकतर व्यक्तियों में अन्तर पाया जाता है। कुछ दायें गोलार्द्ध को वरीयता देते हैं और कुछ बायें गोलार्द्ध को। वरीयता में इस अन्तर के कारण व्यक्तित्व, योग्यताएँ और सीखने के ढंग प्रभावित होते हैं।

मस्तिष्क में संज्ञानात्मक विकास हेतु निश्चित भाग गीत-संगीत के लय-ताल, ड्राइंग-पेंटिंग की क्रिया में संलग्न होने से विकसित होते हैं। खेल-कूद में संलग्न होने के अवसर मिलने से शारीरिक कौशलों में वृद्धि होती है तथा इससे संवेगात्मक विकास में भी सहायता प्राप्त होती है।

4.14 शब्दावली

- आर्युविज्ञान- चिकित्सा शास्त्र

- अधिगम के जैविक शास्त्र– अधिगम प्रक्रिया को समझने हेतु जीव विज्ञान के शोध निष्कर्ष
- स्नायु विज्ञान- मानव मस्तिष्क सहित समस्त शरीर के अंतर्गत तंत्रिका तंत्र की संरचना व प्रकार्य का अध्ययन करने वाला विज्ञान।
  मस्तिष्क गोलार्द्ध – मस्तिष्क का दो भागों यथा दायाँ व बायाँ भाग
- महासंयोजिका(Corpus Callosum)- मस्तिष्क के दायें व बायें गोलार्द्ध के मध्य समन्वय स्थापित करने वाला भाग।
- दायें गोलार्द्ध वरीयता- मस्तिष्क के गोलार्द्धों में दायें गोलार्द्ध का अधिक क्रियाशील होना।
- बायें गोलार्द्ध वरीयता- मस्तिष्क के गोलार्द्धों में बायें गोलार्द्ध का अधिक क्रियाशील होना।

4.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. अधिगम के न्यूरोदैहिक आधार को स्पष्ट कीजिये|
2. मस्तिष्क एवं बोल-चाल संबंधी भाषा का विशिष्टीकरण की व्याख्या कीजिये|
3. मस्तिष्क के दो गोलार्द्ध कौन से हैं? मस्तिष्क के दो गोलार्द्धों के मध्य अंतर स्पष्ट कीजिए। बोल-चाल सम्बन्धी भाषा का विशिष्टीकरण पर एक टिप्पणी लिखिए।
4. एक ही प्रकार के कार्य को करते समय महिला और पुरूष अपने-अपने मस्तिष्क के भिन्न-भिन्न भागों का उपयोग करते हैं। स्पष्ट करें।
5. कलाओं का शिक्षण क्यों आवश्यक है इसकी व्याख्या कीजिए।

4.16 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- Gazzaniga, (1998). As mentioned in the book *How the brain learns*.
- Sousa, D.A. (2006). *How the brain learns*. California: Corwin Press.
- Toman, W. (December 1970) *Birth order rules all*. Psychology Today.
- Ramachandran, V. S. (2011)*The Tell-Tale Brain: A Neuroscientist's Quest for What Makes Us Human*
- Shenk, David (2010)*The Genius in All of Us,*Anchor Books, New York.
- Goleman, Daniel (1995) Emotional Intelligence , Bloomsbury Books

इकाई - 5

अधिगमकर्ता का विकास एवं अधिगम प्रक्रिया

Development of a learner and Learning process

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 विकास का अर्थ एवं अधिगम से उसका संबंध

5.4 विकास को प्रभावित करने वाले कारक

5.5 विकास के सिद्धान्त

5.6 विकास की विभिन्न अवस्थाएँ

5.7 विकास के विभिन्न आयाम

5.8 शारीरिक विकास

5.8.1 शैशवावस्था में शारीरिक विकास

5.8.2 बाल्यावस्था में शारीरिक विकास

5.8.3 किशोरावस्था में शारीरिक विकास

5.9 संज्ञानात्मक विकास

5.9.1 संज्ञानात्मक विकास का अर्थ

5.9.2 जीन पियाजी का संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त

5.9.3 ब्रूनर का संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त

5.10 सामाजिक - सांस्कृतिक विकास

5.10.1 सामाजिक - सांस्कृतिक विकास का अर्थ

5.10.2 सांस्कृतिक एवं सामाजिक विकास के अभिकरण

5.10.3 शैशवावस्था में सांस्कृतिक एवं सामाजिक विकास

5.10.4 बाल्यावस्था में सांस्कृतिक एवं सामाजिक्क विकास

5.10.5 किशोरवस्था में सांस्कृतिक एवं सामाजिक विकास

5.11 एरिक्सन का मनोसामाजिक विकास का सिद्धान्त

5.12 नैतिक विकास

5.12.1 नैतिक मूल्यों का विकास

5.12.2 विभिन्न अवस्थाओं में नैतिक विकास

5.12.3 नैतिक विकास में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त

5.13 कोहलबर्ग का नैतिक विकास सिद्धान्त

5.14 गत्यात्मक या क्रियात्मक विकास

5.14.1 गत्यात्मक विकास का अर्थ

5.14.2 विभिन्न अवस्थाओं में गत्यात्मक विकास

5.15 सारांश

5.16 शब्दावली

5.17 स्वमूल्यांकन प्रश्न

5.18 निबंधात्मक प्रश्न

5.19 संदर्भ ग्रंथ

5.1 प्रस्तावना

प्राय: अपने बालकों के बारे में अध्यापकों और अभिभावकों को यह कहते सुना होगा कि ओह! अमुक कार्य तो अत्यन्त कठिन हे और रमेश या नरेश (बच्चों के नाम) की उम्र बालकों के लिए नही है । कभी कभी आपने यह भी देखा होगा कि कुछ बालक, जिनको कोई कार्य करने के लिए सौपा गया था और आप यह समझते है कि अमुक अवस्था में बालक अमुक कार्य को अवश्य कर लेगे, जब वे उस कार्य में असफल होते हैं तो आप कहते है कि इन बालको का विकास अपनी उम्र के अनुरूप नहीं हुआ। उदाहरण के लिए, यदि आप 2 वर्ष के बालक को चलने में असमर्थ देखते हैं तो कहते हैं कि बालक का विकास सामान्य से कम हुआ है, क्योंकि सामान्यत: सभी बालक 2 वर्ष की उम्र से ही पैरो चलना सीख लेते है। किन्तु यदि वह पैरोंचल सकता है और उस उम्र में तेज दौड़ पाता तो आप उसे अल्प विकसित नहीं समझेंगे, क्योंकि अभी उसका इतना विकास नहीं हुआ कि वह गंभीर विषय को समझ सके। इसलिए शिक्षा के कार्यक्रमों को निर्धारित करते समय आप बालक की उम्र और उसके विकास का ध्यान रखते है। यह शिक्षा मनोविज्ञान का कार्य है कि आपको अन्तदृष्टि प्रदान करे, जिससे आप बालक के विकास की अवस्थाओं और उसके द्वारा विविध विषयों को समझने की क्षमता का सही सही आकलन कर सके।

प्रस्तुत अध्याय में इन्हीं का विवेचन किया जायेगा।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- विकास का अर्थ और उसके सिद्धांत को जान सकेंगे |
- विकास और अधिगम में संबंध समझ सकेंगे |
- शारीरिक विकास को समझ सकेंगे |
- संज्ञात्मक विकास का अर्थ और विभिन्न सिद्धांतों का अध्ययन कर सकेंगे |
- भाषा विकास का अर्थ और विभिन्न अवस्थाओं में भाषा विकास को समझ सकेंगे |
- सामाजिक और सांस्कृतिक विकास को समझ सकेंगे |
- गत्मात्म्क विकास का अर्थ और विभिन्न अवस्थाओं में गत्मात्म्क विकास को समझ सकेंगे |

5.3 विकास का अर्थ एवं अधिगम से उसका संबंध

विकास का अर्थ एवं अवधारणा - विकास शब्द का प्रयोग एक निश्चित समय में हुए गुणात्मक बदलावों के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए, बालक बैठना शुरू करता है और धीरे धीरे बोलना शुरू करता है। ये उसमें गुणात्मक बदलाव हैं। वास्तव में वृद्धि और विकास दोनों एक दूसरे पर आधारित हैं। विकास के बिना वृद्धि नहीं हो सकती और वृद्धि के बिना विकास असंभव है। विकास शब्द अधिक व्यापक है और यह लगातार चलने वाली एक प्रक्रिया है। एक निश्चित आयु स्तर पर पहुंचकर व्यक्ति की वृद्धि रूक जाती है जबकि विकास चलता है। 18 या 19 वर्ष की आयु के बाद लम्बाई का बढ़ना रूक जाता है। लेकिन व्यक्ति का मानसिक, सामाजिक और संवेगात्मक विकास चलता रहता है।

प्राय: वृद्धि और विकास शब्दों का प्रयोग एक दूसरे के स्थान पर किया जाता है। वास्तव में वे दो भिन्न अवधारणाऐं हैं। ये दोनों एक दूसरे पर आधारित हैं और एक के बिना दूसरा नहीं हो सकता है। वृद्धि का संबंधशरीर में होने वाले विकास से है।

विकास शब्द को अलग अलग तरीके से परिभाषित किया गया है।

वैबस्टर शब्दकोश के अनुसार, विकास परिवर्तनों की एक श्रृंखला है जो किसी व्यक्ति के भ्रूण अवस्था से परिपक्वता तक पहुंचने के दौरान होता है।''

(Development is the series of changes which an undergoes in passing from an embryonic state of maturity)

जर्सिल्ड, टेलफोर्ड और सॉरी के अनुसार, विकास शब्द से अभिप्राय उन जटिल प्रक्रियाओं के समूह से है जिनसे निषेचित अंड से एक परिपक्व व्यक्ति का उदय होता है।''

(Development refers to the complex set processes involved in the emergence of a matures functioning organism from a fertilized ovum.)

हरलॉक के अनुसार, विकास परत की वृद्धि तक ही सीमित नहीं होता, बल्कि यह परिपक्वता के लक्ष्य की और परिवर्तनों की एक प्रगतिशील है।''

(Development is not limited to growing layer instead it consists of a progressive series of changes towards the goal of maturity)

विकास की प्रक्रिया को क्रमिक माना जाता है, क्योंकि इसके अन्तर्गत आने वाले सभी परिवर्तनों क्रमबद्ध होते हैं तथा कोई एक निश्चित परिवर्तन के पहले रेंगना सीखता है, फिर बैठना और इसके पश्चात् चलना शुरू करता है। अत: इन क्रियाओं का एक निश्चित क्रम होता है।

बालक का विकास गर्भावस्था से ही आरंभ हो जाता है। बालक के 0 से 12 तक की आयु में होने वाले विभिन्न परिवर्तन मनोविज्ञज्ञन के अध्ययन के अन्तर्गत आते हैं। इसमें शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, गत्यात्मक, सामाजिक, संज्ञानात्मक विकास का अध्ययन किया जाता है। बालक विकास के अध्ययन का महत्व शिक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है क्योंकि बाल केन्द्रित शिक्षा में बालक की आयु, मानसिक अवस्था, क्षमता योग्यताओं, रूचियों को दृष्टिगत रखते हुए शिक्षण कराया जाना अपेक्षित है। अर्थात् अधिगम प्रक्रिया बालक के विकास पर निर्भर करती है। बाल किवास की अवस्थाओं को निम्नलिखित प्रकार से विभक्त कर सकते है।

अवस्थाऐं	अनुमानित काल
1 गर्भावस्था	0 से 9 माह जन्म तक
2 शैशवावस्था	जन्म से 3 वर्ष
3 पूर्व बाल्यावस्था	3-6 वर्ष
4 उत्तर बाल्यावस्था	6-12 वर्ष
5 किशोरावस्था	12-18 वर्ष
6 युवावस्था	18-50 वर्ष
7 वृद्धावस्था	50 के पश्चात्

विकास की विशेषताएं - उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर विकास की निम्नलिखित विशेषताऐं है -

1 विकास एक अनवरत प्रक्रिया है - विकास की कोई निश्चित सीमा नहीं होती है अपितु यह किसी न किसी दशा में अनवरत रूप से चलता रहता है। उदाहरण के लिए वृद्धावस्था में मनुष्य की शारीरिक वृद्धि तो रूक जाती है परन्तु उका सामाजिक व संवेगात्मक विकास होता रहता है।

2 विकास के सभी पहलू परस्पर संबंद्ध होते हैं - विकास के विभिन्न पहलू परस्पर एक दूसरे से संबंधितहोते हैं। उन्हें एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए जिस व्यक्ति का संवेगात्मक विकास उचित दिशा में नहीं होता है, उसमें नकारात्मक संवेगों जैसे ईर्ष्या, क्रोध, आदि की प्रधानता होता है। ऐसे व्यक्ति का सामाजिक विकास भी अवरूद्ध हो जाता है। कभी कभी एक प्रकार का विकास अधिक होता है तो दूसरे प्रकार का विकास कम हो जाता है। ऐसी दशा में दोनों प्रकार के विकास में ऋणात्मक संबंध होता है। जैसे कुछ व्यक्तियों का जैसे जैसे बौद्धिक विकास होता है, वे अपने अध्ययन में इतने व्यस्त हो जाते हैं कि उनका लोगों से मिलना जुलना बहुत कम हो जाता है परिणामत: उनका सामाजिक विकास बहुत कम हो जाता है। अत: सभी प्रकार एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

3 विकास की गति समान नहीं होती - आमतौर पर यह देखा गया है कि जिन बच्चों का मानसिक विकास जितना अधिक होगा, उनका शारीरिक विकास उतना ही अवरूद्ध होगा। क्योंकि ज्यों ज्यों बच्चे मानसिक कार्यों में उलझते हैं, उन्हें शारीरिक कार्य करने के लिए कम अवसर मिलनते हैं। मंद बुद्धि बालकों का विकास शारीरिक रूप से अधिक होता है और मानसिक रूप से कम।

4 सभी पहलुओं का विकास समान गति से नहीं होता - व्यक्ति के विकास के जितने भी पहलू हैं उनका विकास समान गति से नहीं होता। जैसे किसी भी बालक के सामाजिक विकास की जो गति है, वह गति संवेगात्मक या नैतिक विकास की भी हो, यह आवश्यक नहीं। किसी में मानसिक विकास तीव्र होता है, किसी भी शारीरिक व किसी में अन्य प्रकार का विकास तीव्र हो सकता है।

5.4 विकास को प्रभावित करने वाले कारक

आमतौर पर बालक के विकास के निम्नलिखित कारक प्रभावित करते हैं -

1- **बुद्धि -** बालक के विकास पर बुद्धि का अधिक प्रभाव पड़ता है। यदि बालक बुद्धिमान है तो उसमें नवीन क्रियाओं को सीखने की तत्परता दिखाई देगी और उसमें परिपक्वता शीघ्र आएगी इसके विपरित मन्द बुद्धि बालकों का शारीरिक विकास भले ही हो जाए परन्तु उसमें सामाजिक, सांवेगिक, नैतिक, मानसिक विकास की गति बहुत धीमी होती है।

2- **यौन -** बालक के विकास में यौन का महत्वपूर्ण योग होता है। इसका प्रभाव बालक के शारीरिक तथा मानसिक विकास पर पड़ता है। जन्म के समय लड़के लड़कियों से आकार में बड़े होते है। लड़कियों की वृद्धि तीव्र गति से होती है। यौन परिपक्वता लड़कियों में शीघ्र होती है।

3- **ग्रंथियों का स्त्राव -** ग्रंथियों के अध्ययन ने विकास के क्षेत्र में नवीन परिणाम प्रस्तुत किए हैं बालक के विकास पर ग्रंथियों के अन्त:स्त्राव का प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ पैराथायराइड ग्रंथियों द्वारा रक्त में कैल्शियम का परिभ्रमण होता है। थायरॉक्सीन जोकि थॉयराइड ग्रंथि से निकलता है। शारीरिक वृद्धि के लिए आवश्यक होता है। इसकी कमी से बालक मूढ़ हो जाता है। थायमस ग्रंथि तथा मस्तिष्क पर स्थित पीनियल ग्रंथि से होने वाले स्त्राव विकास करते हैं इसमें दोष आने से बालक के यौन परिपक्वता शीघ्र हो जाती है।

4- **पोषण -** बालक के विकास पर पोषण का पूरा प्रभाव पड़ता है। संतुलित आहार से बालक का संपूर्ण विकास होता है। विटामिन, प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट, लवण आदि ऐसे तत्व हैं जो शरीर तथा मस्तिष्क दोनों के संतुलित विकास में सहयोग देते हैं।

5- **शुद्ध वायु एवं प्रकाश -** जीवन के आरंभिक दिनों में बालक को शुद्ध तथा वायु तथा प्रकाश की नितान्त आवश्यकता होती है तथा प्रकाश बालक के विकास के लिए अनिवार्य तत्व है। इनके अभाव से शरीर अक्षम हो जाता है।

6- **श्रोग एवं चोट -** बालक के सिर में चोट लगने से उसका मानसिक विकास अवरूद्ध हो जाता है। यदि माता गर्भकाल में धूम्रपान तथा औषधि के रूप में टॉक्सिन का सेवन कर रही है तो गर्भ में स्थित बालक पर इसका दुष्प्रभाव पड़ता है।

7- **प्रजाति -** प्रजाति तत्वों का प्रभाव बालक के विकास पर देखा गया है। उदाहरणार्थ - भूमध्य सागरीय तट पर रहने वाले बालकों का शारीरिक विकास शेष यूरोप के बालकों की अपेक्षा शीघ्र होता है। नीग्रो बच्चे श्वेत की अपेक्षा 80 प्रतिशत परिपक्तता शीघ्र प्राप्त करते है।

8- **संस्कृति -** डेनिस ने बालकों के विकास पर संस्कृति के प्रभाव का अध्ययन किया। उसने अमेरिका के रेड इण्डियन बच्चों तथा शेष सामान्य अमेरिका बच्चों का अध्ययन किया। उसने यह परिणाम निकाला कि सांस्कृतिक भिन्नता होते हुए भी रेड इण्डियन बच्चों की सामाजिकता तथा गत्यात्मक अनुक्रियाएं समान रही शर्म, भय आदि संवेगों का विकास समान आयु स्तर पर हुआ।

9- **परिवार में स्थान -** बालक का विकास इस बात पर निर्भर है कि परिवार में उसकी स्थिति क्या है? प्राय: देखा जाता है कि प्रथम एवं अंतिम बालक को विशेष प्यार से पाला जाता है। बड़े भाई से छोटे भाई बहन जल्दी सीखते हैं।

5.5 विकास के सिद्धान्त

विकास के सामान्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं -

1- **ऊपर से नीचे की ओर -** वृद्धि और विकास ऊपर से नीचे की तरफ चलते हैं। इसका अर्थ यह है कि विकास सिर से पैरों की तरफ होता है। सबसे पहले गर्भ में बालक का सिर विकसित होता है और उसके बाद धीरे धीरे नीचे के अंग विकसित होते चले जाते हैं। पैदा होने के बाद भी बालक का ऊपरी अंगों पर पहले नियंत्रण होता है। जैसे बालक मुस्कराना, नजर घुमाना आदि पहले सीखता है और चलना बाद में सीखता है।

2- **अंदर से बाहर की ओर -** इसका अर्थ है विकास शरीर के एक केन्द्र से शुरू होकर बाहर की तरफ फैलता जाता है। किसी वस्तु को पकड़ने के लिए एक बालक अपने कंघों और कोहनी का प्रयोग पहले शुरू कर देता है और उसे उंगलियों का प्रयोग करना बाद में आता है।

3- **विकास एक सतत प्रक्रिया है -** विकास एक सतत प्रक्रिया है। जिस प्रकार एक कली फूल बनते हुए दिखाई नहीं देती, उसी प्रकार शरीर में बढ़ोतरी होती हुई नहीं दिखाई देती है लेकिन विकास धीरे धीरे चलता रहता है।

4- **विकास श्रृंखलाबद्ध होता है -** विकास हमेशा एक श्रृंखला में होता है। जैसे बच्चा पहले बैठना सीखता है, फिर घुटनों के बल चलना और उसके बाद चलना शुय करता है। पहले वह एक ध्वनि निकालता है, उसके बाद बोलना सीखता है फिर पूवे वाक्य बोलता है।

5- **सामान्य से विशिष्ट की ओर -** बच्चे की शुरूआती गतिविधियां सामान्य असंयोजित होती हैं। एक समय अवधि के बाद ये गतिविधियां विशिश्ट बनती हैं। एक शिशु प्राय: ऐसी गतिविधियां सीखता है जिसका कोई अर्थ नहीं होता। उदाहरण के लिए, एक नवजात शिशु अंगूठा चूसना जल्दी ही सीख लेता है जो बाद में एक विशिष्ट गतिविधि बन जाती है जब वह मां के स्तनों से भोजन ग्रहण करता है।

6- **आसान से कठिन की ओर -** विकास हमेशा आसान से कठिन की ओर चलता है। बालक समस्याओं के समाधान के लिए ज्ञानात्मक कौशल एवं भाषा का प्रयोग करते हैं, जैसे यह पता करना है कि दो वस्तुएं एकसमन किस प्रकार हैं और भिन्न किस प्रकार हैं वस्तुओं का वर्गीकरण कर पाना एक ज्ञानात्मक कौशल है। एक बालक यह ज्ञात कर पाना कि एक सेब और एक संतरा किस प्रकार एक दूसरे के समान हैं, यह एक साधारण कौशल है। वह उनके रंग के आधार पर उसमें असामानता का पता लगा लेता है और उनके आाहार के आधार पर वह उनमें समानता का पता लगा लेता है। ज्यों ज्यों बच्चे में और अधिक मानसिक विकास होता जाएगा, वह वस्तुओं के अमूर्त गुणों के आधार पर भी वर्गीकरण करना सीख जाता है। अब वह और अधिक कठिन संबंधोंको पहचानना शुरू कर देता है।

7- **विकास में विभिन्नता होती है** - विकास कभी भी एक समान रूप से नहीं होता। प्रत्येक बच्चे का विकास विभिन्न गतियों से होता है। लड़के और लड़कियों में वृद्धि और विकास की दर भिन्न होती है। शरीर के विभिन्न अंगों के विकास की दर में भी भिन्नता होती है। जैसे सिर के बाल तेजी से बढ़ते हैं और नाखून धीमी गति से बढ़ते हैं। विकास के परिवर्तन सीधी रेखा में नहीं चलते। बेशक शारीरिक और मानसिक विकास सतत रूप से चलता रहता है लेकिन यह एक समान कभी नहीं होता। पैर, हाथ, और नाक किशोरावस्था की शुरूआत में ही विकसित हो जाते है, लेकिन कंधे बाद में विकसित होते है। रचनात्मक चिंतन तेजी से विकसित होता है, जबकि तर्कशक्ति धीरे धीरे विकसित होती है। अत: विकास में असमानता पाई जाती है।

8- **विकास संचयी होता है -** विकास एक संचयी प्रक्रिया है। कुछ बदलाव ऐसे होते हैं, जो दिखाई नहीं देते और उदासीन लगते हैं। ये अचानक दिखाई नहीं देते। बच्चे का पहला शब्द और उसका पहला कदम उसमें चल रही संचयी प्रक्रिया का परिणाम होते हैं। वह इसके लिए गुप्त रूप

से तैयारी कर रहा होता है। इस प्रकार पहले स्तर की वृद्धि और विकास अगले स्तर पर वृद्धि और विकास के लिए महत्वपूर्ण होता है।

9- **विकास वंशानुक्रम और वातावरण का प्रतिफल है** - वृद्धि और विकास वंशानुक्रम और वातावरण के साथ प्रतिक्रिया का परिणाम है। अधिकांश मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि प्रत्येक बालक गर्भ से ही वंशानुक्रम से कुछ योग्यताएं और क्षमताएं लेकर पैदा होता है, जिनका विकास वह जन्म के बाद वातावरण के साथ अंतक्रिया करके विकसित करता है।

10- **विकास सहसंबंधात्मक होता है** - गैसेल के अनुसार, मानसिक और शारीरिक विशिष्टताओं के बीच सहसंबंध होता है। बच्चे की भाषा का विकास सीधा उसके जीभ, दांत, होंठ आदी आवाज के अंगों से संबंधित होता है। उसका यौन व्यवहार उसकी यौन ग्रंथियों की परिपक्वता पर निर्भर करता है। व्यक्ति के जीन पर की गई खोजों से पता चलता है कि व्यक्ति के गुणों में धनात्मक सहसंबंध होता है।

5.6 विकास की विभिन्न अवस्थाएँ

किसी भी बालक के विकास की कहानी उसके मां के गर्भ में आने के साथ ही आरंभ हो जाती है। एक बीज के अंकुर की भांति निकलकर धीरे धीरे एक छोटे से पौधे का रूप धारण कर लेता है और उसके विकास का सिलसिला निरंतर बढ़ता रहता है और विकास का नया रूप लेता रहता है।

बालक का जीवन यात्रा को भली भांति समझने के लिए हम विकास की अवस्था तथा जीवन अवधि के आधार पर इसका उल्लेख करते हैं -

क्र.सं.	विकास की अवस्था	जीवन अवधि
1.	गर्भावस्था	गर्भधारण से जन्म तक (9माह)
2	शैशयावस्था	जन्म से 3 वर्ष की आयु तक
3	1- पूर्व बाल्यावस्था	3 वर्ष की आयु से 12 वर्ष की आयु तक
	2- उत्तर बाल्यावस्था	3 वर्ष की से 6 वर्ष की आयु तक
	किशोरवस्था	6 वर्ष से 12 वर्ष की आयु तक
4		12 वर्ष से लेकर 18 वर्ष तक अर्थात् परिपक्वता धारण करने तक
	युवावस्था	
5	प्रौढ़ावस्था	18 वर्ष की आयु से लेकर 50 वर्ष तक
6		50 वर्ष से मृत्यु तक

उपरोक्त विकास की अवस्था एवं जीवन अवधि की तालिका के आधार पर यद्यपि पूर्ण रूप से दावा नहीं किया जा सकता कि प्रत्येक अवस्था में बालक के जीवनकाल को आयु के आधार पर ऊपर सुझाए गए तरीके के आधार पर विभक्त किया जा सकता है।

5.7 विकास के विभिन्न आयाम

विकास प्रक्रिया के तहत एक बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास विभिन्न स्तर पर होता है। उदाहरण के लिए शिशुकाल, बाल्यकाल, किशोरावस्था व प्रौढ़ावस्था आदि। प्रत्येक स्तर की अपनी विशेषताएं होती है। अध्यापकों और माता पिता को इन विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए बालक के विकास के लिए उचित वातावरण उपलब्ध करना चाहिए। प्रत्येक स्तर पर मानव का विकास विभिन्न आयामों में एक ही समय में होता है और ये सभी आयाम विकास के अन्य आयामों के अन्य आयामों से संबंधित होते हैं। विकास के विभिन्न आयाम निम्नलिखित होते है -

1 शारीरिक विकास	शारीरिक विकास व्यक्ति की लम्बाई, भार और उसके शारीरिक अंगों के विकास से संबंधितहोता है।
2 गत्यात्मक विकास	गत्यात्मक विकास का संबंधपेशीय विकास और शरीर के अंगों के आपसी तालमेल से है।
3 संज्ञानात्मक विकास	इसका संबंधमानसिक विकास से है।
4 सामाजिक विकास	इसका संबंधसामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण का व्यक्तित्व पर पड़ने वाले प्रभाव से है।
5 संवेगात्मक विकास	संवेगात्मक विकास का संबंधव्यक्ति के विभिन्न संवेगों और उसके विकास के लिए उपयुक्त समय से है।
6 भाषात्मक विकास	इस प्रकार के विकास का संबंध बच्चों के द्वारा भाषा को सीखने और आयु के अनुसार भाषा के विकास से है।
7 व्यक्तित्व विकास	इसका संबंधव्यक्तित्व के गुणों के विकास से है।
8 नैतिक विकास	नैतिक विकास का संबंध बालक में गलत और सही कार्य के सम्प्रत्यय के विकास से है। इसमें जीवन मूल्य, सामाजिक नियम और सही न्याय के विचार को भी शामिल किया जाता है।
9 व्यावसायिक विकास	इसका संबंध व्यक्ति द्वारा जीवनयापन के लिए सही व्यवसाय के चुनाव से है।

5.8 शारीरिक विकास

शारीरिक विकास का अर्थ - स्वास्थ्य मस्तिष्क स्वस्थ शरीर में निवास करता है। बालक के लिए शारीरिक विकास भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि मानसिक विकास। बालक के लिए शारीरिक

रचना एवं उसके विकास का ज्ञान होना भी आवश्यक है क्योंकि मानव व्यवहार को निर्धारित करने वाले तत्वों में शरीर भी महत्वपूर्ण तत्व है।

क्रो एवं क्रो ने शारीरिक विकास के महत्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ' बालक प्रथमत: एक शरीरधारी प्राणी है। उसका व्यवहार एवं अभिवृत्तियों का विकास उसकी शारीरिक रचना पर आधारित रहता है अतएवं उसके शारीरिक प्रतिरूपों का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है। बालक की विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों का विवरण इस प्रकार है -

5.8.1 शैशवावस्था में शारीरिक विकास

जन्म के बाद 6 वर्ष की आयु तक की अवस्था शैशवावस्था कहलाती है। इस अवस्था में शारीरिक विशेषताएं निम्नलिखित हैं -

1- **भार -** जन्म के समय शिशु का औसत भार 7.13 पौंड होता है किन्तु बालक का भार बालिका के भार से अधिक होता है। जन्म के समय बालक का भार 7.15 पौण्ड एवं बालिका का भार लगभग 7.13 पौण्ड होता है। जन्म के बाद एक सप्ताह के मध्य शिशु का भार कम हो जाता है किन्तु बाद में तीव्र गति से वृद्धि होती है। बालक का भार प्रथम में 14 पौंड , 8 माह में 18 पौंड, 2 वर्ष में 21 पौण्ड एवं 6 वर्ष में 40 पौण्ड के लगभग हो जाता है।

2- **लम्बाई -** भार के समान ही लम्बाई की दृष्टि से भी बालक बालिका से अधिक लम्बा होता है। जन्म के समय दोनों की लम्बाई में 0.5 इंच का अंतर रहता है। बालक की लम्बाई 20.5 इंच व बालिका की 20 इंच होती है। प्रथम 3 वर्ष में बालक की अपेक्षा बालिका के शरीर की लम्बाई बढ़ती है। इसके 2 इंच 2 वर्ष में 31 से 33 इंच एवं 6 वर्ष की आयु में 40 से 42 इंच तक पहुंच जाती है।

3- **हड्डियां -** जन्म के समय शिशु के शरीर में कुल 270 हड्डियां होती हैं। इनकी संरचना कोमल व लचीली होती है। आयु बढ़ने के साथ साथ हड्डियां कठोर होती जाती है। हड्डियों के कठोर होने को अस्थिकरण कहते हैं। बालक की अपेक्षा बालिकाओं में अस्थिकरण की गति तीव्र होती है। अस्थिकरण में कैल्शियम व फास्फेट आदि खनिजों का योगदान अधिक होता है।

4- **शारीरिक अंगों का अनुपात -** शरीर के सभी अंगों का विकास समान अनुपात में नहीं होता। नवजात शिशु का सिर उसके हाथ पैर की अपेक्षा अधिक बड़ा होता है किन्तु आयु बढ़ने के साथ साथ सिर अपेक्षाकृत छोटा रह जाता है और हाथ पैर लम्बाई में बढ़ जाते हैं।

5- **दांत -** जन्म के समय शिशु के मुंह में भी एक भी दांत नहीं होता हैं। 6 माह की आयु में उसके दूध के दांत निकलने प्रारंभ हो जाते है।

6- **मांसपेशियां -** नवजात शिशु की मांसपेशियां ज्यादा विकसित नहीं होती हैं। आयु बढ़ने के साथ साथ इनका भार बदल जाता है। जन्म के समय मांसपेशियों का भार शरीर के कुल भार का 23 प्रतिशत होता है।

7- **हृदय एवं मस्तिष्क -** बालक के जन्म के साथ ही श्वास एवं रक्त प्रवाह दोनों क्रियाएं प्रारंभ हो जाती है। जन्म के समय हृदय की धड़कन तेज हो जाती है। प्रथम माह में हृदय की धड़कन 140 बार प्रति मिनट होती है किन्तु आयु के साथ साथ हृदय का आकर बढ़ता जाता है और धड़कन

में स्थिरता आती है। 6 वर्ष की आयु में यह संख्या घटकर 100 बार प्रति मिनट हो जाती है। जन्म के समय मस्तिष्क का भार 350 ग्राम होता है यह भार 2 वर्ष में दुगना और 5 वर्ष में शरीर के कुल भार का लगभग 80 प्रतिशत हो जाता है।

8- **आन्तरिक अंगों का विकास -** जन्म के बाद ही शरीर के आन्तरिक अंग जैसे फेफड़े, स्नायुमण्डल, नाड़ियां, पाचन अंग आदि का विकास प्रारंभ हो जाता है। शैशवावस्था में शिशु की यौनेन्द्रियों का विकास अत्यन्त धीमी गति से होता है।

5.8.2 बाल्यावस्था में शारीरिक विकास

बाल्यावस्था 6 से 12 वर्ष तक की अवस्था होती है। इस अवस्था में शारीरिक विकास की विशेषताएं निम्नलिखित है -

1- **भार -** बाल्यावस्था में बालक का भार तेजी से बढ़ता है। 6-8 वर्ष की आयु में बालक का भार बालिकाओं से अधिक रहता है किन्तु 11 वर्ष की आयु के बाद बालिकाओं के भार में बालकों की तुलना में अधिक वृद्धि होने लगती है।

2- **लम्बाई -** बाल्यावस्था में लम्बाई की गति शैशवावस्था की तुलना में धीमी होती है। इस अवस्था में शरीर की लम्बाई में 10 से 12 इंच तक की वृद्धि होती है। 8 वर्ष की आयु में बालिका की लम्बाई बालक से अधिक हो जाती है।

3- **हड़िडयां -** बाल्यावस्था में हड्डियों की संख्या और अस्थिरकरण में वृद्धि होती है। 6-10 वर्ष की आयु के मध्य हड्डियों की संख्या बढ़कर 350 हो जाती है। बालिकाओं में अस्थिरकरण की क्रिया बालकों से अधिक होती है।

4- **मस्तिष्क -** बाल्यावस्था में मस्तिष्क के भार में वृद्धि होती है। 8 वर्ष की आयु तक मस्तिष्क का भार कुल शरीर के भार का 90 प्रतिशत हो जाता है।

5- **दांत -** 6 वर्ष की आयु में बालकों के स्थायी दांत निकलना प्रारंभ हो जाते हैं। 8 वर्ष की आयु में 7 दांत, 10 वर्ष में 15 और 12 वर्ष की आयु तक 25 दांत निकल आते हैं।

6- **आन्तरिक अवयव -** आयु के साथ साथ आन्तकि अवयवों का भी विकास होता है। 6 से 9 वर्ष की आयु में फेफड़े का आकार अधिक नहीं बढ़ता है। पाचन क्रिया के अवयव 12 वर्ष की आयु में परिपक्व हो जाते हैं।

7- **मांसपेशियां -** मांसपेशियों का विकास धीमी गति से होता है। 9 वर्ष की आयु में मांसपेशियों का भार शरीर के कुल भार का 27 प्रतिशत होता है। हृदय की धड़कन की गति में निरन्तर कमी आती है। 12 वर्ष की आयु में धड़कन 85 बार प्रति मिनट हो जाती है।

8- **सिर -** बाल्यावस्था में सिर का आकार क्रमशः छोटा होता जाता है।

9- **यौनेन्द्रियां -** 11 या 12 वर्ष की आयु में बालक के यौनांगों का विकास तीव्र गति से होता है।

5.8.3 किशोरावस्था में शारीरिक विकास

बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं में किशोरावस्था सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवस्था मानी जाती है। इस अवस्था में शारीरिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक परिवर्तन बड़ी तेज गति से होते हैं। इस अवस्था की शारीरिक विशेषताएं निम्नलिखित है -

1- **लम्बाई -** इस अवस्था में बालक और बालिका की लम्बाई बहुत तेजी से बढ़ती है। बालक की लम्बाई 18 वर्ष तक एवं उसके बाद भी बढ़ती रहती है। बालिका की लम्बाई 16 वर्ष की आयु तक अधिकतम हो जाती है।

2- **भार -** इस अवस्था में मांसपेशियों व हड्डियों में वृद्धि के कारण भार में वृद्धि होती है। मांसपेशियों का भार कुल भार का 63 प्रतिशत तक हो जाता है। 10-15 वर्ष की आयु के मध्य लड़कियों का भार लड़कों से अधिक होता है किन्तु 15 वर्ष के बाद लड़के अधिक भारी हो जाते हैं।

3- **सिर एवं मस्तिष्क** - इस अवस्था में सिर एवं मस्तिष्क का विकास निरन्तर चलता रहता है। 15 वर्ष की अवस्था में बालक का सिर वयस्क के समान हो जाता है एवं मस्तिष्क का भार 1200 से 1400 ग्राम हो जाता है।

4- **हड्डियां -** इस अवस्था में अस्थिकरण की प्रक्रिया पूर्ण हो जाती हैं हड्डियां मजबूत हो जाती है। लड़कियों में अस्थिकरण की प्रक्रिया लड़कों से 2 वर्ष पूर्व ही पूर्ण हो जाती है।

5- **दांत -** किशोरावस्था में सभी स्थायी दांत उग आते है।

6- **मुखाकृति का विकास -** इस अवस्था में चेहरे के ऊपरी भाग में विकास तेज गति के साथ होता है। ललाट ऊँचा तथा चौड़ा हो जाता है। मुख की चौड़ाई भी बढ़ती है।

7- **आन्तरिक अवयवों का विकास -** इस अवस्था में मस्तिष्क, हृदय, श्वास, पाचन क्रिया तथा स्नायु संस्थान का पूर्ण विकास हो जाता है। हृदय की धड़कन में निरन्तर कमी होती जाती है। 13 वर्ष की आयु में बालक में हृदय की धड़कन 72 बार प्रति मिनट बालिका की 66 बार प्रति मिनट होती है।

8- **त्वचा में परिवर्तन -** किशोरावस्था में त्वचा मोटी व चिकनी हो जाती है तथा गुलाबीपन लिए होती है। लड़कों के शरीर पर बालों की वृद्धि होती है। दाढ़ी मूंछ निकल आती है। किशोरियों के बगल में एवं गुप्तांगों पर बाल लगने लगते हैं।

9- **वाणी का विकास -** किशोरावस्था में लड़कों एवं लड़कियों क आवाज में परिवर्तन होता है। किशोरों की आवाज भारी एवं कर्कश होने लगती है किन्तु किशोरियों की आवाज में कोमलता और मधुरता आने लगती है।

10- **प्रजनन अंग -** इस अवस्था में प्रजनन अंगों का पूर्ण विकास हो जाता है। लड़कियों में मासिक धर्म, स्तनों का विकास आदि लैगिंक लक्षण प्रकट होने लगते हैं। लड़कों में भी सीने पर बाल एवं प्रजनन अंगों का विकास हो जाता है।

5.9 संज्ञानात्मक विकास

5.9.1 संज्ञानात्मक विकास का अर्थ

बालक के विभिन्न आयामों की वृद्धि और विकास के साथ ही उसमें कुछ ऐसी मानसिक क्षमताओं का विकास भी हो जाता है जिनकीसहायता से वह कुछ समस्याओं का हल करने लगता है। संज्ञानात्मक विकास से अभिप्राय ऐसी मानसिक क्षमताओं के विकास से है जिनकी सहायता से वह अपने वातावरण के साथ समायोजन करने में सक्षम होता है।

संज्ञानात्मक विकास एक व्यापक आयाम है जिसमें संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, स्मरण शक्ति, विचार शक्ति, तर्क शक्ति, भाषा का विकास, निर्णय लेने की क्षमता और समस्या और समस्या समाधान की योग्यताओं का विकास शामिल है। ये सभी प्रकार के विकास मिलकर ही संज्ञानात्मक विकास बनते हैं। इन सभी का एक समान विकास होना आवश्यक है क्योंकि ये सभी एक दूसरे पर आधारित होते हैं। 6 से 11 वर्ष की अवधि संज्ञानात्मक विकास के लिए महत्वपूर्ण है। अब बच्चा तर्कपूर्ण ढंग से सोचने समझने लगता है। कुछ अन्य मुख्य संज्ञानात्मक विकास इस प्रकार हैं।

1- **कल्पना व यथार्थ में भेद करना -** एक छोटे बच्चे के लिए कल्पना व यथार्थ में अंतर करना मुश्किल होता है। एक चार वर्षीय बालक के लिए 'सेटा क्लॉज' एक सचमुच के व्यक्ति हैं जबकि एक 10 वर्षीय बच्चा इसे काल्पनिक समझता है। एक छोटा बच्चा समझता है कि शिशुओं को अस्पताल में लाया जाता है जबकि एक बड़ा बच्चा आपको बता सकता है कि बच्चे अस्पताल से नहीं लाए जाते। आप ही निश्चित तौर पर ऐसे कई उदाहरण दे सकते हैं।

2- **दूसरे के दृष्टिकेण को समझना -** बालक दूसरों के दृष्टिकोण को समझने लगते हैं। उदाहरण के लिए एक बच्चे की माता रसोई घर में है ओर वह उससे एक प्रश्न पूछती है। पांच वर्षीय बच्चा, जो दूसरे कमरे में खेल रहा है, सिर हिलाकर मां के प्रश्न का उत्तर देता है। इस उम्र में बच्चा समझता है कि मां उसे सिर हिलाते देख सकती। दूसरे शब्दों में वह अन्य लोगों के नजरिये को भी समझने लगता है। दूसरों के दृष्टिकोण को समझने की क्षमता सहानुभूति कहलाती है। दूसरों के दृष्टिकोण को न समझ पाने की असमर्थता को अंहमवादिता कहते हैं। यह क्षमता मध्य बाल्यावस्था में विकसित होनी प्रारंभ होती है और मध्य बाल्यावस्था के अंत तक इसमें बढ़ोतरी होती रहती है।

3- **रिबर्सिबिलिटी -** बालक की किसी कार्य के आगे और पीछे के चरणों को सोचने का क्षमता रिबर्सिबिलिटी कहलाती है। एक चार वर्षीय बालक को मिट्टी का लौंदा दिखाइये। अब इससे एक पलंग बनाइये। इसे बालक को दिखाइये। अब इसे पलंग से सांप बनाइये। अब बालक को सांप से पलंग बनाने के लिए कहिए। बालक अपनी असमर्थता दिखाता है। ऐसा इसलिए होता है कि भिन्न भिन्न चरणों के विषय में वह पीछे मुड़कर नहीं सोच सकता। मध्य बाल्यावस्था में यह क्षमता विकसित होने लगती है और 11 वर्ष तक बच्चा भली भांति पहले की सब बातों का विवरण दे पाता है।

4- **संरक्षण मान्यता -** यह समझने की योग्यता कि वस्तुओं के भौतिक गुणों में, बाह्य परिवर्तन से कोई परिवर्तन नहीं आता संरक्षण कहलाता है। उदाहरण के लिए एक 4-5 वर्ष के व एक 9-10 साल के बच्चे को ठण्डे पेय पीने के लिए बुलाया जाता है। ठण्डे पेय की दो बोतलें हैं और दो गिलास, जिनमें एक लम्बा व संकरा व दूसरा चौडा, छोटा है। समान मात्रा में ठंडा पेय पदार्थ इन गिलासों में डाला जाता है। पेय पदार्थ का स्तर लम्बे गिलास में ऊँचा व चौड़े गिलास में कम होगा। बच्चों के सामने ही गिलासों में पेय पदार्थ भरे जाते हैं। अब दोनों बच्चों से एक एक गिलास उठाने को कहा जाता है। छोटा बच्चा लम्बा गिलास ही लेगा। क्योंकि वह समझता है कि लम्बे गिलास में अधिक पेय पदार्थ है। जबकि बड़ा बच्चा जानता है कि दोनों गिलासों में पेय पदार्थ समान मात्रा में है चाहे गिलासों का आकार कैसा भी क्यों न हो। जब देखने में कोई वस्तु असमान हों तब उनके कुछ विशेष भौतिक गुण समझने की क्षमता का संरक्षण कहते हैं।

5- **समय और गति -** एक 10-11 वर्ष के बालक को समय व गति का ज्ञान होता है। वह घड़ी समय देखकर बता पाता है। उसे जल्दी, देर, पहले, धीरे, अभी या बाद में शब्दों की समझ होती है। इसी भांति वह गति के विषय में समझता है और आपको बता सकता है कि 60किमी/घंटा की रफ्तार से चलने वाली कार 40 किमी/घंटा की रफ्तार वाली कार से जल्दी अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच जाएगी।

5.9.2 जीन पियाजे का संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त

जीन पियाजे, जो स्विट्जरलैण्ड के मशहूर वैज्ञानिक थे, के द्वारा सज्ञान विकासात्मक सिद्धान्त विकसित किया गया है। इस सिद्धान्त में जीन पियाजे ने बालक के अन्दर चलने वाली संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के विकास का उल्लेख किया है। मूल रूप से पियाजे ज्ञानशास्त्र में रूचि रखते थे। वे बालक द्वारा एकत्रित ज्ञान के स्वरूप को समझना चाहते थे। उनका मानना था कि विकास का अध्ययन करना ही ज्ञान के स्वरूप को समझने का सबसे उत्तम माध्यम है। अत: उन्होंने अपने ही बालकों के संज्ञान विकास का अध्ययन करना ही ज्ञान के स्वरूप को समझने का सबसे उत्तम माध्यम है। अत: उन्होंने अपने ही बालकों के संज्ञान विकास का अध्ययन आरंभ कर दिया। पियो ने अपनी शुरूआती रचनाओं में इन अध्ययनों, विधियों और फलों का विवरण किया है। अपने मौलिक अध्ययन व गंभीर चिन्तन के आधार पर पियाजे ने अच्छीतरह यह समझ लिया कि संज्ञान एक विकासशील मानसिक विचार है और इस प्रक्रिया का विकास धीरे धीरे बालक के बाहर होता रहता है। पियाजे का सिद्धान्त में संज्ञान विकास क तहत ज्ञान और उसके अर्जन में सन्निहित प्रकियाओं का अध्ययन शामिल है। इस संदर्भ में यह बात देना जरूरी है कि पियाजे के सिद्धान्त में ज्ञान और बुद्धि समान अर्थ में प्रयोग होने वाले पद हैं।

पियाजे ने यह उल्लेख किया कि व्यक्ति को ज्ञानी होने के साथ साथ अपने वातावरण के साथ भी समायोजित होना चाहिए। जन्म के समय बच्चों के अन्दर सिर्फ एक प्राकृतिक क्षमता होती है। आयु और परिपक्वता में वृद्धि होते रहने के कारण उसके अर्जन में सन्निहित प्रक्रियाओं का अध्ययन शामिल है। इस संदर्भ में यह बता देना जरूरी है कि पियाये के सिद्धान्त में ज्ञान और बुद्धि समान अर्थ में प्रयोग होने वाले पद हैं।

संज्ञानात्मक विकास मुख्यत: चार अवस्थाओं से होकर गुजरता है। हर अवस्था में ज्ञान का एक नया भण्डार निर्मित होता है जो पिछली अवस्थाओं से होकर गुजरता है। हर अवस्था में ज्ञान का एक नया भण्डार निर्मित होता है जो पिछली अवस्था में भिन्न होता है। यह चारों अवस्था ऐसी अवस्था होती है, जिसमें बालक अधिक से अधिक ज्ञान अर्जित करता है और इससे उसके ज्ञान में संशोधन व परिमार्जन भी होता है। सभी विकसित होने वाले कारक संज्ञान विकास की इन चारां अवस्थाओं में गुजरते हैं। पियाजे की उक्त अवधारणा के आधार पर ही उनके सिद्धान्त की अवस्थाओं से गुजरते हैं। पियाजे की उक्त अवधारणा के आधार पर ही उनके सिद्धान्त को अवस्था सिद्धान्त कहा जाता है।

पियाजे ने ज्ञान अर्जन के विषय में कुछ ऐसे विचारों की घोषणा की है जो सभी अवस्थाओं में समान रूप से पाए जाते हैं। ऐसे संप्रगत्यय उन प्रक्रियाओं से संबंधितहै। जो बालक में जीवन पर्यन्त चलती रहती है, किसी अवस्था विशेष तक ही सीमित नहीं होती। इन प्रक्रियाओं को अवस्थामुक्त कहा जाता है क्योंकि ये पूर्ण विकास काल में अपरिवर्तित रहती है। ऐसी प्रक्रियाओं में मुख्य हैं। इस तरह पियाजे ने संज्ञान विकास को कुछ परिवर्तन और कुछ अपरिवर्तनशील प्रक्रियाओं की मदद से समझाने की कोशिश की है। इन्हीं क्रमश: अवस्था निर्भर व अवस्थामुक्त कहा जाता है।

पियाजे ने संज्ञान विकासात्मक सिद्धान्त का आधार जीव वैज्ञानिक माना जाता है। उन्होंने संज्ञान अथव बुद्धि को पाचन प्रक्रिया, सांस क्रिया, रक्त संचार क्रिया की भांति एक जैविक क्रिया माना है। संज्ञान मनुष्य को अपने सामाजिक भौतिक वातावरण के साथ समायोजित होने मे सहायक होता है। इसलिए संज्ञान जिन्दगी के लिए उतना ही आवश्यक है जितनी और जैविक क्रियाएं मानव के संपूर्ण विकास काल में संगठन व अनुकूलन की क्रियाएं चलती रहती है। इनके अभाव में मनुष्य का जिन्दा रह सकता मुश्किल है।

पियाजे मुख्य रूप से संज्ञान विकास में उत्पन्न होने वाले गुणात्मक बदलावों में अधिक रूचि रखते हैं। उनके द्वारा सम्पन्न अध्ययन बहुत आसान ढंग का अध्ययन है। अधिकांश अध्ययनों में पियाजे ने बालकों की प्रतिक्रियाओं का स्वाभाविक दशाओं में उल्लेख किया है। उन्होंने बालकों द्वारा प्रदर्शित प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण जरूरी नहीं समझा क्योंकि सिर्फ गुणात्मक प्रदत्त से ही संज्ञान विकास की प्रमुखताओं का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है।

5.9.3 ब्रूनर का संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त

जेरोम ब्रूनर नामक अमेरिकन मनोवैज्ञानिक ने भी संज्ञानात्मक विकास के एक नए सिद्धान्त को प्रतिपादन किया। ब्रूनर के इस सिद्धान्त को पियाजे के द्वारा प्रतिपादित ज्ञानात्मक सिद्धान्त का एक प्रमुख विकल्प माना जाता है। बालकों के संज्ञानात्मक व्यवहार का विस्तृत अवलोकन करके ब्रूनर ने ज्ञानात्मक विकास की विशेषताओं को वर्गीकृत किया। उसके अनुसार संज्ञानात्मक विकास को निम्नांकित तीन स्तरों में बांटा जा सकता है -

1 क्रियात्मक अवस्था

2 प्रतिबिम्बात्मक अवस्था

3 सकेतात्मक अवस्था

1- क्रियात्मक अवस्था -

क्रियात्मक अवस्था में बालक अपने वातावरण को क्रियाओं अथवा क्रियाप्रणाली के द्वारा समझने का प्रयास करता है। हाथ पैर चलाना, चलना, साइकिल चलाना आदि बालकों को उसके वातावरण के साथ प्रतिक्रिया करने में सहायक होते है। इस अवस्था में मानकिस प्रतिबिंबों अथवा भाषा का महत्व नहीं होता है। मनोचालक ज्ञात महत्वपूर्ण होता है। किसी वस्तु को समझने के लिए बालक उसे पकड़ता है, मोड़ता है, काटता है, रगड़ता है, छूता है अथवा पटकता है।

2- प्रतिबिम्बात्मक अवस्था

प्रतिबिंबात्मक अथवा छायात्मक अवस्था में मानसिक प्रतिबिंबो के द्वारा सूचनायें व्यक्ति तक पहुंचती है। बालक चमक, शोर, गति तथा विविधता से प्रभावित होता है। बालकों में दृश्य स्मृति विकसित हो जाती है। ब्रूनर की प्रतिबिंबात्मक अवस्था प्याजे की पूर्व संक्रियात्मक अवस्था से मिलती जुलती है।

3- संकेतात्मक अवस्था

संकेतात्मक अवस्था में बालक की क्रियात्मक तथा प्रत्यक्षीकृत समझ का प्रतिस्थापन संकेत प्रणाली से जाता है। बालक भाषा, तर्क तथा गणित सीख लेते हैं तथा उसका प्रयोग करते है। संकेत विभिन्न वस्तुओं को समझने अथवा कार्यों को करने का संक्षिप्त तरीका है। संकेतों के प्रयोग से बालकों की संज्ञानात्मक कार्यक्षमता बढ़ जाती है। जटिल अनुभव तथा ज्ञान को स्मरण रखना तथा अन्यों तक पहुंचाना सरल हो जाता है। संकेतों के द्वारा सूचनाओं का संकलन तथा विश्लेषण करके व्यक्ति पूर्व कथन करने तथा परिकल्पनायें बनाने में समर्थ हो जाता है।

ब्रूनर के अनुसार बालक सर्वप्रथम क्रियात्मक अवस्था में संज्ञानात्मक चिन्तन करते हैं, तत्पश्चात प्रतिबिंबात्मक अवस्था में ज्ञानात्मक चिन्तन करते हैं तथा सबसे अंत में संकेतात्मक अवस्था में ज्ञानात्मक चिन्तन करते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि बालक प्रारंभ में क्रियाओं के द्वारा चिन्तन करते हैं फिर मानसिक प्रतिबिंबों के द्वारा चिन्तन करते हैं तथा सबसे अंत में संकेतों, शब्दों का प्रयोग करके चिन्तन करते हैं। परन्तु उसका अभिप्राय यह नहीं है कि प्रौढ़ क्रियात्मक तथा प्रतिबिबांत्मक चिन्तन के ढंग को नहीं अपनाते हैं। संज्ञानात्मक विकास के ये क्रमबद्ध स्तर केवल यह बताते हैं कि अनुभव तथा आयु के साथ संकेतात्मक प्रणाली अधिक प्रबल, महत्वपूर्ण तथा उपयोगी होती जाती है। प्रौढ़ व्यक्ति भी समय समय पर आवश्यकतानुसार क्रियात्मक अथवा प्रतिबिंबात्मक चिनतन प्रणाली को अपनाते हैं।

5.10 सामाजिक - सांस्कृतिक विकास

किसी भी व्यक्ति के विकास मे उसके बचपन में मिले सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है। व्यक्ति को बौद्धिक क्षमता एवं अपनी अनेक विशेषताओं के कारण अन्य वर्ग से भिन्न माना जाता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के बिना उसका विकास असंभव ह। समाज मनुष्य के लिए एक आवश्यक व्यवस्था हे जिसके अभाव में जीवन यापन करना साधारणतया

संभव नहीं है। व्यक्ति या बच्चा समाज में रहकर ही अपना सुरक्षित जीवन यापन कर सकता है। इसके साथ ही व्यक्ति अपने सामाजिक बंधनों को बनाने, सांस्कृतिक गतिविधियों को अपनाने तथा दूसरों के साथ समायोजन करने की चेष्टा करता रहता है। विकास के साथ ही बच्चे में सामाजिक एवं सांस्कृतिक गुण के साथ ही उसकी व्यावहारिक विशेषताएं जन्मजात मिलती है।

5.10.1 सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास का अर्थ

सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास से अभिप्राय किसी व्यक्ति में उन क्षमताओं एवं योग्यताओं को विकसित करने से है जिनके माध्यम से वह व्यक्ति सामाजिक व सांस्कृतिक वातावरण में अपने आपको समायोजित कर पाता है। इस विकास के संदर्भ में कुछ परिभाषाएं इस प्रकर से हैं -

सोरेन्सन के अनुसार - ''सामाजिक एवं सांस्कृतिक बुद्धि से हमारा तात्पर्य अपने साथ और दूसरों के साथ भली भांति समायोजित (चले चलने) करने की बढ़ती हुई योग्यता है।''

(Social and cultural growth and development we mean increasing ability to get along well with on self and other)

''सांस्कृतिक व सामाजिक विकास सीखने की वह प्रक्रिया है जो समूह के स्तर पर परम्पराओं तथा रीति रिवाजों के अनुकूल अपन आपको ढालने तथा एकता, मेलजोल और पारस्परिक सहयोग की भावना भरने मे सहायक सिद्ध होती है।''

(Social and cultural development means the attaining of maturity in social and cultural relationship.)

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक बालक अपने समूह विशेष में अपना ठीक प्रकार से समायोजन करने के लिए साथी बालक के लिए आवश्यक ज्ञान, योग्यता, दक्षता, क्षमता, एवं अभिवृत्तियों को अर्जित कर पाता है। सांस्कृतिक व सामाजिक परिवेश में भक्तिभाव, श्रद्धा, विश्वास एवं अपननेपन की भावनाएं अंकुरित होती हैं। इसके साथ ही परस्पर निर्भरता, सहयोग एवं एकता बढ़ती है। इनको संक्षिप्त में इस रूप में भी व्यक्त कर सकते हैं। जैसे -

1- सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया आरंभ से लेकर अंत तक निरन्तर अबोध गति से चलती रहती है।
2- सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश से संबंधित शक्तियां व्यक्ति के सामाजिक व सांस्कृतिक व्यवहार के अनुकूल बदलाव लाती है।
3- यह तत्व बालक के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन क्रम को सीखने एवं अर्जित करने में सयोगी सिद्ध होता है।
4- समाजिक एवं सांस्कृतिक गुणों एवं विशेषताओं को सीखने अथवा अर्जित करने में बालक को मदद करती है।

5.10.2 सांस्कृतिक एवं सामाजिक विकास के अभिकरण

सांस्कृतिक एवं सामाजिक विकास के लिए निम्नलिखित अभिकरण अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं -

1- **परिवार -** कोई भी बच्चा सबसे पहले अपने मां बाप और अपने परिवार में धर्म, संस्कृति, परपंरा, रीति रिवाज एवं रहन सहन आदि के प्रति अपने दृष्टिकोण को विकसित करने और अपने जीवन के लक्ष्य को निर्धारित अथवा तय करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

2- **शिक्षा -** शिक्षा के द्वारा व्यक्ति को जहां ज्ञान व कौशल सिखाया जाता है, वहीं शिक्षा व्यक्ति के सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के निमार्ण में सहायक सिद्ध होती है। इसके साथ ही सर्वाधिक विकास में सहायक होती है।

3- **धर्म -** व्यक्ति के धर्म के द्वारा ही उसकी सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों का निर्धारण होता है। वास्तव में सामाजिक व सांस्कृतिक विकास में धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

4- **मित्र एवं सहयोगी -** एक बच्चा एक निश्चित आयु में अपना मित्र एवं सहयोगी बनाना शुरू कर देता है। उसके मित्र तथा सहयोगी उसके मूल्यों एवं आदतों को प्रभावित करते हैं, जिससे उसका सामाजिक एवं सामाजिक विकास पर प्रत्यक्ष परिवार व परोक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है।

5- **जनसंचार -** सांस्कृतिक एवं सामाजिक विकास में जन संचार के साधन जैसे समाचार पत्र, रेडियों, दूरदर्शन आदि अपनी सक्रिय एवं महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

6- **पास पड़ोस में समुदाय -** बालक जैसे जैसे बड़ा होता है वह घर से बाहर निकलकर पास पड़ोस और जिस समुदाय में रहता है और उसके संपर्क में आता है उनकी रूचियों, आदतों, गुणों, अनुभवों खान-पान, रहन सहन, सोच विचार, क्रियाकलाप एवं बातचीत आदि का प्रभाव सांस्कृतिक एवं सामाजिक विकास पर पड़ता है।

5.10.3 शैशवावस्था में सांस्कृतिक एवं सामाजिक विकास

शैशवावस्था में बच्चे का व्यवहार सांस्कृतिक एवं सामाजिक व्यवहार से बहुत दूर रहता है अर्थात् आरंभ में शिशु का व्यवहार सांस्कृतिक व सामाजिक दृष्टि से न के बराबर होता है। इस दौरान केवल अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति में लगा रहता है उसको दूसरों के हित के संदर्भ में जरा सी आभास नहीं होता है। इस प्रकार से अपने ही स्वार्थ में खोया रहता है। वास्तव में उसे इस दौरान निर्जीव व सजीव में अंतर नजर नहीं आता। अपनी आवश्यकताओं जैसे भूख, प्यास, कपड़े, बदलने एवं आराम पाने के लिए दूसरों पर अधिक निर्भर रहना पड़ता है।

एक शिशु में सामाजिक एवं सांस्कृति विकास प्रक्रिया उस समय आरंभ होती है जब वह व्यक्तियों एवं वस्तुओं के बीच अंतर स्पष्ट रूप से करने लगता है। वास्तव में एक साधारण बालक का सांस्कृतिक एवं सामाजिक संपर्क सबसे पहले प्रौढ़ अवस्था के साथ जुड़ता है। एक अवधि के बाद बच्चा विभिन्न आवाजों को पहचानने लगता है और उनका अंतर भी समझने लगता है। तत्पश्चात ही एक बालक मे

सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया शुरू हो जाती है जिसका उल्लेख हम सारणी के आधार पर इस प्रकार कर सकते हैं –

क्र.स.	आयु की अवधि	समाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवहार का स्वरूप
1	प्रथम एक माह में	ध्वनि व ध्वनियों में अंतर समझ जाता है।
2	दूसरे माह की अवधि में	बालक ध्वनि व आवाज को जानने लगता है अपनी मुस्कान बिखेरने लगता है।
3	तीसरे माह की अवधि में	बलक अपनी मां की पहचान करने में दक्ष हो जाता है।
4	चौथे माह की अवधि में	लोगों के चेहरे अलग अलग रूप में पहचान कर ध्यान देना शुरू कर देता है और समूह में रहना अच्छा लगता है।
5	पाँचवे माह की अवधि में	हंसने व डांट लगाने पर अलग अलग प्रक्रिया करने में सक्षम हो जाता है तथा प्यार व नाराजगी की आवाज समझने लगता है।
6	छठे व सातवें माह की अवधि में	जानकार व्यक्तियों का मुस्कराहट से स्वागत करने लगता है तथा अनजान चेहरों से डरने लगता है।
7	आठवें व नौवें माह की अवधि में	बेली, मुद्रा, हाव-भाव तथा अंग संचालन की नकल करने का प्रयास करता है।

5.10.4 बाल्यावस्था में सांस्कृतिक एवं सामाजिक विकास

1. बाल्यावस्था में बच्चा अपने एक समूह मे रहकर जहां आनन्द की अनुभूति करता है वहीं उनके प्रति उनकी रूचि व लगाव भी बहुत अधिक बढ़ जाता है। इस आयु में उसकी विकास की अवस्था के तहत अपने समूह या दल के आदर्श एवं मान्यताएं बहुत रूचिकर लगने लगती हैं जिसका सक्रिय सदस्य व प्रमुख बनने के लिए उत्साहित रहता है।
2. अपने दल के प्रति विशेष लगाव व आस्था के कारण बच्चे में भक्ति भाव की भावना भी भड़कने लगती है जिसके कारण बच्चे के विचार अपने माता पिता व गुरूजनों के विचारों से मेल नहीं खाते हैं और टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण समायोजन की एक नई समस्या पैदा हो जाती है।

3. बाल्यावस्था के अंतिम पड़ाव के समय अर्थात् 11 वर्ष अथवा 12 वर्ष की आयु में बालक गिरोह अवस्था के सर्वोच्च स्तर पर होता है जिसके कारण अपने दल के विरोधी व्यक्ति, समूह या समाज के प्रति उग्र रूप धारण कर लेने पर विवश हो जाता है। इस प्रकार अपने समूह के अच्छे व बुरे सभी सामाजिक व सास्कृतिक गुणों को धारण कर लेता है।

3. सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से इस उम्र के अंतिम पड़ाव के समय बालक एवं बालिकाओं के भेद समझने लगता है और एक दूसरे से अलग रहने की प्रवृत्ति पनपती है। अपनी रूचि एवं आदतों के आधार पर अंतर के कारण अलग अलग समूह में रहना पसंद करते हैं।

5.10.5 किशोरावस्था में सांस्कृतिक एवं सामाजिक विकास

किशोरावस्था मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अत्यन्त तीव्र परिवर्तन तथा समायोजन की अवस्था होती है। समाजिक एवं सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से इस आयु वर्ग में बच्चे में बहुत अधिक बदलाव तथा विशेषतएं नजर आती हैं। इस दौरान विशेष रूचियों एवं सामाजिक संपर्क का क्षेत्र अत्यधिक विकसित हो जाता है। प्रत्येक समाज एवं सांस्कृतिक समूह अपने समूह के बालकों से विशेष प्रकार के विकासात्मक कार्यों को पूरा करने की अपेक्षा करता है और इसी के अनुसार उन्हें शिक्षा, दीक्षा व प्रशिक्षण देकर तैयार करता है और उन्हें हर संभव सहयोग व सहायता प्रदान करता है। इसमें कुछ परिवर्तनों का उल्लेख करते हैं जैसे -

1- किशोरावस्था के बालकों में दोस्ती या मित्रता की भावना बहुत अधिक प्रबल रहती है। इस दौरान की मित्रता पढ़ाई लिखाई या खेल कूद तक ही सीमित नहीं रहती बल्कि बहुत अधिक समय तक प्रभावी रहती है। अनेक बार यह मित्रता जीवन भर के लिए आत्मीय संबंधोंमें बदल जाती है।

2- इस उम्र के पड़ाव में बच्चों में लिंग संबंधीचेतना अधिक प्रभावी हो जाती है जिसके कारण विपरित लिंग के प्रति लगाव या आकर्षर्ण बढ़ जाता है, जिसके कारण उसकी शारीरिक एवं मानसिक क्रियाकलापों में परिवर्तन आ जाता है।

3- किशोरावस्था में अधिकांश किशोर व किशोरियां अपने वय समूह के सक्रिय सदस्य होते हैं। इनमें अपने दल के प्रति अत्यन्त लगाव, भक्ति व आस्था देखी जा सकती है। वे अपने समूह के विचारों, भावनाओं एवं सांस्कृतिक क्रियाकलापों को अपनाने का प्रयास करते हैं और इसके वितरीत अपने परिजनों का विरोध कर देते हैं।

4- किशोरावस्था के दौरान बालक की रूचियों और सामाजिक संपर्क का क्षेत्र भी अत्यधिक विस्तृत हो जाता है। इस दौरान व्यक्तिगत विशेषताओं के अलावा परिवार की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्थिति, यौन संबंधी स्वतंत्रता और जानकारी आदि उनकी सामाजिक रूचियों और सामाजिक संबंधोंको प्रभावित करती है।

5- समूह के प्रति उत्पन्न भक्ति भावना अब केवल दल या समूह तक ही सीमित नहीं रहती, बल्कि यह स्कूल समुदाय, समाज, राज्य, राष्ट्र तथा मानवता तक व्यापक हो जाती है।

सद्भावना , सहयोग, सहानुभूति, समर्पण, त्याग व परोपकार का एक आनोखा मिलन इस अवस्था में होता है जिसके फलस्वरूप देशभक्ति, देश भक्ति, देश के प्रति समर्पण एवं त्याग की भावना उत्पन्न होती है।

5.11 एरिक्सन का मनोसामाजिक विकास का सिद्धान्त

इस सिद्धांत का विस्तार से अध्ययन आप बी.एड 101 के इकाई 4 मे करेगे

एरिक्सन के सिद्धान्तों का शैक्षिक महत्व -

एक्सिन का मनो सामाजिक विकास का सिद्धान्त जन्म से लेकर मृत्यु की अवस्था, जो आमतौर पर 65 वर्ष से अधिक की मानी जाती है, का आठ स्तरों पर अध्ययन करता है अत: यह सिद्धान्त विभिन्न आयु वर्ग के बालकों की आयु के साथ बदलती मनोवृत्तियों उभरते संवेगों के बारे में अध्यापक और शिक्षा से जुड़े लोगों को अवगत कराता है। ऐसी स्थिति में अध्यापक और शिक्षाविद् प्रत्येक आयु वर्ग के छात्र की अनुकूलता और प्रतिकूलता को ध्यान में रखकर न केवल उनके लिए पाठ्यक्रम का निर्धारण कर सकते हैं, अपितु व्यावहारिक तौर पर अत्यंत सहजता से उन्हें शिक्षित किया जा सकता है। उनका शारीरिक, मानसिक, सज्ञानातमक, भाषिक संवेगात्मक व गत्यात्मक विकास किया जा सकता है। छात्रों की रूचि के अनुरूप पाठ्यक्रम से इतर क्रिया किलापों का आयोजन किया जा सकता है। उन्हें व्यहारकुशल तथा भविष्य में अच्छा व्यवसाय चुनने व उम्दा कैरियर के लिए तैयार किया जा सकता है। वस्तुत: एरिक्सन का मनो सामाजिक सिद्धान्त छात्र के सर्वागीण विकास पर बल देता है।

5.12 नैतिक विकास

आज के वातावरण में मानव समुदाय में परस्पर प्रेम, स्नेह, सहानुभूमि, ईमानदारी, दया, कर्तव्यनिष्ठता, आत्मानुशासन का अभाव दिखाई दे रहा है। अर्थात् मानव समुदाय में अनैतिकता का साम्राज्य फैलने लगा है। इस अनैतिकता को रोकने में नैतिक मूल्य ही सहयोग दे सकते हैं। अत: विद्यालय स्तर पर जब विद्यार्थियों में नैतिक मूल्य विकसित हो जाऐंगे तो वे सदैव नैतिकता की ओर ही जाएंगे। परिवार, समुदाय के व्यक्ति भी बालकों में नैतिक मूल्यों को विकसित करने का प्रयास करें।

5.12.1 नैतिक मूल्यों का विकास

नैतिक मूल्यों के विकास में परिवार की भूमिका - नैतिक मूल्यों के विकास में परिवार की भूमिका निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से समझी जा सकती हैं -

1- प्रत्येक व्यक्ति अपने मूल्यों का निर्माण स्वयं करता है, वह अपन निर्णय स्वयं लेता है। माता पिता बालकों को परम्परागत मूल्यों के प्रति आस्थावान बना सकते है।

2- माता पिता समकालीन परिसिथतिजयों में परम्परागत मूल्यों की व्यावहारिकता बताएं तथा पुन: सृजित करें।

3- माता पिता मूल्यों के अनुरूप आचरण करें।

4- बालकों को आस्थावान बनाए तथा मूल्यों के प्रति चेतना जाग्रत करें।

5- वर्तमान समय में फिल्म, टीवी, समाचारों से मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभावों की बालकों से माता पिता चर्चा करें तथा उसके परिणामों से अवगत कराएं।
6- अच्छा वातावरण एवं कहानी, दृष्टांतों के माध्यम से मूल्यों का विकास करें।
7- मूल्य आधारित व्यवहारों के प्रदर्शन के लिए बालकों को प्रोत्साहित करना चाहिए।

नैतिक मूल्यों के विकास में विद्यालय की भूमिका

नैतिक मूल्यों के विकास में विद्यालय की भूमिका निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से समझी जा सकती है -

1 विद्यालय के कार्यक्रमों में किसी न किसी रूप में मूल्यों की शिक्षा देना।
2 अनुभवों के माध्यम से विकास करना।
3 सामुदायिक सेवा, खेल, मैदान, प्रार्थना स्थल, उत्सव, पर्व आदि के माध्यम से मूल्यों को विकास करना।
4 नैतिक मूल्यों से संबंधित घटनाओं, संस्मरणों, महापुरूषों की जीवनियों के चार्ट, भित्ति पत्रिका आदि विद्यालय में लगाना।
5 विभिन्न विषयों के अध्यापन में निहित नैतिक मूल्यों की जानकारी देकर उनका विकास करना।
6 रेडक्रास, स्काउटिंग, एन0सी0सी. आदि संस्थानों के सहयोग से नैतिक मूल्यों का विकास करना।

5.12.2 बालक की विभिन्न अवस्थाओं में नैतिक विकास

1- शैशवावस्था - इस अवस्था में बालक को अच्छे बुरे का ज्ञान नहीं होता है हालांकि 2 वर्ष के बाद पसन्द एवं नापसन्द की क्रियाओं की पहचान होने लगती है।
2- बाल्यावस्था - यह उम्र 3 से 6 वर्ष की होती है, अच्छे बुरे का ज्ञान नहीं होता, वह ज्यादातर देखकर सिखाता है। आप जो करते हैं वह अच्छा है । आप जो नहीं करते है वह बुरा है। उसको उपदेश या अच्छी बातें बोलकर बताना असरदायक नहीं होता है। वरन् करके बताना असरकारक होता है।
3- उत्तर बाल्यावस्था - यह अवस्था 7 से 10 वर्ष तक की होती है। इस अवस्था में क्या बुरा है? क्या अच्छा है? इसका ज्ञान एवं परिस्थितियों के साथ, अच्छे, बुरे का ज्ञान नहीं होता है। किन्तु 9 वर्ष के बाद अच्छे बुरे का ज्ञान होने लग जाता है। उनमें दया, सहयोग एवं सत्य के रूप में पहचानने लगते हैं। इसके विपरित ईर्ष्या, द्वेष, आदि भाव भी पनपने लगते हैं।

5.12.3 नैतिक विकास के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त

नैतिक मूल्यों को बालकों तक पहुंचाने हेतु मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के प्रतिरूप निम्नलिखित प्रकार से हैं -

1- समाजिक अध्ययन प्रतिरूप
2- मनोविश्लेषणात्मक प्रतिरूप

3- संज्ञानात्मक विकास प्रतिरूप

नैतिक मूल्यों के विकास हेतु प्रयोग में आने वाली प्रत्यय विधियाँ

1- कहानी विधि

2- नाटक विधि

3- स्वयं खोज विधि

4- प्रयोग प्रदर्शन विधि

5- पर्यटन विधि

6- प्रयोजना विधि

7- लघु खोज विधि

8- समस्या समाधान विधि

अप्रत्यक्ष विधियाँ -

1- विद्यालय की सम्पूर्ण दिनचर्या

2- गतिविधियाँ

3- वातावरण

4- विषयों का शिक्षण

उपरोक्त विधियों का उपयोग करते हुए बालकों में नैतिक विकास किया जा सकता है।

5.13 कोहलबर्ग का नैतिक विकास सिद्धान्त

लॉरेंस कोहलबर्ग ने पियाजे के द्वारा प्रस्तुत नैतिक विकास से संबंधित विचारों को विस्तृत तार्किक चिन्तन के तीन स्तरों, जिनमें से प्रत्येक के कुछ सोपान है, के रूप में नैतिक विकास के सिद्धान्त का प्रस्तुत किया। दस वर्ष से सोलह वर्ष की आयु के बालकों के सम्मुख कहानियों के रूप में नैतिक दुविधाओं को प्रस्तुत किया तथा इन दुविधाओं पर आधारित सक्षात्कार लिये ।इन कहानियों में नियमों या बड़ों के निर्देश पालन से संबंधित अनेक नैतिक दुविधायें प्रस्तुत की गई थी। इन साक्षात्कारों से प्राप्त सूचनाओं के विश्लेषण से कोहलबर्ग ने नैतिक विकास के तीन प्रमुख स्तर तथा सात सोपान बताये हैं जिन्हें सारणी में प्रस्तुत किया गया है। इन तीनों स्तरों में उनसे संबंधित सोपानों में होने वाले नैतिक विकास की आगे की चर्चा की जा रही है।

सारणी

नैतिक विकास के स्तर तथा सोपान

स्तर	सोपान
1 पूर्व परम्परागत स्तर	0 आत्म केन्द्रित निर्णय 1 दण्ड सापेक्षिक अभिमुखता 2 यांत्रिक सापेक्षिक अभिमुखता
2 परम्परागत स्तर	3 परस्पर एकरूप अभिमुखता 4 अधिकार संरक्षण अभिमुखता
3 उत्तर परम्परागत स्तर	5 सामाजिक अनुबंध विधि सम्मत अभिमुखता 6 सार्वभौमिक नैतिक सिद्धान्त अभिमुखता

पूर्व परम्परागत स्तर

इस स्तर पर बालक अपनी आवश्यकताओं के संदर्भ में चिन्तन करते हैं। नैतिक दुविधाओं से युक्त प्रश्नों पर उनके उत्तर प्राय: उनको होने वाले लाभ या हानि पर आधारित होते हैं। नैतिक कार्य अच्छे या बुरे कार्यों में निहित होते हैं न कि अच्छे या बुरे व्यक्तियों में। सामाजिक व सांस्कृतिक नियमों जैसे अच्छा या बुरा, सही या गलत आदि की व्याख्या मिलने वाले दंड, पुरस्कार अथवा नियमों का समर्थन करने वाले व्यक्तियों की शारीरिक सामर्थ्य अथवा होने वाले स्थूल परिणामों से आंकी जाती है। इस स्तर पर होने वाले नैतिक विकास को निम्नांकित तीन उपसोपानों में बांटा जा सकता है -

1 आत्मकेन्द्रित निर्णय - इस सोपान में बालक प्रत्येक उस कार्य को जिसे वे करना पसन्द करते हैं अथवा उस वस्तु को जिसे वे प्राप्त करना चाहते हैं अथवा उस व्यक्ति को जो उनकी सहायता करता है अच्छा समझते हैं। इसके विपरित कोई भी ऐसा कार्य, वस्तु या व्यक्ति, जिसे वे नापसंद करते हैं, जिसे वे प्रापत करना नहीं चाहते हैं अथवा व्यक्ति जो उन्हें हानि पहुचाता है। उसे खराब समझते हैं। इस स्तर पर बालकों में अपनी इच्छा अनिच्छा अथवा पसंद नापसंद से अलग हटकर नियमों अथवा दायित्वों का कोई विचार नहीं होता है।

2 दंड तथा आज्ञापालन अभिमुखता - इन सोपान में बालक बड़े व्यक्तियों अथवा अधिकार सम्पन्न व्यक्तियों के द्वारा दिये जाने वाले दंड से बचने के लिए चिन्तित रहते हैं। वे नियमों तथा उनको तोड़ने से होने वाले दुष्परिणामों को समझते हैं। किसी कार्य के करने पर होने वाले स्थूल परिणाम उस कार्य को अच्छा बुरा निर्धारित करते हैं। अधिकार अथवा शक्ति का कार्य को उचित अथवा अनुचित ठहराते हैं।

3 यांत्रिक सापेक्षिक अभिमुखता - नैतिक विकास के सोपान में बालक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति तब ही करना चाहते हैं जब वे उसकी पूर्ति कर संकेत में समर्थ होते हैं। वे स्वलाभ से प्रोत्साहित होते

हैं तथा इस बात को समझते हैं कि संबंधस्थूल पर निर्भरता को स्वयम् को देखना होता है। तथा कोई भी व्यक्ति केवल उन व्यक्तियों के प्रति उत्तरदायी होता है जो उसकी सहायता करते है।

परम्परागत स्तर

कोहलबर्ग के अनुसार नैतिक विकास के परम्परागत स्तर पर नैतिक मूल्य अच्छे या बुरे कार्यों को करने में निहित रहते हैं। बालक ब्राह्य में समाज सामाजिक अपेक्षाओं को पूरा करने में रूचि लेते हैं। वे अपने परिवार, अपने समूह अथवा अपने राष्ट्र की अपेक्षओं को पूरा करने को महत्व देते हैं तथा महत्वपूर्ण व्यक्तियों तथा सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप कार्य करते हैं। उनमें परम्परागत नियमों तथा दायित्वों के प्रति समर्थन तथा औचित्य का भाव रहता है। इस स्तर पर होने वाले नैतिक विकास को निम्नांकित दो उपसोपानों में बांटा जा सकता है -

1 परम्परागत एकरूप अभिमुखता -

इस सोपान मे बालक अच्छा बनकर अन्य व्यक्तियों से प्रशंसा प्राप्त करना चाहते हैं। वे अच्छे बालक अथवा अच्छी बालिका जैसा व्यवहार करने में रूचि लेते हैं। जो कुछ अन्यों को अच्छा लगे या अन्यों की सहायता करे या अन्यों के द्वारा स्वीकृत हो, वहीं उत्तम माना जाता है। बालक दूसरे व्यक्तियों के भावों तथा इरादों का ध्यान रखने की आवश्यकता के प्रति सजग रहते है। इस सोपान पर सहयोग को सर्वोत्तम आचरण के रूप में स्वीकार किया जाता है।

2 अधिकार संरक्षण अभिमुखता -

इस सोपान में बालक सामाजिक दृष्टि से विद्यमान सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखना चाहते है। वे समझते है कि समाज में एक व्यापक सामाजिक प्रणाली है जो उसमे रहने वाले व्यक्तियों के व्यवहार को नियत्रित करती है। उनके विचार में नैतिकता का आधार सामाजिक व्यवस्था है तथा व्यक्तिगत हानि होने की स्थिति में भी नियमों का पालन किया जाना चाहिए।

उत्तर परम्परागत स्तर

नैतिक विकास के इस तृतीय तथा सर्वोच्च स्तर पर बालक उन नैतिक मूल्यों तथ नैतिक सिद्धान्तों को परिभाषित करने के स्पष्ट प्रयास करने लगते हैं जिनकी सामाजिक दृष्टि से वैधता या उपयोगिता होती है तथा जो परम्परागत मूल्यों, नियमों या सिद्धान्तों से भिन्न हो सकते है। उनमें स्वनिर्धारित नैतिक सिद्धान्तों के विपरीत निष्ठा तथा अनुसरण करने की भावना होती है। नैतिक मूल्य वस्तुत: उभयनिष्ठ मापदण्डों, अधिकारों तथा कर्तव्यों की पूर्ति मे नहित माने जाते है। इस स्तर पर होने वाले नैतिक विकास को निम्नाकित दो सोपानों में बांटा जा सकता है -

1- **सामाजिक अनुबंध - विधिसम्मत अभिमुखता -** इस सोपान के अंतर्गत उचित कार्यों को आलोचनात्मक ढंग से परखकर समस्त समुदाय के द्वारा स्वीकृत किये गये सामान्य व्यक्तिगत अधिकारों व मानदण्डों के रूप में परिभाषित करने की प्रवृत्ति आ जाती है। व्यक्तिगत मूल्यों तथा विचारों के सापेक्षवाद के प्रति जागरूकता के फलस्वरूप आम सहमति पर पहुंचने के लिए कार्यरत नियमो पर बल दिया जाने लगता है। समाज की आम सहमति क्या है, के अलावा

नियमों को सामाजिक उपयोगिता के तार्किक विचार विमर्श के आधार पर परिवर्तित करने की संभावना रहती है। विधिसम्मत नियमों के अतिरिक्त स्वतंत्र स्वीकारोक्ति या समर्पण भाव व्यक्ति को अपने दायित्वों का पालन करने के लिए प्रेरित करता है।

2- **सार्वभौमिक नतिक सिद्धान्त** - इस सोपान में व्यक्ति उचित अनुचित का निर्णय ऐसे स्वनिर्धारित नैतिक सिद्धान्तों के आधार पर करता है जो तार्किक व्यापकता, सार्वभौमिकता तथा एकरूपता से युक्त होते हैं। ये सिद्धान्त अमूर्त तथा नैतिक बोध से युक्त होते है। वे न्याय के सर्वमान्य प्राकृतिक सिद्धान्त होने के साथ मानव अधिकारों की समानता, परम्परा तथा मानव जाति के प्रति सम्मान की भावना से युक्त होते है।

3- कोहलबर्ग के द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त वर्णित नैतिक विकास के विभिन्न स्तरो तथा सोपानों के अवलोकन से स्पष्ट है कि ये तीनों स्तर तथा ये सातों सोपानों क्रमश: नतिक निर्णय लेने की बढ़ती योग्यता तथा दृष्टिकोणों की बढ़ती व्यापकता व अमूर्तता को इंगित करते हैं। प्रथम स्तर पर बालक आत्मकेंद्रित होते है। क्योंकि वे स्वहित की दृष्टि से ही नैतिक व्यवहार करते हैं तथा दंड से बचना चाहते हैं। इसके विपरित तृतीय स्तर में व्यक्ति बाह्य केन्द्रित हो जाते हैं तथा वे निष्पक्ष भाव से अन्य व्यक्तियों से संबंध में विचार करने की योग्यता विकसित कर लेते है। कोहलबर्ग के द्वारा प्रस्तुत नेतिक विकास के विभिन्न सोपानों पर नैतिक प्रक्रिया निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो सकेगी।

नैतिक प्रश्न - उदाहरणार्थ माना कि आपकी मां सख्त बीमार है। रात्रि 11 बजे डॉक्टर ने इन्हें देने के लिए कोई दवा बताई है। आप बाजार मेंदवा खरीदने जाते है, परन्तु सभी दुकाने बंद है। डाक्टर का कहना है कि दवा तुरन्त चाहिए वरना आपकी मां की स्वर्गवास हो सकता है। ऐसी स्थिति मेंक्या आप अपने किसी मित्र , जो शहर से कहीर दूर रहता है, की दुकान का ताला तोड़कर दवा लाना चाहेंगे कारण सहित बताइये।

कोहलबर्ग के नैतिक विकास के विभिन्न स्तरों तथा सोपानों में निहित तर्क के कारण विभिन्न सोपानों में उपरोक्त प्रश्न पर बालक के द्वारा भिन्न उत्तर आपेक्षिक होगे जिन्हें अग्रलिखित सारणी में कारणो सहित प्रस्तुत कियास गया है।

5.14 गत्यात्मक या क्रियात्मक विकास

5.14.1 गत्यात्मक विकास का अर्थ-

जब हम बालकों के गत्यात्मक विकास की बात करते हैं तो इसमें दो प्रकार के गत्यात्मक कौशलों को शामिल किया जाता है - सामान्य गत्यात्मक कौशल और महीन या विशिष्ट गत्यात्मक कौशल सामान्य गत्यात्मक कौशलों से अभिप्राय है बालक की वह योग्यता जिसमें बालक बड़ी मांसपेशियों का प्रयोग करता है, जैसे चलना, खड़ा होना, बैठना, उछलना और तैरना आदि। विशिष्ट गत्यात्मक कौशलों में बालक छोटी मांसपेशियों का प्रयोग करता है जैसे उंगलियों, अंगूठा और हाथ का प्रयोग आदि। बालकों के गत्यात्मक विकास के लिए अध्यापक और अभिभावकों को विशेष गतिविधियों का आयोजन करना

चाहिए। लेकिन सबसे पहले बालक के विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले गत्यात्मक विकास का ज्ञान होना चाहिए। इससे उसके लिए विभिन्न गतिविधियाँ आयोजित करने में सहायता मिलती है।

5.14.2 विभिन्न अवस्थाओं में बालक का गत्यात्मक विकास -

क) शिशुकाल (0-2वर्ष) - इस अवस्था के दौरान बालक में सामान्य गत्यात्मक विकास होता है। यह विकास उसकी विभिन्न गतिविधियों में देखा जा सकता है, जैसे वह सिर को सीधा रखने की कोशिश करता है, अपने हाथों की सहायता से अपने आप को उठाने की कोशिश करता है, अपने शरीर को लुढ़काना, रेंगना, घनाकार टुकड़ों को पकड़ना आदि। बालक में गत्यात्मक विकास सबसे पहले सिर से शुरू होता है और नीचे की ओर होता हुआ सबसे अंत में पैरों में होता है। गत्यात्मक विकास शरीर के केन्द्र से बाहर की ओर चलता हैं। दूसरे शब्दों में, बालक सबसे पहले सिर, चेहरे और हाथों को नियंत्रित करना सीखता है और बाद में पैरों पर नियंत्रण करना सीखता है। इस अवधि में बालक सीढ़िया से उपर चढ़ सकता है। वह पैरों का संतुलन बनाने लगता है |बालक टॉयलेट का प्रशिक्षण प्राप्त कर लेता है। जब वह टॉयलेट जाना चाहता है तो इस बारे में बाताता है। वह कप या गिलास को पकड़ सकता है। दरवाजे का हैडल घुमाकर उसे खोल सकता है। दो वर्ष का बालक कुर्सी को सरकाकर स्विच को ऑन या ऑफ कर सकता है।

ख) प्रारंभिक बाल्यकाल - (2 से 6 वर्ष) इस अवस्था में बालक आंखों और हाथों का तालमेल करना सीखता है। वह चलना सीख चुका होता है और इस अवस्था में वह दौड़ना, छलांग लगाना और कूदना सीख लेता है। उसमें और अधिक स्पष्ट गत्यात्मक कौशलों का विकास हो जाता है। वह उंगलियों का अच्छी तरह से प्रयोग करना सीख लेता है। वह अब पेसिंल या पेन पकड़ना सीख लेता है। उसे समय और दूरी का ज्ञान हो जाता है। जब गेंद को उसकी तरफ फेंका जाता है तो वह उसे पकड़ लेता है। तीन वर्ष की आयु के बालक बाधआों को पार करके चलना सीख लेते हैं, एक पैर पर खड़े हो सकते हैं। उन्हें खाने में कम से कम सहायता की आवश्यकता पडती है। वे तीन पहिए की साइकिल सीख लेते हैं और झूले पर झूलना पसंद करते है। इस अवस्था के बालक पेंसिल को पकड़ना सीख लेते हैं। चार वर्ष के बालक छोटे पेड़ों पर चढ़ना जानते हैं वे भिन्न प्रकार की आकृतियां बनाना जानते हैं। इस अवस्था के बालक नाचना सीख लेते हैं। पांच वर्ष के बालक पीछे की तरफ चल सकते हैं ठोकर लगने से बच सकते हैं, बिना घुटनों को छुए अपने पैर की उंगुलियों को छू सकते हैं। वे कैंची से काट सकते हैं और अक्षर लिख सकते हैं। अब वे अच्छी तरह से पेन्सिल को पकड़ सकते हैं और अपने जूतों के फीते बांधसकते हैं। 6 वर्ष की आयु के बच्चों में गत्यात्मक गतिविधियों को पूरी तरह विकास हो जाता है। वे तेज गति से भाग कते हैं, छलांग लगा सकते हैं और अचानक रूक सकते हैं। वे एक स्थान पर आराम से नहीं बैठ सकते। वे हमेशा शारीरिक गतिविधियों में लगे रहते हैं, यद्यपि उनमें ध्यान लगाने की क्षमता भी बढ़ जाती है। वे विभिन्न वस्तुओं के निर्माण में रूचि दिखाते है, जैसे खिलौने बनाना।

ग) बाल्यावस्था (6 से 12 वर्ष) - इस अवस्था में बालक पूरी तरह से आंखों और हाथों का तालमेल करना सीख लेता है।इस अवस्था में पहली अवस्था में सीखे गए गत्यात्मक कौशलों का और अधिक विकास होता है। जैसे बालक और तेज दौड़ने लगता है और वह और अधिक ऊंची छलांग लगा सकता है। इस अवस्था में बालक वयस्क के समान सभी गत्यात्मक कौशल प्राप्त कर लेता है। बालक का

गत्यात्मक विकास उसके शारीरिक विकास के साथ चलता है। बच्चे पेंसिल उठाने के लिए स्थूल मांसपेशियों का प्रयोग करते हैं, जबकि एक बड़ा बच्चा सूक्ष्म मांसपेशियों का प्रयोग करता है। जैसे जैसे बच्चा बड़ा होता है, सूक्ष्म मांसपेशियों के प्रयोग में दक्षता हासिल कर लेता है। यही वह समय है जब बच्चे को सूक्ष्म मांसपेशियों को समन्वय करना सिखाया जा सकता है, जैसे लिखना, सिलाई का काम व चित्र बनाना आदि। आप अनुभव से यह तो जानते ही हैं कि सूक्ष्म मांसपेशियों के प्रयोग से पहले बच्चा स्थूल मांसपेशियों का प्रयोग सिखता है।

सामान्य गत्यात्मक कौशलों के विकस के लिए गतिविधियाँ - बालकों के सामान्य गत्यात्मक कौशलों के विकास के लिए अध्यापक और अभिभावकों को निम्न गतिविधियों पर ध्यान दिया जाना चाहिए -

क) संगीत बजाकर नाचना और कूदना

ख) विभिन्न प्रकार आकारों की गेदों से बालक के साथ खेलना

ग) छिपने आदि का खेल खेलना

घ) तैरना सीखना

ड) फुटबाल आदि का खेल खेलना

विशिष्ट या स्पष्ट गत्यात्मक कौशलों के विकास के लिए गतिविधियाँ - विशिष्ट गत्यात्मक कौशलों के विकास के लिए निम्न गतिविधियों पर ध्यान देना चाहिए -

क) चित्रकला सिखाना

ख) बिल्डिंग ब्लॉक्स का प्रयोग करना

ग) हाथ से कागज पर लिखवाना

घ) मिट्टी की आकृतियां बनवाना

ड) कंप्यूटर गेम खेलने के लिए देना

च) पौधों में पानी देना

गत्यात्मक विकास की विशेषताएं -

गत्यात्मक विकास की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं -

1- सामान्य से विशिष्ट क्रियाओं की ओर - उत्तेजना की स्थिति मे ंया आवेश की स्थिति में बालक अपने पूरे शरीर को हिला देता है। तत्पश्चात् वह अपनी मांसपेशियों पर नियंत्रण का प्रयास करता है। परिणामस्वरूप उसके अंगों की क्रियाएं नियंत्रित होती है। स्पष्ट हे कि बालक पहले सामान्य क्रियाएं करते हैं फिर विशिष्ट कियाएं करते हैं।
2- निकट दूर विकासक्रम - शरीर के केन्द्र में स्थित अंग पहले क्रियाएं करने लगते हैं जैसे हृदय, फेफड़े, गुर्दे, यकृत इत्यादि। उसके बाद बाजू, पैर आदि की क्रियाएं होने लगती हैं।
3- वैयक्तिक भिन्नताएं - हर व्यक्ति का अपना अपना व्यक्तित्व होता है। वे भिन्न भिन्न वातावरण में रहते हैं, उनकी शारीरिक क्षमताएं भी भिन्न होती है। अत: गत्यात्मक विकास भी भिन्न भिन्न गुणवत्ता का होगा।

4- यौन भिन्नताएं - क्रियात्मक कौशलों में यौन भिन्नता का प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई पड़ता है। तीन वर्ष की आयु तक लड़के लड़कियों की क्रियात्मक योग्यताओं और गत्यात्मक कौशलों के विकास में कोई अन्तर नहीं होता, लेकिन इसके बाद अन्तर स्पष्ट होने लगता है।

5.15 सारांश

प्राणी के लिए वृद्धि तथा विकास का अत्यन्त महत्व है। वृद्धि शारीरिक अभिवृद्धि को बातती है जबकि विकास प्रगतिशील परिवर्तनों का द्योतक होता है। वृद्धि तथा विकास कुछ सामान्य सिद्धान्तों के अनुरूप होता है। विकास प्रक्रिया को गर्भावस्था, शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था तथा प्रौढ़ावस्था में बांटा जा सकता है। विकास के प्रमुख पक्ष क्रमश: शारीरिक विकास, मानसिक विकास, सामाजिक विकास, संवेगात्मक पक्ष तथा नैतिक विकास हैं। वंशानुक्रम, भोजन, वृद्धि, परिवेश, स्वास्थ्य, पारिवारिक परिस्थितियां आदि कारक विकास प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। विभिन्न अवस्थाओं की विकासात्मक विशेषताओं को ध्यान में रखकर ही बालकों की शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।

वंशानुक्रम, वातावरण तथा विकास स्थिति के कारण विभिन्न व्यक्तियों में विभेद पाये जाते हैं। शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक गुणों में व्यक्तियों के बीच अन्तर रहते हैं। वंशानुक्रम, वातावरण, परिपक्वता, वृद्धि, लिंगभेद, स्वास्थ्य, पृष्ठभूमि, जाति प्रजाति आदि व्यैक्तिक विभेद के लिए उत्तरदायित्व होते है। अवलोकन, परीक्षण, मापनी, व्यक्ति इतिहास, संचयी अभिलेख जैसी मापन विधियों की सहायता से व्यैक्तिक विभेदों को जाना जा सकता है। शिक्षा व्यवस्था करते समय वैयक्तिक विभेदों को ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है।

5.16 शब्दावली

- **स्किमा -** किसी उद्दीपक के प्रति मनुष्य की विश्वसनीयता अनुक्रिया को स्किमा कहते है।
- **संज्ञान** - उद्दीपक जगत की जानकारी ही संज्ञान है।

5.17 स्वमूल्यांकनप्रश्न

अतिलघुरात्मक प्रश्न

1 निम्नलिखित के अर्थ बताइये

अ) वृद्धि
ब) विकास
स) संज्ञान
द) एस्कीमा
ई) आत्मीकरण
एफ) संतुलीकरण

लघुरात्मक प्रश्न

1- विकास और अधिगम में संबंधकी संक्षेप में व्याख्या कीजिए
2- निम्नलिखित के अर्थ उदाहरण सहित बताइये।
   अ) शारीरिक विकास
   ब) संज्ञानात्मक विकास
   स) गामक विकास
   द) भाषा विकास
   य) सामाजिक -सांस्कृतिक विकास

5.18 निबंधात्मक प्रश्न

निम्नलिखित सिद्धान्तों की सविस्तार व्याख्या कीजिए -

1- जीन पियाजे का संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त?
2- ब्रूनर का संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त
3- कोहलबर्ग का नैतिक विकास
4- एरिक्सन का मनोसामाजिक विकास का सिद्धान्त

5.19 संदर्भ ग्रंथ सूची

- Bigge M.L. ; Learning Theories for teacher, new York, Harper & row, 1964
- Bruner, J.S. : The Relevance of education, New York, Norton
- Hurlock, E.B. ; Child development, New York, McMillan co. 1972
- Piuget J.; The Psychology of Intelligence, Patterson: NJ
- गुप्ता, एस.जी. : आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक सदन, इलाहाबाद
- माथुर, एस.एस. शिक्षा मनोविज्ञान श्री विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा -2
- सिंह आर.एन. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा - 2
- पाठक पी.डी. शिक्षा मनोविज्ञान श्री विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा - 2
- सिंह, अरूण कुमार शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन पब्लिशर्स पटना

इकाई - 6

प्रमुख संज्ञानात्मक एवं संवेगात्मक प्रक्रियाऐं

Major Cognitive and Emotional Processes

इकाई रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 संज्ञान शब्द से तात्पर्य

6.3.1 संज्ञान में निहित प्रमुख प्रक्रियाऐं

6.3.2 संज्ञान की तत्व प्रणालियां

6.4 संवेग का अर्थ

6.5 प्रत्यक्षीकरण

6.5.1 प्रत्यक्षीकरण का विश्लेषण

6.5.2 प्रत्यक्षीकरण का शिक्षा में महत्त्व

6.6 अवधान

6.6.1 अवधान का अर्थ एवं परिभाषा

6.6.2 अवधान की विशेषताऐं

6.6.3 अवधान की दशाऐं

6.6.4 अधिगम में अवधान की भूमिका

6.7 स्मृति का अर्थ

6.7.1 स्मृति के प्रकार

6.7.2 स्मृति की अधिगम में भूमिका

6.8 भाषा विकास

6.8.1भाषा विकास की प्रक्रिया

6.8.2 भाषा विकास के चरण

6.8.3 भाषा विकास की अधिगम में भूमिका

6.9 चिन्तन का अर्थ

6.9.1 चिंतन के प्रकार
6.9.2 चिंतन की अधिगम में भूमिका
6.10 समस्या समाधान का अर्थ
6.10.1 समस्या समाधान की अधिगम में भूमिका -
6.10.2 समस्या समाधान की विधियां
6.11 प्रेरणा का अर्थ
6.11.1 प्रेरणा के प्रकार
6.11.2 प्रेरणा की अधिगम में भूमिका
6.12 संज्ञान व संवेग को प्रभावित करने वाले सामाजिक - सांस्कृतिक कारक
6.13 संवेगों की अधिगम में भूमिका
6.14 अधिगम शैलियाँ
6.14.1 अधिगम शैलियों के प्रकार
6.15 सारांश
6.16 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.17 निबंधात्मक प्रश्न
6.18 संदर्भ ग्रंथ सूची

6.1 प्रस्तावना

अधिगम प्रक्रिया को अनेक कारक प्रभावित करते हैं। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन द्वारा हम प्रमुख संज्ञानात्मक एवं संवेगात्मक प्रक्रियाओं के बारे में जानेंगे व इनकी अधिगम में क्या भूमिका होती है, इस पर भी चर्चा करेंगे। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक अधिगम शैली होती है। इस इकाई के द्वारा हम अधिगम की इन विभिन्न शैलियों का भी अध्ययन करेंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को सम्पन्न करने तथा अध्ययन करने के पश्चात आप को इस योग्य होना चाहिये कि आप -

- संज्ञान शब्द के अर्थ एवं तात्पर्य से परिचित हो सकें।
- संज्ञान में निहित प्रमुख प्रक्रियाओं को समझ सकें तथा संज्ञान की तत्व प्रणालियों को समझ सकें।
- संवेग का अर्थ को जान सकें।
- प्रत्यक्षी करण से परिचित हो सकें तथा प्रत्यक्षीकरण का विश्लेषण कर सकें।

- प्रत्यक्षीकरण के शिक्षा में महत्त्व को जान सकें।
- अवधान का अर्थ, परिभाषा, विशेषताऐं, दशाऐं तथा अधिगम में अवधान की भूमिका को पहचान सकें।
- स्मृति का अर्थ, स्मृति के प्रकार तथा स्मृति की अधिगम में भूमिका को पहचान सकें।
- भाषा विकास, भाषा विकास की प्रक्रिया, भाषा विकास के चरण तथा भाषा विकास की अधिगम में भूमिका को पहचान सकें।
- चिन्तन का अर्थ चिंतन के प्रकार तथा चिंतन की अधिगम में भूमिका से परिचित हो सकें।
- समस्या समाधान का अर्थ तथा समस्या समाधान की विधियों से परिचित हो सकें।
- प्रेरणा का अर्थ, प्रेरणा के प्रकार तथा प्रेरणा की अधिगम में भूमिका को पहचान सकें।
- संज्ञान व संवेग को प्रभावित करने वाले सामाजिक सांस्कृतिक कारक तथा संवेगों की अधिगम में भूमिका के बारे में जान सकें।
- अधिगम शैलियाँतथा अधिगम शैलियों के प्रकारों से परिचित हो सकें।

6.3 संज्ञान शब्द से तात्पर्य

संज्ञान शब्द को अंग्रेजी में Cognition कहा जाता है, जो कि लैटिन भाषा के Cognosco शब्द से बना है, जिसका अर्थ पहचान करना या प्रत्यय बनाना है। किसी व्यक्ति द्वारा अपने अथवा अपने वातावरण के बारे में प्राप्त ज्ञान, विचार, धारणा या व्याख्या ही संज्ञान है। संज्ञान ज्ञान सम्बन्धी सभी मानसिक योग्यताओं एवं प्रक्रियाओं का समुच्चय है। सरलतम शब्दों में कहा जा सकता है कि बाह्य जगत के बारे में ज्ञान प्राप्त करना ही संज्ञान है।

मानव शिशु जन्म के समय ज्ञान रहित होता है, वह बाह्य जगत, अपने वातावरण तथा उसमें विद्यमान उद्दीपकों के प्रति कोई अनुक्रिया प्रकट नहीं कर पाता है किन्तु जैसे - जैसे उसका शारीरिक विकास होता है उसकी संज्ञानात्मक क्षमताऐं भी विकसित होती जाती हैं। यही संज्ञानात्मक क्षमताऐं बालक के विकास क्रम में उसके द्वारा बाह्य जगत, अपने वातावरण तथा उसमें विद्यमान उद्दीपकों के प्रति कोई अनुक्रिया करने में तथा उनके प्रति समायोजन स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। जो मानसिक प्रक्रियाओं के रूप में कार्य करती हैं। ये मानसिक प्रक्रियाऐं मानव व्यवहार तथा वातावरण के मध्य मध्यस्थ की भूमिका निभाती हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि -

1. संज्ञानात्मक प्रक्रिया एक जटिल मानसिक योग्यता है।
2. यह आजीवन चलने वाली अर्जित की हुई योग्यता है।
3. इसमें अमूर्तिकरण पाया जाता है।
4. इसमें अन्तरण पाया जाता है।

5. इसमें प्रत्यक्षीकरण प्रक्रम घटित होता है।

6. इसमें प्रतीकों का उपयोग होता है।

7. इनका निरीक्षण सम्भव नहीं है क्योंकि ये समस्त मानसिक प्रक्रियाऐं अप्रत्यक्ष होती हैं।

8. प्राणी का संज्ञान पूर्णतः व्यक्तिगत होता है।

9. यह वातावरण के बारे में ज्ञान प्राप्त करने तथा उसे समझकर उसके प्रति व्यवहार करने की प्रक्रिया है।

10. बालक की आयु, शिक्षा एवं पूर्वानुभवों के विकास के साथ ही उसकी संवेगात्मक क्षमताऐं भी विकसित होती जाती हैं।

6.3.1 संज्ञान में निहित प्रमुख प्रक्रियाऐं (Important Process in Cognition)

संज्ञान में प्रमुख रूप से निम्न तीन प्रक्रियाऐं निहित होती हैं -

1. वातावरण से सूचनाऐं ग्रहण करने के लिये केन्द्रिय एवं प्रत्यक्षीकरण प्रक्रियाऐं (उदाहरण के लिये - दृष्टि, श्रवण क्षमता, गंध, स्वाद, स्पर्श, संवेदनाऐं आदि)।
2. वह सभी मानसिक प्रक्रियाऐं जिनके द्वारा वातावरण से ग्रहण की गई सूचनाओं को पहचान कर उन्हें अर्थपूर्ण सूचनाओं में परिवर्तित किया जाता है तथा महत्वपूर्ण व अमहत्वपूर्ण सूचनाओं में विभेद कर उनका भंडारण किया जाता है व आवश्यकतानुसार इन्हें पुनः प्राप्त किया जाता है।
3. सूचनाओं का निर्णय लेने, समस्या समाधान करने, सम्प्रेषण आदि से सम्बन्धित उपयोगों में शामिल मानसिक प्रक्रियाऐं।

6.3.2 संज्ञान की तत्व प्रणालियां

संज्ञान की निम्न प्रमुख तत्व प्रणालियां होती है -

1. **अल्पकालिक स्मृति/कार्यात्मक स्मृति** - यह वह स्मृति होती है जो इस पर आधारित होती है कि कोई व्यक्ति एक समय में कितनी जानकारी अथवा सूचनाऐं चेतन स्थिति में रख सकता है।
2. **ज्ञानकोश/दीर्घकालिक स्मृति** - यह वह स्मृति होती है जिसके द्वारा सूचनाओं का वर्गीकरण एवं भण्डारण किया जाता है तथा आवश्यकता पड़ने पर इन सूचनाओं को पुनः प्राप्त किया जाता है।
3. **कार्यकारी प्रणाली** - इसके अन्तर्गत पराबोध आता है, जिसमें व्यक्ति को अपनी क्षमताओं तथा कमजोरियों का ज्ञान होता है। इसके द्वारा ही वह अपनी मानसिक प्रक्रियाओं को नियोजित, नियंत्रित व मूल्यांकित कर सकता है ताकि समस्या समाधान में आसानी हो सके।
4. **प्रतिक्रिया प्रणाली** - इसके अन्तर्गत व्यक्ति द्वारा संकलित अथवा प्राप्त सूचनाओं का विश्लेषण करने के उपरांत प्रतिक्रियाऐं दी जाती हैं।

अभ्यास प्रश्न 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. संज्ञान शब्द को अंग्रेजी में ....कहा जाता है।
2. संज्ञानात्मक प्रक्रिया एक जटिल ....है।
3. संज्ञानात्मक प्रक्रिया में ....का उपयोग होता है।
4. संज्ञान में प्रमुख रूप से ....प्रक्रियाऐं निहित होती हैं।
5. ....वह स्मृति होती है जिसके द्वारा सूचनाओं का वर्गीकरण एवं भण्डारण किया जाता है तथा आवश्यकता पड़ने पर इन सूचनाओं को पुनः प्राप्त किया जाता है।

6.4 संवेग का अर्थ (Meaning of Emotions)

संवेग अंग्रेजी भाषा के शब्द Emotion का हिन्दी रूपांतरण है, जो लैटिन भाषा के शब्द Emovere से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है - शरीर को हिला देना। मनोवैज्ञानिकों ने इसमें शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार की प्रक्रियाओं को शामिल माना है।

यंग (1943) के अनुसार "संवेग व्यक्ति की एक तीव्र उपद्रव की अवस्था है, जिसका प्रभाव उस पर सम्पूर्ण रूप से पड़ता है, जो मनोवैज्ञानिक ढंग से उत्पन्न होती हैं और जिनमें चेतन अनुभव, व्यवहार एवं अन्तरायव सम्बन्धी कार्य सन्निहित होते हैं।"

सैनफोर्ड (1961) के अनुसार "संवेग एक जटिल प्रक्रिया है, जिसमें चेतन, अनुभूति तथा आन्तरिक एवं बाह्य शारीरिक क्रियाऐं सन्निहित होती हैं और जो अभिप्रेरित व्यवहार करने में सहायक या बाधक होती हैं।"

इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने के बाद संवेग के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि -

1. संवेग तीव्र उपद्रव की अवस्था है।
2. यह प्राणी में सम्पूर्ण रूप में घटित होते है।
3. संवेगों की उत्पत्ति मनोवैज्ञानिक आधार पर होती है।
4. संवेगों के अनुभव व्यक्तिगत अनुभव के रूप में होते हैं।
5. संवेगात्मक अवस्था में व्यक्ति में विशेष प्रकार के व्यवहार देखे जाते हैं। जैसे भय की अवस्था में रोना, चिल्लाना एवं भागना आदि।
6. संवेगात्मक अवस्था में व्यक्ति की आन्तरिक शारीरिक क्रियाओं में भी कई प्रकार के परिवर्तन देखे जाते हैं। जैसे - क्रोध की अवस्था में रक्तचाप एवं श्वांस की गति का बढ़ जाना आदि।

अभ्यास प्रश्न 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. संवेग......................की अवस्था है।
2. संवेग प्राणी में ....रूप में घटित होते है।
3. संवेगों के अनुभव ....के रूप में होते हैं।

6.5 प्रत्यक्षीकरण

प्रत्यक्षीकरण एक मानसिक प्रक्रिया है। प्रत्यक्षीकरण एक अर्थपूर्ण प्रक्रिया है, इसीलिये प्रत्यक्षीकरण के द्वारा प्राप्त ज्ञान को सविकल्प प्रत्यक्ष भी कहते हैं। पहली बार जब कोई बालक किसी आवाज को सुनता है तो उसे यह ज्ञान नहीं होता है कि उक्त आवाज किसकी है तथा कहाँ से आ रही है, किन्तु जैसे - जैसे वह बड़ा होता है वह आवाजों को पहचानने लगता है। पहचानने की इसी प्रक्रिया को प्रत्यक्षीकरण कहते हैं। दूसरे शब्दों में पूर्व अनुभव के आधार पर संवेदना की व्याख्या करना या उसमें अर्थ जोड़ना ही प्रत्यक्षीकरण है।

प्रत्यक्षीकरण के अर्थ को निम्न परिभाषाओं के द्वारा और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है -

रायबर्न के अनुसार - "अनुभव के अनुसार संवेदना की व्याख्या की प्रक्रिया को प्रत्यक्षीकरण कहते है।"

वुडवर्थ के अनुसार - "प्रत्यक्षीकरण इन्द्रियों की सहायता से पदार्थ और बाह्य घटनाओं या तथ्यों को जानने की क्रिया है।"

जेम्स के अनुसार - "प्रत्यक्षीकरण विशेष रूप से अभौतिक पदार्थों की चेतना है, जो ज्ञानेन्द्रियों के सामने रहते हैं।"

6.5.1 प्रत्यक्षीकरण का विश्लेषण

जलोटा के अनुसार - "प्रत्यक्षीकरण वह मानसिक प्रक्रिया है, जिससे हमको बाह्य जगत की वस्तुओं या घटनाओं का ज्ञान प्राप्त होता है।" उक्त परिभाषा के आधार पर प्रत्यक्षीकरण की क्रिया का विश्लेषण निम्न प्रकार से किया जा सकता है -

1. वस्तु या उत्तेजक का होना।
2. वस्तु का ज्ञानेन्द्रियों को प्रभावित करना।
3. ज्ञानेन्द्रियों का ज्ञानवाहक तन्तुओं को प्रभावित करना।
4. ज्ञानवाहक तन्तुओं का वस्तु के ज्ञान या अनुभव को मस्तिष्क के ज्ञान केन्द्र में पहंचाना।
5. सं्वेदना उत्पन्न होना।
6. सं्वेदना में अर्थ जोड़ना।
7. प्रत्यक्षीकरण का होना।

6.5.2 प्रत्यक्षीकरण का शिक्षा में महत्त्व

वर्तमान समय में सभी शिक्षा शास्त्री प्रत्यक्षीकरण या प्रत्यक्ष ज्ञान के महत्व को स्वीकारते हैं। इसीलिये वर्तमान शिक्षण संस्थाओं में इसी प्रकार की शिक्षा व्यवस्था दिखाई देती है। प्रत्यक्षीकरण के शिक्षा में महत्व को निम्न बिन्दुओं के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है -

1. प्रत्यक्षीकरण बालक के ज्ञान को स्पष्टता प्रदान करता है।
2. प्रत्यक्षीकरण बालक के विचारों का विकास करता है।
3. प्रत्यक्षीकरण बालक को ध्यान केन्द्रित करने का प्रशिक्षण देता है।
4. प्रत्यक्षीकरण व्याख्या करने की प्रक्रिया है। अतः यह बालक को व्याख्या करने के योग्य बनाता है।
5. प्रत्यक्षीकरण बालक को विभिन्न बातों का स्वाभाविक ज्ञान देता है।
6. प्रत्यक्षीकरण बालक की स्मृति एवं कल्पनाशीलता को क्रियाशील बनाता है।
7. प्रत्यक्षीकरण का आधार ज्ञानेन्द्रियां हैं।
8. भाटिया के अनुसार - प्रत्यक्षीकरण ज्ञान का वास्तविक आरम्भ है।
9. डम्विल के अनुसार - प्रत्यक्षीकरण और गति में बहुत घनिष्ठ संबंध है। अतः बालक के प्रत्यक्षीकरण का विकास करने के लिये उसे शारीरिक गतिविधियां करने का पूरा अवसर दिया जाना चाहिये।
10. प्रत्यक्षीकरण के विकास के लिये बालक को आस पास के वातावरण को भ्रमण करने का अवसर दिया जाना चाहिये।
11. प्रत्यक्षीकरण के विकास के लिये बालक को स्वयं क्रिया द्वारा ज्ञान प्राप्त करने को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।
12. प्रत्यक्षीकरण के विकास के लिये बालक को पढ़ाते समय शिक्षक को विभिन्न प्रकार की शिक्षण
-   सामग्री का प्रयोग करना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न 3

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. प्रत्यक्षीकरण के द्वारा प्राप्त ज्ञान को ....भी कहते हैं।
2. भाटिया के अनुसार ....ज्ञान का वास्तविक आरम्भ है।
3. प्रत्यक्षीकरण बालक को ....का प्रशिक्षण देता है।

6.6 अवधान (Attention)

शिक्षा के क्षेत्र में अवधान का बहुत अधिक महत्व है। शिक्षण कार्य को समुचित ढंग से सम्पादित करने के लिये एक सफल शिक्षक का यह सर्व प्रथम दायित्व होता है कि वह अध्ययन विषय को इस प्रकार प्रस्तुत करे कि विद्यार्थियों का ध्यान उस विषय के प्रति आकर्षित हो सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये यह आवश्यक है कि अवधान की क्रिया पर मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार किया जाये।

6.6.1 अवधान का अर्थ एवं परिभाषा -

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सरल अर्थों में अवधान का अर्थ है - ध्यान देना। यह एक मानसिक क्रिया है। मनुष्य अपने पर्यावरण में प्रतिदिन अनेक वस्तुओं के सम्पर्क में आता है, किन्तु वह प्रत्येक वस्तु पर समान रूप से ध्यान नहीं देता है। इन अनेक वस्तुओं में से वह किन्ही विशेष वस्तुओं पर ही अपनी चेतना को केन्द्रित करता है। इस प्रकार चेतना को किसी वस्तु पर केन्द्रित करना ही अवधान है।

अवधान की परिभाषा -

प्रमुख आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने अवधान की निम्नलिखित परिभाषाऐं दी हैं -

डम्बिल (Dumvile) - "किसी दूसरी वस्तु की अपेक्षा एक वस्तु पर चेतना का केन्द्रीकरण ही अवधान है।"

रास (Ross) - "अवधान, विचार की वस्तु को मस्तिष्क के सामने लाने स्पष्ट रूप से लाने की प्रक्रिया है।"

मैक्डूगल (McDougle) - "अवधान केवल उस इच्छा या चेष्टा को कहते हैं जिसका प्रभाव हमारी ज्ञान प्रक्रिया पर पड़ता है।"

6.6.2 अवधान की विशेषताऐं (Characterstics of Attention)

अवधान की प्रमुख विशेषताओं को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है -

1) **मानसिक प्रक्रिया -** अवधान एक मानसिक प्रक्रिया है क्योंकि ध्यान लगाने के लिये मन को किसी वस्तु विशेष की ओर संचालित एवं सक्रिय करना पड़ता है।
2) **चयनात्मक प्रक्रिया -** अवधान एक चयनात्मक प्रक्रिया है। व्यक्ति अपने वातावरण में अनेकों उत्तेजकों से घिरा रहता है। जिनमें से वह अपनी इच्छा एवं रूचि के अनुसार किसी एक उत्तेजक की ओर आकर्षित होता है तथा उसे चुनकर उस पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है।
3) **उत्तेजक का चेतना का केन्द्र बनना -** अवधान की प्रक्रिया में कई उत्तेजकों में से चयनित उत्तेजक को चेतना के केन्द्र में आना पड़ता है। तभी उसका प्रत्यक्षीकरण सम्भव होता है।
4) **प्रयोजनता -** अवधान में कोई न कोई प्रयोजन अवश्य होता है। इसी प्रयोजन के कारण ही हम किसी उत्तेजक के प्रति अपना ध्यान केन्द्रित करने में सफल होते हैं।

5) **तत्परता -** अवधान की प्रक्रिया में हमारा मन एवं शरीर प्रतिक्रिया करने को तत्पर रहता है। इसी तत्परता के कारण हम अनेकों उत्तेजकों में से किसी एक उत्तेजक को अपनी चेतना के केन्द्र में लाने में सफल होते हैं।
6) **सीमित विस्तार -** अवधान की चयनात्मक प्रकृति के कारण जब हम अनेकों उत्तेजकों में से किसी एक उत्तेजक का चयन करते हैं तो अन्य उत्तेजक हमारी चेतना के केन्द्र से बाहर चले जाते हैं। इस प्रकार अवधान की प्रकृति सीमित विस्तार वाली होती है।
7) **अस्थिरता -** अवधान की एक और विशेषता उसका अस्थिर होना है। हमारा मन अत्यंत चंचल एवं गतिशील होता है, जिसके कारण हम किसी एक वस्तु पर बहुत अधिक समय तक ध्यान केन्द्रित नहीं रख पाते हैं।
8) **अन्वेषणात्मकता -** हमारा मन छान बीन के लिये सदा नई वस्तुओं की खोज में लगा रहता है। इसीलिसे इसकी प्रकृति गतिशील एवं चंचल होती है। वुडवर्थ ने कहा भी है कि "अवधान गतिशील होता है क्योंकि यह अन्वेषणात्मक है यह छान बीन के लिये सदा नई वस्तुओं की खोज करता है।"
9) **गतियों का समायोजन -** अवधान के समय शरीर एवं मन दोनों को सचेष्ट सावधान रहना पडता है। बिना इनके समायोजन के ध्यान का केन्द्रण सम्भव नहीं हो सकता।
10) **विश्लेषणात्मक तथा संश्लेषणात्मक प्रवृत्ति -** अवधान में विश्लेषणात्मक तथा संश्लेषणात्मक दोनों ही प्रकार की प्रवृत्तियां शामिल होती हैं। इन्हीं के आधार पर हम किसी वस्तु या उत्तेजक का विश्लेषणात्मक अध्ययन कर उसके प्रति अपनी राय अभिव्यक्त कर पाते हैं।
11) **अवधान में तीनों पक्षों का होना -** किसी वस्तु के प्रति ध्यान केन्द्रण में चेतना सम्मिलित होती है जो ज्ञानात्मक पक्ष है। ध्यान केन्द्रण में प्रयुक्त प्रयत्नशीलता इसका क्रियात्मक पक्ष है तथा इसके फलस्वरूप प्राप्त होने वाली सन्तुष्टि या आनन्द उसका भाव पक्ष होता है। इस प्रकार अवधान में सचेत जीवन के तीनों पक्ष समाहित होते हैं।

6.6.3 अवधान की दशाऐं (Condition ofAttention)

वातावरण में अनेक वस्तुओं के होते हुए भी हम किसी एक वस्तु पर ध्यान केन्द्रित क्यों करते हैं? इसका कारण यह है कि ध्यान को आकर्षित करने के लिये अनेक दशाऐं सहायता करती हैं। इन दशाओं को अवधान के कारक या निर्धारक भी कहा जाता है।

अवधान की इन दशाओं को निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(अ) वस्तुगत या बाह्य दशाऐं

(ब) आत्मगत या आन्तरिक दशाऐं

(अ) अवधान की वस्तुगत या बाह्य दशाऐं -

ये वातावरण की वस्तुओं से सम्बन्धित होती हैं और वस्तु की प्रकृति पर निर्भर होती हैं। ये दशाऐं निम्नलिखित हैं -

1. ***उद्दीपन की तीव्रता*** - उद्दीपन की तीव्रता के कारण ध्यान न होने पर भी हमारा ध्यान उनकी ओर आकर्षित हो जाता है। जैसे - तेज प्रकाश या तेज आवाज।

2. ***उद्दीपन की नवीनता*** - हमारा ध्यान सदा नवीन वस्तुओं की ओर आकर्षित होता है।

3. ***उद्दीपन की विषमता*** - उद्दीपन की विषमता भी ध्यान केन्द्रण में सहायक है। जैसे - काले श्यामपट्ट पर सफेद खड़िया से लेखन।

4. ***उद्दीपन का आकार*** - छोटे आकार की अपेक्षा बड़े आकार की वस्तुऐं हमारा ध्यान जल्दी आकर्षित करती हैं। इस प्रकार उद्दीपन का आकार भी ध्यान केन्द्रण में सहायक होता है।

5. ***उद्दीपन का स्वरूप*** - उद्दीपन के स्वरूप का अर्थ उसके प्रकार से है। विभिन्न उद्दीपक विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। प्रयोगों के द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि अन्य केन्द्रिक उद्दीपनों की अपेक्षा श्रवण एवं दृष्टि उद्दीपक हमारा ध्यान अधिक आकर्षित करते हैं।

6. ***उद्दीपन की पुनरावृत्ति*** - किसी उद्दीपन के बार - बार दोहराये जाने पर हमारा ध्यान न चाहते हुए भी उसकी ओर आकर्षित हो जाता है।

7. ***उद्दीपन में परिवर्तन*** - जिन उद्दीपनों में एकाएक परिवर्तन हो जाता है, वे भी हमारा ध्यान शीघ्र ही आकर्षित कर लेते हैं। जैसे - शान्त कक्षा में एकाएक शोरगुल होने लगना।

8. ***उद्दीपन की गति*** - स्थिर उद्दीपनों की अपेक्षा गतिमान उद्दीपन हमारा ध्यान जल्दी आकर्षित करते हैं।

9. ***उद्दीपन की अवधि*** - जो उद्दीपक हमारे सामने अधिक समय तक रहता है उन पर हमारा ध्यान अधिक जाता है अपेक्षाकृत उन उद्दीपकों के जो हमारे सामने कुछ ही समय तक रहते हैं।

10. ***उद्दीपन की स्थिति*** - ध्यान देने के लिये उद्दीपन को एक विशेष स्थिति में होना आवश्यक है, यथा दृष्टि उद्दीपन के लिये उद्दीपन का आंखों के ठीक सामने तथा सही ऊंचाई पर होना चाहिये।

(ब) आत्मगत या आन्तरिक दशाऐं -

अवधान केवल वातावरण की बाह्य दशाओं पर ही नहीं बल्कि व्यक्ति की आन्तरिक दशाओं पर भी निर्भर होता है। ये दशाऐं निम्नलिखित हैं -

1. **मूल प्रवृत्तियां** - मूल प्रवृत्तियों के कारण कोई व्यक्ति किसी वस्तु के प्रति ध्यान देने के लिये प्रेरित होता है। उदाहरणार्थ जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण व्यक्ति का किसी घटना को जानने एवं समझने के लिये उत्सुक होना।

2. **आवश्यकता** - जिन वस्तुओं से हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है उनकी ओर हमारा ध्यान जाना स्वाभाविक है। उदाहरणार्थ - भूखे व्यक्ति का खाने की ओर ध्यान जाना।

3. **आदत** - आदत के अनुरूप भी हमारा ध्यान अपने अनुकूल वस्तुओं के प्रति अनायास ही चला जाता है।

4. **संवेग** - संवेग भी हमारे ध्यान को महत्वपूर्ण तरीके से प्रभावित करते हैं। उदाहरणार्थ - जिस व्यक्ति को हम पसंद नहीं करते उसकी छोटी सी गलती पर भी हमारा ध्यान शीघ्र ही चला जाता है।

5. **उद्देश्य या लक्ष्य** - जो वस्तुऐं हमारे उद्देश्य या लक्ष्यों के अनुकूल होती हैं, उन पर भी हमारा ध्यान अधिक शीघ्रता से चला जाता है।

6. **अतीत अनुभव** - पूर्व में अनुभव की हुई बातें भी हमारा ध्यान सरलता से आकर्षित कर लेती हैं।

7. **अर्थ** - जिन बातों का हम अर्थ समझते हैं, वे भी हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं। उदाहरणार्थ हिन्दी भाषी व्यक्ति का ध्यान हिन्दी में बात करने वाले व्यक्तियों की ओर आकर्षित होता है अपेक्षाकृत अन्य भाषा - भाषी व्यक्तियों के।

8. **रूचि** - वे बातें भी हमारा ध्यान अधिक सहजता से आकर्षित करती हैं, जो हमारी रूचि के अनुकूल होती हैं।

6.6.4 अधिगम में अवधान की भूमिका

अवधान का अधिगम पर अत्यंत प्रभाव पड़ता है। बिना अवधान के बालक किसी अनुभव या व्यवहार को नहीं सीख पाता है। कक्षा में शिक्षक जब नवीन ज्ञान देता है जो उस समय वह बालकों के चंचल मन को कक्षा क्रिया में केन्द्रित रखने का प्रयास करता है। यहां पर अवधान का केन्द्रित करने के कुछ उपायों की चर्चा की जा सकती है जिनके प्रयोग द्वारा शिक्षण के समय किया जाकर बालकों के ध्यान को केन्द्रित किया जा सकता है।

1. **सहायक सामग्री का प्रयोग** - शिक्षक पाठ के विकास के समय सहायक सामग्री का प्रयोग कर छात्रों का ध्यान कक्षा कार्य में केन्द्रित रखने में सफलता प्राप्त कर सकता है।

2. **विषय में रूचि उत्पन्न करना** - यदि बालक में विषय के प्रति रूचि पैदा कर दी जाये तो बालक का ध्यान उस विषय में केन्द्रित किया जा सकता है।

3. **शान्त वातावरण** - अध्यापन के दौरान वातावरण में व्याप्त शान्ति ध्यान के केन्द्रण में सहायक होती है।

4. **संकीर्ण विस्तार** - स्वाभविक अधिगम के लिये शिक्षक को विषय वस्तु के सीमित बिन्दुओं को ही कक्षा में प्रस्तुत करना चाहिये क्योंकि विषय वस्तु का सीमित विस्तार अवधान केन्द्रण में सहायक होता है।

5. **आकार** - अधिगम को सरल बनाने के लिये बड़े आकार की सहायक सामग्री का प्रयोग करना चाहिये।

6. **रूप रंग** - बालकों का ध्यान (विशेषतः छोटी उम्र के) केन्द्रित करने के लिये शिक्षक को रंगीन सहायक सामग्री का प्रयोग करना चाहिये।

7. **गति** - बालकों का ध्यान केन्द्रित करने के लिये शिक्षक को स्थिर वस्तुओं की अपेक्षा गतिशील वस्तुओं का प्रयोग करना चाहिये।

8. **नवीनता** - वस्तुओं की नवीनता ध्यान केन्द्रण में अत्यंत सहायक होती है। अतः बालकों का ध्यान केन्द्रित करने के लिये शिक्षक को नवीन चित्रों एवं मानचित्रों आदि सहायक सामग्री का प्रयोग करना चाहिये।

9. **विषमता** - विषम स्वरूप वाली वस्तुऐं भी ध्यान केन्द्रण में सहायक होती हैं।

10. **व्यवस्थित रूप** - व्यवस्थित स्वरूप वाली वस्तुऐं भी ध्यान केन्द्रण में सहायक होती हैं। अतः बालकों का ध्यान केन्द्रित करने के लिये शिक्षक को व्यवस्थित रूपवाली सहायक सामग्री का प्रयोग करना चाहिये।

शिक्षण में यह आवश्यक है कि शिक्षक अवधान के केन्द्रीकरण पर ध्यान देकर अधिगम को सरल एवं सहज बनाये। इस कार्य में उपरोक्त सुझाव शिक्षक के कार्य को अधिक सरल बना सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न 4

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. किसी दूसरी वस्तु की अपेक्षा एक वस्तु पर चेतना का केन्द्रीकरण ही ....है।
2. व्यक्ति अपने वातावरण में अनेकों उत्तेजकों से घिरा रहता है। जिनमें से वह अपनी इच्छा एवं रूचि के अनुसार किसी एक उत्तेजक की ओर आकर्षित होता है तथा उसे चुनकर उस पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है। इस प्रकार अवधान एक ....प्रक्रिया है।
3. अवधान ....होता है क्योंकि यह अन्वेषणात्मक है यह छान बीन के लिये सदा नई वस्तुओं की खोज करता है।
4. अवधान की दशाओं को ....भागों में विभाजित किया जा सकता है -
5. आदत के अनुरूप भी हमारा ध्यान अपने ....के प्रति अनायास ही चला जाता है।

6.7 स्मृति का अर्थ (Meaning of Memory)

स्मृति एक मानसिक क्रिया है। इसकी सहायता से हम अपने पूर्व अनुभवों को जो कि हमारे अचेतन मन में विद्यमान रहते हैं, अपनी वर्तमान चेतना में लाते हैं। हमारे व्यावहारिक जीवन में अनेक प्रकार की घटनाऐं घटित होती हैं जिनके अनुभव हमारे अचेतन मन में बने रहते हैं और इन अनुभवों की छाप हमारे मस्तिष्क में अंकित हो जाती है। अचेतन मन में संचित इन्हीं अनुभवों के चेतन मन में आने की क्रिया को स्मृति कहते हैं।

स्मृति की परिभाषाऐं -

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों के द्वारा स्मृति की निम्न परिभाषाऐं दी गई हैं -

वुडवर्थः "स्मृति सीखी हुई वस्तु का सीधा उपयोग है।"

मैक्डूगलः "स्मृति से तात्पर्य है - अतीत की घटनाओं के अनुभवों की कल्पना करना और इस तथ्य को पहचान लेना कि ये अतीत कालीन अनुभव हैं।"

जेम्सः "स्मृति चेतना से अलग हो जाने के बाद मन की अतीत दशा का ज्ञान है अथवा यह एक घटना या तथ्य का ज्ञान है, जिसके बारे में हमने कुछ समय तक कुछ नहीं सोचा है पर साथ ही हमें यह चेतना है कि हम पहले उसका विचार या अनुभव कर चुके हैं।"

उपयुक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि स्मृति एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा संचित या गत अनुभवों को आवश्यकता पड़ने पर पुनः चेतना में लाया जाता है। स्मृति के अन्तर्गत समस्त सीखी हुई और अनुभव की हुई वस्तुऐं आती हैं। इस प्रकार स्मृति पूर्व अनुभवों और विचारों को पुनः जाग्रत करने, सजीव करने और स्मरण करने की क्रिया है।

6.7.1 स्मृति के प्रकार -

प्रमुख मनोवैज्ञानिकों ने स्मृति के निम्न प्रकार बतलाये हैं -

1. **तात्कालिक स्मृति (Immediate Memory)** - किसी विषय या तथ्य को याद करके तुरंत सुना देना तात्कालिक स्मृति है। इस प्रकार की स्मृति में विस्मृति की संभावना अधिक रहती है।
2. **स्थाई स्मृति (Permanent memory)** - इसमें सीखी हुई बाते बहुत लम्बे समय तक याद रहती हैं। यह बालकों में अधिक पायी जाती है।
3. **सक्रिय स्मृति (Active Memory)** - पूर्व अनुभवों को इच्छापूर्वक प्रयास करके पुनः स्मरण करना सक्रिय स्मृति कहलाती है।
4. **निष्क्रिय स्मृति (Passive Memory)** - जब हम पूर्व अनुभवों को अनायास ही बिना किसी प्रयास के याद कर लेते हैं, तो वह निष्क्रिय स्मृति कहलाती है।
5. **व्यक्तिगत स्मृति (Personal Memory)** - अतीत काल के स्वयं के अनुभवों का पुनः स्मरण व्यक्तिगत स्मृति कहलाता है।
6. **अव्यक्तिगत स्मृति (Impersonal Memory)** - इस प्रकार की स्मृति में स्वयं के अनुभवों की अपेक्षा अन्य किसी माध्यम (मित्र, समाचार पत्र, पत्रिकायें, पुस्तक आदि) से प्राप्त अनुभवों को याद कर लिया जाता है।
7. **यांत्रिक स्मृति (Mechanical Memory)** - किसी विषय को बिना समझे रट लेना और आश्यकता पड़ने पर सफलतापूर्वक पुनः स्मरण कर लेना ही यांत्रिक स्मृति कहलाती है।
8. **तार्किक स्मृति (Logical Memory)** - किसी विषय को भली भंति सोच विचार कर समझ लेना और आश्यकता पड़ने पर सफलतापूर्वक पुनः स्मरण कर लेना ही तार्किक स्मृति कहलाती है।
9. **आदतजन्य स्मृति (Habit Memory)** - जब कोई व्यक्ति किसी बात या व्यवहार को बार बार दोहराता है तो यह उसकी आदत बन जाती है। इसे स्मरण करने के लिये उस कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता।

10. **इन्द्रिय अनुभव स्मृति (Sense Impression Memory)** - जब हम किसी वस्तु, तथ्य या विचार को अपनी ज्ञानेन्द्रियों के अनुभवों के द्वारा पुनः स्मरण करते है तो यह इन्द्रिय अनुभव स्मृति कहलाती है। उदाहरणर्थ - आंख बन्द कर किसी वस्तु को सूंघकर, चखकर अथवा स्पर्श करके पहचानना।
11. **शारीरिक स्मृति (Physiological Memory)** - जब हम अपने शरीर के किन्ही अंगों के प्रयाग द्वारा किसी कार्य को बार बार करते हैं, तो सम्बन्धित अंगों को उसकी आदत हो जाती है, और उस कार्य में किसी प्रकार की भूल नहीं होती तो वह शरीरिक स्मृति कहलाती है। उदाहरणार्थ - टाइपिंग का अभ्यास हो जाना।
12. **वास्तविक स्मृति (Real Memory)** - शिक्षाविदों ने इसे सर्वश्रेष्ठ स्मृति माना है। इसमें किसी विषय को क्रमबद्ध तरीके से स्थाई रूप से याद किया जाता है तथा तथ्यों को शीघ्र पुनः स्मरण कर लिया जाता है। शिक्षा में इस स्मृति का महत्तपूर्ण स्थान है।

6.7.2 स्मृति की अधिगम में भूमिका -

अधिगम में स्मृति की महत्वपूर्ण भूमिका है। स्मृति के माध्यम से ही शिक्षक द्वारा अथवा कक्षा कक्ष में प्राप्त अनुभवों को छात्रों द्वारा जीवन में प्रयुक्त किया जा सकता है। अतः यह आवश्यक है कि शिक्षक यह सुनिश्चित करे कि छात्र उसके द्वारा प्रदान किये जा रहे अनुभवों को ग्रहण कर रहे हैं। स्मरण की निम्न विधियों के प्रयोग द्वारा छात्र इन अनुभवों को आसानी से गहण कर सकते हैं -

1. **खंड और पूर्ण विधि** - किसी विषय को याद करने के लिये प्रमुख रूप से दो विधियां प्रयुक्त होती हैं। जब कोई विषय वस्तु आकार एवं स्वरूप में बड़ी हो तथा उसे पूर्ण रूप से याद किया जाना बालकों के लिये संभव नहीं होता तब उस विषय वस्तु को छोटे - छोटे खंडों में विभाजित कर दिया जाता है और उस विषय वस्तु को छोटे - छोटे खंडों के माध्यम से अपेक्षाकृत सहज रूप से याद किया जा सकता है।
2. **मिश्रित विधि** - इस विधि में खंड एवं पूर्ण विधि को साथ - साथ प्रयुक्त किया जाता है। उदाहरणार्थ किसी कविता को याद करने के लिये उसके चार अथवा छः पंक्तियों के पद्यांशों को याद किया जा सकता है।
3. **प्रगतिशील विधि** - इस विधि में विषय सामग्री को कई खंडों जैसे 1,2,3,4 आदि में विभाजित कर दिया जाता है एवं उन खंडों को क्रमशः याद कर लिया जाता है।
4. **निरंतर या अविराम विधि** - इस विधि में बिना बीच में रूके पाठ को लगातार दोहराया जाता है। यह विधि तात्कालिक स्मृति के लिये उत्तम है।
5. **सान्तर या विराम विधि** - इस विधि में बीच में थोड़ा रूक कर एवं विश्राम करके पुनः पाठ को लगातार दोहराया जाता है। यह विधि स्थाई स्मृति के लिये उत्तम है।
6. **सक्रिय विधि** - इस विधि को स्वर अथवा उच्चारण विधि भी कहा जाता है। इसमें विषय वस्तु को जोर - जोर से बोलकर याद किया जाता है। यह विधि छोटे बच्चों के लिये अत्यंत उपयोगी है।

7. **निष्क्रिय विधि** - इसमें विषय वस्तु को मन में पढ़कर बिना बोले याद किया जाता है। यह विधि बड़े बच्चों के लिये अत्यंत उपयोगी है।
8. **रटने की विधि** - इस विधि में विषय वस्तु को बिना सोचे अथवा समझे ही बार - बार पढ़ कर याद कर लिया जाता है। इस विधि में विस्मृति की सम्भावना अधिक रहती है।
9. **विचार साहचर्य विधि** - इस विधि में किसी अज्ञात वस्तु को याद करने के लिये उसे किसी ज्ञात वस्तु से सम्बन्धित कर लिया जाता है। यह विधि तार्किक स्मृति का प्रमुख आधार है।

अभ्यास प्रश्न 5

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो

1. ……………सीखी हुई वस्तु का सीधा उपयोग है।
2. किसी विषय को भली भांति सोच विचार कर समझ लेना और आश्यकता पड़ने पर सफलतापूर्वक पुनः स्मरण कर लेना ही ………………..स्मृति कहलाती है।
3. ………………विधि में खंड एवं पूर्ण विधि को साथ - साथ प्रयुक्त किया जाता है।
4. विचार साहचर्य विधि में किसी अज्ञात वस्तु को याद करने के लिये उसे किसी ………………..से सम्बन्धित कर लिया जाता है।

6.8 भाषा विकास (Language Development)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसकी आवश्यकताऐं उसें समाज में रहने को विवश करती हैं। समाज में रहने की उसकी अनिवार्यता उसमें भाषा विकास को जन्म देती है। भाषा एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी इच्छा एवं विचारों को दूसरे व्यक्ति तक पहुंचाने में समर्थ होता है। यह शाब्दिक अथवा अशाब्दिक दोनों प्रकार की हो सकती है। इन दोनों ही प्रकार की भाषा का प्रयोग व्यक्ति समय, काल एवं परिस्थिति के अनुसार करता है। व्यक्ति में सामाजिक गुणों के विकास के लिये भाषा के विकास को अनिवार्य माना गया है। **हरलाक (1974)** के अनुसार "भाषा में सम्प्रेषण के (अथवा विचारों के आदान प्रदान के) वे सभी साधन आते हैं, जिसमें विचारों एवं भावों को प्रतीकात्मक बना दिया जाता है जिससे कि अपने विचारों और भावों को दूसरों से अर्थपूर्ण ढंग से कहा जा सके।"

6.8.1 भाषा विकास की प्रक्रिया -

भाषा विकास की योग्यता बहुत सीमा तक अर्जित है। भाषा विकास में योगदान देने वाले विभिन्न अंगों की रचना आनुवांशिक होती है जैसे स्वर यंत्र की बनावट दांत, होंट, जिव्हा आदि की रचना। सामाजिक परिवेश भाषा को सहयोग देने वाले अंगों को प्रभावित करता है। निम्नलिखित मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं का भाषा विकास में महत्वपूर्ण योगदान होता है-

1) **अभिप्रेरणा (Motivation)** - जन्मोपरांत शिशु में अनेक आवश्यकताओं का प्रादुर्भाव होता है। वह उन क्रियाओं को करना चाहता है जिनसे उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके किंतु बढ़ती आयु के साथ ही उसके माता - पिता उसमें अर्थपूर्ण एवं सामाजिक क्रियाओं को

पुनर्बलित करते हैं। इसी पुनर्बलन से वह भाषा विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण क्रियाओं को करने के लिये प्रेरित होता है।

2) **अनुकरण (Imitation)** - शिशु में अनुकरण की क्षमता जितनी अधिक होती है, उसमें भाषा का विकास भी उतनी ही शीघ्रता से होता है। इस अनुकरण की प्रक्रिया में सर्वप्रथम स्वरां का उच्चारण होता है तत्पश्चात व्यंजनों का उच्चारण प्रारंभ होता है।
3) **परिपक्वता (Maturation)** - ध्वनियों की उत्पत्ति के लिये सभी उच्चारण सहयोगी अंगों में समय के साथ आने वाली परिपक्वता भी बालक को भाषा विकास की प्रक्रिया में प्रोत्साहित करती है।
4) **अनुबंघन (Conditioning)** - बालक के भाषा विकास मं उद्दीपक एवं अनुक्रिया के मध्य साहचर्य की भी अहम भूमिका होती है। जिससे वह वस्तु के अर्थ व उसके उच्चारण को समझते हुऐ उसी प्रकार की क्रिया करता जाता है। उदाहरणार्थ - कलम को देखकर कलम शब्द का उच्चारण।

6.8.2 भाषा विकास के चरण (Stages of Language Development)

भाषा विकास एक क्रमबद्ध एवं समयबद्ध रूप में चलने वाली प्रक्रिया है, जिसके कई चरण होते हैं -

1. **क्रन्दन** - क्रन्दन एवं रूदन को बालक की भाषा का प्रारंभिक रूप माना गया है। क्रन्दन एवं रूदन के माध्यम से ही वह अपनी आवश्यकताओं का इजहार करता है।
2. **बलबलाना** - जन्म से दूसरे अथवा तीसरे महीने तक बालक का क्रन्दन बलबलाने का रूप ले लेता है। इस बलबलाने में सर्वप्रथम स्वरों से प्रारम्भ होता है तथा उम्र बढ़ने के साथ - साथ इसमें कुछ व्यंजनों का उच्चारण भी शामिल हो जाता है। बलबलाने की यह अवस्था लगभग सात - आठ महीने की आयु तक रहती है।
3. **हाव भाव** - बलबलाने के साथ ही बालकों में विभिन्न हाव - भाव भी विकसित होने लगते हैं। इनमें मुस्कुराना, हाथ फैलाना, हाथ पैर पटकना, किसी वस्तु को पकड़ने का प्रयास करना आदि प्रमुख हैं।
4. **आंकलन शक्ति** - हरलाक (1974) के अनुसार बालक शब्दों को समझना पहले सीख लेता है, बोलना बाद में। इसी प्रकार वह जितने शब्द बोल पाता है, उससे कहीं अधिक शब्दों तथा भावों को वह समझ लेता है।
5. **शब्द प्रयोग** - आकलन के साथ ही बालक के शब्द कोश में वृद्धि होने लगती है। डेढ़ वर्ष की आयु में जहां बालक के शब्द कोश 10 से 12 शब्द होते हैं, वहीं ढाई वर्ष की आयु में वह लगभग 300 शब्दों का स्वामी बन जाता है।
6. **वाक्य प्रयोग** - 18 माह की उम्र होते - होते बालक एक पदीय वाक्यों को बोलने लग जाता है तथा विद्यालय जाने की उम्र तक उसके यह वाक्य अपेक्षाकृत बड़े, संयुक्त तथा मिश्रित होने लग जाते हैं।

6.8.3 भाषा विकास की अधिगम में भूमिका

भाषा विकास की बालक के अधिगम में अहम भूमिका होती है। भाषा के प्रयोग द्वारा वह सहजता से एक ओर जहां अपने भावों एवं विचारों को दूसरों तक पहुंचा सकता है, वहीं दूसरे व्यक्तियों के भावों एवं विचारों को आसानी से समझ भी सकता है। हम कह सकते हैं कि भाषा विकास के बाद बालक निम्न प्रकार से अधिगम कर सकता है -

1. बालक मौखिक एवं शारीरिक रूप से समाज के अन्य अनुभवी व्यक्तियों के सम्पर्क में आ जाता है।
2. बालक पाठ्य पुस्तकों के सम्पर्क में आ जाता है, जिससे उसके अनुभवों में निरन्तर वृद्धि होती रहती है।
3. पढ़ने के अतिरिक्त वह विद्यालय में अन्य क्रियाऐं करने लगता है।
4. बालक समाज में विद्यमान अन्य संचारमाध्यमों (रेडियो, सिनेमा, टी.वी. नाटक आदि) के सम्पर्क में आ जाता है, जो उसके अनुभवों एवं अधिगम में सहायक होते हैं।

अभ्यास प्रश्न 6

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो-

1. ध्वनियों की उत्पत्ति के लिये सभी उच्चारण सहयोगी अंगों में समय के साथ आने वाली ……………….भी बालक को भाषा विकास की प्रक्रिया में प्रोत्साहित करती है।
2. क्रन्दन एवं रूदन को बालक की भाषा का ……………….रूप माना गया है।
3. बालक समाज में विद्यमान अन्य संचार माध्यमों के सम्पर्क में आ जाता है, जो उसके ……………………..में सहायक होते हैं।

6.9 चिन्तन का अर्थ

वह प्रक्रिया जिसमें हम अतीत के अनुभवों के निष्कर्षों का प्रयोग किसी नई स्थिति का सामना करने के लिये और किसी समस्या के समाधान के लिये करते हैं, उस मानसिक प्रक्रिया को चिन्तन कहा जाता है। चिन्तन सरल हो या जटिल उसमें एक मध्यस्थ प्रक्रिया सदा निहित होती है, जिसके द्वारा पूर्व अनुभवों को वर्तमान क्रिया से जोड़ा जाता है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जो हमें पहले से ही किसी परिस्थिति का सामना करने के लिये तैयार कर देती है।

परिभाषाएं -

चिन्तन के अर्थ को विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई निम्न परिभाषाओं के माध्यम से और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है -

वारेन:"चिन्तन एक प्रतीकात्मक स्वरूप की विचारात्मक प्रक्रिया है, जिसका प्रारंभ व्यक्ति के समक्ष उपस्थित किसी समस्या या कार्य से होता है। इसमें कुछ प्रयत्न और भूल से युक्त किन्तु उसकी समस्या प्रवृत्ति से प्रभावित क्रिया होती है जिससे कि अन्त में समस्या का समाधान या निष्कर्ष मिलता है।"

रास:"चिन्तन मानसिक क्रिया का ज्ञानात्मक पहलू है।"

वेलेन्टाइन:"मनोवैज्ञानिक विवेचन में चिन्तन शब्द का प्रयोग उस क्रिया के लिये किया जाता है जिसमें विशेष रूप से श्रंखलाबद्ध विचार किसी लक्ष्य या उद्देश्य की ओर प्रवाहित होते हैं।"

शिक्षा शास्त्री डीवी ने मानव मस्तिष्क में विचारों की प्रक्रिया में निम्न पांच तार्किक स्थितियों अथवा सोपानों का वर्णन किया है -

1. सोचने अथवा चिन्तन का आरंभ किसी समस्या या कठिनाई की प्रेरणा से होता है।
2. मस्तिष्क में सम्पूर्ण स्थिति की व्याख्या तथा समस्या का उद्घाटन होता है।
3. विभिन्न सुझावों के आधार पर सम्भावित समाधानों का विवरण तैयार होता है।
4. प्रत्येक समाधान को भली भांति सोच समझ कर सर्वश्रेष्ठ समाधान को प्रयोग के लिये प्रस्तुत किया जाता है।
5. पुनर्निरीक्षण, प्रयोग तथा परिणाम के अनुसार समाधान को स्वीकृत या अस्वीकृत कर दिया जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि चिंतन एक जटिल प्रक्रिया है, जो किसी समस्या के उत्पन्न होने से आरम्भ होती है तथा समस्या के समाधान के अन्त तक चलती रहती है।

6.9.1 चिंतन के प्रकार (Types of Thinking)

चिंतन को प्रमुखतः निम्न चार प्रकारों में बांटा जा सकता है -

1. **प्रत्यक्षात्मक चिंतन** - इस प्रकार के चिंतन का सम्बन्ध पूर्व अनुभवों पर आधारित वर्तमान वस्तुओं से होता है। यह निम्न प्रकार का चिंतन है। यह प्रमुखतः पशुओं एवं बालकों में पाया जाता है। उदाहरणार्थ - कई दिनों तक माता पिता के घर वापस आने पर यदि बालक को टाफी मिलती है तो प्रत्येक बार उनके घर आने पर उसके मस्तिष्क में टाफी का विचार आता है। इस प्रकार के चिंतन में भाषा एवं नाम का प्रयोग नहीं किया जाता है।
2. **प्रत्ययात्मक चिंतन** - इस चिंतन का सम्बन्ध पूर्व निर्मित प्रत्ययों से होता है, जिनकी सहायता से भविष्य के किसी निर्णय पर पहुंचा जाता है। उदाहरणार्थ - किसी बकरी को देख कर बालक अपने मस्तिष्क में बकरी के प्रत्यय का निर्माण कर लेता है तथा पुनः भविष्य में बकरी के दिखाई देने पर वह उसकी ओर संकेत कर बकरी शब्द का प्रयोग करता है।
3. **कल्पनात्मक चिंतन** - इस प्रकार के चिंतन का सम्बन्ध पूर्व अनुभवों पर आधारित भविष्य की वस्तुओं से होता है। उदाहरणार्थ - माता पिता के घर वापस आने पर बालक के मस्तिष्क में विचार आता है कि वे उसके लिये टाफी लायेंगे। इस प्रकार के चिंतन में भाषा एवं नाम का प्रयोग नहीं किया जाता है।
4. **तार्किक चिंतन** - यह चिंतन सर्वश्रेष्ठ चिंतन माना जाता है। इसका सम्बन्ध किसी समस्या के तर्कपूर्ण समाधान से होता है। डीवी ने इसे *विचारात्मक चिंतन* की संज्ञा दी है।

6.9.2 चिंतन की अधिगम में भूमिका (Role of Thinking in Learning)

चिंतन की प्रक्रिया में हम अतीत के अनुभवों के निष्कर्षों का प्रयोग किसी नई स्थिति का सामना करने के लिये और किसी समस्या के समाधान के लिये करते हैं। चिंतन के द्वारा पूर्व अनुभवों को वर्तमान क्रिया से जोड़ा जाता है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जो हमें पहले से ही किसी परिस्थिति का सामना करने के लिये तैयार कर देती है। मनुष्य के दैनिक जीवन के लगभग समस्त कार्य चिंतन की क्रिया से युक्त होते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाये तो चिंतन ही वह प्रक्रिया है जो मनुष्य को पशुओं से अलग करती है तथा उसे एक सामाजिक स्वरूप प्रदान करती है।

मरसेल के अनुसार - "समस्या का ज्ञान और उसके समाधान की खोज, यही चिंतन की प्रक्रिया है और यही सीखने की भी प्रक्रिया है।" इस प्रकार चिंतन अधिगम को न केवल आत्मसात करने में सहायक होता है वरन् यह उसे स्थाई भी बनाता है। चिंतन के द्वारा ही बालक किसी भी स्तर पर प्राप्त किये गये ज्ञान को अपने व्यावहारिक जीवन में उत्पन्न होने वाली समस्याओं के समाधान के लिये प्रयुक्त कर सकता है।

श्रेष्ठ अधिगम हेतु यह आवश्यक है कि बालकों में श्रेष्ठ चिंतन शक्ति का विकास किया जाये। बालकों में चिंतन शक्ति के विकास के लिये शिक्षक द्वारा निम्न उपायों को अपनाया जा सकता है -

1. भाषा, चिंतन के माध्यम और अभिव्यक्ति की आधारशिला है। अतः शिक्षक को बालकों के भाषा ज्ञान में वृद्धि करनी चाहिये।
2. ज्ञान, चिंतन का स्तम्भ है। अतः शिक्षक को बालकों के ज्ञान का विस्तार करना चाहिये।
3. उत्तरदायित्व, चिंतन को प्रोत्साहित करता है। अतः शिक्षक को बालकों को उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंपने चाहिये।
4. रूचि और जिज्ञासा का चिंतन में महत्वपूर्ण स्थान है। अतः शिक्षक को बालकों में रूचि और जिज्ञासा की वृद्धि करनी चाहिये।
5. तर्क, वाद - विवाद और समस्या समाधान के अवसर प्रदान करने चाहिये।
6. प्रयोग, अनुभव और निरीक्षण सम्बन्धी परिस्थितियां उत्पन्न की जानी चाहिये।
7. विचारात्मक योग्यता में वृद्धि करनी चाहिये।

अभ्यास प्रश्न 7

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो-

1. चिन्तन मानसिक क्रिया का …………………पहलू है।
2. सोचने अथवा चिन्तन का आरंभ किसी ……………………………..प्रेरणा से होता है।
3. प्रत्ययात्मक चिंतन का सम्बन्ध ……………………..से होता है।
4. स्पष्ट चिंतन की योग्यता सफल जीवन के लिये आवश्यक है। जो लोग उद्योग, कृषि या किसी मानसिक कार्य में दूसरों के आगे होते हैं, वे अपनी ………………………….की योग्यता में साधारण व्यक्तियों से श्रेष्ठ होते हैं।
5. ……………., चिंतन को प्रोत्साहित करता है।

6.10 समस्या समाधान का अर्थ (Meaning of Problem Solution)

जब हमारे किसी निश्चित लक्ष्य पर पहुचने के मार्ग में कोई बाधा अथवा कठिनाई उत्पन्न होती है तो यह बाधा अथवा कठिनाई समस्या कहलाती है। जब हम उक्त बाधा अथवा कठिनाई को अपने प्रयासों के द्वारा समाप्त कर उस पर विजय प्राप्त कर लेते हैं तो हम अपनी समस्या का समाधान कर लेते हैं। इस प्रकार किसी लक्ष्य के मार्ग में उत्पन्न किसी बाधा अथवा कठिनाई पर विजय प्राप्त कर लेना ही समस्या समाधान कहलाता है।

समस्या समाधान की परिभाषाऐं -

स्किनर: "समस्या समाधान किसी लक्ष्य की प्राप्ति में बाधा डालती प्रतीत होती कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने की प्रक्रिया है। यह बाधाओं के बावजूद सामंजस्य करने की विधि है।"

स्टेनले ग्रे: "समस्या समाधान वह वह ढांचा या प्रतिमान है जिसमें तार्किक चिंतन निहित है।"

6.10.1 समस्या समाधान की अधिगम में भूमिका -

समस्या समाधान की शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका है। समस्या समाधान की शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में इस भूमिका को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है -

1. यह बालकों में रूचि उत्पन्न करती है।
2. यह बालकों में स्वयं कार्य करने का आत्मविश्वास उत्पन्न करती है।
3. यह बालकों में समस्याओं का समाधान करने के लिये वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग का अनुभव प्रदान करती है।
4. यह बालकों की विचारात्मक और सृजनात्मक चिंतन एवं तार्किक शक्ति का विकास करती है।
5. यह बालकों को भावी जीवन में उत्पन्न होने वाली समस्याओं के समाधान करने का प्रशिक्षण देती है।

अतः यह कहा जा सकता है कि समस्या समाधान का अधिगम प्रक्रिया में महत्वपूर्ण स्थान है। बालकों में समस्या समाधान की क्षमता विकसित करने के लिये शिक्षक द्वारा निम्न विधियों का प्रयोग किया जा सकता है -

6.10.2 समस्या समाधान की विधियाँ -

समस्या समाधान की कुछ प्रमुख विधियां निम्न हैं -

1. **बिना सीखे अथवा आदतजन्य व्यवहार द्वारा समस्या समाधान विधि** - इस विधि में किसी भी प्रकार के चिंतन अथवा मानसिक प्रक्रिया का अभाव होता है। इसका प्रयोग निम्न कोटि के जीवों द्वारा किया जाता है। उदाहरणार्थ - सर्प अथवा मधुमक्खी द्वारा अपने जीवन रक्षार्थ सदा डंक मारना।
2. **प्रयास एवं त्रुटि विधि** - इस विधि का प्रयोग निम्न एवं उच्च कोटि के जीवों के द्वारा किया जाता है। इसके सम्बन्ध में थार्नडाइक द्वारा बिल्ली पर किया गया प्रयोग उल्लेखनीय है।

3. **अन्तर्दृष्टि अथवा सूझ विधि** - इस विधि का प्रयोग उच्च कोटि के जीवों के द्वारा किया जाता है। इसके सम्बन्ध में कोहलर द्वारा वनमानुषों पर किया गया प्रयोग उल्लेखनीय है।
4. **वैज्ञानिक विधि** - यह विधि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उपयोगी है। यह समस्या समाधान की एक व्यवस्थित विधि है। तथ्यों एवं आंकड़ों का एकत्रीकरण, उनका वर्गीकरण, विश्लेषण, निष्कर्ष एवं उनका प्रयोग इसके प्रमुख चरण हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि समस्या समाधान मानव के दैनिक जीवन में घटित होने वाली एक स्वाभविक प्रक्रिया है। इसका शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में महत्वपूर्ण स्थान है। अतः शिक्षा में समस्या समाधान के लिये तार्किक प्रशिक्षण पर ध्यान देना आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न 8

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. समस्या समाधान वह वह ढांचा या प्रतिमान है जिसमें ....निहित है।
2. प्रयास एवं त्रुटि विधि का प्रयोग ....कोटि के जीवों के द्वारा किया जाता है।
3. वैज्ञानिक विधि समस्या समाधान की एक ....विधि है।

6.11 प्रेरणा का अर्थ (Meaning of Motivation)

किसी व्यक्ति के व्यवहार के अनेक उत्तरदायी कारण होते हैं। इनमें से कुछ आन्तरिक तथा कुछ बाहरी कारण होते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने इन कारणों को प्रेरक का नाम दिया है। ये प्रेरक व्यक्ति को क्रियाशील बनाते हैं एवं नवीन क्रियाऐं करने की प्रेरणा देते हैं। इस प्रकार किसी निश्चित लक्ष्य के लिये क्रियाशील बनाना ही प्रेरणा है। यह रूचि को पैदा करने, बनाये रखने तथा नियंत्रित करने की क्रिया है।

प्रेरणा की परिभाषाऐं - प्रेरणा के अर्थ को अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिये कतिपय मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गईं परिभाषाओं पर विचार करना उपयुक्त होगा -

जानसन: "प्रेरणा सामान्य क्रियाओं का प्रभाव है जो प्राणी के व्यवहार की ओर संकेत करता है और उसका मार्ग निर्देषन करता है।"

गुड: "क्रिया को उत्तेजित करने, जारी रखने और नियंत्रित करने की प्रक्रिया को प्रेरणा कहते हैं।"

वुडवर्थ: "प्रेरक व्यक्ति की वह दशा है जो उसे निश्चित व्यवहार करने के लिये और निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये उत्तेजित करता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने बाद प्रेरणा के बारे में यह कहा जा सकता है कि -

1. प्रेरणा व्यक्ति के व्यवहार को जाग्रत या उत्तेजित करती है।
2. प्रेरणा द्वारा ही व्यवहार का संचालन होता है।
3. प्रेरणा क्रियाशीलता का पर्याय होती है।
4. प्रेरणा साधन है, साध्य नहीं।

6.11.1 प्रेरणा के प्रकार (Types of Motivation)

प्रेरणा को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है - आन्तरिक प्रेरणा (Internal Motivation) और बाह्य प्रेरणा (External Motivation)।

(1) **आन्तरिक प्रेरणा**

आन्तरिक प्रेरणा का तात्पर्य उस आन्तरिक शक्ति से है जो व्यक्ति के व्यवहारों को व्यक्त करती है। इस प्रेरणा द्वारा किये हुए कार्य व्यक्ति को सुख एवं संतोष प्रदान करते हैं। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में आन्तरिक प्रेरणा का अधिक महत्व होता है। इस प्रकार की प्रेरणा द्वारा प्राप्त अधिगम अधिक प्रभावशाली होता है।

(2) **बाह्य प्रेरणा**

इस प्रकार की प्रेरणा में वे उत्तेजक अथवा उद्देश्य समाहित होते हैं जिनकी प्राप्ति बालक का लक्ष्य होती है। इस प्रकार की प्रेरणा में बालक बाह्य तत्वों से प्रभावित होकर कार्य करता है तथा उसकी इच्छा गौण होती है।

6.11.2 प्रेरणा की अधिगम में भूमिका -

ब्लेयर, जोन्स व सिम्पसन ने कहा है कि "प्रेरक वे शक्तियां हैं जो हमारी आवश्यकताओं से उत्पन्न होकर व्यवहार को दिशा और उद्देश्य प्रदान करती हैं।" उक्त परिभाषा से यह भलीं भांति स्पष्ट हो जाता है कि प्रेरक बालकों के उद्देश्यों के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। किसी अध्यापक के लिये भी इन प्रेरकों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि इनकी सहायता से ही वह बालकों को अपने शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये प्रेरित कर सकता है तथा उनके व्यवहार में वांछित परिवर्तन ला सकता है।

अधिगम को प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख प्रेरकों की चर्चा निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत की जा सकती है -

1. **उद्देश्य अथवा सीखने की इच्छा** -बिना इच्छा अथवा उद्देश्यों के कार्य करने पर सन्तोषजनक परिणामों की प्राप्ति नहीं होती है जबकि यदि बालक में सीखने की इच्छा विकसित कर दी जाये तो सीखना सुगम हो जाता है।
2. **प्रगति और परिणामों का ज्ञान** - किसी बालक द्वारा किसी क्षेत्र में किये गये कार्यों में उसके द्वारा की गई प्रगति अथवा परिणामों का ज्ञान से उसे कार्य को और भी अधिक रूचि एवं लग्न से करने के लिये प्रेरित करता है।
3. **प्रशंसा** - बालक द्वारा किसी क्षेत्र में किये गये कार्यों में उसके द्वारा की गई प्रगति अथवा परिणामों की प्रशंसा उस पर सकारात्मक प्रभाव डालती है। जिसके परिणामस्वरूप वह उस कार्य को और भी अधिक रूचि एवं लग्न से करता है। प्रशंसा मौखिक एवं सांकेतिक दोनों रूपों में हो सकती है।

4. **भत्र्सना -** कुछ प्रयोगों ने सिद्ध किया है कि अधिगम में भत्र्सना भी प्रेरक का कार्य करती है। किन्तु इसका प्रभाव व्यक्तिगत शिक्षण के अनुसार पृथक - पृथक होता है। इसका प्रभाव बहिर्मुखी बालकों पर अधिक पड़ता है।
5. **प्रतिद्वन्दिता एवं सहयोग -** प्रतिद्वन्दिता व्यक्ति में मूल आवश्यकताओं को संतुष्ट करती है। यह अधिगम को प्रभावपूर्ण बनाने हेतु एक महत्वपूर्ण प्रेरक है।
6. **पुरस्कार तथा दण्ड** - पुरस्कार तथा दण्ड प्रेरणा के महत्वपूर्ण साधन हैं। इनका उद्देश्य भावी जीवन पर अनुकूल प्रभाव डालना है। पुरस्कार का प्रयोग किसी सकारात्मक कार्य को प्रोत्साहित करने के लिये किया जाता है तथा दण्ड का प्रयोग किसी अवांछित कार्य को रोकने के लिये किया जाता है।
7. **आकांक्षा का स्तर -** किसी भी व्यक्ति के उद्देयों में उसकी आकांक्षा का भिन्न स्तर उसके द्वारा किये जाने वाले प्रयासों के स्तर को प्रभावित करता है। उच्च आकांक्षा वाला बालक अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये निम्न आकांक्षा वाले बालक के अपेक्षाकृत अधिक प्रयास करता है।
8. **सफलता -** सफलता स्वयं में एक प्रकार का पुरस्कार है। सफलता बालक के मनोबल को ऊंचा उठाती है। किसी एक कार्य में सफलता प्राप्त करने वाला बालक अन्य कार्यों में भी सफलता प्राप्त करने के प्रयास करता है।
9. **आत्म प्रेरणा -** किसी भी बालक के लिये उसकी अपनी शक्तियों एवं क्षमताओं का ज्ञान उसे अपने कार्य को पूर्ण करने के लिये प्रेरित करता है। आत्मप्रेरणा का अन्य सभी प्रेरकों में महत्वपूर्ण स्थान है।
10. **ध्यान, रूचि एवं उत्साह -** श्रेष्ठ अधिगम के लिये कक्षा में बालक का ध्यान सीखने की क्रिया में केन्द्रित करना प्रेरणा का महत्वपूर्ण साधन है। ध्यान को केन्द्रित करने में रूचि एवं उत्साह का महत्वपूर्ण स्थान है। एक अध्यापक को सदैव बालकों में आन्तरिक रूचि विकसित करने पर ध्यान देना चाहिये।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि अधिगम में प्रेरणा के बिना नवीन ज्ञान को सिखाना या क्रिया को प्रभावशाली ढंग से पूरा किया जाना संभव नहीं है। अतः अध्यापकों को प्रेरणा की प्रक्रिया तथा प्रेरणा के साधनों का ज्ञान शिक्षण को प्रभावशाली बनाने के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न 9

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो-

1. क्रिया को उत्तेजित करने, जारी रखने और नियंत्रित करने की प्रक्रिया को ……………..कहते हैं।
2. आन्तरिक प्रेरणा का तात्पर्य उस आन्तरिक शक्ति से है जो व्यक्ति के ……………..को व्यक्त करती है।
3. किसी बालक द्वारा किसी क्षेत्र में किये गये कार्यों में उसके द्वारा की गई ……………………..का ज्ञान से उस कार्य को और भी अधिक रूचि एवं लग्न से करने के लिये प्रेरित करता है।

4. सफलता बालक के मनोबल को................ उठाती है।
5. ....व्यक्ति के व्यवहार को जाग्रत या उत्तेजित करती है।

6.12 संज्ञान व संवेग को प्रभावित करने वाले सामाजिक - सांस्कृतिक कारक

संज्ञान व संवेगों के विकास पर व्यक्ति के विभिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों का प्रभाव देखने को मिलता है। कुछ प्रमुख सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों का अध्ययन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है-

1. **परिवार -** बालक की मानसिक प्रक्रियाओं, ध्यान, समस्या समाधान आदि पर उसके परिवार का महत्वपूर्ण प्रभाव होता है - जैसे उसके अभिभावक व अन्य परिवार के सदस्य जिस प्रकार से किसी समस्या को हल करते हैं, जिस चीज से वे प्रभावित होते हैं, जिस प्रकार वे तर्क देते हैं व चिंतन करते हैं वही प्रक्रियाऐं व उनका ढंग बालक उनसे सीखता है तथा उसका संज्ञान प्रभावित होता है। संवेगों में भी परिवार का महत्वपूर्ण योगदान होता है। जैसे संवेग परिवार के होते हैं वही संवेग बालक उनसे सीखता है। बालक जन्म से ही जिज्ञासु होता है। वह नई परिस्थिति या वस्तु को देखकर उसके प्रति अपने परिवार वालों से कई प्रकार के संगत व असंगत प्रश्न पूछता है। परिवार के सदस्य उसकी जिज्ञासाओं को किस प्रकार से संतुष्ट करते हैं, इसका सीधा प्रभाव बालक के संज्ञान एवं संवेग दोनों पर ही पड़ता है।

2. **समाज -** परिवार के बाद समाज ही बालक का प्रथम सम्पर्क स्थल होता है। हर समाज की अपनी पृथक मान्यताऐं होती हैं। इन्ही के अनुसार समाज के व्यक्तियों का चिंतन, तर्क, प्रत्यक्षीकरण, भाषा विकास आदि प्रभावित होता है। समाज का संवेगों पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। यदि समाज किसी बालक को नहीं अपनाता है तो उसमें नकारात्मक संवेगों की प्रबलता होती है तथा यदि कियी बालक और उसके परिवार की समाज में अच्छी प्रतिष्ठा होती है तो बालक में भी सकारात्मक संवेगों की प्रबलता पाई जाती है।

3. **धर्म -** बालक का धर्म भी उसके संज्ञान एवं संवेगों के विकास में योगदान देता है। प्रत्येक धर्म के अपने रीति - रिवाज होते हैं, तथा प्रत्येक धर्म के अनुयायियों का अपना एक पृथक चिंतन का तरीका होता है, जो बालक के संज्ञान को प्रभावित करता है। संवेगों पर भी धर्म का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ - जैन धर्म के लोग अहिंसा को सर्वोपरि मानते हैं। अतः जैन धर्म के अनुयायियों में हिंसात्मक प्रवृतियां कम पायी जाती हैं।

4. **विद्यालय -** विद्यालय का वातावरण व उसकी कार्यशैली बालक के संज्ञान व संवेगों को प्रभावित करती है। विद्यालय का भयमुक्त वातावरण बालकों में जहां प्रेम, स्नेह, उत्साह आदि के भाव विककसित करता है वहीं विद्यालय में कठोर वातावरण बालकों में भय, कुण्ठा, उदासीनता आदि भावों को विकसित करता है। बालकों की संज्ञानात्मक शक्तियों पर भी शिक्षण विधियों, शिक्षण सहगामी गतिविधियों, भौतिक एवं व्यावहारिक वातावरण का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता

है। यदि विद्यालय में बालकों के अनुरूप शिक्षण विधियों एवं शिक्षण सहगामी गतिविधियों का चुनाव होता है तो बालकों में चिंतन, प्रत्यक्षीकरण, ध्यान, स्मृति आदि संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का सकारात्मक विकास होता है।

5. **अध्यापक छात्र सम्बन्ध** - अध्यापक और छात्र के मध्य सम्बन्ध भी बालक के संज्ञान व संवेगों को प्रभावित करते हैं। यदि अध्यापक बालकों के साथ मित्रवत व्यवहार करते हुए समस्या समाधान के लिये प्रेरित करता है तो उनमें भय, कुण्ठा, उदासीनता आदि के भाव उत्पन्न नहीं होते हैं तथा उनके संज्ञान का विकास भी तेजी से होता है। इसके विपरीत यदि अध्यापक का व्यवहार मित्रवत न हो तो बालक में भय आदि के भाव उत्पन्न हो जाते हैं और वह अधिगम में अनुभव की जाने वाली समस्याओं को शिक्षक को नहीं बताता है। जिसके परिणामस्वरूप उसकी संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का विकास प्रभावित होता है। जिससे वह उस विषय में पिछड़ जाता है तथा उस विषय के प्रति उदासीन, तनावपूर्ण व घबराहट अनुभव करता है।

6. **सह समूह -** बालक के साथ उसी की आयु वर्ग के सहपाठियों को सह - समूह कहा जाता है। अपने सह - समूह के साथ की जाने वाली अनुक्रियाऐं भी बालक के संज्ञानात्मक व संवेगात्मक विकास पर प्रभाव डालती हैं।

अभ्यास प्रश्न 10

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो-

1. परिवार के बाद ………………..ही बालक का प्रथम सम्पर्क स्थल होता है।
2. यदि समाज किसी बालक को नहीं अपनाता है तो उसमें ……………….संवेगों की प्रबलता होती है।
3. अध्यापक का व्यवहार …………………….तो बालक में भय आदि के भाव उत्पन्न हो जाते हैं।

6.13 संवेगों की अधिगम में भूमिका

संवेगों की अधिगम में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। संवेगों की अधिगम में भूमिका को निम्न बिन्दुओं के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है -

1. अधिगम प्रक्रिया में यदि अधिगम अनुभव बालकों के लिये सुखद होते हैं तो बालक अधिगम में रूचि दिखाता है तथा अधिगम हेतु अभिप्रेरित होता है। इसके विपरीत यदि अधिगम अनुभव दुःखद होते हैं तो बालक में क्रोध एवं भय आदि के भाव उत्पन्न होते हैं जिससे उसकी अधिगम प्रक्रिया प्रभावित होती है।
2. संवेगों के उचित विकास से बालकों की पढ़ने में रूचि जाग्रत होती है तथा उसमें अच्छे स्थायी भावों तथा श्रेष्ठ आदर्शों का विकास होता है।
3. अधिगम प्रक्रिया में बालक के अवांछनीय संवेगों यथा क्रोध, भय, घ्रणा आदि का शोधन एवं मार्गान्तीकरण कर उसके अधिगम को प्रभावी बनाया जा सकता है।

4. अधिगम विधियों के उचित चुनाव द्वारा बालकों के संवेगों को अधिगम सुगम बनाने के लिये उपययोग किया जा सकता है।
5. शिक्षक बालकों को अपने संवेगों पर नियंत्रण की विधियां बताकर उन्हें सभ्य एवं शिष्ट बना सकता है।
6. अधिगम प्रक्रिया में बालकों के संवेगों का ज्ञान उपयुक्त पाठ्यक्रम के निर्माण में सहायक सिद्ध हो सकता है।
7. संवेग प्रेरणा और आनन्द के स्त्रोत होते हैं तथा साथ ही शरीर को शक्ति प्रदान करते हैं। इसीलिये अधिगम प्रक्रिया में संवेगों पर ध्यान देना और भी आवश्यक हो जाता है।
8. संवेगों का लाभ उठा कर पाठ को बालकों के समक्ष और भी रोचक एवं प्रभावी तरीके से रखा जा सकता है।

संवेगों के अभाव में मानव मस्तिष्क अपनी किसी भी शक्ति को प्राप्त करने में असमर्थ रहता है। अतः अधिगम प्रक्रिया में बालकों के उचित संवेगों का विकास तथा उनके लाभ का उपयोग किया जाना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न 11

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. यदि अधिगम अनुभव ………………….होते हैं तो बालक में क्रोध एवं भय आदि के भाव उत्पन्न होते हैं
2. अधिगम प्रक्रिया में बालक के अवांछनीय संवेगों यथा क्रोध, भय, घ्रणा आदि का शोधन एवं मार्गान्तीकरण कर उसके अधिगम को ……………….बनाया जा सकता है।

6.14 अधिगम शैलियाँ (Learning Style)

मनोविज्ञान के अन्य प्रत्ययों की भांति अधिगम में भी व्यक्तिगत विभिन्नताऐं पायी जाती हैं। किसी एक कक्षा में एक ही विषय वस्तु को छात्र अलग - अलग शैलियों में सीख सकते हैं। अधिगम शैलियों के प्रत्यय को बहु बुद्धि सिद्धान्त की सहायता से जाना जा सकता है। गार्डनर द्वारा दिये गये बहु बुद्धि के सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति में निम्न सात प्रकार की बुद्धि पायी जाती है -

1. **दृश्य या स्थानिक बुद्धि** - दृश्य अनुभव करने की क्षमता। जैसे - मूर्तिकार एवं आर्किटेक्ट आदि।
2. **मौखिक या भाषाई बुद्धि** - शब्दों एवं भाषा का प्रयोग करने की क्षमता। जैसे - लेखक, कवि, पत्रकार आदि।
3. **तार्किक अथवा गणितीय बुद्धि** - कारण, तर्क और अंको का प्रयोग करने की क्षमता। जैसे - वैज्ञानिक, शोधकर्ता एवं गणितज्ञ आदि।
4. **शारीरिक बुद्धि** - शरीर की गतिविधियों को नियंत्रित करने और कुशलता से वस्तुओं को संभालने की क्षमता। जैसे - नर्तक, अभिनेता, खिलाड़ी आदि।

5. **संगीत अथवा लयबद्ध बुद्धि** - संगीत के उत्पादन और सराहना करने की क्षमता। जैसे - गायक एवं संगीतकार आदि।
6. **अन्तर्वैयक्तिक बुद्धि** - दूसरों को समझने की क्षमता। जैसे - परामर्शदाता, विक्रेता एवं राजनीतिज्ञ आदि।
7. **अन्तः वैयक्तिक बुद्धि** - अपने स्वयं को समझने की क्षमता। जैसे - वैज्ञानिक एवं दार्शनिक आदि।

किसी व्यक्ति में उपरोक्त बुद्धि विभिन्न मात्राओं में पायी जा सकती है। व्यक्ति में जिस प्रकार की बुद्धि की प्रबलता होती है, वह व्यक्ति उसी बुद्धि के अनुरूप अधिगम की शैली को अपनाता है।

6.14.1 अधिगम शैलियों के प्रकार (Types of Learning Style)

1. **दृश्य अधिगमकर्ता** - ऐसे अधिगमकर्ताओं में दृश्य या स्थानिक बुद्धि की प्रबलता होती है। ऐसे छात्र नक्शे, चार्ट, चित्र, वीडियो, और फिल्म आदि को देखने में आनन्द अनुभव करते हैं और इन्ही के जरिये प्रभावी अधिगम करते करते हैं।
2. **श्रवण अधिगमकर्ता** - ऐसे अधिगमकर्ताओं में भाषाई बुद्धि की प्रबलता होती है। इन बालकों के श्रवण कौशल उच्च स्तरीय होते हैं। ऐसे छात्र व्याख्यान, वाद विवाद व औरों को सुन कर अधिगम करते करते हैं। ये न सिर्फ भाषा के शब्दों से अपितु भाषा की टोन, पिच आदि से भी अन्तर्निहित मतलब निकाल लेते हैं।
3. **शारीरिक अधिगमकर्ता** - यह वह अधिगमकर्ता होते हैं जो चीजों को छूकर सीखते हैं। ऐसे अधिगमकर्ताओं के लिये करके सीखने की विधि सबसे प्रभावशाली होती है। यह गतिविधियों व खोज में ज्यादा आनन्द लेते हैं। ऐसे अधिगमकर्ता पूरे कालांश में बैठकर अधिगम नहीं कर सकते, ये गति करते रहते हैं ताकि चीजों को सीख सकें।
4. **कार्यक्षेत्र स्वाधीन अधिगमकर्ता** - ऐसे अधिगमकर्ता समस्या समाधान हेतु स्वयं पर एवं स्वयं की कार्य प्रणाली पर निर्भर होते हैं। ये आसानी से जटिल पृष्ठभूमि में से महत्वपूर्ण बिन्दु खोज लेते हैं। इनमें अन्तर्वैयक्तिक कौशल अधिक विकसित नहीं होते हैं।
5. **कार्यक्षेत्र पराधीन अधिगमकर्ता** - ऐसे अधिगमकर्ता समस्या का विश्लेषण करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। ये समस्या समाधान हेतु दूसरों पर निर्भर होते हैं। इनमें अन्तर्वैयक्तिक कौशल अधिक विकसित होते हैं।
6. **बांये मस्तिष्क के प्रभुत्व वाले अधिगमकर्ता** - इस प्रकार के अधिगमकर्ताओं में बांये मस्तिष्क की प्रभुता पाई जाती है और ये उच्च बौद्धिक क्षमता वाले होते हैं। ये सूचना का प्रक्रमण रेखीय रूप में करते हैं। ये वस्तुनिष्ठ होते हैं तथा चिन्तन और स्मृति के लिये भाषा पर निर्भर होते हैं।
7. **दांये मस्तिष्क के प्रभुत्व वाले अधिगमकर्ता** - इस प्रकार के अधिगमकर्ताओं में बांये मस्तिष्क की प्रभुता पाई जाती है और ये अन्तर्ज्ञानी होते हैं। ये सूचना का प्रक्रमण समग्र रूप में करते हैं। ये विषय निष्ठ होते हैं तथा चिन्तन और स्मृति के लिये चित्रों पर निर्भर होते हैं।

मैक कार्थी (1980) ने निम्न चार अधिगम शैलियों का उल्लेख किया है -

1. **नवाचारी अधिगमकर्ता -** यह अधिगम में व्यक्तिगत अर्थ निकालने में प्रयासरत होते हैं व अधिगम में अपने मूल्यों पर टिके रहते हैं। यह सामाजिक अन्तःक्रिया का आनन्द लेते हैं व सहयोगी स्वभाव के होते हैं। यह दुनिया को और बेहतर बनाने की चाह रखते हैं।
2. **विश्लेषणात्मक अधिगमकर्ता -** यह अधिगम में बौद्धिक रूप से विकसित होना चाहते हैं। यह अधिगम में तथ्यों पर टिके रहते हैं। यह धैर्यवान व चिन्तनशील होते हैं। यह महत्वपूर्ण चीजों को जानकर संसार का ज्ञान विकसित करना चाहते हैं।
3. **सामान्य बुद्धि अधिगमकर्ता -** यह समाधान ढूंढने में विश्वास रखते हैं। यह चीजों को उनके महत्व के आधार पर मूल्य देते हैं। यह व्यावहारिक व निष्कपट होते हैं। यह चीजों को संभव बनाने की चाह रखते हैं।
4. **गतिशील अधिगमकर्ता -** यह छिपी संभावनाओं को ढूंढने में विश्वास रखते हैं। यह मन की प्रतिक्रियाओं से चीजों को परखते हैं। यह सूचनाओं का संश्लेषण विभिन्न स्त्रोतों से करते हैं। यह स्फूर्तिवान व रोमांचवादी होते हैं।

अभ्यास प्रश्न 12

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. दृश्य या स्थानिक बुद्धि ………………….करने की क्षमता होती है।
2. दृश्य अधिगमकर्ताओं में ………………………बुद्धि की प्रबलता होती है।
3. ………………..अधिगमकर्ता वह अधिगमकर्ता होते हैं जो चीजों को छूकर सीखते हैं।

6.15 सारांश

संज्ञान शब्द को अंग्रेजी में Cognition कहा जाता है, जो कि लैटिन भाषा के Cognosco शब्द से बना है, जिसका अर्थ पहचान करना या प्रत्यय बनाना है। सरलतम शब्दों में कहा जा सकता है कि बाह्य जगत के बारे में ज्ञान प्राप्त करना ही संज्ञान है। संज्ञान में प्रमुख रूप से तीन प्रक्रियाऐं निहित होती हैं।

संवेग अंग्रेजी भाषा के शब्द Emotion का हिन्दी रूपांतरण है, जो लैटिन भाषा के शब्द Emovere से बना है, जिसका शाब्दिक आर्थ है - शरीर को हिला देना। संवेग व्यक्ति की एक तीव्र उपद्रव की अवस्था है, जिसका प्रभाव उस पर सम्पूर्ण रूप से पड़ता है, जो मनोवैज्ञानिक ढंग से उत्पन्न होती हैं और जिनमें चेतन अनुभव, व्यवहार एवं अन्तरायव सम्बन्धी कार्य सन्निहित होते हैं।

प्रत्यक्षीकरण एक मानसिक प्रक्रिया है। प्रत्यक्षीकरण एक अर्थपूर्ण प्रक्रिया है, इसीलिये प्रत्यक्षीकरण के द्वारा प्राप्त ज्ञान को सविकल्प प्रत्यक्ष भी कहते हैं। अनुभव के अनुसार संवेदना की व्याख्या की प्रक्रिया को प्रत्यक्षीकरण कहते है।

अवधान का अर्थ है - ध्यान देना। यह एक मानसिक क्रिया है। किसी दूसरी वस्तु की अपेक्षा एक वस्तु पर चेतना का केन्द्रीकरण ही अवधान है। अवधान की दशाओं को निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता है - (अ) वस्तुगत या बाह्य दशाऐं (ब) आत्मगत या आन्तरिक दशाऐं। बिना अवधान के बालक किसी अनुभव या व्यवहार को नहीं सीख पाता है।

स्मृति एक मानसिक क्रिया है। इसकी सहायता से हम अपने पूर्व अनुभवों को जो कि हमारे अचेतन मन में विद्यमान रहते हैं, अपनी वर्तमान चेतना में लाते हैं। स्मृति के माध्यम से ही शिक्षक द्वारा अथवा कक्षा कक्ष में प्राप्त अनुभवों को छात्रों द्वारा भावी जीवन में प्रयुक्त किया जा सकता है।

चिन्तन वह प्रक्रिया है जिसमें हम अतीत के अनुभवों के निष्कर्षों का प्रयोग किसी नई स्थिति का सामना करने के लिये और किसी समस्या के समाधान के लिये करते हैं। चिन्तन मानसिक क्रिया का ज्ञानात्मक पहलू है। चिंतन को प्रमुखतः चार प्रकारों में बांटा जा सकता है ।स्पष्ट चिंतन की योग्यता सफल जीवन के लिये आवश्यक है। जो लोग उद्योग, कृषि या किसी मानसिक कार्य में दूसरों के आगे होते हैं, वे अपनी प्रभावशाली चिंतन की योग्यता में साधारण व्यक्तियों से श्रेष्ठ होते हैं।

समस्या समाधान किसी लक्ष्य की प्राप्ति में बाधा डालती प्रतीत होती कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने की प्रक्रिया है। यह बाधाओं के बावजूद सामंजस्य करने की विधि है।

क्रिया को उत्तेजित करने, जारी रखने और नियंत्रित करने की प्रक्रिया को प्रेरणा कहते हैं। प्रेरणा को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है - आन्तरिक प्रेरणा और बाह्य प्रेरणा।

संज्ञान व संवेगों के विकास पर व्यक्ति के विभिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों का प्रभाव देखने को मिलता है। कुछ प्रमुख सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों में परिवार, समाज, धर्म, विद्यालय, अध्यापक छात्र सम्बन्ध, सह समूह आदि प्रमुख हैं।

6.16 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. Cognition 2. मानसिक योग्यता 3. प्रतीकों

4. तीन

5. ज्ञानकोश/दीर्घकालिक स्मृति

अभ्यास प्रश्न 2

1. तीव्र उपद्रव 2. सम्पूर्ण 3. व्यक्तिगत अनुभव

अभ्यास प्रश्न 3

1. सविकल्प प्रत्यक्ष 2. प्रत्यक्षीकरण 3. ध्यान केन्द्रित करने

अभ्यास प्रश्न 4

1. अवधान 2. चयनात्मक 3. गतिशील

4. दो

5. अनुकूल वस्तुओं

अभ्यास प्रश्न 5

1. स्मृति 2. तार्किक 3. मिश्रित

4. ज्ञात वस्तु

अभ्यास प्रश्न 6

1. परिपक्वता 2. प्रारंभिक 3. अनुभवों एवं अधिगम

अभ्यास प्रश्न 7

1. ज्ञानात्मक 2. समस्या या कठिनाई की 3. पूर्व निर्मित प्रत्ययों

4. प्रभावशाली

5. चिंतन 6. उत्तरदायित्व

अभ्यास प्रश्न 8

1. तार्किक चिंतन 2. निम्न एवं उच्च 3. व्यवस्थित

अभ्यास प्रश्न 9

1. प्रेरणा 2. व्यवहारों 3. प्रगति अथवा परिणामों

4. ऊंचा

5. प्रेरणा

अभ्यास प्रश्न 10

1. समाज 2. नकारात्मक 3. मित्रवत न हो

अभ्यास प्रश्न 11

1. दुःखद 2. प्रभावी

अभ्यास प्रश्न 12

1. दृश्य अनुभव 2. दृश्य या स्थानिक 3. शारीरिक

6.19 निबंधात्मक प्रश्न

1. संज्ञान शब्द के अर्थ, संज्ञान में निहित प्रमुख प्रक्रियाओं तथा संज्ञान की तत्व प्रणालियों का वर्णन कीजिये?
2. प्रत्यक्षी करण का विश्लेषण करते हुए प्रत्यक्षीकरण के शिक्षा में महत्त्व की चर्चा कीजिये?
3. अवधान का अर्थ, परिभाषा, विशेषताऐं, दशाऐं तथा अधिगम में अवधान की भूमिका की चर्चा कीजिये?
4. स्मृति का अर्थ, स्मृति के प्रकार तथा स्मृति की अधिगम में भूमिका को बताइये?

5. भाषा विकास, भाषा विकास की प्रक्रिया, भाषा विकास के चरण तथा भाषा विकास की अधिगम में भूमिका को बताइये?
6. चिन्तन का अर्थ बताते हुए चिंतन के प्रकार तथा चिंतन की अधिगम में भूमिका की चर्चा कीजिये?
7. समस्या समाधान का अर्थ तथा समस्या समाधान की विधियों का वर्णन कीजिये?
8. प्रेरणा का अर्थ प्रकार तथा प्रेरणा की अधिगम में भूमिका को बताइये?
9. संज्ञान व संवेग को प्रभावित करने वाले सामाजिक सांस्कृतिक कारक तथा संवेगों की अधिगम में भूमिका के बारे में चर्चा कीजिये?
10. अधिगम शैलियों से आप क्या समझते हैं अधिगम शैलियों के प्रकारों की चर्चा कीजिये?

6.18 संदर्भ ग्रंथ सूची

- बैरन, राबर्ट ए.; बायर्न, डौन. आर. (2004), सामाजिक मनोविज्ञान, दिल्लीर: पीयर्सन एजूकेशन प्रा. लि.।
- श्रीवास्तव, डा. डी. एन., समाज मनोविज्ञान।
- वर्मा, डा. रामपाल सिंह.(2006),शिक्षण एवं अधिगम का मनोविज्ञान, आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।
- सारस्वत, डा. मालती.(1999),शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, लखनऊः आलोक प्रकाशन।
- पाठक,पी.डी.(2006),शिक्षा मनोविज्ञानए आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।
- माथुर, डा. एस.एस. (1999), शिक्षा मनोविज्ञान, आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।
- Pestonjee, D.M. (2003), Third Handbook of Psychological and Social Instruments (2 vol.) Concept Publishing Company.
- Wolman, B.E. (1979), ContemporaryTheories and Systems in Psychology, Delhi; Freeman Book Co.

इकाई - 7

अधिगम को प्रभावित करने वाले विशिष्ट कारक

Specific Factors affecting learning

जिज्ञासा, रूचि का अधिगम में स्थान, सक्रिय सहभागिता एवं पूछताछ की अधिगम में भूमिका, ज्ञान के निर्माण के रूप में अधिगम, विद्यालय के अन्दर ओर विद्यालय के बाहर अधिगम में सम्बन्ध एवं अंतर, सशक्त अधिगम को समझने के लिए विश्लेषणात्मक उपकरण की व्यूह रचना, सशक्त अभिप्रेरण के साथ कक्षा कक्ष अधिगम

Curiosity, Interest in learning, active engagement and inquiry in learning at all levels, notion of learing as construction of knowledge differences and connection between learning in a classroom with learners motivation and strategies to develop analytical tools to understand powerful learning

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उदेश्य

7.3 अधिगम का अर्थ एवं परिभाषा

7.4 अधिगम की विशेषताऐं एवं सिद्धांत

7.5 अधिगम का प्रभावित करने वाले विशिष्ट कारक

7.6 अधिगम में जिज्ञासा का स्थान

7.7 अधिगम में रूचि का स्थान

7.8 बालक के अधिगम के लिए सहभागिता तकनीक के प्रयोग से ज्ञान का निर्माण

7.9 पूछताछ पर आधारित अधिगम

7.10 विद्यालय के अंदर और बाहर अधिगम में सम्बन्ध और अन्तर

7.11 बालक के अभिप्रेरण से कक्षा कक्ष में सशक्त अधिगम

7.12 सांराश

7.13 स्वमूल्यांकन प्रश्न

7.14 सदर्भ ग्रन्थ सूची

7.1 प्रस्तावना

सीखने की प्रक्रिया से मानव ज्ञान अर्जन करता है, अत: मनुष्य को जीवन में सक्षम बनने में सीखने का प्रमुख स्थान चूंकि अधिगम जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने व्यवहार में परिवर्तन लाता है और ज्ञान के भण्डार में वृद्दि करता है। जिसके कारण अज्ञेय ज्ञेय बन जाता

है, और व्यक्ति विकास के रास्ते पर आगे बढता है। संस्थाऐं विद्यालय एवं विश्वविद्यालय इसी अधिगम उदेश्य की प्राप्ति के लिए स्थापित किये गये है ताकि अधिगम के द्वारा सुनागरिकों का निर्माण हो सके। वर्तमान समय में प्रभावशाली शिक्षण के अधिगम से ही व्यक्ति का सर्वांगीण विकास संभव है।

7.2 उद्देश्य

इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:-

- अधिगम का अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताऐं के बारे में जान सकेगें।
- अधिगम को प्रभावित करने वाले कारकों की जानकारी प्राप्त हो सकेगें।
- अधिगम में जिज्ञासा एवं रूचि का क्या स्थान है यह जान सकेगे।
- बालक के अधिगम में सहभागिता तकनीक से ज्ञान के निर्माण की जानकारी प्राप्त हो सकेगी
- पूछताछ पर आधारित अधिगम की जानकारी प्राप्त हो सकेगी।
- विद्यालय के अंदर एवं बाहर अधिगम में सम्बन्ध एवं अतर की जानकारी प्राप्त हो सकेगी।
- बालक के अभिप्रेरण के कक्षा कक्ष में सशक्त अधिगम कैसे हो सकता है। इसकी जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

7.3 अधिगम का अर्थ एवं परिभाषा

मनुष्य जब जन्म लेता है उसमें पाश्विक प्रवृतियों का समावेश भी होता है। सीखने अथवा अधिगम के द्वारा वह अपनी प्रवृतियों में परिवर्तन करता है। सीखना एक प्रकार से वातावरण में अनुभव के द्वारा व्यवहार में परिवर्तन हिस्सा है। सीखने की प्रक्रिया में निरन्तरता और सार्वभौमिकता की विशेषताऐं मुख्य होती है। वह अपने व्यवहार में परिवर्तन सीखने के पश्चात् अनुभव से जाता है।

शिक्षा शास्त्रियों और मनोवेज्ञानिकों द्वारा अधिगम की कुछ परिभाषाऐं निम्नलिखित है

1- गेटसं के अनुसार-
   "अनुभव और प्रशिक्षण केद्वारा व्यवहार में परिवर्तन ही अधिगम है।"
   (Learning is the modification of behavior through experience and training)
2- क्रे व क्रो के अनुसार -
   "सीखना आदतों ज्ञान और अभिवृतियों का सृजन है।"
   ;Learning is the acquisition of habits, knowledge attitude.)
3- थार्नडाइक के अनुसार -
   "उचित प्रतिक्रिया का चयन कर उत्तेजक से जोडना ही अधिगम है।"
   (Learning is selecting the appropriate response and connecting of with stimulus.)

4- मनोवैज्ञानिक के अनुसार -

"अनुभव से मानसिक साहचर्य में सापेक्ष स्थायी परिवर्तन ही अधिगम है।"

(Learning is a relatively penmanet change is mental association due to experience.)

7.4 अधिगम के सिद्वान्त

अधिगम में उद्धेश्य पर विवेकपूर्णता निरन्तरता होती है। अधिगम अनुभवों का संगठन है जिसमें विकास, अनुकूलनता एवं सार्वभोमिकता है। अधिगम से व्यवहार में परिवर्तन होता है। सीखने के अनेक सिद्वान्त शिक्षा व मनोवैज्ञानिकों ने दिये इनमें से प्रमुख सिद्वान्त निम्नलिखित है-

(1) प्रयास एवं त्रुटि का सिद्वान्त

(2) सम्बद्व प्रतिक्रिया का सिद्वान्त

(3) क्रियाशीलता अनुबन्धन का सिद्वान्त

(4) अनुदृष्टि का सिद्वान्त

(5) पुर्नबलन का सिद्वान्त

7.5 अधिगम को प्रभावित करने वाले विशिष्ट कारक

शिक्षण एक उद्धेश्यपूर्ण प्रक्रिया है। शिक्षण का सीखने से घनिष्ठ संबध है इसलिए वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शिक्षण व सीखना अथवा अधिगम को ही एक अथवा अधिगम को ही एक संकल्पना माना जाता है। किसी भी पाठयवस्तु अथवा विषय सामग्री को शिक्षक अथवा शिक्षार्थी विचारहीन से लेकर विचार पूर्ण स्थिति तक अधिगम के माध्यम से ही सार्थक बना सकता है।

अधिगम को प्रभावित करने वाले कुछ विशिष्ट कारकों/घटकों का उल्लेख अग्रलिखित बिन्दूओ मे स्पष्ट किया जा रहा है|

7.6 अधिगम में जिज्ञासा का स्थान

मनुष्य की स्वाभाविक प्रकृति है, किसी भी अज्ञात चीज को जानने की। अत: किसी भी चीज को जानने की प्रवृति ही जिज्ञासा कही जाती है। जिज्ञासा प्राणीमात्र का एक महत्वपूर्ण लक्षण है। एक बौद्विक व्यक्ति हमेशा जिज्ञासु होता है।

थामस एडीसन, लियोनार्डा विन्सी, रिचर्ड आइस्टीन, आदि उनके जिज्ञासु चरित्र के व्यक्ति थे, रिचर्ड फनमेन को उनकी जिज्ञासा के कारण ही साहसी माना जाता था।

जिज्ञासा इतनी महत्वपूर्ण क्यों है इसके कारण निम्नलिखित है।

(1) यह हमारे मस्तिष्क को निष्क्रिय के बजाय सक्रिय बनाती है**:-**

जिज्ञासु व्यक्ति हमेशा प्रश्न पूरक रहते है और अपने मस्तिष्क में उसका उतर खोजते ही रहते है।उनका मस्तिष्क हमेशा सक्रिय ही रहता है। चूंकि मस्तिष्क एक मांसपेशी कि तरह है, और निरन्तर कार्य एवं मानसिक क्रियाकलापों से सुदृढ़ बनता है। इसके कारण जिज्ञासा ही इसका प्रमुख कारण माना जाता है।

(2) यह हमारे मस्तिष्क के नये विचारों के अवलोकन योग्य बनाती है**:-**

जब हम कुछ जानने के लिये जिज्ञासु होते है तो तो हमारे मस्तिष्क में उस विषय उस विषय वस्तु से सम्बिधित अनुमान और नये विचार उत्पत्र होते है। जब ये विचार आते है तो वे शीघ्र ही पहचान लिये जाते है,बिना जिज्ञासा के हमारे यह विचार विलुप्त हो जाते है और हम उस विचार एवं तरकीब को खो देते है क्योकिं हमारा मस्तिष्क उसको समझने को तैयार ही नहीं हो पाता है। हम भली भांति यह सोच सकते है कि कितने अच्छे विचार अथवा तरकीब मात्र जिज्ञासु नहीं होने की कमी मात्र से खो देते है।

(3) यह हमारे लिए नया संसार एवं संभावनाए खोलती है**:-**

जिज्ञासु होने के कारण हम नया संसार और संभावनाऐं जो कि सामान्य रूप से दृष्टिगोचर नहीं होती है, को देखने योग्य हो जाते है। ये संभावनाऐ सामान्य जीवन की सतह के पीछे छुपी हुई होती है। और जिज्ञासु मस्तिष्क सतह के नीचे छुपी हुई विषय वस्तु को जान लेता है और इस नये संसार और संभावनाओं को खोज लेता है।

(4) यह हमारे जीवन में उत्तेजना अथवा आनन्द लाता है**:-**

एक जिज्ञासु उबाऊपन से कोसो दूर होता है। वह ना तो मन्द बुद्धि होता है, और नी ही समान्य जिज्ञासु लोगों का जीवन साहस से परिपूर्ण होता है। उसका ध्यान हमेशा नयी चीजों की और आकर्षित होता है। वे उबने की बजाय हमेशा नये खिलौना अथवा वस्तुओं के साथ खेलते है। एवं जीवन में आनन्द का अनुभव करते है।

इकाई द्वितीय:-

जिज्ञासा का महत्व :- ; जिज्ञासा बढाने अथवा विकसित करने के कुछ बिन्दु निम्नलिखित है:-

(1) मस्तिष्क को खुला रखे**:-**

एक जिज्ञासु मस्तिष्क के लिये यह आवश्यक है कि वो अपने मस्तिष्क को खुला रखें। सीखना नहीं सीखना पुन: सीखना इस सबके लिए खुले मस्तिष्क का होना जरूरी है। परम्पराऐं अथवा धारणाऐंग लत हो सकती है, हम कुछ जानते है तो हमें अपने मस्तिष्क में बदलाव लाकर इस संभावना को स्वीकार कर परम्पराओं धारणाओं में सुधार लाना चाहिए।

(2) दी गई वस्तओं के रूप में स्वीकार नहीं करना**:-**

यदि हम इस संसार में बिना गहरे चिन्तन के सीधे ही प्रत्येक दी गई वस्तुओं को स्वीकार करते है तो हम अवश्य ही अपने जिज्ञासा के गुणों को खोते है, केवल दी गई वस्तुओं को सीधें ही कभी नहीं स्वीकारे। हमारे चारों और की वस्तुओं के नीचे की तह तक पहुंचने की कोशिश करें।

(3) लगातार प्रश्न पूछे**:-**

किसी भी चीज कि तह तक जाने के लिये प्रश्नों को पूछना बहुत ही आवश्यक है ? वह क्या है, वह इस तरीके से ही क्यों बनाया गया है ? आविष्कार किसने किया? यह कंहा से आया है ?यह कैसे कार्य करता है ? इस प्रकार के प्रश्न क्या, कौन, कब, कैसे कंहा से आदि जिज्ञासु व्यक्तियों के अच्छे मित्र कहे जा सकते है।

(4) किसी चीज को उबाउपन को लेबल नहीं दें**:-**

यदि हम किसी चीज को उबाउपन को लेबल दे देते है तो हम संभावनाओं का एक और दरवाजा बंद कर देते है। जिज्ञासु इस उबाउपन का नापपसंद करते है। और इसमें भी वे इस नये संसार का दरवाजा देखते है। यदि वे उस समय देखने के लिए इन दरवाजों को खुला रखेगें।

(5) सीखने में मजा है:-

यदि हम देखते है कि सीखना एवं अधिगम एक बोझ अथवा भार है तो कोई भी रास्ता हमें उस विषय वस्तु की गहराई तक नहीं ले जा सकता। वो केवल हमारे बोझ की ओर ज्यादा बढायेगा, लेकिन जब हम सीखने अथवा अधिगम की प्रक्रिया को जिज्ञासावश मजे से लेकर कार्य करते है तो सहज रूप से गहराई तक पहुच सकते है।

(6) विभिन्न प्रकार की पढाई पढने में:-

एक ही तरह की विषय वस्तु की तरफ समय खर्च ना करके अन्य विविध विषयों को देखना, समझना और पढ़ना चाहिए। इससे दुसरी अन्य संभावनाओं के द्वार खुलेगे। अत: जिज्ञासु के लिये विभिन्न प्रकार के अध्ययन से मस्तिष्क के विकास में सरलता से वृद्वि होती है।

7.7 अधिगम में रूचि का स्थान

अधिगम में रूचि का अत्यधिक महत्वपूर्ण ध्यान है। यदि हम एक बार के लिए आंखे बंद करके मानसिक रूप से चित्रण करते हुए अपने प्रिय अध्यापक के विषय में ध्यान करें तो हम पायेंगे कि हमारे अध्यापकों ने हमारी रूचि के अनुसार किस प्रकार हमें विषय वस्तु अनुसार कौशल प्रदान कर आगे बढाया। इस प्रकार कक्षा कक्ष में विद्यार्थी में रूचि उत्पन्न करने का तरीका अथवा दृष्टिकोण बहुत प्रभावी और विस्तृत रूप से लागू करने योग्य होता है।

विलियम लैन्स लोट की रूचि उपागम का जनक कहा जाता है। इनके मतानुसार सीखने की रूचि वाले के लिए सीखना महत्वपूर्ण है और ये रूचियां व्यक्ति के सोचने की योग्यता को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह एक शिक्षक का उत्तरदायित्व होता है कि सीखने वाले की रूचि और नये ज्ञान के मध्य सम्बन्ध को जोडे। यह रूचि उपागम द्वारा किया जा सकता है।

रूचि निर्माण/विकसित करने की विधियां /तरीके-

रूचि उपागम के कुछ तरीकों और प्रयत्न द्वारा शिक्षार्थी में रूचि उत्पन्न की जा सकती है। अध्ययन अध्यात्म क्रिया कलापों में रूचि उपागम के ये बिन्दु रूचि के विकास में मददगार हो सकते है -

1- शिक्षार्थी के विषय और पाठ के अनुसार रूचि विकसित करने में ध्यान देना।
2- यदि शिक्षार्थी स्वयं पहले से ही पाठ के प्रति उन्मुखऔर रूचि रखने वाला है तो उसकी ऊर्जा में बढ़ोतरी करके और विषय में रूचि के साथ आगे बढने हेतु उत्साहित करना ।
3- यदि शोधार्थी अनिश्चित रूप से पाठ के प्रति उत्साहित नहीं है अथवा शंकित रूप है तो वो अध्यापक अथवा सहयोगी का उसमें कार्य कुशलता के द्वारा रूचि उत्पत्र करना आवश्यक है।
4- रूचि का निर्माण दो चरणों में किया जा सकता है। प्रथम तो शिक्षार्थी अन्वेशित पाठ में विषय को शिक्षार्थी के साथ जोडकर जिसमें कि वह रूचि के साथ कार्य कर सकता है। ऐसे क्रियाकलापों को करवाने से उसका ध्यान मुख्य रूप से केन्द्रित किया जा सकता है।

इस हेतु प्रथम चरण में शिक्षार्थी कि नयी स्थापित रूचि के अनुसार मजबूती प्रदान करने हेतु किया जाता है। उसमें नयें विषय और सम्बधित क्षेत्र के ज्ञान और क्रियाकलापों के साथ अच्छी तरह से सम्बन्ध स्थापित हो जाये 'इसके पश्चात दूसरे चरण में पूर्व ज्ञान और अनुभव के साथ सामाजिक विषय के ज्ञान नयी सूचनाओं के नये कौशलों और योग्यताओं को विकसित करके शिक्षार्थी में दीघाविधि के लिए रूचि उत्पत्र करके भविष्य के ज्ञान को ग्रहण करने हेतु तैयार किया जा सकता है।

5- प्राकृतिक आवेगों का प्रयोग भी शिक्षार्थी में रूचि उत्पत्र करने के लिये किया जा सकता है। इससे रूचि उत्पत्र होने के साथ- साथ सीखने के वातावरण में शिक्षार्थी सामंजस्य स्थापित कर लेता है ,प्राकृतिक आवेगों की सूची निम्नलिखिसत है:-

1- सक्रियता:- शिक्षार्थी के मस्तिष्क को सक्रिय रखने हेतु।
2- प्रकृति :- बाहय क्रियाकलापों जिनमें पेड़, जानवर, समुद्र आदि।
3- जिज्ञासा :- सीखने के लिये नये चीजों के अन्वेषण करने हेतु।
4- आश्चर्य:- वास्तविक काल्पनिक क्षेत्र की यात्रा ।
5- सृजनात्मकता:- शिक्षार्थी के द्वारा चित्र निर्माण करना।
6- सामूहिकता:- सामूहिक क्रियाकलापों या परियोजना जिसमें शिक्षार्थी एक दूसरें से अन्त: क्रिया कर सके।
7- प्रतियोगिता:- खेलकूद एवं गतिविधियों, परियोजना जहॉ पर शिक्षार्थी एक दूसरें के विरूद्व प्रतिस्पर्धा कर सकें।

और संश्लेषण कर देता है तथा परिणामों को पा लेता है। वह एक उपयोगी समस्या समाधान कौशल को विकसित कर लेता है। ये कौशल भविष्य को जानने की आवश्यक स्थिति में प्रयुक्त किये जा सकते है जो कि विद्यार्थी के साथ स्कूल और कार्य पर होते रहते है।

पूछताछ आधारित अधिगम जीवन भर चलने वाली मस्तिष्कीय क्रिया अथवा आद्रर्ता का विकास करता है और सीखने व सृजनात्मक सोच का मार्ग निर्देशन करता है।

7.8 बालक के अधिगम के लिये सहभागिता तकनीक का प्रयोग और ज्ञान का निर्माण करना

अधिगम एवं सीखना एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है, हम जन्म से लेकर मृत्यु तक सदेव ही अलग अलग परिस्थितियों में सीखते है। सीखना हमारी सक्रिय सहभागिता पर निर्भर करता है। जब तक वह अपनी सहभागिता प्रदान नहीं करगें तब तक हम कुछ भी नहीं सीख पायेगें।

एम एस नील ने बालको को कहा :- है कि वे छोटे समूह में बंटकर शब्दकोष को ध्यानपूर्वक देखेगे उसके संगठन, संरचना, और प्रारूप के बारे में चार्ट पर जानकारी अंकित करेगें। केवल बीस मिनट के समय में

बालकों ने चार्ट पर बहुत महत्वपूर्ण जानकारी प्रस्तुत कर दी जो कि इस आशय का प्रमाण है कि सहभागिता से सीखना कितना आसान हो जाता है।

सहभागिता की परिभाषा:- बालक में प्रारम्भ से ही सीखने के प्रती उत्सुकता रहती है, प्रारम्भिक अवस्था में बालक हाथ पांव की गति से पहुंच बनाना सीखता है। और इस अवस्था में वह आंख की सहायता से लक्ष्य के प्रति केन्द्रित होने का प्रयास करता है यहॉ सीखने में गामक सहभागिता एवं आंख की सहभागिता महत्वपूर्ण होती है। व्यस्त होने के कारण सहभागिता बहुत जरूरी है। सहभागिता शारीरिक एवं मानसिक दोनों ही प्रकार की होनी चाहिए।

सहभागिता को हम निम्न विशेषताओं के आधार पर परिभाषित कर सकते है।

1- सहभागिता एक सक्रिय प्रक्रिया है।
2- सहभागिता शारीरिक एवं मानसिक सक्रियता की अवस्था है।
3- सहभागिता सीखने कि प्रक्रिया
4- सहभागिता वह प्रकिया है जो कि बालक में जिज्ञासा उत्पत्र करती है।
5- सहभागिता सीखने को प्रोत्साहित करती है।
6- सहभागिता बालक में रूचि उत्पन्न करती है।
7- सहभागिता बौद्विक लक्ष्यों को प्राप्त करने की प्रक्रिया है। शोध में प्राप्त निष्कर्ष कक्षा कक्ष में सहभागिता के संबध में किये गये शोध मनोवैज्ञानिक एंव व्यवहारिक लक्ष्यों को स्पष्ट करते है।

मनोवैज्ञानिक रूप से सहभागिता प्रदान करने के लिये बालकों में सीखने के प्रति उत्सुकता, रूचि, आनन्द, के लक्षण दृष्टिगत होते है, तथा वे व्यवहार में कैन्द्रित होकर सम्पूर्ण सोच विचार कर अपने समय के सही प्रयोग के प्रति जागरूक होकर सीखने का प्रयास करते है। (फिन और रॉक 1997: ब्रेरेस्टर और फगर 2000, मार्क 2000)

शोध के अंतर्गत बालक और शिक्षकों के साक्षात्कार प्रश्नावली आदि के द्वारा यह स्पष्ट निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि बालक सहभागिता और उसकी कक्षा में उपस्थिति और उच्च स्तर का धनात्मक सहसंबध है जो कि बालक जिनका पूर्ण सहभागिता सहित कक्षा में व्यस्थता अधिक रहती है उन बालकों की कक्षा में उपस्थिति व उपलब्धि अधिक हुआ करती है।

वर्तमान में अधिकांश विद्यालयों में सहभागिता की प्रवृति पर अधिक ध्यान नहीं दिया जा रहा है। जिससे संभावित नुकसान कक्षा में कम उपस्थिति, परिणामों की गुणवता में कमी एवं ड्रौप आउट जैसी गंभीर समस्याओं के रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है।

विद्यालयों में बालकों की सम्पूर्ण सहभागिता उसकी सफलता का एक निर्णायक आधार है।

कक्षा में बालक के सहभागिता के लक्षण :- कक्षा में बालक के सहभागिता के अनुभव से जो लक्षण होते है उन्हें संक्षेप में निम्न प्रकार से स्वयं कर सकते है।

1- इसके बालक में पूर्व ज्ञान सक्रिय होता है।
2- बालक में खोज के प्रति सक्रियता बढती हैं
3- सहयोग की भावना विकसित होती है।

4- चयन की स्वंतत्रता बढती है, जो कि मानसिक विकास में सहायक होती है।

5- समूह में अन्तनिर्भरता की भावना बढती है।

6- खेल के माध्यम से विकास होता है एवं मानकीय आधार विकसित होता है।

7- विषय पर अधिकार बढता है।

8- स्वतंत्र विचारधारा का विकास होता है।

9- बालक को अनावश्यक प्रतीक्षा नहीं करनी पडती है।

बालक में सहभागिता प्राप्त करने की तकनीक।

छोटे बालक एवं बालिकाओं को सीखने एवं उनकी उपलब्धियों के संबध में अध्यापको को अधिक प्रयास करने होते है। इस संबध में यह सुनिश्चित करना होता है कि बालक वे तथ्य सीख पा रहे या नहीं सीख पा रहे परन्तु यह सफलता मुख्य रूप से इस बात पर निर्भर करती है कि बालक में सहभागिता किस प्रकार की है, या सक्रिय है या जिनका निष्क्रिय।सक्रिय सहभागिता ही अनुकूल परिणम ला सकती है।

कक्षा में बालक की सक्रियता प्राप्त करने के लिये कुछ विधियों है जिनका प्रयोग कर पूर्ण सहभागिता प्राप्त कि जा सकती है जो कि निम्न प्रकार से है।

01- इस तकनीक के प्रयोग में अध्यापक कुछ नीवन विधियों है जो कि पहले बालको से पूछते है कि तुम क्या जानते हो तुम्हारे मन में क्या जानने की उत्सुकता है और तुम क्या सीखना चाहते हो ऐसा करके अध्यापक एवं बालकमें पूर्ण सहभागिता प्राप्त करने में सफल हो सकते है।

02- कितने तरीके से हल प्राप्त किया जा सकता है**:-**

इस तकनीक का प्रयोग करके अध्यापक छात्रों को कोई प्रकरण यह पूछ सकते है कि इसको कितने प्रकार से हल किया जा सकता है, इससे सृजनशीलता का भी विकास होता है।बालक आनन्दित होकर के सहभागिता प्रदान करते है, जिससे ना केवल वे सरलता से सीखते है वरन् उनमें बौद्विक विकास भी होता है जो कि उनकी उपलब्धि में सुधार लाता है। उनमें एक ज्यामितिय बोर्ड पर आप कितने तरीके से आकृति दे सकते है आदि।

03- सोचना विचार , विमर्श करना सबके साथ बांटना:-

इस विधि का प्रयोग समह में सीखने कि प्रक्रिया के रूप में किया जा सकता है, अध्यापक बालकों से प्रश्न कर उनके व्यक्तिगत रूप से सोचने को कहते है। फिर आपस में विचार करने को कहा जाता है, तत्पश्चात् उसे पूरे समूह में प्रस्तुत करने को कहा जाता है इस प्रकार सम्पूर्ण सहभागिता प्राप्त की जा सकती है।

04- नाटक के माध्यम से :-

सम्पूर्ण सहभागिता प्राप्त करने की एक सरल व प्रभावी तकनीक नाटक के माध्यम से उपकरण का प्रस्तुतिकरण करना है। इसके अन्तर्गत पात्र के रूप में बालाकों को सम्मिलित कर रोचक व सरल तरीके से सजीव चित्रण के द्वारा सीखना संभव होता है।

05- देखो और बताओ विधि :-

इस विधि का प्रयोग किसी नवीन प्रकरण को सरलता पूर्वक समझाने के लिए किया जाता है, इसमें बालकों को प्रस्तुतिकरण के माध्यम ये सिखाने हेतु उन्हें सम्मिलित करते हुये पूर्व ज्ञान के आधार पर देखकर बनाने को कहा जाता है, इस प्रकार सहभागिता प्राप्त की जा सकती है।

06- शीघ्र खेल के माध्यम से :-

बालकों की सहभागिता प्राप्त करने की एक विधि खेल विधि है, इसमें शीघ्रता खेल के माध्यम से ना केवल बालकों में केन्द्रिकरण की प्रवृति का विकास होता है वरन् स्वंतत्र सोच विकसित होती है, जो कि सीखने में अत्यन्त सहायक होती है। जैसे अग्रेजी शब्द ज्ञान अन्ताक्षरी के माध्यम से करवाया जा सकता है।

सहभागिता तकनीक क्यों कार्य करती है

सहभागिता तकनीक सफल रूप कार्य करती है इसके निम्न कारण है।

I. यह बालकों में नवीन ज्ञान के प्रति जिज्ञासा और रूचि उत्पत्र करती है,
II. बालको में खोज के प्रति उत्सुकता उत्पत्र करती है।
III. यह बालकों में पूर्व ज्ञान का प्रयोग करने में सहायक भूमिका निभाता है।
IV. सक्रियता के साथ खोज कि भावना विकसित करता है।
V. सहयोग कि भावना विकसित करता है।
VI. चयन कि संवतत्रता प्रदान करता है।

उपरौक्त सभी के माध्यम सहभागिता तकनीक करती है, और मनोकूल परिणाम प्रदान करती है। एम एस नील जो अध्यापिका है, उन्होने उक्त तकनीक के माध्यम से सहभागिता प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की।

सहभागिता तकनीक चयन करने में आवश्यक बातें:-

सहभागिता तकनीक कौनसी चुनी जाए यह अध्यापक विशेष के उद्देश्य,अध्यापन तकनीक और बालक समूह पर निर्भर करती है।

जब एम एल नील ने देखो और बताओं तकनीक प्रयोग किया तो निम्न बातों का ध्यान रखा।

01-उन्होने बालकों को स्पष्ट रूप से उद्देश्य क्या है बताया।
02-निश्चित निर्देश दिये कि किस प्रकार करना है।
03-आवश्यक सामग्री उपलब्ध करवायी।
04-उचित एवं आवश्यक मार्गदर्शन दिया।

सारांश :- किसी भी कार्य की सफलता सहभागिता पर निर्भर करती है यह अध्यापक में भी अध्यापक कार्य के प्रति रूचि बढाती है, इससे सीखने और सिखाने की प्रक्रिया सुगम एवं सरल हो जाती है।

यह बालकों में स्वंतत्र सोच की भावना विकसित करते हुये उनमें सहयोग की भावना का भी विकास करती है। सहभागिता तकनीक का प्रयोग सीखने कि प्रक्रिया को रोचक व सुगम बना देता है। सहभागिता से उपलब्धि में सुधार होता है। बालक सीखने के प्रति आनन्दायी वातावरण में उत्साहित होकर उपस्थिति सुनिश्चित करते है।

वर्तमान में अध्यापकों को इस तकनीक का प्रयोग आवश्यकतानुसार अनिवार्य रूप से करना चाहिए इससे ना केवल शैक्षिक गुणवता में सुधार आयेगा, वरन् ड्राप आउट जैसी गम्भीर समस्या से छुटकारा मिलेगा।

7.9 पूछताछ आधारित अधिगम

सीखने का आधुनिक तरीका :-

सीखना एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, एवम यह मनुष्य कि एक प्रवृति होती है जो कि उसके अलावा भगवान ने किसी प्रजाति को प्रदान नहीं की है, यह बात और है कि मनोवैज्ञानिकों ने जानवरों पर प्रयोग कर मनुष्य के मनोविज्ञान के सम्बन्ध में सिद्धांतों का विकसित करती है।

सीखने के लिये हम विद्यालय में जाते है परन्तु उनके महत्वपूर्ण प्रश्न यह उत्पत्र होता है कि क्या हमारें विद्यालय हमारे सीखने की आवश्यकताओं को पूर्ण कर रहे है, क्या हमारें पाठ्यक्रम आवश्यकता पर आधरित है, यदि हम परम्परागत तरीकों को देखे तो स्पष्ट होता है कि आज भी हमारे विद्यालय कही ना कहीं सूचना संकलन के कार्यों पर बल दे रहें है।

आज जब कि हम वैश्वीकरण के दौर में चल रहे है हमारी अर्थव्यवस्था, से जुड चुकी है ऐसे में हमारें मानवीय संसाधनों से यह अपेक्षा है कि वे अपने आप को इस आधुनिक परिप्रक्ष्य में समायोजित कर पायेगे, अथवा नहीं आवश्यकता है उनके कौशल विकास की, उनमें ऐसी सोच विकसित करने कि जो कि उनमें नई जानकारीयों को प्राप्त करने की जिज्ञासा उत्पन्न कर सके।

आधुनिक समय में शिक्षा का उदेद्श्य ऐसा वातावरण उत्पत्र करें जिसमें बालक उत्सुक होकर नव प्रर्वतन के बारें में पूछताछ कर जानकारी प्राप्त कर नवीन सोच को जीवन में समझने का प्रयास करें।

पूछताछ के माध्यम से किसी भी तथ्य को सीखना, सीखने का आधुनिक तरीका कहलाता है। पूछताछ से प्राप्त जानकारी नवीन अधिगम उपलब्ध करवाने का अच्छा स्त्रोत है, इससे प्राप्त ज्ञान उपयोगी जानकारी बन जाता है।आरम्भिक अवस्था में ही बालक के मस्तिष्क का विकास इस प्रकार किया जाना चाहिए, कि बालक में एक ऐसी आदत का विकास हो जिसके द्वारा वह निरंतर पूछताछ के द्वारा अपने अधिगम को सुगमता पूर्वक व्यावहारिक कसौटियों पर खरा साबित कर सके।

7.9 पूछताछ आधारित अधिगम कैसे प्रदान किया जाऐ

पूछताछ आधारित अधिगम के अर्थ से अधिगम प्रदान करने हदय माना जाता है। जहॉ तक प्रश्न का सवाल है यह तो परम्परागत कक्षा कक्ष में भी प्रयुक्त होते है,पर इसकी प्रकृति यह जानकारी प्राप्त करने तक ही सीमित रहती है कि जो पढाया गया है वह बालकों के द्वारा सीखा गया या नहीं परन्तु आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रश्नों का उदेदश्य नहीं है।

प्रश्नों का उदेदश्य है कि वे बालक में पूछताछ की भावना को विकसित करें।

चार प्रकार के प्रश्न है जिनके माध्यम से बालक मस्तिष्क में पूछताछ के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के प्रयास किये जा सकते है, ये प्रश्न निम्न प्रकार से है।

01-अनुमान पर आधारित प्रश्न :- इस प्रकार के प्रश्न में बालक को चित्र आदि के माध्यम से जानकारी दिखाई जाती है, जिस बालक एवं पूछताछ कर उससे संबधित जानकारी प्राप्त करने

का प्रयास करते है। अनुमान पर आधारित प्रश्न अधूरी जानकारी को पूर्ण करने में सहायक होते है।

02- व्याख्यात्मक प्रश्न :- व्याख्यात्मक प्रश्न दी गई जानकारी के प्रभाव को समझाने में सहायक होते है, जैसे कोई चित्र दिखाकर उसमें कुछ परिवर्तन करने पर यह पूछना कि इस परिवर्तन के क्या प्रभाव होगें, इस प्रकार के प्रश्नों का उदाहरण माना जा सकता है।

03- हस्तातरण प्रश्न :- इस प्रकार के प्रश्न में प्राप्त जानकारी का उपयोग एक अलग परिस्थिति को हल करने के संबंध में किया जाता है जैसे प्रचलित पाठ्य पुस्तक का आप के द्वारा आलोचनात्मक मूंल्याकन यह हस्तांतरण प्रश्न का एक उदाहरण माना जायेगा।

04- परिकल्पना पर आधारित प्रश्न :- किसी समस्या के सम्भावित अनुमान जो पहले से सोचे जाते है एक ऐसे प्रश्नों का रूप में किसी समस्या को सभल उसके समझ विकल्प को संभालने में सहायता मिलती है।

उत्त प्रश्नों माध्यम से चार निष्कर्ष प्राप्त होते है।

01- विषय वस्तु को समझना सरल होता है।

02- विषय वस्तु की व्यापक अवधारणा विकसित होती है।

03- सूचना प्रक्रिया में कौशल विकास होता है।

04- मस्तिष्क में पुछताछ की प्रवृति जिज्ञासा का विकास होता है।

पूछताछ आधारित अधिगम का व्यवहारिक स्वरूप

पूछताछ आधारित अधिगम का व्यवहारिक स्वरूप कैसा हो यह जानकारी प्राप्त करने के लिए हम सूची के माध्यम से जानकारी देने का प्रयास करेगें।

बालक की प्रवृति

01- वे सीखने की ओर अग्रसर रहते है।

02- वे इच्छा शक्ति का प्रदर्शन करते है, जो उन्हें सीखने के लिए प्ररित करते है।

03- उनमें सहयोग की भावना विकसित होती है तथा वे सहयोग और अध्यापक के द्वारा मिलकर सीखने का प्रभाव करते है।

04- वे सीखने में ज्यादा आत्मविश्वास दर्शाते है।

05- उनमें जिज्ञासा दिखाई देती है, और वे ज्यादा से ज्यादा अवलोकन करते है।

06- वे अपने वातावरण से उपलब्ध सामग्री संकलन करते है।

07- अवलोकन से उनके मन में जो प्रश्न उत्पन्न होते है।वे सहयोगी व अध्यापक से हल करवाने का प्रयत्न करते है।

08- वे स्वयं के विचार रखने का प्रयास करते है।

09- वे प्रश्न पूछते है।

10- अन्य प्रश्नों से संबंधित जानकारीयों को समझने का प्रयास करते है।

11- आलोचनात्मक मूंल्याकन का प्रयास करते है।

12- पूर्वज्ञान से प्राप्त नवीन अधिगम को जोडते है।

13- वे कार्य के तरीके को स्वयं ढूढने लगते है।

14- वे सूचनाऐं स्वयं एकत्र करने लगते है, तथा स्वयं निर्धारित करते है कि महत्वपूर्ण क्या है।

15- वे विस्तृत अवधारणा को समझते है उनके कार्य निर्धारित होते है और समानता में असमानता में अंतर करते है।

16- वे अपने विचारों को विभिन्न तरीके से व्यक्त करते है।

17- वे सूचना प्राप्त करने में कौशल का प्रयोग करते है।

18- वे अपने द्वारा प्राप्त जानकारी का स्वयं आलोचनात्मक मुल्याकन करते है।

19- अपनी कमियों का पता लगाकर निराकरण का प्रयास करते है। स्पष्ट है कि उक्त प्रक्रिया में बालक का मस्तिष्क क्रियाशील रहकर अधिगम प्रक्रिया को सुगम व सरल बनाता है।

02. शिक्षक के कक्षा कक्ष में अधिगम को सुगम व सक्षम बनाते है।

शिक्षक कक्षा कक्ष में अधिगम कि प्रक्रिया को सुगम एवं सरल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है वे इस संबध में निम्न कार्य करते है।

(अ) अध्यापक दैनिक, साप्ताहिक, वार्षिक, मासिक, योजना बनाते है, और उसके आधार पर निर्धारित करते है, कि कितनी अवधि में निर्धारित कौशल के प्रयोग के द्वारा कितना और क्या अधिगम प्राप्त करना है।

(ब) शिक्षक स्वयं स्वीकार करते है कि पढ़ाना एक सीखने कि ही प्रक्रिया है।

(स) वे किसी भी विपरित स्थिति में बालक की समस्या का समाधान को तत्पर रहते है।

(द) वे निंरतर अधिगम कि बाधाओं के संबध में तैयार रहते है एवंम बालक को प्रेरित करते है।

(य) वे सम्पूर्ण प्रक्रिया में बालक का सतत् आंकलन करते रहते है।

इस प्रकार पूछताछ पर आधारित अधिगम में बालक और शिक्षक दोनों ही सक्रिय भुमिका के साथ अधिगम प्रक्रिया का सुगम व सरल बनाते है।

पूछताछ आधारित अधिगम में शिक्षक की भूमिका

पूछताछ आधारित अधिगम में एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उत्पन्न होना है कि जब इस प्रक्रिया में बालक स्वयं के प्रयास से सीखना सुगम व सरल बनाता है तो आखिर शिक्षक की इसमें क्या भूमिका होती है। पूछताछ पर आधारित अधिगम में हम शिक्षक का भूमिका को निम्न प्रकार स्पष्ट कर सकते है।

7.10 विद्यालय के अंदर और बाहर अधिगम में संबंधऔर अन्तर

हम सभी इस सर्वमान्य तथ्य से परिचित है कि भावी मानवीय संसाधन का निर्माण विद्यालयों में होता है और विद्यालय की भूमिका सर्वाधिक निर्णायक एवं महत्वपूर्ण हेती है।

प्रथम पाठशाला जो स्वयं बालक के घर से प्रारम्भ होगी है विभिन्न संस्कार निर्माण कर बालक को घर से बाहर विद्यालय की ओर भेजती है जिससे वह अपने पूर्व प्राप्त ज्ञान संस्कार में वृद्वि कर आगे ज्ञान को बढाएं एक बार फिर बालक यहां विद्यालय के अंदर अपने ज्ञान को निर्धारित मानकों से तैयार कर उच्च शिक्षा केलिए महाविघालयों में भेजते हे वहां एक बार फिर वह बाहरी वातातरण में पहुंचता है और नवीन

तकनीक व मापदण्डों से तैयार हो एक बार फिर व्यवहार की कसौटी पर खडा उतरने के लिए सामाजिक मापदण्डों पर जांच के लिए उतरता है।

प्रश्न यह उठता है कि क्या वह हर परिवेष में अपने को समायोजित करने में सक्षम क्या पाया और इस महत्वपूर्ण प्रश्न के उत्तर के लिए हमें यह देखना होगा कि शैक्षिक वातावरण जो कि बाहरी दिखती है में अधिगम की वास्तविक व व्यवहारिक क्या रही है हर स्तर पर मापदण्ड व आयाम क्या है इसके लिए हम प्रस्तुत अध्याय में यह समावेशों कि आखिर विद्यालय के अंदर व बाहर अधिगम की क्या स्थिति है।

विद्यालय अधिगम अन्य अधिगम से कैसे अलग है-

विभिन्न मनोवेज्ञानिकों समाज शास्त्रियों ने शोध के माध्यम से यह बताया है कि विद्यालय के अंदर सीखने में व बाहरी अधिगम में मानसिक बौद्विक क्षमता प्रयोंग के मानदण्ड चार आधारों पर अलग होते है।

1- विघालयी अधिगम व्यक्तिगत बाहरी अधिगम सामूहिक - विद्यालय के अंदर अधिगम का स्वरूप व्यक्तिगत एवम सीमित होता है परन्तु जब हम बाहरी वातावरण को देखते है तो यह स्वरूप व्यापक एवम् विस्तृत हो जाता है विद्यालय अधिगम एक निर्धारित पाठयक्रम तक जीवित है परन्तु जब हम सामाजिक वातावरण में जाते है तो वहां आवश्यकताएं अलग होती है हमें अपने ज्ञान का प्रयोग समुह में करना होता है जहां कसौटी एवम मापदण्ड भी अलग हुआ करते है।

   जहां विद्यालय अधिगम निजि आधार पर होतो है वही बाहरी अधिगम सामाजिक एवं समूह पर आधारित होता है।

   विद्यालयी अधिगम में सफलता एवं असफलता निजी कारणों से जुडी होती है, पर बाहरी वातावरण में इस पर काई अन्य घटकों का भी प्रभाव पडता है।

   विद्यालयी अधिगम की अंतर्गत काफी दृढ तक व्यक्तिगत निर्णय स्वीकार होते है चाहे वे हमारी इच्छा अनुरूप हो या नहीं।

2. विद्यालयी अधिगम में आंतरिक में व्यक्तिगत मूल्य और क्षमताओं को स्वंतत्रता पूर्वक मान्यता देता है, तथा विद्यालय में बालक में स्वंतत्र रूप से सीखते है, परन्तु बाहरी वातावरण इस स्वंतत्रता पर प्रतिबंध लगाता है, केवल निर्धारित मापदण्ड की ही पालना करनी होती है, यहॉ कहीं ना कही स्वंतत्र सोच में बाधित होती है।

3. विद्यालयी अधिगम में अधिगम तार्किकता का स्तर केवल निर्धारित पाठयक्रम व मापदण्डों में सीमित होता है, यहॉ केवल उन्हीं तर्को व मान्यताओं पर खरा उतरता है। जो अपेक्षित है, विद्यालय स्तर पर परन्तु जब हम बाहरी अधिगम की बात करते है,तो यहां पर अनेक उदेद्श्य, विभिन्न संदर्भ संरचनाओं का सामना करना होता है, जंहा तार्किक आधार और मान्यताऐं अलग हुआ करती है।

   व्यवहार में कई बार हमें भी ऐसा अनुभव होता है कि और आपने भी किया होगा कि क्या अंक तक सीखा वह निश्चर्य है कि यहॉ अुनभव में तो अपेक्षा कुछ ओर ही है।

बाहरी अधिगम अपनी व्यवहारिक समय पर आधारित होता है, जबकि विद्यालयी के अंदर हम जो सैंद्धातिक तार्किकता प्राप्त करते है, उसका वास्तविक परीक्षण व्यवहारिक परिवेश की अलग -अलग स्थिति अलग- अलग तर्को के आधार पर करती है।

कौशल का प्रयोग द्वारा हम किस प्रकार इस अतराल को कम करते है, वहीं हमें वास्तविक व बाहरी परिस्थितियों में समायोजन की कसौटी पर खरा आश्रित करता है।

4. केन्द्रित एवं केन्द्रित अधिगम का अंतरः-

विद्यालयी अधिगम एवं बाहरी अधिगम में एक महत्वपूर्ण अंतर इस आधार पर भी होता है, कि विद्यालयी अधिगम की प्रवृति केन्द्रित होती है वही बाहरी अधिगम की प्रवृति विकेन्द्रित होती हे।

जहां विद्यालयी अधिगम एक निश्चित स्तर पर निश्चित पाठयक्रम निश्चिय निर्देशों के द्वारा केन्द्रित किया जाता है, वही बाहरी अधिगम में ऐसा कुछ नहीं है वह परिस्थिति पर आधारित होता है, वहां केन्द्रित जैसी कोई बात नहीं है।

जहां विद्यालयी अधिगम सामान्य होता है, वही बाहरी अधिगम विशिष्ट व परिस्थिति एवं अनुभव पर आधारित होता है।

स्थिति पर आधारित अधिगम कई बार हमारी बौद्दिक क्षमाता को यांत्रिक बना देता है, और इसीलिए कई बार मनुष्य को अपने आप को किसी विशेष में एक मशीन की तरह महसूस करने लगता है, जो कि निश्चित नियंत्रण में संचालित होने को बाध्य है। अपनी सोच का प्रयोग विद्यालयी शिक्षा तक ही सीमित नहीं रह जाता है, और वह बाहरी परिवेश में हमें केवल वही सीखना और समझना होता है, जो केवल समय व परिस्थिति की मांग होता है।

इस प्रकार हम स्वयं रूप से विद्यालयी अधिगम व बाहरी अधिगम की स्थिति को समाप्त कर सकते है। कि दोनों में व्यापक अंतराल को पार कर अपने आप को समायोजित कर पाता है।

विद्यालय भूमिका एवं विद्यालयी शिक्षा पर स्वरूपः-

जब हम शिक्षा का से समझ गये है कि विद्यालय और बाहरी अधिगम में अधिक अंतराल है, तब तक एक महत्वपूर्ण प्रश्न और समस्या यह उत्पत्र होती है, कि विद्यालय की भूमिका और विद्यालयी शिक्षा का स्वरूप कैसा हो जाने ना केवल इस अंतराल को कम कर सके। वरन ऐसे संसाधन में निर्मित कर सकें जो कि व्यवहारिक कसौटियों पर खरा उतर आएं।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शिक्षा का स्वरुप व्यवहारिक ना होकर कहीं ना कहीं सैद्धांतिक है, और इस वजह से अंतराल व्याप्त है। आवश्यकता इस बात कि है कि शिक्षा में मूलभूत परिवर्तन लागू किये जाये जो कि वर्तमान व व्यवहार में समायोजन करने में सक्षम हो। शिक्षा के स्वरूप में निम्न परिवर्तन अपेक्षित है।

01- व्यवहारिक शिक्षा :-

केवल शिक्षा प्राप्त कर हम व्यवहार में सफल नहीं हों सकते है, हमें अपने आप को आत्म निर्भर बनाना होता है, वहां पर सैद्धांतिक शिक्षा काम नहीं करती है। इसका समाधन करने के लिये हमें

अनिवार्य रूप से शिक्षा में व्यवहारिक शिक्षा के पाठयक्रम को सम्मिलित करना चाहिए। और बालक का उसकी योग्यता के अनुरूप व्यवहारिक शिक्षा भी देनी चाहिए।

02-पेशेवर शिक्षा :-

जब तक हम पेशेवर शिक्षा प्राप्त नहीं करेगें व्यवहार में समायोजन हमारा कठिन होगा, ऐसे में पाठयक्रम में परिवर्तन कर पेशेवर शिक्षा को शामिल करते हुये बालक की अभिरूचि के अनुसार उसे पेशेवर शिक्षा का प्रश्न किया जाऐं।

03-तकनीकी शिक्षा :-

जैसा कि हम सभी यह जानते है कि वर्तमान युग आधुनिकिकरण और विश्वीकरण का युग है, अनेक बहुराष्ट्रीय निगम हमारे यंहा पर आ रहे है, जो ना नवीनतम तकनीकी का प्रयोग कर रहें है, ऐसे में हमारे संसाधन आत्म निर्भर इसलिए नहीं हो पा रहें क्यों कि तकनीक ज्ञान से परिचित नहीं है। विशेषकर ये परिवर्तन ग्रामीण व पिछडे क्षेत्र में लागू किए जाने चाहिए क्योकि हमारा देश गांवों का देश है ऐसे मे सुधार उस स्तर का अपेक्षित है।

04-**जीवन कौशल शिक्षा:-** शिक्षा को व्यवहारिक आयाम प्रदान करने के लिए जीवन कौशल शिक्षा के मूल्य पाठयक्रम में शामिल किए जाने चाहिए जिससे हमारा योग्यतम् मानवीय संसाधन निर्मित किया जा सके जो न केवल सैद्धांतिक वरन् व्यवहारिक मूल्यों पर भी सफल प्रमाणित हो।

निष्कर्ष:- यह सही है कि आंतरिक और बाहरी अधिगम में व्यापक अंतराल है परन्तु यह घटना असंभव नहीं हैं। कठिन व चुनौतीपूर्ण कार्य अवश्य है हमारे शिक्षाविदों से यही अपेक्षा कि वे एसे संसाधन निर्मित करें जो सिद्धांत व व्यवहार दोनो मापदण्डों पर अपने आप को प्रमाणित कर न केवल स्वयं के वरन सम्पूर्ण समाज के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रस्तुत कर शिक्षा सार्थकता को सिद्व करें।

बालक के अभिप्रेरणा से कक्षा कक्ष में सशक्त अधिगम

7.11 बालक के अभिप्रेरक से कक्षा कक्ष में सम्बन्ध में सशक्त अधिगम

कक्षा कक्षा में बालक के सीखने की क्रिया में बहुत से घटक महत्वपूर्ण होते है। जिसके माध्यम से ही बच्चे को सर्वागीण विकास संभव हो पाता है। अधिगम से ही वह व्यवहार में परिवर्तन लाकर अपनी प्रवृतियों में परिमार्जन करता है। सशक्त अधिगम की प्रक्रिया मे निरन्तरता और सार्वभोमिकता की विशेषता मुख्यता होती है और अधिगमकर्ता अपने व्यवहार में परिवर्तन सीखने के पश्चात् अनुभव से लाता है।

सशक्त अधिगम वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से सीखने वाला और सीखाने वाला दोना अपने लक्ष्यों की प्राप्ति कर लेते है। एवं सशक्त अधिगम वह है जो सीखने वाले की आवश्यकता पर आधारित हो और साथ ही साथ सभी वर्गो के लिए उपयुक्त हो, कहने का अभिप्राय यह है कि इसमें सुगमता व सरलता है एवं साथ लचीलेपन का भी गुण हो जिससे कि परिस्थिति व आवश्यकता के परिप्रेक्ष्य में इसे समायोजित किया जा सके।

सीखने के लिए अभिप्रेरण एक अति आवश्यक घटक है। एक विद्यार्थी के शैक्षणिक क्रियाकलापों में यह अभिप्रेरण महत्वपूर्ण है। इसके द्वारा यह पता चलता है कि शिक्षार्थी ने क्रियाकलापों से निष्पादन के लिए

कितना सीखा है। विधार्थी जो अभिप्रेरित होते है उनकी ज्ञानात्मक क्रियाविधियों में उच्चता के लक्षण दृष्टिगोचर होते है। यह व्यक्ति की विशेषता या लम्बे समय का अस्तित्व भी है। कुछ कहते है कि अभिप्रेरण विचार से सम्बद्व है जिसके अन्तर्गत जो व्यवहार भूतकाल में पसन्द रहा है वही भविष्य में दोहरायें जाने की संभावना होती है। अत: भूतकाल अथवा अतीत के अनुभव विधार्थी को भविष्य में कुछ करने के लिए अभिप्रेरित करते है अन्य सिद्धांत में कुछ आवश्यकताओं को संतुष्ट करना अभिप्रेरण है, भोजन, शरण, श्रम ओर आत्मसम्मान लोगों की कुछ आधारभूत आवश्यकताएं जो आवश्यक रूप से संतुष्ट होनी चाहिए। इसलिए यह आवश्यकताओं की उपलब्धि पर आधारित है। यघपि अन्य सिद्धांत रोपण का सिद्धांत लोगों की विवेचना और बहाने उनकी सफलता और असफलताओं को बताते है, जब लोग समझते है कि उन्होने कुछ में सफलता नियंत्रित कर ली है तो वे उन्हें प्राप्त करने के लिये ज्यादा अभिप्रेरित नहीं होगें। आशा या उम्मीद का सिद्धांत लोगों की आस्था पर निर्भर है जिसमें कि उनका प्रयास उनकी पुरस्कार की आशा की प्राप्ति पर आधारित होता है। लोगों का अभ्रिपेरित होना इस बात पर निर्भर करता है कि सोचते है कि वे सफल होगें। और पुरस्कार प्राप्त कर लेगें।

अभिप्रेरण कैसे बढाये:-

शैक्षिणक मनोवैज्ञानिक में महत्वपूर्ण अभिप्रेरण का पूर्ण प्रकार उपलब्धि का अभिप्रेरण है लोग सफलता और लक्ष्य केन्द्रित क्रियाकलाप को चुनने की प्रवृति की ओर प्रयास करते है, उपलब्धि में मुख्य अन्तर यही होता है कि उसे कितने अन्तर का अभिप्रेरण मिला है। कुछ लोग को सीखने के लिए जबकि कुछ लोग अच्छे प्रदर्शन के लिये और अच्छे ग्रेड प्राप्ति के लिये अभिप्रेरणा होते है।

अत: अध्यापक के लिये चाहिए कि वह विद्यार्थी को ज्यादा से ज्यादा सीखाए बजाय कि शैक्षणिक कार्य में ग्रेड प्राप्ति के लियें यह ग्रेड एवं अन्य के आवश्यक कमी में लाकर तथ्य अभिरूचि एवं मूल्य एवं वस्तुओं को प्रायोगिक महत्व को जो कि विद्यार्थी अध्ययन कर रहा है, के महत्व को समझाकर करवायी जा सकती है। शोध में यह पाया गया है कि विद्यार्थी अध्यापको की उम्मीदो से नीचे रहने के कारण उनको छोड देता है। विशेषकर गेंड में जब अध्यापक विद्यार्थी के उपलब्धि लेवल की अपेक्षा रूप से कम जानता है। इस क्रम में यह पक्का कर लेना चाहिए कि सकारात्मक संप्रेषण की उम्मीद से विद्यार्थी की उपलब्धि प्राप्त करेगा। अध्यापक अपने विघार्थियों में इसका संप्रेषण अवश्य करेगे कि उनके विद्यार्थी विषय वस्तु को सीखेगे। इसके अतिरिक्त भी विद्यार्थियों से सकारात्मक उम्मीद के लिए निम्नलिखित बिंदुओं का समाहित कर सकते है।

01- विद्यार्थी के द्वारा प्रश्न के उतर में इन्तजार करके
02- विद्यार्थी में यदि (डिस्टीकंशन) की उपलब्धि को हटाकर मूंल्याकन और परिणाम में व्यक्तिगत के रूप् में होना चाहिए।
03- विघार्थियों के साथ साथ समान व्यवहार से पक्षपात से बचे, उनको समान समय दे और उन्हें उपलिब्ध लेवल के अनुसार ना बुलावें।

अभिप्रेरण में वृद्वि करना:- विद्यार्थी अभिप्रेरणा में प्राय: पाठयक्रम बहुत रूचिपूर्ण और उपयोगी होता है, फिर भी स्कूल में जो सीखया जाता है। स्वाभाविक रूप से सभी के लिए रूचिपूर्ण नहीं होता है।विभिन्न

प्रोत्साहन एवं पुरस्कारों का समावेश किया गया है। ताकि विद्यार्थी अधिगम कर सकें। यह प्रंशसा , ग्रेड, मान्यता, और वृद्धि हेतु ईनाम कुछ भी हो सकता है। कक्षा कक्ष में निम्न उपाय किये जा सकते है।

01- रूचि उत्पत्र करके

02- उत्सुकता बनाकर

03- विभिन्न रोचक प्रस्तुति देकर करना।

04- विद्यार्थी के स्वयं के लक्ष्य को निर्धारित करने में मदद करना।

05- स्पष्ट उम्मीद की अभिव्यक्ति के द्वारा।

06- स्पष्ट प्रतिपुष्टि प्रदान करके।

07- मुल्यों में वृद्धि करके तथा बाहय अभिप्रेरकों में उपलब्धियों के द्वारा।

01- रूचि को उत्पत्र करके:-

विद्यार्थीयों के समक्ष प्रस्तुत किये जाने वाली विषय वस्तु की महतवता और रूचि के लेवल को विकसित करके ताकि उन्हें यह लगें कि जो ज्ञान प्राप्त कर रहें है वो कितना उपयोगी होगा।

02- जिज्ञासा या उत्सुकता बनाये रखकर:-

एक कुशल अध्यापक विभिन्न प्रकार के साधनों के साथ पाठ की विषय वस्तु में जिज्ञासा सा बनाये रखता है विषय वस्तु को प्रदर्शन एवं उपयोगी विघार्थियों में समझ को व्यवहार को बढाता है और जिज्ञासा बनाये रखता है।

03- **विभिन्न रोचक प्रस्तुति के द्वारा :-**

रूचिकर विषय सामग्री के उपयोग से छात्रों में अधिगम को अभिप्रेरित किया जाना चाहिए। उदाहरणार्थ एक अध्यापक फिल्म, अतिथिवक्ता, प्रदर्शन, उपकरण का उपयोग कर सकता है तो छात्र का विषयवस्तु में रूचि को बरकरार रहें है। विभिन्न सामग्रीयो का उपयोग सावधनीपूर्वक नियोजित तरीके से किया जाना चाहिए। और उदेश्यों पर केन्द्रित होना चाहिए।

04- विद्यार्थी के स्वयं के लक्ष्यों को निर्धारित करने के द्वारा :-

सामान्यत: व्यक्ति किसी ओर के द्वारा बनाये गये लक्ष्यों की बजाय स्वयं के बनाये गये लक्ष्यों प्राप्ति हतु कठोर परिश्रम करता है, अत: विद्यार्थियों को उनके स्वयं के लक्ष्य बनाने में मदद की जानी चाहिए।

05- **स्पष्ट उम्मीद की अभिव्यक्ति के द्वारा :-** विद्यार्थियों को यह सही जानना आवश्यक है कि वो किस काम के लिए है आर उनका मूल्याकन कैसे होगा और जिसके क्या परिणाम होगे। असफलता प्राय: भ्रम से आती है और भ्रम कि स्थिति दूर करके स्पष्ट अभिव्यक्ति के माध्यम से उम्मीद प्रदान की जानी चाहिए।

7.12 सांराश

इस इकाई के अध्ययन से अधिगम का अर्थ विशेषताओं को जाना अधिगम में जिज्ञासा, रूचि, अभिप्रेरणा का विशेष स्थान होता है यह सशक्त अधिगम के लिये बहुत आवश्यक है। ऐसा नहीं है कि अध्यापक सर्वज्ञाता है। वही शिक्षण के द्वारा बालक को सीखता है। जबकि वास्तविकता यह है कि

बालक स्वयं ज्ञान का निर्माण करता है। आवश्यकता है उसे उचित वातावरण देने की उसको अवसर देने की। सहभागिता देकर ऐसा किया जाता सकता है। विद्यालय के अन्दर क्या आपने सीखा विद्यालय के बाहर कहां उसे वह ढूंढे कैसे एप्योग में ले अत: अधिगम सर्वत्र है और यदि विद्यालय में उसे उपयुक्त अभिप्ररण मिले तो अवश्य सशक्त अधिगम होगा।

7.13 स्वमूल्याकन प्रश्न

अतिलघुरात्मक प्रश्न

1 अधिगम किसे कहते है।

2 अधिगम की विशेषताऐं बताइऐ।

3 सहभागिता को परिभाषित किजिए।

लघुरात्मक प्रश्न

1. सहभागिता को परिभाषित किजिए।
2. सहभागिता से शैक्षिक गुणवता में सुधार कैसे आता है।
3. कक्षा में बालक में सहभागिता अनुभव के लक्षण बताओ।
4. सहभागिता तकनीक का प्रयोग करते समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए।

5 अधिगम को कौनसे कारक प्रभावित करते है।

6 अधिगम में जिज्ञासा का क्या स्थान है व्याख्या करें।

7 अधिगम में रूचि का क्या स्थान है, व्याख्या किजिऐ।

8 अधिगम में अभिप्रेरण का क्या स्थान है, व्याख्या किजिऐ।

निबनधात्मक प्रश्न

1. ``सहभागिता के द्वारा छात्र उपस्थिति , शैक्षिक गुणवता एवम् ड्राप आउट जैसी समस्या होती है,
` कथन पर विस्तार से अपने विचार व्यक्त करें।
2. सहभागिता तकनीकों की विस्तार से उदाहरण सहित व्याख्या किजिए।

3 अधिगम को प्रभावित करने वाले विशिष्ट कारको का वर्णन कीजिये ।

7.14 संदर्भ ग्रंथ

- Bigge M.L. ; Learning Theories for teacher, new York, Harper & row, 1964
- Bruner, J.S. : The Relevance of education, New York, Norton
- Hurlock, E.B. ; Child development, New York, McMillan co. 1972
- Piuget J.; The Psychology of Intelligence, Patterson: NJ
- गुप्ता, एस.जी. : आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक सदन, इलाहाबाद
- माथुर, एस.एस. शिक्षा मनोविज्ञान श्री विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा -2

- सिंह आर.एन. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा – 2
- पाठक पी.डी. शिक्षा मनोविज्ञान श्री विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा – 2
- सिंह, अरूण कुमार शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन पब्लिशर्स पटना

इकाई - 8

अधिगमकर्ता में सृजनात्मक चिंतन का विकास
Developing Creative Thinking among Learners

इकाई रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 सृजनात्मकता का अर्थ

8.4 सृजनात्मकता की प्रकृति

8.5 सृजनात्मकता के तत्व

8.6 सृजनात्मकता के विकास की विधियां

8.6.1 Osborn की मस्तिष्क उद्वेलन (Brain Strorming) विधि

8.6.1.1 मस्तिष्क उद्वेलन के चार सामान्य नियम

8.6.1.2 मस्तिष्क उद्वेलन विधि के प्रकार

8.6.2 डी बोनो का पार्श्व सोच द्वारा सृजनात्मकता का विकास

8.6.3 विलियम गोर्डन द्वारा प्रतिपादित मस्तिष्क उद्वेलन विधि

8.6.3.1 प्रगतिशील रहस्योद्घाटन की प्रक्रिया

8.6.4 मस्तिष्क उद्वेलन विधि के गुण

8.6.5 मस्तिष्क उद्वेलन विधि के दोष -

8.7 अधिगम का स्थानांतरण

8.7.1 अधिगम स्थानान्तरण के प्रकार

8.7.2 अधिगम के स्थानान्तरण को प्रभावित करने वाली परिस्थितियां-

8.7.3 अधिगम के अधिकतम धनात्मक और न्यूनतम ऋणात्मक स्थानान्तरण हेतु शिक्षण

8.8 सारांश

8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.10 निबंधात्मक प्रश्न

8.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.1 प्रस्तावना

वर्तमान के युग में जहां हर तरफ प्रतिस्पर्धा है, ऐसे में सफलता का मापदण्ड व्यक्ति का सृजनात्मक चिंतन है। प्रस्तुत इकाई में हम यह अध्ययन करेंगे कि आखिर सृजनात्मकता क्या होती है? इसका क्या स्वरूप है? किस प्रकार अधिगमकर्ता में इसका विकास किया जा सकता है? इसके अतिरिक्त किस प्रकार हम जानेंगे कि अधिगम के स्थानान्तरण से क्या अभिप्राय है? तथा किस प्रकार से ऋणात्मक स्थानान्तरण को कम करके धनात्मक स्थानान्तरण को बढ़ाया जाये?

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को सम्पन्न करने तथा अध्ययन करने के पश्चात आप को इस योग्य होना चाहिये कि आप -

- सृजनात्मकता के अर्थ, प्रकृति, तत्वों को भली भांति समझ सकें।
- सृजनात्मकता का विकास एवं विकास की विभिन्न विधियों से परिचित हो सकें।
- Osborn की मस्तिष्क उद्वेलन विधि, उसके प्रकार तथा बोनो का पार्श्व सोच द्वारा सृजनात्मकता का विकास विधि का प्रयोग करने में समर्थ हो सकें।
- अधिगम का स्थानांतरण, उसके प्रकार तथा अधिगम के स्थानान्तरण को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों को पहचान सकें।
- अधिगम के अधिकतम धनात्मक और न्यूनतम ऋणात्मक स्थानान्तरण हेतु शिक्षण किस प्रकार कराया जाये, से परिचित हो सकें।

8.3 सृजनात्मकता का अर्थ (Meaning of Creativity)

सृजनात्मकता को साधारण शब्दों में रचना करने या सृजन करने की क्षमता से जाना जा सकता है। मनोविज्ञान में सृजनात्मकता का क्षेत्र व्यापक है। यह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित है। सृजनात्मकता के अर्थ को समझने के लिये निम्न परिभाषाओं की सहायता ली जा सकती है -

क्रो और क्रो: "सृजनात्मकता मौलिक परिणामों को अभिव्यक्त करने की मानसिक प्रक्रिया है।"

स्टेन: "जब किसी कारण का परिणाम नवीन हो, जो किसी समय में समूह द्वारा उपयोगी मान्य हो, वह कार्य सृजनात्मकता कहलाता है।"

जेम्स ड्रेवर: "सृजनात्मकता मुख्यतः नवीन रचना या उत्पादन में होती है।"

उक्त परिभाषाओं के विवेचन के आधार पर सृजनात्मकता के अर्थ के सम्बन्ध में निम्न तथ्य दृष्टिगोचर होते हैं-

1) सृजनात्मकता का सम्बन्ध मौलिक उत्पादन से है।

2) सृजनात्मक कार्य में दो या अधिक वस्तुओं अथवा तथ्यों आदि के संयोग से नवीनता का सृजन होता है।
3) सृजनात्मक कार्य की सामाजिक उपयोगिता होनी चाहिये।
4) सृजनात्मक कार्य को समान रूप से मान्यता मिलनी चाहिये।
5) सृजनात्मकता विभिन्न परिस्थितियों के साथ नवीन सम्बन्ध स्थापित करना अथवा स्थिति विशेष के प्रति नवीन दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति है।
6) सृजनात्मकता का उत्पादन मूर्त अथवा अमूर्त किसी भी रूप में हो सकता है।

अतः सृजनात्मकता के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि जब किसी कार्य का परिणाम नवीन हो, जो किसी समय में समूह द्वारा उपयोगी और मान्य हो, वह कार्य सृजनात्मकता कहलाता है। सृजनात्मकता में विभिन्न वस्तुओं के संयोग से उत्पन्न नवीनता का उपयोगी होना तथा समाज द्वारा मान्यता प्राप्त होना आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. सृजनात्मकता को साधारण शब्दों में ………….. करने की क्षमता से जाना जा सकता है।
2. सृजनात्मक कार्य में दो या अधिक वस्तुओं अथवा तथ्यों आदि के ……………… से नवीनता का सृजन होता है।
3. सृजनात्मकता में विभिन्न वस्तुओं के संयोग से उत्पन्न नवीनता का …………… होना तथा समाज द्वारा …………………. प्राप्त होना आवश्यक है।

8.4 सृजनात्मकता की प्रकृति (Nature of Creativity)

सृजनात्मकता के प्रत्यय की शिक्षा के क्षेत्र में बहुत उपयोगिता है। किसी भी देश का विकास उसके नागरिकों की सृजनात्मकता के विकास पर निर्भर करता है। इसीलिये आज प्रत्येक देश अपने बालकों मे सृजनात्मकता के विकास पर बल देता है। सृजनात्मकता की प्रकृति को निम्न बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है -

1. सृजनात्मकता एक बौद्धिक क्षमता होती है।
2. सृजनात्मकता का बुद्धि के साथ कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता है। सृजनात्मक व्यक्ति उच्च्च बुद्धि वाला हो यह आवश्यक नहीं है।
3. सृजनात्मकता के विकास में अपसरण चिंतन (Divergent Thinking) की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
4. सृजनात्मकता सार्वभौमिक होती है।
5. सृजनात्मकता के उत्पादन हेतु प्रेरणा का होना आवश्यक होता है।
6. सृजनात्मकता के विकास में अन्तर्दृष्टि की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

7. सृजनात्मकता के फलस्वरूप व्यक्ति क्रियाशील रहता है व मौलिक रूप में कल्पना व चिंतन करता है।
8. यह आवश्यक नहीं है कि किसी एक क्षेत्र में सृजनशील व्यक्ति किसी दूसरे क्षेत्र में भी सृजनशील हो।

अभ्यास प्रश्न 2

सही तथा गलत बताओ -

1. सृजनात्मकता का बुद्धि के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है।
2. सृजनात्मकता सार्वभौमिक होती है।
3. सृजनात्मकता के विकास में अन्तर्दृष्टि की भी महत्वपूर्ण भूमिका नहीं होती है।

8.5 सृजनात्मकता के तत्व (Elements of Creativity)

सृजनात्मकता के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं -

1. **मौलिकता -** मौलिकता सृजनात्मकता का प्रमुख तत्व है। सृजनशील उत्पादन के लिये यह जरूरी है कि वह उत्पादन मौलिक व नवीन हो। यह उत्पादन मूर्त या अमूर्त हो सकता है, किन्तु इसमें मौलिकता का होना आवश्यक है।
2. **निरन्तरता -**सृजनात्मकता में विचारों की निरन्तरता का भी प्रमुख स्थान होता है। सृजनशील व्यक्ति हर समय किसी न किसी चिंतन में व्यस्त रहता है, अर्थात उसके मन में निरन्तर विचार आते रहते हैं। इसी को निरन्तरता कहते हैं।
3. **लोचनीयता -** सृजनात्मक व्यक्ति के विचारों में लोचनीयता का तत्व भी पाया जाता है। किसी नवीन रचना या सृजन के लिये यदि उसके द्वारा सोचे गये विचारों से कार्य नहीं होता है तो वह अपने विचारों पर दुबारा कार्य करके उनका संशोधन करता रहता है। लोचनीयता से तात्पर्य उस क्षमता से है, जो वस्तुओं के मध्य पारंपरिक संबंधों से हट कर नवीन संबंध स्थापित करने में सहायता देता है और इसे विचारों की विभिन श्रेणियों द्वारा नापा जा सकता है।
4. **विस्तार** - विस्तार से तात्पर्य किसी विचार से जुड़े विवरण से है। विस्तार का संबंधएक समय में एक समस्या पर ध्यान केन्द्रित कर से है तथा भविष्य में इसे विकसित करने से है।
5. **उपयोगिता** - सृजनात्मकता के लिये यह आवश्यक है कि कोई भी नवीन विचार किसी न किसी समय में किसी समूह के लिये उपयोगी सिद्ध हो। अनुपयोगी नवीनता को सृजनात्मकता की संज्ञा नहीं दी जा सकती है।
6. **स्वीकार्यता** - सृजनात्मकता के लिये एक अन्य आवश्यक तत्व है उसका समाज में स्वीकार्य होना। समाज के द्वारा अस्वीकार्य नवीनता को भी सृजनात्मकता की संज्ञा नहीं दी जा सकती है।

सृजनात्मकता के विकास पर निम्न बिन्दुओं का प्रभाव होता है -

1) **तात्कालिक स्थिति से परे जाने की योग्यता** - जो व्यक्ति वर्तमान स्थिति से हटकर जितना अधिक उससे आगे की सोचता है तथा अपने चिंतन को मूर्त रूप देता है, उसमें उतनी ही अधिक सृजनात्मकता विकसित होती है।
2) **समस्या की पुनः व्याख्या** - समस्या की पुनः व्याख्या में व्यक्ति अपने ढंग से समस्या की व्याख्या करता है और उसके समाधान हेतु चिन्तन करता है। व्यक्ति में समस्या की पुनव्र्याख्या की क्षमता जितनी अधिक होगी, उसमें सृजनात्मकता क्षमताऐं भी उतनी ही अधिक होंगी।
3) **सामन्जस्य** - जो व्यक्ति असामान्य किन्तु प्रासंगिक विचार तथा तथ्यों के साथ जितना अधिक सामन्जस्य स्थापित करते हैं, वह उतने ही अधिक सृजनशील होते हैं।
4) **अन्य व्यक्तियों के विचारों में परिवर्तन** - ऐसे व्यक्तियों में भी सृजनात्मकता विद्यमान रहती है जो तर्क, चिंतन तथा प्रमाण द्वारा दूसरे के विचारों में परिवर्तन कर देते हैं।

अभ्यास प्रश्न 3

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. सृजनशील उत्पादन के लिये यह जरूरी है कि वह उत्पादन ……………व नवीन हो।
2. सृजनशील व्यक्ति हर समय किसी न किसी ………….. में व्यस्त रहता है
3. समाज के द्वारा ……………………. नवीनता को भी सृजनात्मकता की संज्ञा नहीं दी जा सकती है।

8.6 सृजनात्मकता के विकास की विधियाँ

सृजनात्मकता के विकास के लिये विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई निम्न विधियों का प्रयोग किया जा सकता है -

8.6.1 ओसबर्न (Osburn) की मस्तिष्क उद्वेलन (Brain Strorming) विधि -

मस्तिष्क उद्वेलन एक सामूहिक व व्यक्तिगत सृजनात्मकता विकसित करने की विधि है। इसके द्वारा किसी विशिष्ट समस्या के हल के लिये अनायास विचारों की सूची बनाने का प्रयास किया जाता है। । ओसबर्न ने अपनी पुस्तक एप्लाइड कल्पना (Applied Imagination) में इस विधि को लोकप्रिय बनाया।

ओसबर्न ने वैचारिक प्रभावकारिता में दो सिद्धान्तों के योगदान का महत्व बताया है -

I **स्थगित निर्णय एवं**

II **मात्रात्मक पहुंच।**

इन्हीं दो सिद्धान्तों पर आधारित मस्तिष्क उद्वेलन के लिये निम्न तीन मूल भावनाओं से अग्रवर्णित चार सामान्य नियमों का प्रतिपादन किया गया है -

1) समूह के सदस्यों के बीच संकोच को कम करना।
2) विचारों को प्रोत्साहन देना।
3) समूह की कुल सृजनात्मकता में वृद्धि।

8.6.1.1मस्तिष्क उद्वेलन के चार सामान्य नियम

1) **मात्रा पर ध्यान** - इस नियम के अनुसार जितने अधिक विचार उत्पन्न होंगे उतने ही अधिक प्रभावी समाधान के उत्पादन की संभावना होगी। यह नियम "मात्रा गुणवत्ता को जन्म देती है।" की कहावत पर आधारित है।
2) **आलोचना पर रोक** - मस्तिष्क उद्वेलन विधि में किसी भी विचार की आलोचना नहीं की जानी चाहिये अपितु सदस्यों द्वारा उस विचार को विस्तार देना चाहिये, जिससे सभी प्रतिभागी विचार उत्पन्न करने के लिये स्वयं को स्वतंत्र अनुभव कर सकें।
3) **असामान्य विचारों का स्वागत** - समस्या समाधान के लिये अच्छे विचरों की सूची बनाने के लिये आवश्यक है कि असामान्य विचारों का स्वागत किया जाये। असामान्य विचार नवीन दृष्टिकोण एवं निलंबित मान्यताओं के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। सोच के ये नवीन तरीके बेहतर समाधान उपलब्ध करा सकते हैं।
4) **विचारों का मिश्रण व बेहतर विचार बनाना** - कई अच्छे विचारों को मिलाकर एक बेहतर विचार उत्पन्न किया जा सकता है। यह माना जाता है कि विचारों को जोड़ने से बेहतर विचारों के निर्माण को प्रोत्साहन मिलता है।

इस प्रकार कक्षा में भी बालकों में मस्तिष्क उद्वेलन विधि का प्रयोग करके उनकी विचार उत्पन्न करने की क्षमता को विकसित किया जा सकता है। मस्तिष्क उद्वेलन की इस प्रक्रिया में सिर्फ विचारों को उत्पन्न करने की प्रक्रिया पर जोर दिया जाता है, इसमें विचारों के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार के निर्णय नहीं दिये जाते हैं।

8.6.1.2 मस्तिष्क उद्वेलन विधि के प्रकार -

सृजनात्मकता के विकास के लिये मस्तिष्क उद्वेलन विधि को एक शिक्षक अपनी कक्षा में निम्न प्रकार से प्रयोग कर सकता है -

1) **नाममात्र समूह प्रविधि** - इस प्रविधि में प्रतिभागियों से गुमनाम रूप से उनके विचारों को लिखने के लिये कहा जाता है। एकत्रित विचारों पर शिक्षक मतदान कराता है। जो कि सरलतम रूप में किसी विचार के पक्ष में हाथ उठाकर भी कराई जा सकती है। इस प्रक्रिया को आसवन कहते हैं। आसवन के पश्चात उच्च स्थान वाले विचारों को पुनः मस्तिष्क उद्वेलन के लिये समूह को दिया जाता है। इस प्रविधि के लिये आवश्यक है कि शिक्षक को इस प्रक्रिया में प्रशिक्षित होना चाहिये। समूह को विचारों के उत्पादन के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।
2) **समूह हस्तान्तरण प्रविधि** - इस प्रविधि में किसी समस्या के समाधान के लिये प्रत्येक प्रतिभागी को एक पर्चे पर अपने विचार लिखने को कहा जाता है, जिसे वह अन्य प्रतिभागियों को देता है। प्रत्येक प्रतिभागी उस पर्चे पर उस विचार में कुछ न कुछ नवीन विचार जोड़ता है। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है, जब तक प्रत्येक प्रतिभागी के पास उसकी मूल पर्ची नहीं आ जाती है। पूरे समूह से गुजर कर उस विचार को पर्याप्त विस्तार मिल जाता है। इसके बाद उसे पढ़ा जाता है तथा समूह में उन विचारों पर चर्चा कराई जाती है।

3) **दल विचार मानचित्रण प्रविधि** - इस प्रविधि में मस्तिष्क उद्वेलन की प्रक्रिया एक सुपरिभाषित विषय से प्रारम्भ होती है। प्रत्येक प्रतिभागी विषय पर व्यक्तिगत रूप से कार्य करता है। बाद में सभी विचारों को एक बड़े विचार मानचित्र के द्वारा जोड़ा जाता है। इस चरण में प्रतिभागी अपने विचारों के पीछे के अर्थ को समझ पाते हैं। विचारों की साझेदारी के दौरान नये विचार भी उत्पन्न होते हैं। इन सभी विचारों के एकत्रित होने के उपरांत समूह के द्वारा उनकी प्राथमिकता / कार्यवाही की जाती है।

4) **निर्देशित मस्तिष्क उद्वेलन प्रविधि** - इस प्रविधि में अच्छे विचारों के मूल्यांकन के लिये मापदण्ड पहले से पता होते हैं। इस प्रक्रिया में प्रत्येक छात्र को एक कागज दिया जाता है जिस पर उसे अपना विचार लिखना होता है। उसके बाद सभी कागजों को मिला कर उन कागजों को बांटा जाता है और प्रारंभिक मानदण्डों के आधार पर उस विचार पर सुधार कर एक नवीन विचार उत्पन्न करने के लिये कहा जाता है। यह प्रक्रिया तीन से चार बार दोहराई जाती है।

8.6.2 डी बोनो का पार्श्व सोच द्वारा सृजनात्मकता का विकास -

डा. एडवर्ड डी बोनो व्यापक रूप से सृजनात्मकता व पार्श्व सोच के क्षेत्र में अग्रणी माने जाते हैं। उनका विचार है कि मानव मस्तिष्क एक आत्म आयोजन प्रणाली है। पार्श्व सोच एक अप्रत्यक्ष और सृजनात्मक रूप से समस्या समाधान का तरीका है। इस विधि में उन विचारों को भी महत्व दिया जाता है जो अस्पष्ट एवं पारंपरिक तर्क से परे होते हैं।

डी बोनो के अनुसार पार्श्व सोच सृजनात्मकता के पारंपरिक प्रत्यक्षीकरण से अलग होती है। मुख्यतः चिंतन किसी वक्तव्य के मूल्य को पहचानने एवं त्रुटियों से सम्बन्धित होता है परन्तु पार्श्व चिंतन वक्तव्यों के "गतिशील मूल्य" से सम्बन्धित होता है। व्यक्ति पाश्र्व चिंतन का प्रयोग एक ज्ञात विचार से नये एक नवीन विचार के निर्माण में स्थानान्तरित करने के लिये करता है।

डी बोनो ने चार प्रकार के सोच के उपकरण परिभाषित किये हैं -

1) **विचार उत्पन्न करने के उपकरण** - जो वर्तमान सोच प्रणाली में बदलाव करते हैं और किसी वस्तु/स्थिति सम्बन्धित विचार उत्पन्न करते हैं।
2) **ध्यान देने वाले उपकरण** - जो विचारों की खोज और उन्हें व्यापक बनाने का कार्य करते हैं।
3) **उपज उपकरण -** जिनका कार्य यह सुनिश्चित करना होता है कि विचार उत्पन्न करने वाले उपकरणों से अधिक मूल्य वाले विचार उत्पन्न हों।
4) **इलाज के उपकरण** - इनका कार्य वास्तविक दुनिया की सीमाओं, संसाधनों और समर्थन पर विचार करने को बढ़ावा देना है और इन्हीं कसौटियों पर विचारों का मूल्यांकन किया जाता है।

डी बोनो द्वारा प्रतिपादित छः चिन्तन टोपी वाली विधि मस्तिष्क उद्वेलन के लिये प्रयोग में लाई जाती है। डी बोनो ने छः प्रकार के चिन्तन बताये हैं व उनके लिये एक निश्चित रंग की टोपी निर्धारित की है। जैसे सृजनात्मक चिंतन के लिये हरी टोपी, तथ्य और मात्रात्मक चिन्तन के लिये सफेद रंग की टोपी आदि। डी बोनो के अनुसार मस्तिष्क उद्वेलन की प्रक्रिया के दौरान प्रतिभागी ने जिस रंग की टोपी पहनी है, उसी से सम्बन्धित चिन्तन कर वह समस्या के प्रति अपने विचार प्रकट करेगा। जैसे - अगर उसने सफेद रंग की

टोपी पहनी है तो वह समस्या के तथ्यों एवं मात्रात्मक पहलू पर चिंन्तन करेगा। संवेगात्मक पहलू पर वह तभी चिन्तन कर सकेगा जब उसने लाल रंग की टोपी पहनी होगी। इस प्रकार डी बोनो द्वारा प्रतिपादित इस विधि में व्यक्ति को यह पता होता है कि उसे किस प्रकार चिंतन करना है।

8.6.3 विलियम गोर्डन द्वारा प्रतिपादित मस्तिष्क उद्वेलन विधि -

विलियम गोर्डन ने 1950 के दशक में मस्तिष्क उद्वेलन की प्रगतिशील रहस्योद्घाटन तकनीक का प्रतिपादन किया। गोर्डन के अनुसार प्रतिभागी मस्तिष्क उद्वेलन के सत्र में आदर्श या स्पष्ट समाधान के लिये प्रयासरत रहते हैं। जिससे उनकी सृजनात्मक सोच निलम्बित हो जाती है। इन्होने सुझाव दिया कि मस्तिष्क उद्वेलन सत्र के दौरान प्रतिभगियों को वास्तविक समस्या को प्रस्तुत नहीं किया जाना चाहिये। जिससे उनके विचारों पर किसी प्रकार का तनाव या बंधन नहीं रहेगा और वह कहीं अधिक स्वतंत्र रूप से चिन्तन कर सकते हैं। इस विधि की मान्यता है कि शुरू में प्रतिभागियों को वास्तविक समस्या को प्रस्तुत नहीं किया जाना चाहिये। शुरूआत में प्रतिभागियों को समस्या को सामान्यीकृत सैद्धान्तिक और गैर विशिष्ट रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिये। जैसे - जैसे मस्तिष्क उद्वेलन सत्र आगे बढ़ता जाता है धीरे - धीरे और अधिक तथ्यात्मक विवरण प्रतिभागियों के समक्ष रखा जा सकता है।

इस प्रकार इस विधि में शिक्षक प्रारम्भ में प्रतिभगियों के समक्ष समस्या की मूल अवधारणा या सिद्धान्तों को प्रस्तुत करता है व बाद में धीरे - धीरे और अधिक जानकारी प्रगट करता है।

8.6.3.1 प्रगतिशील रहस्योद्घाटन की प्रक्रिया

विलियम गोर्डन द्वारा प्रतिपादित प्रगतिशील रहस्योद्घाटन मस्तिष्क उद्वेलन विधि की प्रक्रिया को निम्न बिन्दुओं के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है -

1) शिक्षक शुरू में समस्या को बहुत सार और सैद्धान्तिक रूप में प्रस्तुत करता है ताकि प्रतिभागी खुले तौर पर चिन्तन कर सकें।
2) शिक्षक छात्रों को सार रूप में ही समस्या समाधान हेतु विचार प्रकट करने को कहता है।
3) शिक्षक समस्या से सम्बन्धित प्रमुख जानकारी प्रस्तुत करता है।
4) शिक्षक और प्रतिभागी उक्त जानकारी के अनुसार समस्या को पुनः अवलोकन व पुनः परिभाषित करते हैं।
5) शिक्षक अब वास्तविक समस्या को समूह में प्रस्तुत करता है।
6) प्रतिभागी पहले उत्पन्न विचारों को उद्दीपक की तरह प्रयोग करते हुए वास्तविक समस्या के समाधान हेतु विचार प्रकट करते हैं।

8.6.4 मस्तिष्क उद्वेलन विधि के गुण

मस्तिष्क उद्वेलन विधि के गुणों को निम्न बिन्दुओं के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है -

1) मस्तिष्क उद्वेलन विधि के नियम आसानी से ही समझ में आते हैं तथा सरलतापूर्वक ही प्रयोग किये जा सकते हैं।

2) मस्तिष्क उद्वेलन विधि एक कम खर्चीली विधि है। इसमें नाम मात्र के ही भौतिक संसाधनों का प्रयोग किया जाता है।
3) कम समय में काफी अधिक विचार इस विधि के द्वारा उत्पन्न किये जा सकते हैं।
4) यह व्यक्ति में सृजनात्मक चिन्तन को प्रोत्साहित करती है।
5) मस्तिष्क उद्वेलन विधि विचार उत्पन्न करने की एक प्रजातांत्रिक, उत्तेजक तथा आनन्ददायक विधि है।
6) यह विधि समूह में प्रतिभागिता व सहभागिता की भावना को बढ़ावा देती है।
7) इस विधि के अनुसार हर विचार मूल्यवान होता है। इसीलिये इस विधि में प्रत्येक प्रतिभागी खुलकर अपने विचार प्रकट करता है।
8) यह विधि कहीं पर भी प्रयोग की जा सकती है तथा इसे अन्य विधियों के साथ जोड़कर भी प्रयोग किया जा सकता है।

8.6.5 मस्तिष्क उद्वेलन विधि के दोष -

मस्तिष्क उद्वेलन विधि के दोषों को निम्न बिन्दुओं के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है -

1) मस्तिष्क उद्वेलन विधि के लिये एक अनुभवी व संवेदनशील शिक्षक अथवा सुगमकर्ता की आवश्यकता होती है।
2) अगर शिक्षक मस्तिष्क उद्वेलन विधि में अनुभवी न हो तो यह उद्देश्यविहीन, अराजक तथा अनादरपूर्ण हो सकती है।
3) समूह पर सही नियंत्रण न होने पर यह काफी अधिक समय ले लेती है।
4) समूह का प्रबंधन सही न होने पर इसमें आलोचना व नकारात्मक मूल्यांकन व्यक्ति की सृजनात्मकता को प्रभावित कर सकते हैं।
5) मस्तिष्क उद्वेलन विधि में विश्वसनीय मानदण्डों का अभाव समस्या के प्रस्तुत समाधान की गुणवत्ता को प्रभावित कर सकता है।

अभ्यास प्रश्न 4

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1) मस्तिष्क उद्वेलन विधि में किसी भी विचार की ……………… नहीं की जानी चाहिये
2) विलियम गोर्डन ने मस्तिष्क उद्वेलन की ………………….. तकनीक का प्रतिपादन किया।
3) पाश्र्व सोच एक अप्रत्यक्ष और सृजनात्मक रूप से …………………… का तरीका है।
4) मस्तिष्क उद्वेलन विधि विचार उत्पन्न करने की एक ……………… उत्तेजक तथा आनन्ददायक विधि है।
5) समूह का प्रबंधन सही न होने पर इसमें ……………………. मूल्यांकन व्यक्ति की सृजनात्मकता को प्रभावित कर सकते हैं।

8.7 अधिगम का स्थानांतरण

अधिगम स्थानान्तरण शब्द का तात्पर्य है - विद्यार्थी द्वारा अर्जित ज्ञान को दूसरी परिस्थितियों में प्रयोग करना। शिक्षा मनोवैज्ञानिकों के अनुसार किसी एक विषय के अध्ययन द्वारा प्राप्त ज्ञान दूसरे विषयों के ज्ञान में एवं अन्य परिस्थितियों में उपयोगी सिद्ध होता है। प्रायः यह देखा गया है कि एक विषय अथवा क्रिया में प्राप्त अनुभव अन्य विषयों एवं क्रियाओं को सीखने में सहयोगी होता है। लाक के अनुसार गणित पढ़ाने से व्यक्ति विवेकशील बनता है, और इस विवेक शक्ति को वह दूसरे विषयों को सीखने में भी स्थानान्तरित कर सकता है। उदाहरण के लिये साइकिल चलाने में कुशलता प्राप्त व्यक्ति सहजता से मोटरसाइकिल चलाना सीख लेता है।

परिभाषाऐं -

क्रो एवं क्रो: "अधिगम के एक क्षेत्र में प्राप्त आदत, चिन्तन, मान या कुशलता का जब दूसरी परिस्थिति में प्रयोग किया जाता है तो यह अधिगम का स्थानान्तरण कहलाता है।"

सोरेन्सन: "स्थानान्तरण से तात्पर्य एक परिस्थिति में अर्जित ज्ञान, प्रशिक्षण और आदतों का किसी अन्य परिस्थिति में उपयोग से है।"

8.7.1 अधिगम स्थानान्तरण के प्रकार

अधिगम स्थानान्तरण को प्रमुखतः दो भागों में बांटा जाता है -

I **सकारात्मक अधिगम स्थानान्तरण -** सकारात्मक अधिगम स्थानान्तरण वह स्थानान्तरण है जिसमें पूर्व ज्ञान या अनुभव का प्रशिक्षण किसी नवीन क्रिया को करने में सहायक होता है। जैसे - साइकिल चलाने में कुशलता प्राप्त व्यक्ति सहजता से मोटरसाइकिल चलाना सीख लेता है।

II **नकारात्मक अधिगम स्थानान्तरण -** नकारात्मक अधिगम स्थानान्तरण वह स्थानान्तरण है जिसमें पहले से सीखा हुआ ज्ञान, अनुभव या दक्षता किसी भी प्रकार के नवीन ज्ञान को सीखने में बाधा पहुंचाते हैं। उदाहरण के लिये बालीबाल के खिलाड़ी को हाकी खेलने में कठिनाई का अनुभव होता है।

8.7.2 अधिगम के स्थानान्तरण को प्रभावित करने वाली परिस्थितियां -

अधिगम के स्थानान्तरण के लिये कुछ अनुकूल परिस्थितियों का होना आवश्यक है। इन परिस्थितियों को निम्न बिन्दुओं के द्वारा समझा जा सकता है -

1) **सीखने वाले की इच्छा** - अधिगम के स्थानान्तरण के लिये सीखने वाले व्यक्ति में इच्छा का होना अत्यंत आवश्यक है।
2) **सीखने वाले की सामान्य बुद्धि** - प्रयोगों द्वारा यह देखा गया है कि मन्द बुद्धि बालकों की अपेक्षा कुशाग्र बुद्धि वाले बालकों में अधिगम के स्थानान्तरण की योग्यता अधिक होती है।

3) **सामान्यीकरण की योग्यता** - स्थानान्तरण मुख्यतः सामान्यीकरण पर निर्भर करता है। बालक जितना अधिक अपने पूर्व अनुभव एवं कार्यों के आधार पर सामान्य सिद्धान्त निकालने के योग्य होता है, शिक्षण का स्थानान्तरण उतना ही अधिक होता है।
4) **समझने की योग्यता** - जिन छात्रों में परिस्थितियों को समझने की योग्यता अधिक होती है वे अधिगम का स्थानान्तरण करने में अधिक सफल होते हैं। समझने की यह योग्यता सामान्यीकरण में भी सहायक होती है।
5) **समान विषय वस्तु** - यदि दो विषयों में समान तत्वों की अधिकता है तो उनमें अधिगम का स्थानान्तरण भी अधिक होता है। उदाहरण के लिये गणित का ज्ञान सांख्यकी के अधिगम में सहायक होता है।
6) **शिक्षण विधि** - यदि अध्यापक पढ़ाते समय दो विषयों में समानता पर प्रकाश डालता है तो अधिगम का स्थानान्तरण की सम्भावना अधिक होती है।
7) **विषय सामग्री पर अधिकार** - बालक का विषय सामग्री पर अधिकार भी उस ज्ञान को दूसरे क्षेत्र में स्थानान्तरित करने में सहायक होता है।

8.7.3 अधिगम के अधिकतम धनात्मक और न्यूनतम ऋणात्मक स्थानान्तरण हेतु शिक्षण -

स्थानान्तरण की शिक्षा देने में अध्यापक की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। अध्यापक को अधिगम का स्थानान्तरण का शिक्षण देते समय निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिये जिनकी ओर बर्नार्ड महोदय ने भी ध्यान आकर्षित किया है -

1) **उद्देश्यों का स्पष्टीकरण** - उद्देश्यों का स्पष्टीकरण प्रभावशाली अधिगम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अधिगमकर्ता को यह ज्ञात होना चाहिये कि वह क्या सीखने वाला है तथा अध्यापक को भी यह स्पष्ट होना चाहिये कि उसे क्या सिखाना है। ऐसा होने पर ही वह छात्रों को अध्ययन के लक्ष्यों का प्रत्यक्षीकरण कराने में सफल हो सकता है।
2) **बोध का विकास** - छात्रों में बोध शक्ति का विकास किया जाना आवश्यक है। समस्या पर विचार करने से बोध का विकास होता है। समस्या का बोध होने से अधिगम के स्थानान्तरण में सहायता प्राप्त होती है।
3) **सम्बन्धों का विकास** - अधिगम के स्थानान्तरण के लिये आवश्यक है कि शिक्षक अपने विषय का अध्यापन कराते समय अन्य विषयों के साथ सम्बन्ध स्थापित कराते हुए अध्यापन करे।
4) **पूर्ण एवं गहन अधिगम** - किसी विषय का सम्पूर्ण अधिगम स्थानान्तरण में सहायक होता है। अतः शिक्षक के लिये यह आवश्यक है कि वह किसी समस्या का ज्ञान कराते समय उसके सभी पक्षों पर प्रकाश डालते हुऐ पूर्ण ज्ञान कराने का प्रयत्न करे।
5) **सिद्धान्तों पर बल** - सिद्धान्तों को रटने की अपेक्षा छात्रों के समक्ष ऐसी परिस्थियां उत्पन्न की जानी चाहिये जिनमें वह उनका प्रयोग कर सकें।

6) **अभिवृत्ति का विकास** - छात्रों में किसी समस्या के प्रति उचित अभिवृत्ति का विकास भी अधिगम स्थानान्तरण में सहायक होता है। अतः शिक्षक के लिये यह आवश्यक है कि वह छात्रों में उचित अभिवृत्ति का विकास करे।
7) **पाठ्य विषयों पर ध्यान** - विद्यालय में पढ़ाये जाने वाले विषयों के ज्ञान का स्थानान्तरण महत्व भी अअधिक होता है। अतः शिक्षक को इन विषयों का अध्यापन कराते समय सम्भावित क्षेत्रों में स्थानान्तरण की सम्भावना पर भी प्रकाश डालना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न 5

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1) स्थानान्तरण से तात्पर्य एक परिस्थिति में ……………….. प्रशिक्षण और आदतों का किसी अन्य परिस्थिति में उपयोग से है।

2) सकारात्मक अधिगम में पूर्व ज्ञान या अनुभव का प्रशिक्षण किसी नवीन क्रिया को करने में ………. होता है।

3) नकारात्मक अधिगम स्थानान्तरण में पहले से सीखा हुआ ज्ञान, अनुभव या दक्षता किसी भी प्रकार के नवीन ज्ञान को सीखने में ………. पहुंचाते हैं।

4) यदि दो विषयों में ………………की अधिकता है तो उनमें अधिगम का स्थानान्तरण भी अधिक होता है

8.8 सारांश

सृजनात्मकता को साधारण शब्दों में रचना करने या सृजन करने की क्षमता से जाना जा सकता है। सृजनात्मकता के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि जब किसी कार्य का परिणाम नवीन हो, जो किसी समय में समूह द्वारा उपयोगी और मान्य हो, वह कार्य सृजनात्मकता कहलाता है। सृजनात्मकता में विभिन्न वस्तुओं के संयोग से उत्पन्न नवीनता का उपयोगी होना तथा समाज द्वारा मान्यता प्राप्त होना आवश्यक है।

सृजनात्मकता एक बौद्धिक क्षमता होती है। सृजनात्मकता का बुद्धि के साथ कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता है। सृजनात्मक व्यक्ति उच्च बुद्धि वाला हो यह आवश्यक नहीं है। सृजनात्मकता के विकास में अपसरण चिंतन की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

सृजनात्मकता के प्रमुख तत्व मौलिकता, निरन्तरता, लोचनीयता,विस्तार, उपयोगिता, स्वीकार्यता हैं। सृजनात्मकता के विकास पर तात्कालिक स्थिति से परे जाने की योग्यता, समस्या की पुनर्व्याख्या, सामन्जस्य,दूसरे के विचारों में परिवर्तन का प्रभाव होता है।

सृजनात्मकता के विकास के लिये विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई मस्तिष्क उद्वेलन विधियों का प्रयोग किया जा सकता है। मस्तिष्क उद्वेलन एक सामूहिक व व्यक्तिगत सृजनात्मकता विकसित करने की विधि है। इसके द्वारा किसी विशिष्ट समस्या के हल के लिये अनायास विचारों की सूची बनाने का प्रयास किया जाता है। मस्तिष्क उद्वेलन के चार सामान्य नियम हैं मात्रा पर ध्यान, आलोचना पर रोक, असामान्य

विचारों का स्वागत,विचारों का मिश्रण व बेहतर विचार ।इस प्रकार कक्षा में भी बालकों में मस्तिष्क उद्वेलन विधि का प्रयोग करके उनकी विचार उत्पन्न करने की क्षमता को विकसित किया जा सकता है। सृजनात्मकता के विकास के लिये मस्तिष्क उद्वेलन विधि के प्रकार है - नाममात्र समूह प्रविधि, समूह हस्तान्तरण प्रविधि, दल विचार मानचित्रण प्रविधि, निर्देशित मस्तिष्क उद्वेलन प्रविधि।

डा. एडवर्ड डी बोनो ने पार्श्व सोच को महत्व दिया है। पार्श्व सोच सृजनात्मकता के पारंपरिक प्रत्यक्षीकरण से अलग होती है। पार्श्व चिंतन वक्तव्यों के "गतिशील मूल्य" ये सम्बन्धित होता है। व्यक्ति पार्श्व चिंतन का प्रयोग एक ज्ञात विचार से नये एक नवीन विचार के निर्माण में स्थानान्तरित करने के लिये करता है। डी बोनो द्वारा प्रतिपादित छः चिन्तन टोपी वाली विधि मस्तिष्क उद्वेलन के लिये प्रयोग में लाई जाती है। डी बोनो ने छः प्रकार के चिन्तन बताये हैं व उनके लिये एक निश्चित रंग की टोपी निर्धारित की है। इस प्रकार डी बोनो द्वारा प्रतिपादित इस विधि में व्यक्ति को यह पता होता है कि उसे किस प्रकार चिंतन करना है।

विलियम गोर्डन ने मस्तिष्क उद्वेलन की प्रगतिशील रहस्योद्घाटन तकनीक का प्रतिपादन किया। गोर्डन ने सुझाव दिया कि मस्तिष्क उद्वेलन सत्र के दौरान प्रतिभगियों को वास्तविक समस्या को प्रस्तुत नहीं किया जाना चाहिये। जिससे उनके विचारों पर किसी प्रकार का तनाव या बंधन नहीं रहेगा और वह कहीं अधिक स्वतंत्र रूप से चिन्तन कर सकते हैं। इस विधि की मान्यता है कि शुरू में प्रतिभगियों को वास्तविक समस्या को प्रस्तुत नहीं किया जाना चाहिये। शुरूआत में प्रतिभागियों को समस्या को सामान्यीकृत सैद्धान्तिक और गैर विशिष्ट रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिये। जैसे - जैसे मस्तिष्क उद्वेलन सत्र आगे बढ़ता जाता है धीरे - धीरे और अधिक तथ्यात्मक विवरण प्रतिभागियों के समक्ष रखा जा सकता है।

अधिगम स्थानान्तरण शब्द का तात्पर्य है - विद्यार्थी द्वारा अर्जित ज्ञान को दूसरी परिस्थितियों में प्रयोग करना। शिक्षा मनोवैज्ञानिकों के अनुसार किसी एक विषय के अध्ययन द्वारा प्राप्त ज्ञान दूसरे विषयों के ज्ञान में एवं अन्य परिस्थितियों में उपयोगी सिद्ध होता है।

अधिगम स्थानान्तरण को प्रमुखतः दो भागों में बांटा जाता है - सकारात्मक अधिगम स्थानान्तरण - सकारात्मक अधिगम स्थानान्तरण वह स्थानान्तरण है जिसमें पूर्व ज्ञान या अनुभव का प्रशिक्षण किसी नवीन क्रिया को करने में सहायक होता है। नकारात्मक अधिगम स्थानान्तरण - नकारात्मक अधिगम स्थानान्तरण वह स्थानान्तरण है जिसमें पहले से सीखा हुआ ज्ञान, अनुभव या दक्षता किसी भी प्रकार के नवीन ज्ञान को सीखने में बाधा पहुंचाते हैं। अधिगम के स्थानान्तरण के लिये कुछ अनुकूल परिस्थितियों का होना आवश्यक है। स्थानान्तरण की शिक्षा देने में अध्यापक की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। अध्यापक को अधिगम का स्थानान्तरण का शिक्षण देते समय उद्देश्यों का स्पष्टीकरण, बोध का विकास, सम्बन्धों का विकास, पूर्ण एवं गहन अधिगम, सिद्धान्तों पर बल, अभिवृत्ति का विकास, पाठ्य विषयों पर ध्यान, बातें ध्यान में रखनी चाहिये।

8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. रचना 2. संयोग 3. उपयोगी, मान्यता

अभ्यास प्रश्न 2

1. गलत 2. सही 3. गलत

अभ्यास प्रश्न 3

1.मौलिक 2. चिंतन 3. अस्वीकार्य

अभ्यास प्रश्न 4

1. आलोचना 2. प्रगतिशील रहस्योद्घाटन चिंतन 3. समस्या समाधान

4. प्रजातांत्रिक 5. आलोचना व नकारात्मक

अभ्यास प्रश्न 5

1. अर्जित ज्ञान 2. सहायक 3. बाधा

4. समान तत्वों

8.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. सृजनात्मकता का विकास एवं विकास की विभिन्न विधियों की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिये
2. Osborn की मस्तिष्क उद्वेलन विधि एवं उसके प्रकार तथा बोनो का पार्श्व सोच द्वारा सृजनात्मकता का विकास विधि पर प्रकाश डालिये?
3. अधिगम का स्थानांतरण, उसके प्रकार तथा अधिगम के स्थानान्तरण को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों का वर्णन कीजिये?
4. अधिगम के अधिकतम धनात्मक और न्यूनतम ऋणात्मक स्थानान्तरण हेतु शिक्षण किस प्रकार कराया जाये? विस्तार पूर्वक चर्चा कीजिये?

8.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

- माथुर, डा. एस.एस. (1999), समाज मनोविज्ञान, आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।
- सिंह, अरूण कुमार. (1999) समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली।
- श्रीवास्तव, डा. डी. एन., समाज मनोविज्ञान।

- वर्मा, डा. रामपाल सिंह.(2006),शिक्षण एवं अधिगम का मनोविज्ञान, आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।
- सारस्वत, डा. मालती.(1999),शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, लखनऊः आलोक प्रकाशन।
- पाठक,पी.डी.(2006),शिक्षा मनोविज्ञानए आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।
- पाठक, डा. आर.पी.(2007), उच्च शिक्षा मनोविज्ञान,नई दिल्लीः राधा पब्लिकेशन्स।
- श्रीवास्तव, डा. रामजी, आलम, डा. काजी गौस (1998), आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान, मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली।
- Wolman, B.E. (1979), ContemporaryTheories and Systems in Psychology, Delhi; Freeman Book Co.
- Myers, D. (2011), Social Psychology (English) 10th Edition: McGraw Hill Education (India) Private Limited.

इकाई - 9

विद्यालय का भौतिक तथा सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण एवं अधिगम प्रक्रिया

Physical and socio-cultural Environment of School and Learning Process

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 विद्यालय में भौतिक सुविधाएँ

9.4 विद्यालय संगठनात्मक वातावरण

9.4.1 संगठनात्मक वातावरण के प्रकार

9.4.2 विद्यालय संगठनात्मक वातावरण के महत्त्वपूर्ण पक्ष

9.4.3 विद्यालय संगठन वातावरण एवं अधिगम प्रक्रिया

9.5 विद्यालय का सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण

9.6 पाठ्यपुस्तक

9.6.1 प्रस्तावना

9.6.2 पाठ्यपुस्तक एवं अधिगम प्रक्रिया

9.7 पाठ्यक्रम

9.7.1 पाठ्यक्रम के उद्देश्य

9.7.2 पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त

9.7.3 शिक्षण अधिगम प्रक्रिया एवं पाठ्यचर्या

9.8 अधिगम प्रक्रिया और तकनीकी हस्तक्षेप

9.8.1 अधिगम प्रक्रिया में तकनीकी हस्तक्षेप के आधार

9.8.2 तकनीकी हस्तक्षेप का महत्त्व

9.8.3 तकनीकी हस्तक्षेप की सीमाएं

9.9 सारांश

9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

9.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

9.1 प्रस्तावना

बालक के सर्वांगीण विकास में विद्यालय की भूमिका अति महत्त्वपूर्ण है। इसलिए विद्यालय की सुविधाओं, संसाधनों तथा वातावरण पर बातचीत जरूरी है। विद्यालय का भौतिक वातारण सुविधाएं तथा संसाधन जहाँ विद्यालय को एक आवरण प्रदान करता है, वहीं विद्यालय का अकादमिक सांगठनिक और सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण विद्यालय के प्रतीक संगठन तथा सामाजिक संस्थान के रूप में पहचाना जाता है। विद्यालय की रूपरेखा का धरातल उक्त सभी प्रकार के वातावरण पर निर्भर करता है। समय और परिस्थितियों में बदलाव से विद्यालय के वातावरण ओर अधिगम प्रक्रिया को भी नये तरीक से देखा और समझा जाने लगा है। कक्षा शिक्षण मे पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों को भी नवीन दृष्टि प्रदान की गयी है ताकि सीखने सिखाने की प्रक्रिया को प्रभावी बनाया जा सके। इसके साथ ही तकनीकी भी अधिगम प्रक्रिया का अनिवार्य हिस्सा बनती चली जा रही है। हालांकि उसका हस्तक्षेप सफलता के नवीन मार्ग खोलने के साथ चुनौतियाँ भी पैदा करता है। इस प्रकार विद्यालय के उक्त सभी प्रकार के दृष्टिकोणों को इस अध्याय के माध्यम से समझने का प्रयास करेंगे।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- विद्यालय के भौतिक संसाधनों और वातावरण को बता सकेंगे।
- विद्यालय के सांगठनिक या संगठनात्मक वातावरण के महत्त्वपूर्ण पत्रों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- विद्यालय के सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण से जुडे तत्त्वों की व्याख्या कर सकेंगे।
- पाठ्यचर्या व पाठ्यपुस्तक से अधिगम प्रक्रिया के संबंधोंको बता सकेंगे।
- अधिगम प्रक्रिया में तकनीकी हस्तक्षेप के आधारों और प्रभावों को बता सकेंगे।

9.3 विद्यालय में भौतिक सुविधाएँ (Physical facilities in the school)

विद्यालय में अध्ययन अध्यापन प्रक्रिया के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए विद्यालय के भौतिक पर्यावरण की अहम भूमिका है। जिस प्रकार कुशल कारीगर अच्छी मशीन के द्वारा ही अपनी कुशलता का परिचय दे सकता है, उसी प्रकार एक योग्य अध्यापक उचित भौतिक संसाधनों के उपलब्ध होने पर ही विद्यार्थियों को भली प्रकार से शिक्षित कर सकता है। शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य व्यक्तित्व का सर्वांगीण और संतुलित विकास करना होता है। विद्यालय के भौतिक पर्यावरण में निहित अनेक सुविधाएं अध्ययन अध्यापन स्थितियों एवं अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करती है। जैसे पुस्तकालय का उद्देश्य मानसिक

विकास करना, क्रीड़ा स्थल का उद्देश्य शारीरिक विकास में सहायक बनना है ठीक उसी प्रकार प्रयोगशाला विद्यार्थियों के सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप से समझने में सहायक होती है। ऐसे अनेक भौतिक संसाधन बालकों के सर्वांगीण विकास में सहायक होते हैं। क्योंकि समय में निरन्तर परिवर्तन के चलते शैक्षिक आवश्यकताएं भी परिवर्तित हुई हैं। ऐसे में बदलती आवश्यकताओं के संदर्भों में की पूति विद्यालय संयत्र के समुचित निर्माण तथा रखरखाव द्वारा ही संभव है।

विद्यालय के भौतिक संसाधन जिनका शिक्षक शिक्षार्थी के कार्यक्षमता पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है का वर्णन निम्नानुसार किया जा सकता है-

1- **विद्यालय की स्थिति एवं भवन** - NCF 2005 के अनुसार चेतन और अचेतन रूप से बच्चे संरचित या असंरचित समय में अपने विद्यालय के भौतिक वातावरण में निरन्तर अन्तक्रिया करते रहते हैं। विद्यालय की भौतिक सुविधाओं में विद्यालय की स्थिति व भवन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। शैक्षणिक कार्यक्रमों की प्रस्तुति के लिए विद्यालय का आकर्षक वातावरण सबसे प्राथमिक क्रम में होता है साथ ही विद्यालय की स्थिति ऐसे स्थान पर हो जहाँ विद्यार्थी व शिक्षक सुविधापूर्वक अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया में सुविधापूर्वक संलग्न रह सके व स्वास्थ्य की दृष्टि से भी वातावरण उपयुक्त व दुर्घटना से सुरक्षित हो। भविष्य में विद्यार्थियों की संख्या बढ़ने के साथ ही भवन में विस्तार सुविधाओं की परिस्थितियाँ मौजूद हों। विद्यालय के निकट पार्क की उपस्थिति, स्वास्थ्य केन्द्र व नगरीय पुस्तकालय की स्थिति उपयोगी होती है।

2- **कक्षाकक्ष** - कक्षाकक्ष ही वह उपयुक्त स्थान है जहाँ शिक्षक व शिक्षार्थी विषय से संबंधित चचा करते हैं, जिज्ञासाओं को शान्त करते है। व ज्ञान में वृद्धि करते हैं। अत: यह स्थान पूर्णतया ध्यानकेन्द्रित करने वाला, खुला व हवादार, प्रकाशव्यवस्था से पूर्ण, उचित श्यामपट्ट की व्यवस्था वाला एवं सुरक्षित होना चाहिए। बालकों का अधिकांश समय अपनी कक्षाओं में बीतता है। बालक जहाँ शांति महसूस करें व उर्जावान रह कर अध्ययन कर पायें ऐसा वातावरण कक्षाकक्ष का होना चाहिए। बैठन की पर्याप्त व उचित व्यवस्था हो जिसमें आवश्यक सामान रखने के लिए आलमारियों की संख्या भी पर्याप्त हो।

3- **फर्नीचर** - विद्यालय के फर्नीचर के संबंध में पी.जी. जैन का कथन है कि शिक्षार्थियों के शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास में फर्नीचर एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। फर्नीचर की उपयुक्तता विद्यार्थियों की कार्यक्षमता को बढ़ाती है एवं मन मष्तिष्क पर सकारात्मक प्रभाव डालती है। फर्नीचर की उपलब्धता व उपयुक्तता का निम्नानुसार संक्षिप्त में वर्णन किया जा रहा है-

- फर्नीचर छात्रों की आयु व शारीरिक विकास के अनुरूप निर्मित होने चाहिए।
- फर्नीचर क्रय करते समय उनके स्तर, किफायत तथा टिकाऊपन पर ध्यान रखा जाना चाहिए।
- फर्नीचर की ऊंचाई इतनी हो कि बालकों को बैठने व खड़े होने में असुविधा न हो।
- फर्नीचर के उचित रखरखाव के लिए उस पर समय समय पर रंगरोगन व सफाई का ध्यान रखा जाना चाहिए।

4- **प्रयोगशाला एवं उपकरण -** प्रयोगशाला वह स्थान है जहाँ विद्यार्थी सिद्धान्तों का वास्तविक व तथ्यत: प्रमाणीकरण करते हैं। विद्यालय के आधारभूत भौतिक संसाधनों में एक व्यवस्थित प्रयोगशाला का होना नितान्त आवश्यक है। प्रयोगशाला के अभव में विज्ञान शिक्षण को प्रभावी नहीं बनाया जा सकता है। क्योंकि कक्षा कक्ष में सभी उपकरणों का लाना संभव नहीं होता। प्रयोगशाला में विद्यार्थियों के लिए आधारभूत सभी सुविधाएँ होनी आवश्यक हैं। साथ ही सूचनार्थ विशेष सामग्री प्रदर्शन पट्ट (Display board) भी होना चाहिए। जिससे दुर्घटना का विद्यार्थी शिकार न हो साथ ही प्रयोगशाला के सामान के रखरखाव व सुरक्षा का पूरा ध्यान विज्ञान शिक्षक तथा प्रयोगशाला सहायक को रखना चाहिए।

5- **पुस्तकालय एवं वाचनालय** - पुस्तकों के संदर्भ में कहा गया है कि यह शैक्षिक क्रियाकलापों का केन्द्र है इसी के माध्यम से शिक्षक शिक्षार्थी के मध्य मधुर संबंधोंका निर्माण होता है एवं पुस्तकालय ही वह स्थान है जहाँ से पाठ्यक्रम समृद्ध बनता है, सूचनाएं प्राप्त होती है। शिक्षार्थी अपनी जिज्ञासाओं को संतुष्ट कर पाते हैं एवं शिक्षक संदर्भोंसे युक्त जानकारी जुटा पाते हैं।

एक प्रभावी पुस्तकालय में पाठक न केवल अपने अवकाश का सदुपयोग करे बल्कि उसका बौद्धिक विकास हो ऐसी परिस्थितियां निर्मित हो। आवश्यक सुविधाओं से युक्त पुस्तकालय में वाचन हेतु पृथक कक्ष व्यवस्थित रूप से रखी गयी पुस्तकों की पृथक पृथक आलमारियाँ छात्रों के बैठने की पर्याप्त व्यवस्था शुद्ध वायु, प्रकाश व जल की व्यवस्था होनी चाहिए। साथ ही पुस्तकालयाध्यक्ष अनुभवी, रूचिशील व विद्यार्थियों को स्वाध्याय हेतु उत्प्रेरित करने की क्षमता सम्पन्न होने वाला होना चाहिए। जो विद्यार्थियों को उचित परामर्श दे सके। विद्यार्थियों की अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बनाने हेतु इसकी प्रभावशीलता का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

6- **खेल का मैदान** - विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में शारीरिक विकास भी एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। इस हेतु भौतिक संसाधनों के रूप में खेल के मैदान का विशेष महत्व है। इन डोर व आऊट डोर खेलों को खेलने व इनके आयोजन हेतु पर्याप्त स्थान होना जरूरी है। साथ ही खेलों से जुड़ी पर्याप्त सामग्री भी होनी चाहिए। जो आवश्यकतानुसार भंडार प्रभारी द्वारा छात्रों को उपलब्ध कराना जरूरी है।

7- **छात्रावास -** विद्यालयों में प्राय: विद्यार्थी दूरस्थ स्थानों से आते हैं। उनका अधिकांश समय व ऊर्जा आने जाने में ही व्यर्थ हो जाती है। इसका उपयुक्त विकल्प छात्रावास है। यहां रहकर विद्यार्थी सहयोग व साहचर्य का जीवन जीते हैं जो उनके शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास का उपयुक्त स्त्रोत सिद्ध होता है। छात्रावास में बच्चों के लिए आवश्यक सामान जैसे पलंग, आलमारी, स्टूल, टेबल, प्रकाश की व्यवस्था, भोजन की उपयुक्त व्यवस्था, खेल व मनोरंजन के साधनों के साथ ही पूर्ण सुरक्षा के इंतजाम होने चाहिए।

इसके साथ ही विद्यालय में भौतिक सुखसुविधाओं में शौचालय, मूत्रालय, पीने का साफ पानी, सहशैक्षिक क्रियाओं में सहायक भौतिक संसाधन, शिक्षण सहायक सामग्री जैसे दृश्य-श्रृव्य संसाधन, मॉडल, मानचित्र आदि की सुविधाए, प्रशासनिक कार्यालय जिसमें सभी अभिलेखों की व्यवस्था हो आदि भी होने चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1 एक विद्यालय में भौतिक सुविधाएं में शामिल नहीं है?

(अ) कक्षाकक्ष (ब) पुस्तकालय (स) संग्रहालय (द) प्रयोगशाला

प्रश्न 2 सही ( ) एवं गलत (x) का निशान लगाइये

एक अच्छा फर्नीचर कार्यक्षमता को बढ़ता है व मष्तिष्क पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। (   )

9.4 विद्यालय संगठनात्मक वातावरण (School organization climates)

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में विद्यालयी वातावरण के बारे में स्पष्ट किया गया है कि सीखने की प्रक्रिया सामाजिक संबंधों के ताने-बाने में लगातार चलती रहती है। जब शिक्षक एवं विद्यार्थी औपचारिक व अनौपचारिक रूप से अंत:क्रिया करते हैं। विद्यालय एवं कक्षा के वातावरण को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाना चाहिए कि अन्त:क्रियाएं सीखने-सिखाने को समर्थन व बढ़ावा दें जैसे बालक अपने मित्रों के साथ विद्यालय के मैदान में खेले, बाते करे, प्रार्थना, उत्सव आदि अवसरों पर इकट्ठा हो।

उत्तम शिक्षा व्यवस्था के लिए उत्तम प्रशासन की आवश्यकता होती है जो शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ साथ कार्य व परिणामों को संतुष्टिदायक बनाने का प्रयास करता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और विद्यालय एक लधु समाज। जहाँ बालक वैसा ही बोलेगा जैसा वातावरण निर्मित किया जाएगा। विद्यालय का अपना एक वातावरण अथवा रीति को स्थापित करना बड़ा ही कठिन कार्य है। जिस प्रकार व्यक्ति के व्यक्तित्व से लोग नकारात्मक अथवा सकारात्मक रूप से प्रभावित होते हैं। ठीक उसी प्रकार विद्यालय का भी अपना व्यक्तित्व होता है जिसे विद्यालयी वायुमण्डल, विद्यालयी पर्यावरण या विद्यालयी व्यक्तित्व कहा जाता है।

विद्यालय पर्यावरण को समझने के लिए विद्यालय को एक सामाजिक संगठन की तरह देखना होगा। विद्यालयी संगठन में मुख्य रूप से नेतृत्व (प्रधानाध्यापक) तथा कार्यसमूह (शिक्षक) एवं विद्यार्थी कार्यरत रहते हैं।

ब्लूम महोदय ने इसकी कार्यकारी दशाओं को (जिनमें ये कार्य करते हैं) संगठनात्मक पर्यावरण कहा है।

हाल्पिन तथा क्राफ्ट के अनुसार, विद्यालय संगठन पर्यावरण समूह तथा नेतृत्व के परस्पर संबंधों तथा समूह के अन्तर्संबंध का परिणाम है।

टाउगिरी के अनुसार, संगठानात्मक पर्यावरण के आंतरिक पर्यावरण को स्थायित्व देने वाली विशेषता है।

विद्यालय को संगठन मानकर पर्यावरण को जानने संबंधी अनुसंधानों में हाल्पिन तथा क्राफ्ट का महत्त्वपूर्ण योगदान है इनके अनुसार विद्यालय एक प्रणाली है। इस प्रणाली में व्यक्ति (प्रधानाध्यापक व शिक्षक) परस्पर व्यवहार करते हैं। इनके व्यवहार के अनुरूप विद्यालयी संगठन में अनेक प्रकार के पर्यावरणों का जन्म होता है। इस पर्यावरण का प्रभाव विशेषता के अनुरूप विद्यालय की गुणवत्ता, उपलब्धियों, शैक्षिक व सहशैक्षिक कार्यकलापों, उपलब्धियों शिक्षकों के उद्देश्यों, शिक्षकों के मनोबल आदि पर पड़ता है।

9.4.1 संगठनात्मक पर्यावरण के प्रकार - भारत सहित अनेक देशों में संगठनात्मक पर्यावरण को लेकर अध्ययन प्रारम्भ हुए हैं, परन्तु आज भी यह क्षेत्र प्रधानाध्यापकों एवं प्रशासकों के लिए नया है अत: आवश्यकता है इसे गहराइ्र से जाना जाए

इनका वर्णन निम्नानुसार किया जा रहा है

1- मुक्त पर्यावरण - ऐसे संगठनों में सदस्यों का मनोबल उच्च होता है। वे अपने कार्य से संतुष्ट होते हैं। संगठन में पर्यावरण इस प्रकार का होता है कि कठिनाईयों व निराशाओं से ऊपर उठने के लिए प्रेरणा मिलती है। प्रधानाध्यापक विद्यालय की समग्र परिस्थितियों पर नियंत्रण रखता है व कुशल नेतृत्व प्रदान करता है।

2- स्वायत पर्यावरण - इसमें शिक्षक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सामूहिक रूप से प्रयत्नशील रहते हैं। अधिक कार्य के कारण भी उन्हें अपनी प्रगति ने व्यवधान की अनुभूति नहीं होती । इस पर्यावरण में व्यक्ति अपनी सामाजिक आवश्यकताओं की तुष्टि भी अधिक करते हैं। प्रधानाध्यापक के कार्य का संपादन, नियम और निर्देशन केन्द्रित होता है।

3- नियंत्रित पर्यावरण - इस प्रकार का पर्यावरण उपलब्धि केन्द्रित होता है। भले ही इसका अन्य प्रशासनिक पक्षों पर विपरीत प्रभाव पड़े। जिससे व्यक्तियों की सामाजिक व व्यक्तिगत आवश्यकताओं की तुष्टि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। सामाजिक संबंधोंकी महत्ता न्यून होती है। प्रधानाध्यपक नियमों में किसी प्रकार का लचीलापन नहीं देखता।

4- परिचित पर्यावरण - इसमें प्रधान और शिक्षकों के मध्य संबंधमित्रवत होते है। वह एकान्तवासी न होकर समूह में कार्य करता है। उसे शिक्षकों के कार्य के मूल्यांकन पर बहुत कम ध्यान रहता है। विशेष बात इस प्रकार के वातावरण में यह है कि शिक्षक उस पर विश्वास करते है और वह

शिक्षकों के कल्याण में रूचि रखता है। प्रधानाध्यापक की विचारधारा इस प्रकार की होती है कि सभी एक अच्छे परिवार के सदस्यों की तरह होते हैं।

5- पितृवत पर्यावरण - इसमें प्रधानाध्यापक की भूमिका मुख्य होती है। वह सारे कार्यों की रूपरेखा निर्मित करता है। वह इस प्रकार का दृष्टिकोण रखता है कि उसे ही सारी जानकारी है वह अधिकांश समय औपचारिक व प्रशासनिक कार्यों में व्यस्त रहता है। शिक्षक मिलकर कार्य नहीं करते वरन् समूहों में बँटे होते हैं प्रधान के नियंत्रण न रख पाने कारण सामूहिक एकता नहीं रह पाती।

6- बंद पर्यावरण - इस प्रकार के पर्यावरण में सामजिक आवश्यकता तथा कार्य उपलब्धियों में बहुत कम संतोष मिलता है। प्रधानाध्यापक शिक्षकों को निर्देशन देने में समर्थ नहीं होता है और न ही उनके व्यक्तिगत कल्याण की ओर ध्यान दे पाता है। अत: शिक्षक भी उसके साथ मिलकर कार्य नहीं कर पाते। सामूहिक उपलब्धियाँ नगण्य होती है।

9.4.2 विद्यालय संगठनात्मक वातावरण के महत्त्वपूर्ण पक्ष - विद्यालयी संगठन वातावरण संपूर्ण विद्यालय के समन्वित विकास और सकारात्मक परिणामों को दृष्टिगोचर करने का एक सशक्त माध्यम है। विद्यालयी वातावरण में कुछ महत्त्वपूर्ण पक्षों का होना आवश्यक है, जिसके अभाव में संस्कृति व जनतांत्रिक मूल्यों का पोषण संभव नहीं हो सकेगा। क्योंकि मानव कल्याण एवं संगठनात्मक विवेक दोनों एक सीमा तक साथ साथ चलते हैं। निम्न चित्र के माध्यम से यह स्पष्टतया समझा जा सकता है।

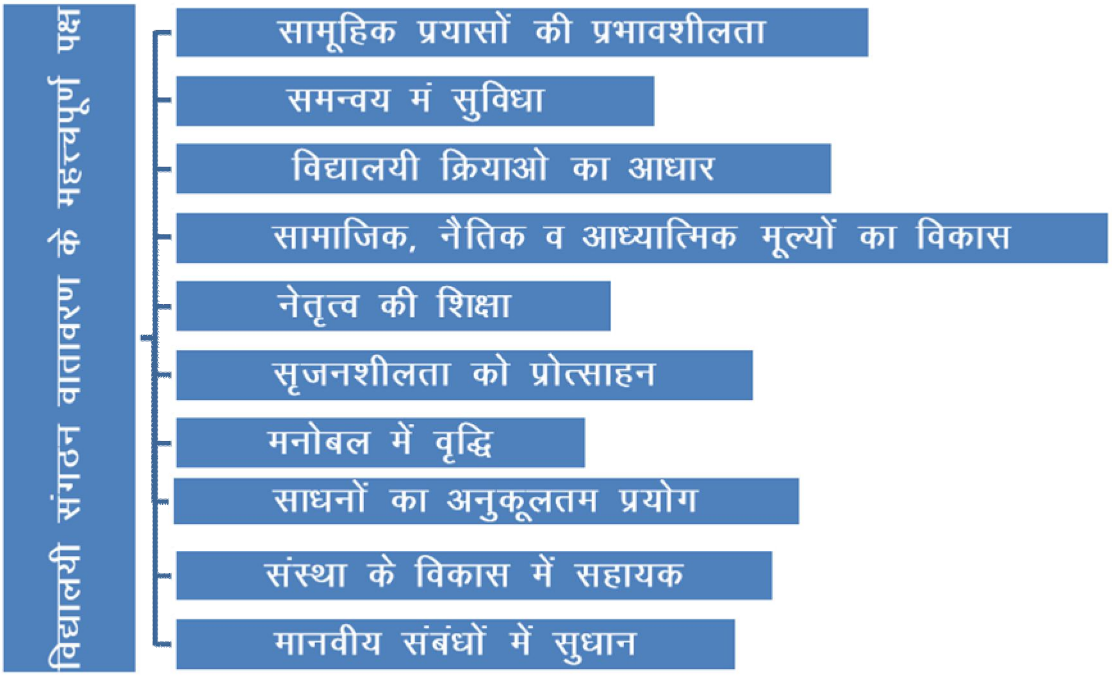

विद्यालयी संगठन के महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर प्रकाश डालते हुए यह स्पष्टतया कहा जा सकता है कि सांगठनिक वातावरण के सशक्त, सफल व उपयोगी होने से विद्यालयी होने से विद्यार्थियों एवं अध्यापकों के मनोबल में वृद्धि होती है वे अपने कार्यों को बहुत अच्छे परिणाम तक पहुँचा पाते हैं। चूंकि विद्यालय मानवीय संबंधोंका केन्द्र है। सांगठनिक वातावरण के अच्छे होने के कारण संबंधोंका सही व प्रभावी

संचालन हो पाता है। विशिष्टीकरण व श्रम विभाजन से कार्यों, प्रयासों व दृष्टिकोणों में उचित संतुलन व समन्वय बन पाता है व संघर्षों मतभेदों व अनियमितताओं को उत्पन्न होने से रोका जा सकता है। संगठन वातावरण जब एक उपयुक्त वातावरण निर्मित करता है तो शिक्षक व शिक्षार्थी रचनात्मक शक्ति को विकसित कर पाते हैं साथ ही श्रेष्ठ मानवीय संबंधोंका विकास होता है।

9.4.3 विद्यालय संगठन वातावरण एवं अधिगम प्रक्रिया -विद्यालय प्रशासन और प्रबंधन को भी अधिगम प्रक्रिया के संदर्भ में समझा जाना आवश्यक है। विद्यालय संगठन वातावरण विद्यालय को एक समूह एक संगठन नेतृत्व तथा पारस्परिक अन्तर्संबंधों के रूप में प्रस्तुत करता है। यदि विद्यालय संगठन वातावरण के महत्त्वपूर्ण पक्षों को भी ध्यान से देखा जाए तो अधिगम प्रक्रिया स्पष्ट हो जाती है। जैसे परिवार का संगठन वातावरण ठीक हो तो सभी को प्रगति के अवसर मिलते हैं। साथ ही सामूहिकता की भावना का भी विकास होता है। इसी भांति विद्यालय का संगठन वातावरण ठीक हो तो विद्यालय में सभी को साथ लेकर चलने की भावना प्रबल होगी, शांतिपूर्ण वातावरण दिखायी देगा, प्रभावी नेतृत्व व्यवस्था बनी रहेगी, सभी का समन्वय बना रहेगा और इससे मिश्रण अधिगम प्रक्रिया भी उर्जावान बनी रहेगी। इस प्रकार विद्यालय में सभी को सीखने के पर्याप्त अवसर मिले, इसके लिए विद्यालय का संगठनात्मक वातावरण उपयुक्त होना चाहिए।

जैसा कि प्रबंधन की दृष्टि से पीटर ड्रूकर के शब्दों में ''एक स्वस्थ संगठन पूर्ण स्वास्थ्य (perfact health) की भांति है। इसकी कसौटी यह है कि इसमें कोई दोष नहीं होते और इसके उपचार की कोई आवश्यकता नहीं होती है।''

इस प्रकार स्पष्ट होता है संगठनात्मक वातावरण विद्यालय की संपूर्ण छवि तथा प्रक्रिया को प्रभावित करता और दिखाता है। ऐसा संस्थान जहाँ संतुलन समन्वय, स्पष्टता, प्रभावी निर्णयन प्रभावी संप्रेषण सजग नेतृत्व आदि जैसी अनेक विशेषताएँ मौजूद हो वहाँ चाहे बालक हो या अध्यापक सभी प्रगति के पथ पर अगेसित होते हैं। और इसका प्रभाव कक्षाओं में दिखाई देता है और सीखने की प्रक्रिया पर भी।

अभ्यास प्रश्न 2

1- संगठनात्मक पर्यावरण के किस प्रकार में शिक्षकों का मनोबल उच्च होता है?
2- किस संगठनात्मक पर्यावरण में प्रधानाध्यापक सभी कार्यों की रूपरेखा स्वयं निर्मित करता है?

9.5 विद्यालय का सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण (Socia-cultural Environment of School)

'' समाज शिक्षा संस्थाओंको अपने सदस्यों में ऐसे ज्ञान कौशलों, आदर्शों तथा आदतों का प्रसार करने तथा सुरक्षित रखने के लिए स्थापित करता है। जो कि उसके स्वयं के स्थायित्व तथा निरंतर विकास के लिए अनिवार्य है।'' फ्रेंकलिन

मानव समाज अपने आदर्शों,भावों, मान्यताओं तथा क्रियाओं को सदैव ही एक पीढ़ी से अन्य पीढ़ियों को हस्तान्तरित करता रहता है। जैसे - जैसे उसके द्वारा यह अनुभव किया जाता है कि कुछ विचारधाराएं, मूल्य व परम्पराएं समय के अनुसार उपयोगी नहीं रहती है तो उसे वह त्यागता चला जाता है। साथ ही

नवीन विचारों को आमंत्रण मिलता जाता है और ये सभी नवीनताएं शिक्षा के माध्यम से समाज में प्रवेश पाती है। शिक्षा सदा से ही समाज के चिन्तन का विषय रहा है। व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में वैयक्तिक स्वतंत्रता और साथ ही समाज के प्रति प्रतिबद्धता दोनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

वैयक्तिक स्वतंत्रता का पूर्ण विकास तब होता है जब व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता का प्रयोग करते हुए दूसरों की स्वतंत्रता में बाधक न बनने में सकारात्मकता रखता है एवं अन्य लोगों के प्रति दायित्वोंका निर्वहन करता है। शिक्षण प्रक्रिया व्यक्ति को सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति करना सिखाती है। क्योंकि शिक्षा ही वह साधन है जो बालक को समाज के आवश्यक अंग होने का ज्ञान कराती है और समाज के महत्वपूर्ण संदर्भों का नियामक बनने में मददगार होने का अधिगम कराती है।

विद्यालय के सामाजिक उद्देश्यों के संदर्भ में यूनेस्को डिलोर्स आयोग की रिपोर्ट लिखती है कि एक बहुधर्मी समाज की स्थापना के माध्यम से जहाँ संघर्षों व समस्याओं को बातचीत के माध्यम से विभिन्न दृष्टिकोणों से चर्चा के बाद अधिकारिता को अस्वीकृत कर आम सहमति से स्वीकार किया जाए, ऐसी नागरिकता को शिक्षा विद्यालय के द्वारा दी जाए।

व्यक्ति तथा समाज एक दूसरे के पूरक है व अन्तर्निभर व्यक्ति के विकास में विद्यालय के सांस्कृतिक व सामाजिक वातावरण की अहम भूमिका है। व्यक्ति सामाजिक समूह में रहकर ही यह ज्ञात कर सकता है कि उसे किस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है अथवा शिक्षा में किस प्रकार के आमूल की आवश्यकता है। विद्यालय में विभिन्न सामाजिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के विद्यार्थी अध्ययन करते हैं ऐसे में यह बेहद आवश्यक है कि यह जाना जाए कि विद्यालय का सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण किस प्रकार हो निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से विद्यालय के सामाजिक व सांस्कृतिक वातावरण के आवश्यक तत्वों का वर्णन किया जा रहा है।

1 **ज्ञान के प्रसार में सहायक** - विद्यालय एक संस्था के साथ साथ सामाजिक संस्था भी है जो समाज और संस्कृति के संबंधित ज्ञान को बालकों में प्रसार करने तथा हस्तांतरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अत: विद्यालय का सामजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण ज्ञान को बालकों के माध्यम से प्रसारित करता है।

2 **सामाजिक संस्कृति व सभ्यता का पोषण व संरक्षण -** विद्यालय का बेहतर सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण हमारी सभ्यता व संस्कृति के संरक्षण व संवर्धन को भी बनाए रखता है। आज के समय में मूल्यों व शांति का ह्यास तीव्र गति से हो रहा है। ऐसी स्थिति में विद्यालय सभ्यता व संस्कृति का पोषण करता है व मूल्यों व शांति की शिक्षा को बढ़ावा देता है।

3 **स्व अनुशासन की भावना -** सामाजिक विकास के लिए स्वयं को नियंत्रित अनुशासित और पहले स्वयं में बदलाव की सीख विद्यालय से प्राप्त होती है। यह सामाजिक समस्याओं तथा संस्कृति के पतन की रोकथाम के लिए भी जरूरी है।

4 **सामाजिक परम्पराओं की सुरक्षा व हस्तांतरण का माध्यम बने -** हमारी रूढ़िया, प्रथाएं, परम्पराएं समाज व संस्कृति का अभिन्न हिस्सा हैं आज आधुनिकीकरण के दौर में परम्पराओं

की सुरक्षा तथा हस्तांतरण में विद्यालय के सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण की अहम भूमिका है।

5 **विद्यालय समाज का लधु रूप -** जैसा कि जॉन डी वी के अनुसार विद्यालय समाज का लधुरूप हैं। वह समाज का अभिन्न अंग है जोकि बालकों में सामाजिक भावना का संचार कर एक असामाजिक प्राणी को तैयार करता है। सामाजिकीकरण में विद्यालय का भी उपयोगी योगदान होता है।

6 **बालकों का सामाजिक विकास हो** - विभिन्न प्रकार के विकास की भांति बालक का सामाजिक विकास भी आवश्यक है। समाज के प्रति सकारात्मक दृष्टि के निर्माण, सामाजिक मूल्यों के बचाव और समाज का एक जिम्मेदार नागरिक बनाने में विद्यालय का वातावरण अत्यंत उपयोगी है।

7 **सर्वांगीण विकास के अवसर मिले -** बालक के सर्वांगीण विकास में विद्यालय में प्राप्त अवसर महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि बालक को मिलने वाले अवसरों में वह अपने अनुभवों को साझा करता है और समाज व संस्कृति को प्रतिबिम्बित करता है।

8 **रचनात्मकता व सृजनात्मक का विकास हो** - विद्यालय में बालक को अपना स्वयं का कुछ करने और नया करने का अवसर भी बालक के सर्वांगीण विकास से संबंधितहै। विद्यालय के खुली मानसिकता वाले वातावरण से बालक समाज व संस्कृति के विकास का एक अभिकर्ता करने को भी प्रेरित होता है।

9 **सामाजिक अनुकूलन की योग्यता का विकास हो** - बालक को विद्यालय में अनुकूलन, समायोजन सामंजस्य की शिक्षा से स्वार्थपरता से दूर सामूहिकता की भावना का विकास होता है। सभी को साथ लेकर चलने की धारणा बनने में विद्यालय अहम् जिम्मेदारी निभाता है। यही विद्यालय के सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण का भी पोषक है।

10 **शिक्षा सामाजिक नियंत्रण के रूप में स्थापित हो -** शिक्षा एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था से जुड़ाव बनाए रखे जहाँ औपचारिक नियंत्रण के स्थान पर आपसी सहमति, परम्पराओं, परिवार, विद्यालय और अन्य सामाजिक संस्थाएं एक सामाजिक नियंत्रण का सशक्त माध्यम बनी रहे।

11 **जनतांत्रिक भावना का पोषक -** समानता, स्वतंत्रता, न्याय व भ्रातृत्व जैसे संवैधानिक मूल्यों से विद्यालय का भी गहरा संबंध है क्योंकि इन्हीं से विद्यालय का वातावरण और भावना जनतांत्रिक बनी रहती है। इस प्रकार जनतांत्रिक वातावरण से विद्यालय का सामाजिक, सांस्कृतिक वातावरण भी संबंधितहै।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि विद्यालय में सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण का निर्माण किन आधारों पर संभव है। इसके साथ यह जानना भी आवश्यक है कि विद्यालय की पहचान एक सामाजिक संस्थान के रूप में होनी चाहिए। समाज के सशक्त निर्माण का आधार ही परिवार, पड़ौस व खेल के मैदान के साथ विद्यालय से गहराई से जुड़ा है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 की विद्यालय के सामाजिक संदर्भ को रेखांकित करती है। शिक्षा के क्षेत्र में हो रहे सभी बदलावमें सामाजिक विचार व दृष्टि

को महत्त्वपूर्ण माना जाता है। अत: विद्यालय का वातावरण विद्यार्थियों को उनके सामाजिक सांस्कृतिक अनुभवों को प्रस्तुत करने का एक मंच प्रदान करे ताकि स्वत: ही विद्यालय का सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण उपयुक्त बने। ऐसा भी कहा जाता है कि विद्यालय का परीक्षा परिणाम उपयुक्त हो सकता है। लेकिन सबसे ज्यादा और जरूरी है विद्यालय का सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण। इस प्रकार विद्यालय का प्रभावी सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण विद्यालय को उपलब्धि के साथ साथ सामाजिक प्रतिष्ठा भी प्रदान करता है और बालक के सर्वांगीण विकास पर अपना असर भी डालता है। विद्यालय का यह वातावरण पाठ्यचर्या के साथ भी दिखाई देना चाहिए। कक्षाकक्ष में शिक्षण के साथ साथ सहशैक्षिक गतिविधियों के आयोजन में भी इसका प्रतिबिम्ब दिखाई दे, ऐसे प्रयास होने चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 3

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो

1- व्यक्ति व समाज पूरक व .... हैं।
2- विद्यालय का सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण सभ्यता व संस्कृति का ....व.............. करता है।

9.6 पाठ्यपुस्तक (Text book)

9.6.1 प्रस्तावना

मानव विकास के साथ साथ शिक्षा के आदान प्रदान के तरीकों में भी परिवर्तन आया है। प्राचीन समय पर दृष्टिपात करें तो पाते हैं कि गुरूकुल शिक्षा प्रणाली में संवाद विधि, प्रश्नोत्तर विधि आदि जैसी अनेक शाब्दिक विधियों को प्रयोग शिक्षक किया करते थे। जहाँ ज्ञान का प्रसार मौखिक रूप में होता था। सुनकर, मनन व चिंतन के माध्यम से वह स्थायी हो पाता था। यह समस्त ज्ञान अथवा सूचनाएं स्मरण पर ही आधारित थी। समय धीर धीरे बदला और यह महसूस किया जाने लगा कि ज्ञान जो कि विद्यार्थियों तक प्रसारित किया जा रहा है का लिखित रूप आवश्यक है क्योंकि स्मरण आधारित ज्ञान के कुछ अंशो के समाप्त होने की संभावना बन रही थी। यह लिखित ज्ञान धीरे धीरे पेड़ो की छाल, कपड़े धीरे धीरे कागज पर प्रयोग किया जाने लगा और वर्तमान में पाठ्यपुस्तक इसका सटीक माध्यम बनी है। पाठ्यपुस्तक शिक्षक-शिक्षार्थी दोनों के लिए अपने अपने दृष्टिकोण से सहायक है। एक ओर जहाँ शिक्षक को यह ज्ञान रहता है कि विद्यार्थियों के स्तर के अनुरूप उन्हें कितना ज्ञान दिया जाना है ओर वही दूसरी ओर शिक्षार्थी भी पाठ्यपुस्तक के माध्यम से ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, दोहरान कर सकते हैं एवं जिज्ञासु को शांत कर सकते हैं।

वैसले के अनुसार - पाठ्यपुस्तक वह उपकरण है जिसके माध्यम से किसी निर्दिष्ट उद्देश्य तथा लक्ष्य को सरलता से प्राप्त किया जा सकता है।

लेंग के अनुसार - पाठ्यपुस्तक किसी अध्ययन की प्रमुख शाखा के लिए एक मानक पुस्तक है।

विभिन्न प्रकार की कक्षाओं तथा ज्ञान राशि को अर्जित करने के लिए पुस्तकें बहुत उपयोगी होती है। विद्यार्थी विभिन्न विचारकों, अन्वेषकों, विद्वानों आदि के अनुभवों को तर्कबद्ध रूप में ग्रहण कर लेता है।

पाठ्यपुस्तकें शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षक व छात्र दोनों का पथ प्रदर्शन करती है। पाठ्यपुस्तकें समय की बचत के साथ साथ व्यर्थ की पुनरावृत्ति से बचाती है। पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से शिक्षक व छात्र दोनों को नवीन अनुभवों और सूचनाओं के संकलन में सुविधा रहती है।

9.6.2 पाठ्यपुस्तक एवं अधिगम प्रक्रिया

शिक्षार्थी अधिगम और पाठ्यपुस्तक की अन्तर्निभरता बहुत ही स्पष्ट है। पाठ्यपुस्तक वह प्रभावी साधन है जिसके माध्यम से बालक निर्दिष्ट उद्देश्य व लक्ष्य को सरलता से प्राप्त करता है। निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा रहा है कि विद्यार्थी अपनी अधिगम प्रक्रिया में पाठ्यपुस्तक को कितना उपयोगी मानते हैं -

- पाठ्यपुस्तक एक दिशा का कार्य करती है जिसके माध्यम से अधिगमकर्ता को क्या, क्यों व कैसे सीखता है, की विस्तृत जानकारी मिलती है।
- पाठ्यपुस्तकों में दिये गए रेखाचित्र मानचित्र, आलेख सारणियां और सामान्य चित्र देखकर समझने के लिए तैयार करते हैं। इस प्रकार अधिगम के रूप में पाठ्यपुस्तकें अवलोकन कर विश्लेषक व आलोचनात्मक चिंतन के लिए मार्ग उपलब्ध कराती है।
- यह विद्यार्थियों को अपनी गति के अनुसार सीखने का अवसर प्रदान करती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पिछड़े तथा धीमी गति से सीखने वाले बालकों को अभ्यास करने का मौका देती है। यही अधिगम प्रक्रिया से संबंधको स्पष्ट करती है।
- सीखने में रूचि भी महत्त्वपूर्ण कारक है। नवीन पाठ्यपुस्तकें एक नये कलेवर के साथ प्रस्तुत की गयी है जो कि विषय वस्तु तथा अन्य आधारों पर विद्यार्थियों को रूचिकर बनाकर सीखने के लिए तैयार करती है।
- सीखने के लिए अभिप्रेरणा भी महत्त्वपूर्ण है जो कि मूलत: आंतरिक प्रक्रिया है। अत: पाठ्यपुस्तकें बालकों को अभिप्रेरित करती है और स्वयं सीखने के लिए परिस्थिति उपलब्ध करवाती है।
- पाठ्यपुस्तकें विद्यार्थियों को त्रुटियों में कमी और स्थिरता की ओर भी रास्ता दिखाती है। लगातार दोहरान अभ्यास से सीखने की प्रक्रिया में और सीखने में सरलता आती है।
- पाठ्यपुस्तकें बालकों का मूल्यांकन भी करती है। आओ करके देखे, करके बताओ, आओ जाने जैसे कई कथन विद्यार्थियों को सीखने के लिए तत्परता बताने के साथ साथ स्वमूल्यांकन का अवसर भी प्रदान करती है।
- वैसे पाठ्यपुस्तकें प्रत्येक विषय में सीखने की प्रक्रिया में सहायक होती है विशेष भाषा के विषयों में तो पाठ्यपुस्तकें विभिन्न कौशलों को सीखने की क्षमता विद्यार्थियों में आती है।

इस प्रकार पाठ्यपुस्तकों का अपना औचित्य और यह सीखने की दृष्टि से तो यह बहुत आवश्यक है। पाठ्यचर्या की पूर्ति का एक सशक्त आधार स्तम्भ पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से ही मिलता है जोकि अधिगम और अधिगम प्रक्रिया को भी प्रभावित करती है।

अभ्यास प्रश्न 4

1- पाठ्यपुस्तकें किसी अध्ययन की प्रमुख शाखा के लिए .... है।
2- पाठ्यपुस्तकें .... बचत के साथ व्यर्थ की .... से बचाती है।

9.7 पाठ्यक्रम (Curriculum)

शिक्षण प्रक्रिया की धुरी पाठ्यक्रम है। शिक्षक द्वारा अपनी शिक्षण क्रिया में नये नये प्रयोग व परिस्थितियाँ उत्पन्न कर बालकों को नये अनुभव प्रदान किए जाते हैं। जो बालक की अधिगम प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि शिक्षा एक त्रिआयामी प्रक्रिया है जो ज्ञान देती है, योग्यता का विकास करती है और रूचि, अभिवृत्ति और मूल्य संबंधी भावना जाग्रत करती है। इस पर प्रकाश डालें तो हम पाते है कि इस प्रक्रिया के पहले भाग से कार्य कलापों तथा अनुभवों की पर्याप्त व्यवस्था विद्यार्थी में योग्यता का विकास करती है और तृतीय आयाम विद्यार्थी में उपयोगी कौशलों का विकास कर जीवन से संबंधितबनती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पाठ्यक्रम विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास करने का उपयुक्त माध्यम है।

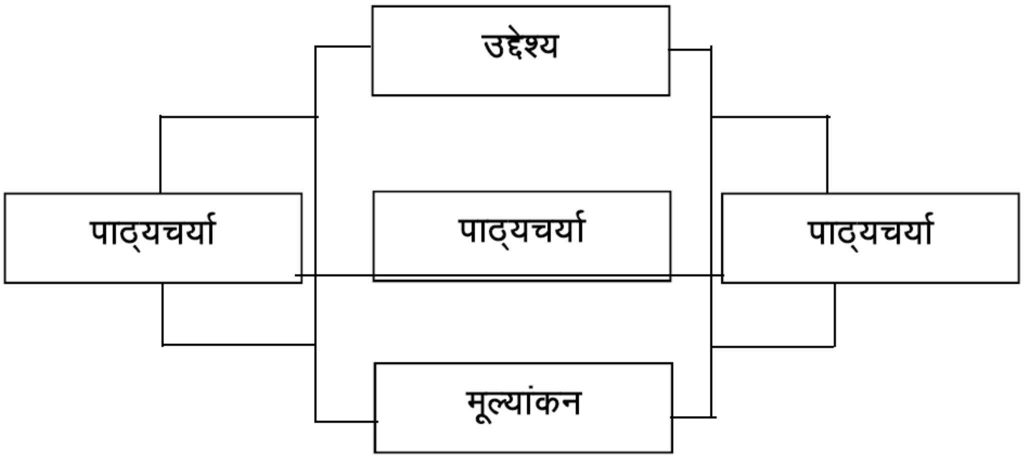

उपर्युक्त रेखाचित्र के माध्यम से हम पाठ्यक्रम को शिक्षक शिक्षार्थी और अधिगम प्रक्रिया की त्रिमुखी रचना कह सकते हैं।

इन सभी अंगों की पारस्परिक क्रिया में शिक्षा निहित है किंतु इसमें पाठ्यचर्या की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका है। इसका एक मात्र कारण यह है कि यदि पाठ्यचर्या नहीं हो तो शिक्षक उचित रूप से शिक्षा नहीं दे सकता और न ही बालक शिक्षा को उचित रूप से ग्रहण कर सकेंगे।

पाठ्यक्रम की आधुनिक अवधारणा विस्तृत एवं व्यापक है इसके अन्तर्गत कक्षा कक्ष के अन्दर साथ ही साथ बाहर प्राप्त किये गए अनुभव शामिल हैं सभी बौद्धिक विषय, विविध कौशल, अनेक कार्य कलाप,

खेलकूद आदि पाठ्यक्रम के क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। पाठ्यक्रम को समझने के लिए तथ्यों के संग्रह के रूप में न लेकर अर्जित ज्ञान को क्रिया अनुभव के रूप में समझना चाहिए। पाठ्यक्रम को ओर अधिक स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित परिभाषाएं दी जा रही हैं।

पाल हिस्ट - ''उन सभी क्रियाओं का प्रारूप जिनके द्वारा छात्र शैक्षिक लक्ष्यों अथवा उद्देश्यों को प्राप्त कर ले, पाठ्यक्रम की संज्ञा दी जाती है।''

शिक्षा आयोग - ''विद्यालय पाठ्यक्रम अधिगम अनुभव की समग्रता है जो विद्यालय द्वारा छात्रों को विद्यालय में या उनके बाहर की बहुमुखी क्रियाओं द्वारा प्रदान की जाती है। ये समस्त क्रियाएं विद्यालय के परिनिरीक्षण में संचालित की जाती है।''

9.7.1 पाठ्यक्रम के उद्देश्य - शिक्षा के माध्यम से बालक का सर्वांगीण विकास होता हैं ाठ्यक्रम के निर्माण का मुख्य उद्देश्य बालक को केन्द्र में रखकर ही निर्मित किया जाता है जो निम्नानुसार स्पष्ट किया जा सकता है -

1- पाठ्यक्रम को निर्माण करने के पीछे मुख्य उद्देश्य बालक के सर्वांगीण विकास हेतु प्रेरणा प्रदान करने की क्षमता का विकास होना चाहिए।
2- पाठ्यक्रम में इस प्रकार की संभावना निर्मित हो कि बालक की चिन्तन, तर्क, निर्णय, मनन आदि शक्तियों का विकास हो।
3- पाठ्यक्रम बालक को ज्ञान तथा खोज की सीमाओं से आगे बढ़कर अन्वेषण क्षमता का विकास करने वाला होना चाहिए।
4- पाठ्यक्रम को विषयों व क्रियाओं के बीच की खाई को पाटकर बालक के सामने ऐसी क्रियाओं को प्रस्तुत करना चाहिए जो विद्यार्थियों के भावी व वर्तमान जीवन के लिए उपयोगी हो।
5- पाठ्यक्रम से बालक में विभिन्न नैतिक मूल्यों व गुणों को विकसित करने की ओर उन्मुखता बननी चाहिए।
6- पाठ्यक्रम विभिन्न आवश्यक ज्ञान द्वारा बालक में ऐसे गतिशील व लचीले मस्तिष्क का निर्माण करे जो प्रत्येक परिस्थिति में साधनपूर्ण व साहस पूर्ण बन कर नवीन मूल्यों का निर्माण कर सके।
7- पाठ्यक्रम को मानव के अनेक अनुभवों को सम्मिलित करके संस्कृति तथा सभ्यता का हस्तांतरण एवं विकास करना चाहिए।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि पाठ्यक्रम बालक के अन्तर्निहित गुणों को बाहर लाने का प्रथम व नैसर्गिक सीढ़ी है।

9.7.2 पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त (Principles of Curriculum Development)

पाठ्यक्रम निर्माण विभिन्न शैक्षिक-सहशैक्षिक संस्थितियों, शिक्षक-शिक्षार्थी क्रियाकलाप और सामाजिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर बनाया जाना चाहिए जो विद्यार्थी के त्रिआयामी उपलब्धियों को पूर्ण कर सके। पाठ्यक्रम के विभिन्न सिद्धान्तों का वर्णन निम्नानुसार किया जा सकता है।

1- बाल केन्द्रियता का सिद्धान्त - पाठ्यक्रम बाल केन्द्रित होना चाहिए। इसका निर्माण करते समय बालकों की रूचियों, आवश्यकताओं, मनोवृत्तियों क्षमताओं, योग्यताओं तथा बुद्धि व आयु का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

2- जीवन से संबंधितहोने का सिद्धान्त - पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय उन विषय वस्तुओं पर अधिक ध्यान देना चाहिए जिसका बालक के जीवन से सीधा संबंधहो ताकि वह उसका प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर सके।

3- रचनात्मक और सृजनात्मक शक्तियों के उपयोग का सिद्धान्त - पाठ्यक्रम में उन क्रियाओं तथा विषयों को स्थान मिलना चाहिए, जो बालक की रचनात्मक तथा सृजनात्मक शक्तियों का विकास कर सके। रेनान्ट के अनुसार -'' जो पाठ्यक्रम वर्तमान तथा भविष्य की आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त है उसमें निश्चित रूप से रचनात्मक विषयों के प्रति निश्चित सुझाव होना चाहिए।

4- उपयोगिता का सिद्धान्त - पाठ्यक्रम के अन्तर्गत उन क्रियाओं तथा विषयों को स्थान मिलना चाहिए जो बालक के वर्तमान तथा भावी जीवन के लिए उपयोगी हो जो क्रियाएं व विषय बालक के वर्तमान व भविष्य के लिए उपयोगी नहीं है उन्हें पाठ्यक्रम में सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए।

5- अग्रदर्शिता का सिद्धान्त - पाठ्यक्रम के अन्तर्गत उन क्रियाओं को स्थान मिलना चाहिए जिनके द्वारा बालक को उसके भावी जीवन में आने वाली परिस्थितियों का ज्ञान हो साथ ही वह उससे अनुकूलन भी कर ले अथवा परिस्थितियों में परिवर्तन की क्षमता विकसित कर ले।

6- अवकाश के लिए प्रशिक्षण का सिद्धान्त - वर्तमान में अवकाश समय का सदुपयोग करना एक बेहद गंभीर समस्या है। इस दृष्टि में पाठ्यक्रम इतना व्यापक होना चाहिए जहाँ एक ओर वह बालक में ऐसी क्षमता भी उत्पन्न करे कि वे अपने अवकाश काल का सदुपयोग करना सीख जाए।

7- सामुदायिक जीवन से संबंधका सिद्धान्त - पाठ्यक्रम में उन सभी स्थानीय आवश्यकताओं तथा समस्याओं को ध्यान में रखते हुए उन सभी सामाजिक प्रथाओं, मान्यताओं तथा विचारों को स्थान मिलना चाहिए। जिनसे बालक सामुदायिक जीवन की मुख्य बातों से परिचित हो।

8- सहसंबंध का सिद्धान्त - पाठ्यक्रम को अलग अलग संबंधहीनटुकड़ों में विभाजित करने से उसका महत्व एवं प्रभाव कम हो जाता है। यदि पाठ्यक्रम के विषयों में सहसंबंधस्थापित करवाया जाए तो बालक ज्ञान के समग्र रूप से परिचित हो पाएगा।

9- विविधता एवं लचीलेपन का सिद्धान्त - प्रत्येक बालक की रूचियां, आवश्यकताएं, क्षमताएं, मनोवृत्तियां एवं दूसरे से भिन्न होता है। इन विभिन्नताओं को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम निर्मित होना चाहिए जिससे अनुकूलन किया जा सके।

10-अनुभवों की पूर्णता का सिद्धान्त - पाठ्यक्रम के अन्तर्गत मानव जाति के अनुभवों की संपूर्णता हो अर्थात् सैद्धान्तिक विषयों के साथ साथ मानव जाति के उन सभी अनुभवों को उचित स्थान मिलना चाहिए जिन्हें बालक विद्यालय में, खेल के मैदान में कक्षा कक्ष में अनुभव करता है |

9.7.3 शिक्षण अधिगम प्रक्रिया एवं पाठ्यचर्या

पाठ्यचर्या के इर्द गिर्द शिक्षण अधिगम प्रक्रिया घूमती रहती है। पाठ्यचर्या के माध्यम से ही विद्यार्थी ज्ञान प्राप्ति करता है उसकी बोध क्षमता सुदृढ़ होती है वह ज्ञान का नवीन परिस्थितियों में उपयोग करना सीखता है साथ ही अपने ज्ञान संबंधीसंदर्भों में संश्लेषण व विश्लेषण कर अपनी मूल्यांकन क्षमता का विकास करता है। शिक्षण के तीनों उद्देश्य जो ब्लूम द्वारा प्रतिपादित किए गए जिसमें संज्ञानात्मक, भावात्मक व मनोगत्यात्मक क्षेत्र है पाठ्यचर्या को ही आधार मानकर पूर्ण होते हैं और शिक्षण अधिगम प्रक्रिया प्रभावी रूप में पूर्ण हो पाती है। शिक्षार्थी विषय को ग्रहण करना, अनुकरण, संगठन आदि सीखकर शिक्षण के उद्देश्यों को पूर्ण करते हैं।

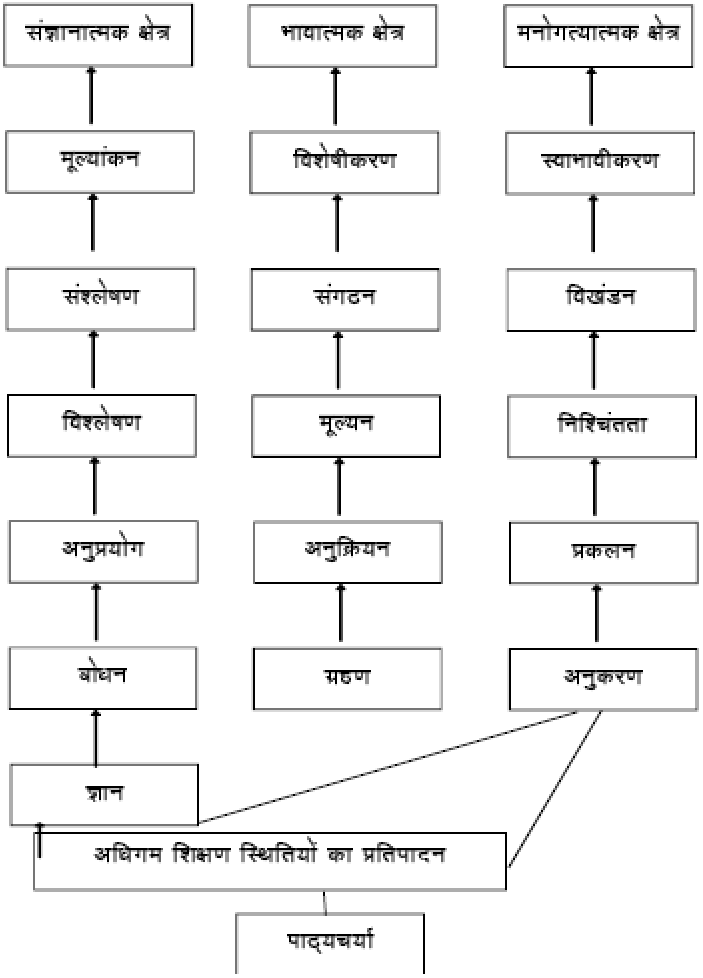

यह वर्णन निम्न रेखाचित्र के माध्यम से स्पष्ट किया जा रहा है:

छात्र संवर्धन/विकास

अभ्यास प्रश्न 5

1- पालहिस्ट के अनुसार पाठ्यक्रम को परिभाषित करें।

2- जिस पाठ्यक्रम से आगे आने वाली परिस्थितियों का ज्ञान संभव है वह किस सिद्धान्त के अन्तर्गत आता है।

9.8 अधिगम प्रक्रिया और तकनीकी हस्तक्षेप (Learning process Technology Interventions)

तकनीकी और अधिगम का गहरा संबंधहै। तकनीकी विकास ने अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित किया है। हालांकि जैसे सिक्के के दो पहलू होते है वैसे ही एक और तकनीकी से शिक्षा व अधिगम प्रक्रिया पर सकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं तो दूसरी और तकनीकी के प्रयोग की सीमाएं भी है। इस प्रकार यहाँ हम अधिगम के दौरान तकनीकी के हस्तक्षेप को समझने का प्रयास करेंगे।

9.8.1 अधिगम प्रक्रिया में तकनीकी हस्तक्षेप के आधार

शिक्षण और अधिगम प्रक्रिया के संबंधों और प्रभावों पर बातचीत से पूर्व यह समझना जरूरी है कि अधिगम प्रक्रिया में तकनीकी हस्तक्षेप क्यों किया जाता है? अथवा इसके क्या आधार है? इसे हम निम्नलिखित विवरण के माध्यम से समझ सकते हैं :-

आधुनिकीकरण के परिणामस्वरूप तकनीकी का विकास तीब्रता से हुआ है और आज के आधुनिकता के दौर में तकनीकी हस्तक्षेप से बचा नही जा सकता या तकनीकी का प्रयोग प्रतिष्ठा से जुड़ा माना जाने लगा है। अत: नवीनता और आधुनिकता तकनीकी हस्तक्षेप का एक महत्त्वपूर्ण आधार है।

हम वैश्वीकरण के साथ आगे बढ़ रहे है, जहाँ विश्व गांव तथा विश्व शहर की अवधारणा के साथ यह समझने का प्रयास किया जा रहा है कि पूर्ण विश्व में संपर्क और संचार सरल हो गया है। विश्व सिमट गया है और एक स्थान व समय से वैश्विक संपर्क संभव है। यह तकनीकी हस्तक्षेप से ही संभव है।

सूचना क्रांति के इस युग में 21वीं सदी में तकनीकी के विकास में और वृद्धि में तीब्रता आयी है। अब तकनीकी को अनदेखा नहीं किया जा सकता है विशेषत: अधिगम प्रक्रिया के संदर्भ में तो और भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि अधिगमकर्ता को सीखने में सरलता व सहजता में तकनीकी का योगदान है।

3G व 4G के इस दौर में तकनीकी का प्रभाव तीव्र हो गया है क्योंकि कही पर भी और किसी भी समय सीखा जा सकता है। अब तो मोबाइल अधिगम, ई-अधिगम का समय आ चुका है। ऐसे में तकनीकी हस्तक्षेप को नजर अंदाज कैसे किया जा सकता है।

शिक्षा संबंधीबदलावों में भी तकनीकी हस्तक्षेप पर केन्द्रित किया जा रहा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 विशेषत: शैक्षिक तकनीकी पर जोर देती है जो कि प्रथम बार महसूस की गयी, वहीं राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में भी नवाचार के रूप में तकनीकी पर विचार प्रस्तुत किये गए हैं। इस प्रकार शैक्षिक व्यवस्था में तकनीकी हस्तक्षेप का स्पष्ट असर दिखायी देता है। जबकि अधिगम प्रक्रिया तो शैक्षिक व्यवस्था और परिवर्तन का ही एक अंग है।

कार्य और सीखने की तीव्रता की दृष्टि से भी तकनीकी हस्तक्षेप अनिवार्य बना गया है। ऐसा महसूस किया जाता है जैसे समय की दीवारें सिमट चुकी है और ऐसे में तकनीकी, शीघ्रता के दूसरे नाम के रूप में जाना

पहचाना जाने लगा। इस प्रकार शीघ्रता व तकनीकी के मजबूत संबंधके चलते तकनीकी हस्तक्षेप का प्रभाव बढ़ता चला जा रहा है।

हमारी स्मार्ट बनने की इच्छा ही तकनीकी हस्तक्षेप को बढ़ावा देती है। स्मार्टफोन से लेकर स्मार्ट कक्षाकक्ष जीवन के साथ अनिवार्यता से जुड़े जा रहे हैं। इस प्रकार तकनीकी प्रयोग, प्रसार तथा हस्तक्षेप का यह भी एक मजबूत आधार है।

9.8.2 तकनीकी हस्तक्षेप का महत्त्व

उपर्युक्त विवरण यह स्पष्ट करता है कि तकनीकी की अनिवार्यता को अनेदखा नहीं किया जा सकता है। अत: तकनीकी के अधिगम पर प्रभाव तथा महत्त्व भी स्पष्ट है। इसे हम निम्नानुसार समझ सकते हैं।

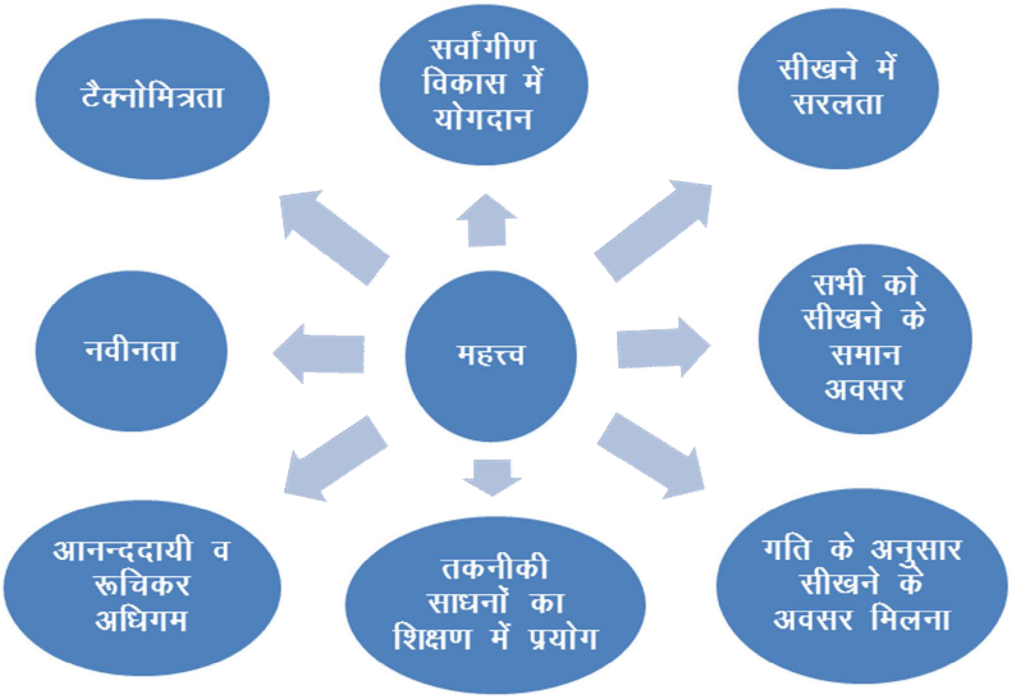

अधिगम प्रक्रिया में तकनीकी हस्तक्षेप निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है। मनोविज्ञान व शिक्षा मनोविज्ञान में दिए गए सीखने के नियमों तत्परता अभ्यास व प्रभाव के नियमों में तकनीकी अपनी अहम् भूमिका अदा करती है। अदा प्रक्रिया प्रदा के आधार पर तकनीकी विद्यार्थी के साथ साथ शिक्षक के अधिगम में भी योगदान देती है और सीखने को सरल तथा सहज बनाती है।

समय के बदलाव के बावजूद हम सीखने पर जातिगत लैंगिक, धार्मिक तथा अनेक प्रकार की असमानताओं के प्रभाव को देखते हैं, वहीं दूसरी ओर तकनीकी बिना किसी भेदभाव या असमानता के सभी को सीखने के समान अवसर उपलब्ध कराती है। यहाँ विभेद, अन्तर भिन्नता की कमी और सामाजिक अभावता को बढ़ावा देने में भी तकनीकी उपयोगिता है। व्यक्तिगत विभिन्नता में यह आवश्यक है कि बालकों को उनकी गति के अनुसार सीखने के अवसर हो ताकि वे सीखने की प्रक्रिया में

सक्रिय सहभागिता बना सके। इसी रूप में अभिक्रमित अधिगम (Programmed Learning) को पहचानते हैं इस प्रकार की प्रक्रिया में व्यक्तिगत विभिन्नता के अनुसार सीखने मे सरलता आती है।

शिक्षण अधिगम में तकनीकी साधनों का प्रयोग और उससे अधिगम के महत्त्व को समझना भी जरूरी है। कम्प्यूटर, इन्टरनेट, प्रोजेक्टर, एलसीडी, इन्टरेक्टिव बोर्ड, विजुअलाइजर आदि अनेक तकनीकी साधनों का प्रयोग अधिगम को प्रभावित करता है।

सीखने में आनंद, रूचि, क्रिया व अनुभव करके सीखना आदि को महत्त्व दिया जाता है। तकनीकी प्रयोग इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है जिससे तकनीकी हस्तक्षेप सीखने पर सकारात्मक प्रभाव डालती है। विभिन्न बदलावों में सीखने को चस्का (Test), आनंद (Joy) तथा रूचि (Intrest) से जोड़कर देखा जाने लगा है और यह तकनीकी की काबिलियत है कि इसमें उसकी महारत है।

नवीनता, नवीन जानकारियों, नवीन व्यूह रचनाओं की समझ तथा उसके प्रयोग में भी तकनीकी अपना प्रभाव स्पष्ट करती है। इसी के साथ शिक्षण व अधिगम में तकनीकी का प्रयोग तकनीकी के साथ मित्रता को भी बढ़ाता है जोकि अधिगमकर्ता को तकनीकी उपयोग के साथ भविष्य में तकनीकी बदलावों के प्रति भी सचेत करता है।

कुल मिलाकर अधिगम प्रक्रिया में तकनीकी का हस्तक्षेप मध्यस्थता, योगदान से अधिगमकर्ता के सर्वांगीण विकास का रास्ता भी मजबूत करता है जिससे अधिगम और समायोजन में भी मदद मिलती है।

9.8.3 तकनीकी हस्तक्षेप की सीमाएं

पूर्व मे भी चर्चा की जा चुकी है कि तकनीकी के महत्त्व व गुण के साथ साथ उसकी सीमाएं भी है जो कि कही न कही किसी न किसी रूप में अधिगम प्रक्रिया को भी प्रभावित करती है। इसे हम निम्नलिखित बिन्दुओं से समझ सकते हैं-

- तकनीकी के हस्तक्षेप से अधिगम में निर्भरता (Dependency) बढ़ती है जिससे अधिगम प्रक्रिया बाधित होती है साथ ही सृजनशीलता और रचनात्मकता भी प्रभावित होती है।
- आज के समय में जहाँ मूल्यों का पतन तथा भावनात्मक संबंधोंमें कमी एक महत्त्वपूर्ण चुनौती है, वही दूसरी ओर तकनीकी इसे बढ़ावा देने में भी अपनी भूमिका निभाती है। शिक्षक तथा विद्यार्थी के मध्य के संबंधोंको प्रभावित करने में तकनीकी हस्तक्षेप एक सीमा के रूप में दिखायी देता है।
- तकनीकी का सदुपयोग निश्चय ही अधिगम में सहयोग देता है लेकिन इसका दुरूपयोग शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकता है।
- तकनीकी के प्रयोग व उपयोग का सभी अधिगमकर्ता लाभ नहीं उठा पाते हैं। कई स्थानों पर शिक्षक व कही विद्यार्थी इसका प्रयोग करने में ज्ञान व कौशलों की कमी के कारण असहज महसूस करते हैं।
- तकनीकी से धन या खर्च का संबंधभी इसकी सीमा की ओर संकेतकरता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि तकनीकी हस्तक्षेप के सकारात्मक प्रभाव के साथ साथ इसकी अपनी सीमाएं भी हैं, अत: दोनों ही दृष्टि से इसे देखना आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न 6

1- किस शिक्षा नीति ने शैक्षिक तकनीकी पर जोर दिया है?
2- सीखने में किस प्रकार की भिन्नताएं हस्तक्षेप करती है?

9.9 सारांश (Conclusion)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि विद्यालय की सम्पन्नता में बाह्य आवरण के साथ साथ वातावरण के अन्य क्षेत्रों की भी भूमिका होती है। किसी भी एक पक्ष, क्षेत्र या वातावरण की कमी या असुविधाजनक स्थिति संपूर्ण विद्यालयी व्यवस्था को प्रभावित करती है। विद्यालय की अधिगम प्रक्रिया की दृष्टि से संसाधनों और वातावरणयुक्त होना अतिआवश्यक है। पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों की शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में तकनीकी का असर भी दिखाई देता रहा है। इस प्रकार उपर्युक्त आधार पर समझा जा सकता है कि विद्यालय की प्रथक ओर स्पष्ट छवि के निर्माण में सभी पक्ष सहयोगी है। सर्वांगीण विकास में विद्यालय की भूमिका के लिए विद्यालय का वातावरण भी सर्वांगीण होना चाहिए तभी समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में विद्यालय अपनी पहचान को प्रभावी बना पाएगा।

9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1- संग्राहालय 2 ( ) सही

अभ्यास प्रश्न 2

1- मुक्त पर्यावरण 2. पितृवत पर्यावरण

अभ्यास प्रश्न 3

1- अन्तनिर्भर 2. संरक्षण, संवर्धन

अभ्यास प्रश्न 4

1- मानक पुस्तक 2. समय, पुनरावृत्ति

अभ्यास प्रश्न 5

1- उन सभी क्रियाओं का प्रारूप जिनके द्वारा छात्र शैक्षिक लक्ष्यों और उद्देश्यों को प्राप्त कर ले, पाठ्यक्रम, की संज्ञा दी जाती है।
2- अग्रदर्शिता का सिद्धान्त

अभ्यास प्रश्न 6

1- 1986 2. व्यक्तिगत

9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1- विद्यालय की भौतिक सुविधाओं की विवेचना कीजिए।
2- विद्यालय का सामाजिक, सांस्कृतिक वातावरण क्यों आवश्यक है? समझाइए।
3- विद्यालय संगठन वातवरण का अधिगम प्रक्रिया से संबंधस्पष्ट कीजिए।
4- पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तक की अधिगम की दृष्टि से उपयोगिता बताइये।
5- तकनीकी हस्तक्षेप से अधिगम प्रक्रिया कैसे प्रभावित होती है। समझाइये।

9.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- बघेला, एच.एम. (2009) ''शैक्षिक प्रबंध एवं विद्यालय संगठन'' राजस्थान प्रकाशन, जयपुर।
- सुखिया, एस.पी. (1982) ''एजूेशन एडमिनिस्ट्रेशन'' विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
- वर्मा, जे.पी. (2002) ''विद्यालय प्रबन्धन'', आर.लाल. बुक डिपो, मेरठ
- सुधा, जी.सी., श्रीमती विजय व्यास, वि.एस. (2009) ''व्यावसायिक प्रबंधन के सिद्धान्त'' रमेश बुक डिपो, जयपुर।
- शर्मा, आर.ए. (1995) ''विद्यालय संगठन एवं शिक्षा प्रशासन'', आर.लाल बुक डिपो, मेरठ।
- स्हेला, एस.पी. (2009)ए ''विकासोन्मुख भारतीय समाज में शिक्षक एवं शिक्षाए'' विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
- सिन्धु, आई. एस. (2008) ''एजूकेशनल एडमिनिि‍स्ट्रेशन एण्ड मेनेजमेंट'' इन्टरनेशनल पब्लिकेशिंग हाऊस, मेरठ।
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005।

इकाई - 10

शिक्षण अधिगम की विधियाँ एवं अधिगम वातावरण

Methods of teaching Learning and Learning Environment

इकाई रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 शिक्षण अधिगम की विधियाँ

10.4 लघु समूह शिक्षण अधिगम

10.4.1 लघु समूह शिक्षण अधिगम के मुख्य पक्ष

10.4.2 लघु समूह अन्तः क्रियाऐं-

10.4.3 लघु समूह शिक्षण अधिगम की योजना

10.4.4 लघु समूह शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की व्याख्या

10.4.5 लघु समूह शिक्षण में शिक्षक की भूमिका

10.5 वृहद् समूह शिक्षण अधिगम

10.5.1 वृहद् समूह शिक्षण अधिगम की योजना

10.5.2 वृहद् समूह शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की व्याख्या

10.6 व्यक्तिगत शिक्षण अधिगम

10.6.1 व्यक्तिगत शिक्षण अधिगम के मुख्य पक्ष

10.6.2 व्यक्तिगत शिक्षण अधिगम की योजना

10.6.3 व्यक्तिगत शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की व्याख्या

10.7 सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम

10.7.1 सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम के मुख्य तत्व

10.7.2 सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम की योजना

10.7.2 सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की व्याख्या

10.8 ज्ञान के हस्तांतरण एवं ज्ञान के निर्माण में अन्तर

10.9 सारांश

10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.11 निबंधात्मक प्रश्न

10.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

10.1 प्रस्तावना

प्रभावी अधिगम प्रक्रिया के लिये वातावरण का सुनियोजित, सुव्यवस्थित, सहयोगपूर्ण एवं सौहार्दपूर्ण होना परम आवश्यक है। प्रस्तुत इकाई विभिन्न शिक्षण शैलियों के सन्दर्भ में अधिगम वातावरण के पक्ष पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेगी। आज का युग अधिगम में ज्ञान की रचना पर बल देता है। ज्ञान निर्माण किस प्रकार से ज्ञान के प्रसारण एवं ग्रहणता से अलग है?, प्रस्तुत इकाई द्वारा इस विषय पर भी विस्तार से चर्चा की जायेगी।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई को सम्पन्न करने तथा अध्ययन करने के पश्चात आप को इस योग्य होना चाहिये कि आप -

- शिक्षण विधियों से परिचित हो सकें।
- लघु समूह शिक्षण अधिगम के मुख्य पक्ष को समझ सकें।
- व्यक्तिगत शिक्षण अधिगम की व्याख्या कर सकें।
- वृहद शिक्षण अधिगम वातावरण की व्याख्या कर सकें।
- सहयोगपूर्ण शिक्षण की अधिगम में भूमिका के बारे में जान सकें।
- ज्ञान के हस्तांतरण एवं ज्ञान के निर्माण में अन्तर कर सकें।

10.3 शिक्षण अधिगम की विधियाँ

शिक्षण अधिगम की विधियों से अभिप्राय उस विवरण से है जिसके द्वारा शिक्षक छात्रों को कैसे सिखाना है? के बारे में योजना बनाता है। यह विवरण शिक्षक को शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के दौरान यह बताता है कि उसे क्या करना है।

प्रमुखतः शिक्षण अधिगम विधियों में निम्न की योजना सम्मिलित रहती है -

1. पूर्व नियोजित शिक्षण अधिगम गतिविधियों का वर्णन।
2. उन तरीकों का वर्णन जिनके द्वारा छात्रों को विषय वस्तु में व्यस्त रखना है।
3. उन प्रविधियों का वर्णन जिनके द्वारा शिक्षक छात्रों की सहायता करेगा। जैसे - प्रोत्साहन देना, प्रशंसा करना, पृष्ठपोषण देना आदि।

4. शिक्षण की विधियों का वर्णन यथा - व्याख्यान विधि, प्रयोगशाला कार्य विधि, सचनात्मक विधि आदि।
5. छात्र किस प्रकार सीखते हैं, इसका ज्ञान।
6. अधिगम को सुगम व रोचक बनाने के तरीकों का वर्णन।
7. शिक्षण अधिगम के लिये कोई एक विधि सर्वोत्तम अथवा सर्वमान्य नहीं है।

यद्यपि प्रभावी अधिगम के लिये कुछ शिक्षण विधियों एवं अधिगम सिद्धान्तों को मिलाकर शिक्षक अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये प्रयोग करते रहते हैं। एक प्रभावी और चिन्तनशील शिक्षक होने के लिये यह आवश्यक है कि अपनी शिक्षण अधिगम विधि की योजना के प्रत्येक पहलू पर गहनता से विचार किया जाये। तभी वह बालकों के अधिगम को सुगम बना सकता है।

प्रभावी शिक्षण अधिगम विधि के चुनाव के लिये शिक्षक को छात्रों की आवश्यकताओं, बौद्धिक स्तर, रूचि आदि का भी ध्यान रखना चाहिये। अधिगम के सुगमकर्ता के रूप में कार्य करते हुए एक शिक्षक को निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिये -

1. एक प्रभावी अधिगम वातावरण का विकास जिसमें छात्र स्वयं को भयमुक्त व सुरक्षित अनुभव करते हुए खुद को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त कर सकें।
2. पाठयक्रम के विषय एवं विधि सम्बन्धी योजना तैयार करने में छात्रों को सम्मिलित किया जाना चाहिये।
3. छात्रों को अपनी आवश्यकताओं की पहचान करने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये तकि वे अधिगम के लिये आन्तरिक रूप से प्रेरित हो सकें।
4. छात्रों को स्वयं के लिये अधिगम उद्देश्यों का निर्धारण करने के लिये प्रोत्साहन देना चाहिये ताकि वे अपने अधिगम को नियंत्रित कर सकें।
5. अपने अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये छात्रों को स्वयं संसाधन जुटाने व रणनीतियों को तैयार करने के लिये प्रेरित करना चाहिये।
6. छात्रों को अपनी अधिगम योजना के अनुसार कार्य करने की स्वतंत्रता देनी चाहिये।
7. छात्रों को उनके स्वयं के मूल्यांकन में भी सम्मिलित किया जाना चाहिये।

शिक्षण अधिगम विधियों की योजना वांछित अधिगम परिणामों पर निर्भर होती है। जैसे परिणामों की कल्पना शिक्षक करेगा, उसी के अनुरूप ही शिक्षण विधियों का चुनाव उसे करना होगा जैसे अगर शिक्षक बालकों को कुछ तथ्यों अथवा परिभाषाओं से अवगत कराना चाहता है तो वह व्याख्यान एवं स्पष्टीकरण विधियों द्वारा अपने उद्देश्यों की प्राप्ति कर सकता है। वहीं अगर वह कुछ अन्य परिणामों की प्राप्ति चाहता है तो उसे उन्हीं के अनुरूप विधियों का चयन करना होगा।

अभ्यास प्रश्न 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये |

1. शिक्षण अधिगम विधियों की योजना वांछित _____________पर निर्भर होती है।
2. शिक्षक को छात्र किस प्रकार ____________ हैं इसका ज्ञान होना चाहिए।

3. शिक्षक द्वारा शिक्षण की स्पष्ट ____________ तैयार की जानी चाहिए।

10.4 लघु समूह शिक्षण अधिगम

लघु समूह शिक्षण अधिगम से तात्पर्य छात्रों व शिक्षक की उस अन्तःक्रिया से है जिसमें कक्षा में छात्रों की संख्या सीमित होती है। छात्रों की इस संख्या में 02 से लेकर 25 तक छात्र शामिल हो सकते हैं, जो कि एक अथवा एक से अधिक बार किसी विषय विशिष्ट पर चर्चा के लिये एकजुट होते हैं।

लघु समूह शिक्षण अधिगम को समस्या आधारित अधिगम की संज्ञा भी दी जाती है। जिसमें अधिगम लघु छात्र समूह में एवं नियंत्रित परिस्थितियों में कराया जाता है। लघु समूह शिक्षण से तत्पर्य छात्र केन्द्रित शिक्षण से है, जिसमें छात्र किसी विशिष्ट विषय पर स्वतंत्र रूप से चर्चा करते हों। सुनियोजित लघु समूह शिक्षण अधिगम के स्पष्ट लाभ छात्रों के अधिगम पर परिलक्षित होते हैं। वह इस प्रकार के शिक्षण से बेहतर प्रत्यास्मरण, चिन्तन व प्रत्ययों का संश्लेषण कर सकते हैं।

10.4.1 लघु समूह शिक्षण अधिगम के मुख्य पक्ष

लघु समूह शिक्षण अधिगम के मुख्य पक्ष निम्नलिखित हैं -

1. **भौतिक पक्ष** - इस पक्ष में शिक्षण अधिगम के लिये आवश्यक सभी संसाधन सम्मिलित होते हैं जैसे कक्षा कक्ष, फर्नीचर, समूह में सदस्यों की संख्या, कक्षा कक्ष का आकार एवं भौतिक वातावरण आदि।
2. **संज्ञानात्मक पक्ष** - इस पक्ष में शिक्षक और छात्रों का ज्ञान, चिन्तन,मानसिक प्रक्रियाऐं, दक्षताऐं आदि सम्मिलित होती हैं।
3. **अन्तःवैयक्तिक समूह गतिशीलता** - इस पक्ष के अन्तर्गत समूह के सदस्यों के बीच की अन्तःक्रिया, समूह चक्र, शासन एवं नियंत्रण आदि शामिल होते हैं।
4. **अनुभवजन्य प्रक्रियाऐं** - इस पक्ष में विषय के अध्ययन में छात्रों को कैसे अनुभव प्राप्त हुऐ? उन्हें विषय निर्माण के सम्बन्ध में क्या अनुभव हुऐ? आदि सम्मिलित होते हैं।

10.4.2 लघु समूह अन्तः क्रियाऐं

लघु समूह अन्तः क्रियाओं को निम्न रूप में विभाजित किया जा सकता है -

1. **विषय वस्तु** - लघु समूह किस विषय वस्तु को केन्द्र में रखकर अन्तःक्रिया करेगा, इसकी योजना पूर्व में ही शिक्षक व छात्रों द्वारा तैयार की जानी चाहिये। अन्तःक्रिया उसी पूर्व निधारित विषय वस्तु पर केन्द्रित की जायेगी।
2. **कार्य** - विषय वस्तु को समझने के लिये जो कार्य सामूहिक या व्यक्तिगत रूप से किये जाने है, उन कार्यों से सम्बन्धित अन्तःक्रियाऐं।
3. **प्रक्रियाऐं** - समूह के सदस्यों में शिक्षण अधिगम गतिविधियों के दौरान घटित होने वाले अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध।

10.4.3 लघु समूह शिक्षण अधिगम की योजना

लघु समूह शिक्षण अधिगम को प्रभावी बनाने के लिये उसकी एक पूर्व योजना बनाना आवश्यक है। शिक्षण अधिगम की योजना शिक्षक व छात्र दोनों के लिये चिन्तन एवं मूल्यांकन के लिये एक सन्दर्भ और संरचना की रूपरेखा प्रदान करती है। लघु समूह शिक्षण समय और संसाधन की दृष्टि से काफी खर्चीला है, अतः यह आवश्यक है कि अधिगम की सीमा को उच्चतम स्तर तक पहुंचाया जाये और इसके लिये पूर्व योजना और गतिविधियों के उपयुक्त संगठन की आवश्यकता है। इस चरण में निम्न बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है -

1. **उद्देश्यों का स्पष्टीकरण** - सर्व प्रथम शिक्षक को लघु समूह शिक्षण अधिगम के उद्देश्यों को स्पष्ट किया जाना चाहिये। स्पष्ट उद्देश्य समूह में घटित होने वाली प्रक्रियाओं को एक निश्चित दिशा प्रदान करने में सहायक होते हैं। उद्देश्य अधिगम के लिये गतिविधियों व कार्यों के चुनाव में तथा अधिगम के मूल्यांकन में भी सहयता प्रदान करते हैं। इन उद्देश्यों को समूह के सदस्यों को भी बताया जाना चाहिये ताकि वे यह समझ सकें कि भावी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया उनसे क्या आकांक्षाऐं रखती है। यह जानने पर ही छात्र उन्हीं के अनुरूप अन्तःक्रियाऐं कर सकते हैं।

उद्देश्यों के स्पष्टीकरण हेतु एक शिक्षक स्वयं से निम्न प्रश्न कर सकता है -

   1. मैं किसको पढ़ाऊंगा? व अधिगमकर्ताओं की संख्या व उनकी शिक्षा के स्तर को ध्यान में रखकर उद्देश्यों का निर्माण किया जायेगा।
   2. अधिगमकर्ता किसी विषय के बारे में क्या जानना चाहते हैं और शिक्षण के फलस्वरूप वह क्या कर पाने में सक्षम हो जायेंगे।
   3. मुझे क्या पढ़ाना है? इसमें विषय के प्रकरण, वांछित अधिगम के प्रकार (ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं कौशलात्मक) आदि सम्मिलित होंगे।

2. **अधिगम गतिविधियों का चुनाव** - अधिगम गतिविधियों का चुनाव भी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये उन्हीं के अनुरूप ही किया जाता है। लघु समूह शिक्षण में कौन सी गतिविधियाँ कक्षा में सम्पन्न करानी है व उनसे सम्बन्धित दिशा निर्देशों की एक स्पष्ट योजना तैयार की जानी चाहिये। गतिविधियों के संचालन हेतु आवश्यक सामग्री, प्रेरक, दृश्य - श्रव्य साधन आदि का भी ध्यान योजना बनाते समय रखना चाहिये। गतिविधियाँ ऐसी होनी चाहिये जो छात्रों को स्वनिर्देशित अधिगम के लिये प्रेरित करें। इसके अतिरिक्त गतिविधियों के चुनाव के समय शिक्षक को शिक्षण अधिगम विधियों का चुनाव, समय की उपलब्धता, शिक्षण सत्र की स्थिति, पूर्वज्ञान, छात्रों की रूचि आदि बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है।
3. **मूल्यांकनएवं पृष्ठपोषण** - अधिगम के उद्देश्यों की प्राप्ति की सीमा को ज्ञात करने के लिये मूल्यांकन की विभिन्न विधियों की योजना बनानी चाहिये। मूल्यांकन के फलस्वरूप शिक्षक और छात्रों को अपने शिक्षण व अधिगम के स्तर के सम्बन्ध में पृष्ठपोषण प्राप्त होता है जिसको आधार बनाकर वह आगे की अन्तःक्रिया करते हैं।

10.4.4 लघु समूह शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की व्याख्या

लघु समूह शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का उद्देश्य समूह में किसी विषय पर चर्चा को प्रोत्साहन देना है और यह शिक्षण की विविधता को ध्यान में रखकर कराया जाये तो अधिगम और भी अधिक प्रभावी होता है। लघु समूह शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की व्याख्या निम्न बिन्दुओं द्वारा की जा सकती है -

1. शिक्षण अधिगम के लिये स्पष्ट व संगठित योजना तैयार करना।
2. शिक्षण अधिगम के लिये वातावरण को उपयुक्त बनाना ताकि सभी सदस्य सहज अनुभव कर सकें।
3. समूह के सदस्यों को प्रकरण व उससे सम्बन्धित उद्देश्यों के बारे में जानकारी देना।
4. गतिविधियों सम्बन्धी आवश्यक निर्देश देना, छात्रों को व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से गतिविधियों का आवंटन करना, समूह के नेतृत्वकर्ता का चुनाव करना व उन्हें उपयुक्त जिम्मेदारियों को हस्तांतरित करना।
5. छात्रों द्वारा गतिविधियों के संचालन का अवलोकन करना, आवश्यकता पड़ने पर उपयुक्त सहायता प्रदान करना तथा समय सीमा का ध्यान रखना।
6. गतिविधियों के समूह में अदला - बदली करवाना।
7. छात्रों द्वारा प्राप्त निष्कर्षों पर सामूहिक चर्चा करवाना तथा इसमें सभी छात्रों की प्रतिभागिता को सुनिश्चित करना।
8. प्राप्त निष्कर्षों को छात्रों की दृश्य व श्रव्य सहायक सामग्री के सहायता से विषय व प्रकरण को जोड़ते हुए प्रत्यय निर्माण को प्रोत्साहन देना।
9. विभिन्न विधियों द्वारा मूल्यांकन कर छात्रों को अधिगम सम्बन्धी पृष्ठपोषण देना व पिछड़े छात्रों के निदान की व्यवस्था करना।

10.4.5 लघु समूह शिक्षण में शिक्षक की भूमिका

लघु समूह शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में एक शिक्षक को एक साथ निम्न क्रियाओं का प्रबंधन करना होता है -

1. समूह
2. गतिविधियाँ
3. अधिगम

इस प्रकार के शिक्षण अधिगम वातावरण में शिक्षक अधिगम के सुगमकर्ता की तरह कार्य करता है। जो समूह चर्चा को प्रारंभ करता है, विचारजन्य प्रश्न पूछता है, प्रक्रिया और कार्यों का निर्देशन करता है और छात्रों की सक्रिय सहभागिता को सुनिश्चित करता है। लघु समूह, अधिगम प्रक्रिया में कई तरह से व्यवहार करते हैं। जिनके अलग - अलग उद्देश्य होते हैं। इसलिये एक शिक्षक को कई प्रकार की भूमिकायें अपनानी पड़ती हैं।

लघु समूह शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में एक शिक्षक की कुछ प्रमुख भूमिकाओं को निम्न बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है -

1. एक निर्देशक के रूप में छात्रों को निर्देश देने की भूमिका।
2. एक परामर्शदाता के रूप में छात्रों को समस्या समाधान एवं परामर्श देने की भूमिका।
3. एक मित्र के रूप में छात्रों से मिलकर उन्हें सहज बनाने की भूमिका।
4. एक पक्षपात रहित व्यक्ति के रूप में समूह के सदस्यों को स्वतंत्र रूप से कार्य करने के लिये प्रोत्साहन करना।
5. एक प्रबंधक के रूप में सामूहिक गतिशीलता का प्रबंध करने की भूमिका।

अभ्यास प्रश्न 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये |

1. लघु समूह शिक्षण अधिगम तात्पर्य छात्रों व शिक्षक की उस अन्तःक्रिया से है जिसमें कक्षा में छात्रों की संख्या ____________ होती है।
2. लघु समूह शिक्षण में छात्र किसी विशिष्ट विषय पर ____________रूप से चर्चा करते है।
3. लघु समूह शिक्षण अधिगम वातावरण में शिक्षक अधिगम के ____________ की तरह कार्य करता है

10.5 वृहद् समूह शिक्षण अधिगम

वृहद् समूह शिक्षण अधिगम शिक्षण की प्रचीन विधियों में से एक है। वृहद् समूह शिक्षण अधिगम वह प्रक्रिया है जिसमें एक शिक्षक 30 या उससे अधिक अधिगमकर्ताओं के साथ एक समय में किसी विषय विशेष पर अन्तःक्रिया करता है। व्याख्यान विधि वृहद् समूह शिक्षण की सबसे प्रचलित विधि है, जिसके द्वारा शिक्षक ज्ञान का हस्तांतरण करता है। हालांकि यह विधि कौशल विकास, अभिवृत्ति परिवर्तन एवं उच्च स्तरीय चिंतन विकास के लिये अधिक प्रभावी नहीं मानी जाती है। वृहद् समूह शिक्षण अधिगम में छात्र सूचनाऐं ग्रहण तो करता है पर उस पर चिंतन करने के अधिक अवसर उसे प्राप्त नहीं हो पाते हैं।

वृहद् समूह शिक्षण अधिगम को अधिक प्रभावी बनाने के लिये निम्न चार तत्वों पर ध्यान देना आवश्यक है -

1. **प्रेरणात्मक सन्दर्भ** - वृहद् समूह शिक्षण अधिगम वातावरण में आन्तरिक अभिप्रेरणा का विकास किया जाना चाहिये। छात्रों को अधिगम के उद्देश्य एवं अधिगम दोनों सार्थक प्रतीत होने चाहिये व उनके जीवन से सम्बन्धित होने चाहिये। तभी छात्र स्वयं को विषय एवं प्रकरण से आन्तरिक रूप से जोड़ पाते हैं।
2. **अधिगम क्रियाऐं** - शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में छात्र सक्रिय रहना पसंद करते हैं। इसलिये अधिगम क्रियाऐं वृहद् समूह को ध्यान में रखकर नियोजित की जानी चाहिये ताकि अधिगम के दौरान छात्र अधिक से अधिक सक्रिय होकर कार्य कर सकें।
3. **दूसरों के साथ अन्तःक्रियाऐं** - कक्षा में वृहद् समूह को शिक्षण कराते समय सामूहिक चर्चाएँ भी करानी चाहिये, क्योंकि इससे छात्र सक्रिय रहते हैं व चर्चा में उन्हें

अपने चिन्तन की व्याख्या करने के अवसर प्राप्त होते हैं। जिससे उनके चिन्तन में भी सुधार होता है।

4. **सुसंगठित ज्ञान का आधार** - नये अधिगम के प्रारंभ में हमेशा पूर्वज्ञान एवं अनुभव को आधार बनाना चाहिये। जो भी ज्ञान शिक्षक द्वारा समूह को दिया जाना है उसे सुसंगठित कर शिक्षण अधिगम की योजना बनानी चाहिये।

10.5.1 वृहद् समूह शिक्षण अधिगम की योजना

किसी भी कार्य को सुनियोजित रूप में सम्पादित करने से उसकी उत्पादकता एवं प्रभावशीलता में वृद्धि होती है। वृहद् समूह शिक्षण अधिगम की योजना को निम्न चरणों के अनुसार तैयार किया जा सकता है -

1. **पाठ योजना तैयार करना** - पाठ योजना तैयार करने के लिये सर्वप्रथम विषय वस्तु का विश्लेषण करके आवश्यक प्रत्यय, तथ्यों एवं सिद्धान्तों को पहचान कर उनसे सम्बन्धित उद्देश्यों को तैयार किया जाना चाहिये। छात्रों को कक्षा में सक्रिय रखने के लिये प्रत्येक आवश्यक बिन्दु से सम्बन्धित सामग्री देने की व्यवस्था की जानी चाहिये। प्रत्ययों से सम्बन्धित मूर्त उदाहरणों की योजना बनाई जानी चाहिये।
2. **शिक्षण माध्यम का चयन** - पाठ की योजना तैयार करने के पश्चात शिक्षण के माध्यम का चयन आवश्यक बिन्दु होता है। शिक्षण के माध्यम से तात्पर्य है कि किस प्रकार कक्षा में शिक्षण अधिगम करवाया जायेगा? उसके लिये प्रोजेक्टर, स्लाइड, मल्टीमीडिया आदि किस चीज का चयन किया जायेगा? शिक्षण माध्यम का चयन, शिक्षण स्थल पर माध्यमों की उपलब्धता, शिक्षक की उक्त माध्यम के प्रयोग में दक्षता, उक्त माध्यम की विषय वस्तु के लिये उपयुक्तता एवं छात्रों की रूचि आदि को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिये।
3. **मूल्यांकन**- शिक्षण का मूल्यांकन किस प्रकार किया जायेगा? इसकी भी योजना उद्देश्यों के अनुरूप ही की जानी चाहिये। मूल्यांकन के लिये छात्रों से प्रत्यक्ष प्रश्न पूछना, छात्रों के नोटस् देखना, उनसे प्रतिपुष्टि लेना, लघु परीक्षा लेना, प्रश्नावली भरवाना आदि विधियाँ अपनायी जा सकती हैं।

10.5.2 वृहद् समूह शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की व्याख्या

वृहद् समूह शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को निम्न रूप में वर्णित किया जा सकता है -

1. शिक्षण अधिगम की शुरूआत में पूर्व प्रकरण का सारांश देकर उनके पूर्व ज्ञान का प्रत्यास्मरण कराते हुए आगामी उद्देश्यों का वर्णन किया जाता है।
2. प्रकरण में मुख्य बिन्दुओं का वर्णन उदाहरणों, दृश्य श्रव्य माध्यमों आदि से कराया जाता है। उदहरण शिक्षक व छात्र दोनों द्वारा दिये जा सकते हैं।
3. शिक्षण बिन्दु से सम्बन्धित महत्वपूर्ण बातों को श्यापट्ट पर लिखा जाता है और उनसे सम्बंधित सामग्री भी छात्रों के पास होती है। जिसे देखकर वह प्रत्ययों का निर्माण कर सकते हैं।
4. इसी प्रकार शिक्षण में शामिल सभी बिन्दुओं को पढ़ाया जाता है तथा बीच - बीच में प्रश्न/उत्तर एवं अन्य गतिविधियों यथा मस्तिष्क उद्वेलन एवं चर्चा आदि के द्वारा छात्रों को सक्रिय रखा जाता है।

5. मुख्य बिन्दुओं को बार - बार दोहराया जाता है तथा प्रकरण अथवा विषय वस्तु का सारांश दिया जाता है।
6. अंत में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का मूल्यांकन कर पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति का आकलन किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न 3

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये |

1. व्याख्यान विधि वृहद् समूह शिक्षण की सबसे प्रचलित विधि है, जिसके द्वारा शिक्षक ज्ञान का __________ करता है।
2. नये अधिगम के प्रारंभ में हमेशा _____________ को आधार बनाना चाहिये।
3. शिक्षण अधिगम की शुरूआत में पूर्व प्रकरण का ________________ देकर उनके पूर्व ज्ञान का प्रत्यास्मरण कराते हुए आगामी उद्देश्यों का वर्णन किया जाता है।

10.6 व्यक्तिगत शिक्षण अधिगम

व्यक्तिगत शिक्षण अधिगम छात्र और उसकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर कराया जाता है। व्यक्तिगत शिक्षण अधिगम में सभी छात्रों की प्रगति, उनकी छुपी हुई क्षमताओं आदि का विकास किया जाता है। इस प्रकार की अधिगम परिस्थिति में प्रत्येक छात्र को उसके स्तर के अनुकूल कार्य दिये जाते हैं क्योंकि इस विधि की मान्यता है कि प्रत्येक छात्र प्रत्येक दूसरे छात्र से भिन्न होता है व उसकी आवश्यकताऐं भी अलग होती हैं। इसलिये व्यक्तिगत शिक्षण अधिगम में छात्रों की आवश्यकताओं व क्षमताओं के अनुरूप विषय वस्तु का संगठन व नियोजन किया जाता है।

10.6.1 व्यक्तिगत शिक्षण अधिगम के मुख्य पक्ष

व्यक्तिगत शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के कुछ प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं -

1. **अधिगम के निर्धारकों की योजना** - व्यक्तिगत शिक्षण अधिगम में सर्वप्रथम अधिगम के निर्धारकों का ज्ञान होना आवश्यक है। व्यक्तिगत शिक्षण अधिगम में शिक्षक को व्यक्तिगत लक्ष्य निर्धारित करने होते हैं, अधिगमकर्ताओं को प्रभावी प्रतिपुष्टि दी जाती है तथा तथ्यों का प्रभावी अधिगम हेतु प्रयोग करना होता है। अधिगम के निर्धारकों की सहायता से प्रत्येक छात्र की अधिगम आवश्यकताओं का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।
2. **प्रभावी शिक्षण अधिगम** - इसके अन्तर्गत अधिगम में सम्मिलित पाठ, उनकी योजना, सलाह देने की प्रविधियाँ, तकनीकि का प्रयोग आदि पर ध्यान देकर प्रत्येक छात्र को सक्रिय रखते हुए उसकी दक्षता एवं आत्मविश्वास का विकास किया जाता है।
3. **पाठ्यक्रम पात्रता का चुनाव** - छात्रों की आवश्कताओं एवं क्षमताओं के अनुकूल छात्र के पाठ्यक्रम को विकसित किया जाता है, जिसका स्वरूप लचीला होता है। पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिये जो विषय वस्तु के विस्तार का ध्यान रखता हो व साथ ही साथ बालक के लिये सार्थक हो तथा अधिगम के लिये लचीलापन लिये हुए हो।

10.6.2 व्यक्तिगत शिक्षण अधिगम की योजना

व्यक्तिगत शिक्षण अधिगम के लिये निम्नलिखित रूप से योजना तैयार की जा सकती है -

1. **छात्रों की आवश्यकताओं का आकलन करना** - इस चरण में शिक्षक कक्षा में अपनी और छात्रों की अन्तःक्रियाओं के फलस्वरूप उनकी योग्यताओं, कौशल, अधिगम वरीयता एवं अधिगम शैली आदि के बारे में आंकलन करता है।
2. **छात्रों के अनुरूप पाठ्यक्रम में होने वाले समायोजनों का निर्धारण करना** - पाठ्यक्रम का निर्धारण औसत बालकों को ध्यान में रखकर किया जाता है परन्तु कक्षा में बालकों में विभिन्नता होती है, और उसके अनुरूप पाठ्यक्रम में संशोधन किये जाते हैं। जैसे तीव्र बुद्धि वाले बालकों के पाठ्यक्रम को विस्तृत किया जाता है तथा कम बुद्धि वाले अथवा पिछड़े बालकों के लिये पाठ्यक्रम को सीमित किया जाता है।
3. **व्यक्तिगत पाठ योजना तैयार करना** - बालक की आवश्यकताओं और अधिगम शैलियों को ध्यान में रखते हुए बालक के लिये पाठ योजना तैयार की जाती है। जिसमें उद्देश्य, पूर्वज्ञान, अधिगम में प्रयुक्त की जाने वाली गतिविधियाँ, शिक्षण सहायक सामग्री आदि की योजना बनाई जाती है।
4. **मूल्यांकन**- छात्रों के अधिगम के मूल्यांकन के लिये भी स्पष्ट योजना तैयार की जाती है। बालकों के अनुरूप ही मूल्यांकन विधियों का भी चुनाव किया जाता है।

10.6.3 व्यक्तिगत शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की व्याख्या

व्यक्तिगत शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया को निम्न रूप से वर्णित किया जा सकता है -

1. सर्वप्रथम छात्र शिक्षक के मध्य हुई अन्तःक्रिया जैसे - साक्षात्कार एवं चर्चा आदि से अधिगमकर्ता को उसकी क्षमताओं एवं कमजोरियों आदि से अवगत कराया जाता है। इससे छात्र को अपनी वर्तमान स्थिति का पता चलता है।
2. छात्र की प्रगति के लिये उद्देश्य निर्धारित किये जाते हैं। उसके विकास के लिये रास्ते ढूंढ़े जाते हैं। आवश्यक कौशलों की पहचान की जाती है।
3. छात्र द्वारा विभिन्न नियोजित अधिगम गतिविधियों एवं कार्यों को किया जाता है।
4. सर्वप्रथम छात्र को अधिगम उद्देश्यों की सफलता के बारे में अवगत कराया जाता है। प्रभावी व्यक्तिगत शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के लिये यह अत्यंत आवश्यक है कि छात्रों को अपने लक्ष्यों का पता हो।
5. छात्र शिक्षक के साथ मिलकर अपने लिये छोटे - छोटे लक्ष्यों का निर्धारण करते हैं तथा उन्हें प्राप्त करने के लिये प्रयास करते हैं।
6. शिक्षण अधिगम के दौरान मूल्यांकन व प्रतिपुष्टि के द्वारा छात्र की प्रगति का आंकलन किया जाता है।
7. छात्रों के चिन्तन के विकास हेतु उनसे प्रश्न पूछे जाते हैं।
8. छात्रों से उनके द्वारा की गई त्रुटियों की सूची बनवाकर स्व मूल्यांकन के द्वारा अपनी प्रगति और सफलता की कसौटी के सम्बन्ध में चिन्तन के अवसर दिये जाते हैं।

अभ्यास प्रश्न 4

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये |

1. व्यक्तिगत शिक्षण अधिगम छात्र और उसकी _____________ को ध्यान में रखकर कराया जाता है।
2. व्यक्तिगत शिक्षण अधिगम में प्रत्येक छात्र को उसके _______________ कार्य दिये जाते हैं।
3. अधिगम के ______________की सहायता से प्रत्येक छात्र की अधिगम आवश्यकताओं का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

10.7 सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम

सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम में छात्र विभिन्न दलों में कार्य करते हुए किसी प्रश्न का उत्तर खोजते हैं अथवा कोई अर्थपूर्ण प्रोजेक्ट बनाते हैं। बालकों के समूह में व्याख्यान सम्बन्धी चर्चा या विभिन्न विद्यालयों के बालकों द्वारा इन्टरनेट के जरिये किसी कार्य को करना ही सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम के उदाहरण हैं। सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम में छात्र समूह में किसी संगठित क्रिया पर मिलकर कार्य करते हैं। प्रत्येक छात्र अपने कार्य के लिये व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार होता है और समूह के कार्य का भी मूल्यांकन किया जाता है। सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम के वातावरण के निर्माण हेतु निम्न तीन चीजों की अत्यन्त आवश्यकता होती हैं -

1. पहली उस वातावरण में छात्र सुरक्षित अनुभव करें तथा साथ ही उन्हें वह वातावरण चुनौतीपूर्ण भी प्रतीत हो।
2. समूह का आकार छोटा हो ताकि प्रत्येक छात्र की प्रतिभागिता सुनिश्चित की जा सके।
3. जो भी कार्य छात्रों द्वारा किया जाना है, उसे निश्चित रूप में स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया हो।

10.7.1 सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम के मुख्य तत्व

सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम द्वारा अधिगम कराने हेतु निम्नलिखित प्रमुख तत्वों पर ध्यान देना आवश्यक है -

1. **छात्रों के अधिगम परिणाम सम्बन्धी उद्देश्यों का स्पष्ट समुच्चय** - सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम स्वयं में साध्य न होकर एक साधन होता है। इसीलिये शिक्षकों को छात्रों के अधिगम परिणामों और शिक्षण के पश्चात किये जाने वाले कार्यों का वर्णन स्पष्ट उद्देश्यों द्वारा शिक्षण अधिगम की योजना बनाने से पूर्व करना चाहिये।
2. **समूह के सभी छात्रों द्वारा उद्देश्यों को स्वीकारना** - सिर्फ छात्रों द्वारा उद्देश्यों का स्पष्टीकरण ही पर्याप्त नहीं होता है बल्कि न उद्देश्यों से छात्रों को जोड़ा जाना एवं उनके द्वारा इन उद्देश्यों को स्वीकार्य होना भी आवश्यक है।
3. **कार्य पूर्ण करने के स्पष्ट निर्देश** - शिक्षक द्वारा छात्रों द्वारा किये जाने वाले कार्यों सम्बन्धी निर्देश स्पष्ट एवं सटीक होने चाहिये ताकि छात्रों को यह पता रहे कि किस विषय वस्तु अथवा कौशल के स्वामित्व के लिये कौनसा कार्य कब और कैसे करना है।

4. **विषम समूह** - सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम हेतु छोटे - छोटे 4 से 5 समूह बनाये जाने चाहिये। जिसमें शैक्षणिक योग्यता, जातीय पृष्ठभूमि एवं लिंग आदि के आधार पर अधिक से अधिक विषमता वाले छात्रों को शामिल करना चाहिये।
5. **सफलता के लिये समान अवसर** - छात्रों को किसी भी समूह में यह विश्वास होना चाहिये कि उन्हें विषय वस्तु के अधिगम, योग्यता या समूह पुरस्कार आदि में समान अवसर मिलेंगे। छात्र द्वारा किसी भी विशेष समूह में रखे जाने पर उसे दंडित किया गया है, इस प्रकार के नकारात्मक विचार नहीं आने चाहिये।
6. **सकारात्मक परस्पर निर्भरता** - शिक्षकों को कार्य योजना इस प्रकार बनानी चाहिये कि छात्रों को अपनी व दल की सफलता के लिये दल के अन्य सदस्यों पर निर्भर रहना पड़े ताकि वह लक्षित सामग्री व कौशल में महारत प्राप्त कर सके।
7. **आमने - सामने अन्तःक्रिया** - छात्रों को कार्य के दौरान उनको इस प्रकार व्यवस्थित किया जाना चाहिये कि उनमें सभी का एक दूसरे से प्रत्यक्ष आंखों का सम्पर्क स्थापित हो सके।
8. **व्यक्तिगत जवाबदेही** - प्रत्येक कार्य में प्रत्येक दल की सामूहिक एवं उसके प्रत्येक सदस्य की व्यक्तिगत जवाबदेही सुनिश्चित की जानी चाहिये।
9. **समूह की सफलता के लिये सार्वजनिक मान्यता एवं पुरस्कार** - जो समूह शैक्षणिक उपलब्धि के उच्च स्तर को प्राप्त करते हैं, उसके सदस्यों को सार्वजनिक रूप से मान्यता एवं पुरस्कार दिये जाने की व्यवस्था होनी चाहिये।
10. **अन्तः समूह व्यवहारों पर कार्य पूर्ण होने के बाद चिन्तन** - छात्रों द्वारा किस कार्य को कैसे पूरा किया गया, किस सदस्य ने कैसा कार्य किया, उन्होंने समूह के लक्ष्य को कैसे प्राप्त किया अथवा असफल होने पर उसके क्या कारण रहे आदि बिन्दुओं पर कार्य की समाप्ति पर चिन्तन किया जाना आवश्यक है।

10.7.2 सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम की योजना

सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम के लिये शिक्षक द्वारा स्पष्ट व विस्तृत कार्य योजाना तैयार की जानी चाहिये। जिसमें पाठ्यक्रम में ऐसे प्रकरणों का चयन किया जाना चाहिये जो सहयोगपूर्ण परिस्थिति के अनुरूप हों। एक शिक्षक को अपनी योजना को संगठित करते समय निम्नलिखित प्रश्नों को ध्यान में रखा जाना चाहिये -

1. छात्रों के द्वारा उक्त कार्य कक्षा में किये जायेंगे अथवा कक्षा के बाहर या फिर दोंनों स्थान पर संयुक्त रूप से?
2. क्या इन कार्यों को सामान्य योजना में शामिल किया गया है?
3. किसी कार्य को करने में लगभग कितना समय लगेगा?, कब प्रारंभ किया जायेगा? एवं कब तक समाप्त होगा?
4. छात्रों को समूह में कार्य करने के प्रशिक्षण हेतु समय निर्धारित किया गया है अथवा नहीं?

इन प्रश्नों के उत्तरों को ध्यान में रखने के पश्चात सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम की योजना तैयार की जाती है। जिसमें निम्न चरणों को सम्मिलित किया जाता है -

1. **प्रश्नों का निर्माण करना** - शिक्षक को ऐसे प्रश्नों की रूपरेखा तैयार करनी होती है जो बालकों का ध्यान आकृष्ट कर सकें व उन्हें उन प्रश्नों का हल खोजने के लिये आन्तरिक रूप से अभिप्रेरित कर सकें। अच्छे प्रश्न वह होते हैं जो बालकों की रूचि एवं उनकी क्षमताओं को विषय वस्तु के लक्ष्यों एवं वांछित परिणामों से जोड़ते हैं। पूरे पाठ की योजना को ऐसे अर्थपूर्ण प्रश्नों की सहायता से तैयार किया जाना चाहिये, जो कि बालकों को कार्य करने की दिशा प्रदान करें एवं उन्हें किसी भी प्रकरण के लिये स्वयं से प्रश्न निर्माण एवं उनके हल खोजने में सहायता दे सकें।
2. **लक्ष्यों की पहचान करना** - किसी कार्य को क्यों किया जा रहा है? तथा उसके किये जाने से छात्रों के व्यवहार में क्या परिवर्तन होंगे?, इसकी योजना भी पूर्व में ही तैयार की जानी चाहिये। उन लक्ष्यों को शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में छात्रों को भी बताया जाना आवश्यक है ताकि वे पूरे मनोयोग से कार्य में शामिल हो सकें।
3. **मुख्य निर्देशों को बनाना** - किसी कार्य को कैसे किया जाना है? इसके मुख्य निर्देश भी पहले से ही तैयार किये जाने चाहिये ताकि छात्र सही दिशा में कार्य करें एवं उससे भटकें नहीं। मुख्य निर्देश वह कसौटी है, जिसके द्वारा अधिगम के लक्ष्यों को स्पष्ट किया जाता है। यह निर्देश हर कार्य के लिये अलग होते हैं पर इनका निर्माण छात्रों को कार्यों पर स्वामित्व दिलाने के उद्देश्य से किया जाना चाहिये। इन निर्देशों की सहायता के द्वारा छात्र अपने कार्यों का स्वमूल्यांकन भी कर सकते हैं।
4. **विशिष्ट मूल्यांकन कार्य की रूपरेखा तैयार करना** - मूल्यांकन कार्यों के द्वारा छात्रों की प्रगति एवं वांछित अधिगम परिणामों की प्राप्ति को सुनिश्चित किया जाता है। मूल्यांकन कार्य इस प्रकार तैयार कराये जाने चाहिये कि बालक द्वारा उसकी समस्त क्षमताओं के प्रयोग किया जा सके। एक पाठ की समाप्ति पर बालक को वार्षिक प्रश्न पत्र को भी हल करने योग्य बनाना होता है। इसलिये मूल्यांकन कार्यों को सावधानीपूर्वक विषय वस्तु को ध्यान में रखकर निर्मित किया जाना चाहिये।
5. **समायोजित करने हेतु चिन्तन** - छात्रों में नियमित सुधार के लिये चिन्तनशील प्रश्नों का प्रयोग किया जाना चाहिये। छात्रों को नियमित अभ्यास से समूह में अपनी प्रक्रिया और प्रगति पर चिन्तन करना चाहिये। चिन्तन को लम्बा या जटिल न होकर एक नियमित आधार पर होना चाहिये। इसके लिये आवश्यक है कि शिक्षक के द्वारा चिन्तनशील प्रश्नों की रूपरेखा तैयार की जाये, जिसे वह कुछ अन्तराल के पश्चात छात्रों से पूछता रहे।

10.7.2 सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की व्याख्या

सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की व्याख्या को निम्नलिखित बिन्दुओं के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

1. सर्वप्रथम अधिगम वातावरण को धनात्मक रूप में तैयार किया जाता है। जहां शिक्षक व छात्र एक दूसरे के प्रति विनम्र एवं सम्मानजनक व्यवहार करते हैं। ऐसे छात्र जो उच्च मानसिक कौशलों का

प्रदर्शन करते हैं, उनकी प्रशंसा की जाती है तथा अन्य छात्रों को भी उन कौशलों के प्रयोग के लिये अभिप्रेरित किया जाता है।

2. छात्रों के समूह बनाये जाते हैं। जिनमें प्रत्येक समूह में 2 से 6 छात्र होते हैं। इन समूहों का निर्माण विषमता के आधार पर किया जाता है।
3. छात्र कितने समय तक एक साथ कार्य करेंगे, इसका निर्धारण विषय वस्तु की इकाई, कार्य सत्र इत्यादि को ध्यान में रखकर किया जाता है।
4. किसी कार्य के शैक्षिक, व्यावहारिक एवं अन्तर्वैयक्तिक उद्देश्यों से छात्रों को अवगत कराया जाता है।
5. प्रत्येक समूह के सदस्यों की भूमिका को निर्धारित किया जाता है। यथा कौन नेतृत्व करेगा? कौन अवलोकन कर नोट्स बनायेगा? कौन प्रत्यावेदन बनायेगा? कौन क्रिया करेगा? आदि भूमिकाओं को निर्धारित किया जाता है।
6. कार्यों के निर्देशों को छात्रों को समझाया जाता है तथा उनकी एक लिखित प्रति भी छात्रों को प्रदान की जाती है।
7. एक कार्य का प्रदर्शन करके छात्रों को क्रिया विधि समझायी जाती है। इसके पश्चात शिक्षक समूह में होने वाली अन्तःक्रियाओं का अवलोकन करता है। इस परिस्थिति में उसकी भूमिका चिन्तन के मध्यस्थ के रूप में होती है। वे छात्र जो धीमी गति से कार्य करते हैं, उन्हें शिक्षक द्वारा प्रोत्साहित किया जाता है।
8. शिक्षक निरंतर समूह के कार्यों की निगरानी करता है। जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि छात्र निर्देशों एवं आवंटित भूमिका के अनुरूप ही कार्य कर रहे हैं। आवश्यकता पड़ने पर वह समूह की सहायता भी करता है।
9. जो समूह अपने कार्य को जल्द पूरा कर लेते हैं, उन्हें अन्य समूहों की सहायता करने में लगाया जाता है।
10. जब सारे समूह निर्धारित कार्यों को पूरा कर लेते हैं तो उनका मूल्यांकन किया जाता है। जिसमें व्यक्तिगत मूल्यांकन (आवंटित भूमिका के अनुसार) एवं सामूहिक मूल्यांकन(आवंटित कार्य के अनुसार) शामिल होता है। प्रत्येक समूह का मूल्यांकन उनकी अपनी प्रगति के अनुसार किया जाता है, न कि अन्य समूहों से अंतर करके।
11. मूल्यांकन के पश्चात छात्रों को चिन्तन के अवसर दिये जाते हैं ताकि वे अपने प्रदर्शन के स्तर एवं आवश्यक सुधारों से अवगत हो सकें।

अभ्यास प्रश्न 5

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये |

1. सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम में छात्र समूह में किसी ____________ क्रिया पर मिलकर कार्य करते हैं।
2. छात्रों को सहयोगपूर्ण शिक्षण के किसी भी समूह में यह विश्वास होना चाहिये कि उन्हें विषय वस्तु के अधिगम, योग्यता या समूह पुरस्कार आदि में ____________ मिलेंगे।

3. प्रत्येक कार्य में प्रत्येक दल की सामूहिक एवं उसके प्रत्येक सदस्य की व्यक्तिगत __________ सुनिश्चित की जानी चाहिये।

10.8 ज्ञान के हस्तांतरण एवं ज्ञान के निर्माण में अन्तर

शिक्षण के लिये अध्यापकों के द्वारा दो प्रमुख कलाओं को अपनाया जाता है। इनमें पहली है पारंपरिक ज्ञान के हस्तांतरण की कला। इसका केन्द्र बिन्दु पाठ्यक्रम होता है। दूसरी कला होती है उन्नत ज्ञान निर्माण कला। इसके केन्द्र में छात्रों में ज्ञान निर्माण एवं समझ का विकास करना होता है। पारंपरिक रूप में शिक्षण का उद्देश्य छात्रों को तीन प्रमुख कौशलों पढ़ना, लिखना एवं गणना करना में तैयार करना होता है। छात्रों को पाठ्यपुस्तकों में दिये गये तथ्यों और सिद्धान्तों का प्रत्यास्मरण कराया जाता है। पारंपरिक मूल्यांकन की विधियाँ भी यही सुनिश्चित करती हैं कि छात्रों को विभिन्न प्रत्यय किस सीमा तक स्मरण हो गये हैं। पारंपरिक शिक्षण परिस्थिति में शिक्षण को ज्ञान के हस्तांतरण के रूप में ही परिलक्षित किया जाता है।

परन्तु आधुनिक परिवेश में संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के विकास के साथ यह माना जाने लगा है कि जीवन में उपस्थित होने वाली समस्याओं के लिये रटा हुआ ज्ञान ही आवश्यक नहीं है वरन् छात्रों में उस ज्ञान की समझ होना भी आवश्यक है। तभी वे उस ज्ञान का प्रयोग करने में सक्षम हो सकते हैं। इसीलिये आधुनिक शिक्षण अधिगम विधि अधिगम के साथ बोध के विकास पर बल देती है। यह तर्क एवं चिन्तन से भी सम्बन्धित होती है।

ज्ञान के हस्तांतरण एवं ज्ञान के निर्माण में अन्तर को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है -

1. **ज्ञान का स्वरूप** - ज्ञान के हस्तांतरण में ज्ञान के स्वरूप को ज्ञान के भण्डार के रूप में देखा जाता है। जिसमें कई तथ्य, प्रत्यय एवं सिद्धान्त शामिल होते हैं, जिन्हें शिक्षक कक्षा में छात्रों को बताता है एवं स्मरण करवाता है।
   ज्ञान के निर्माण में ज्ञान के स्वरूप को प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है। जिसमें शिक्षक छात्रों को चिन्तन एवं तर्क आदि के प्रयोग द्वारा अपने पूर्व ज्ञान एवं अनुभव के आधार पर ज्ञान के निर्माण का प्रशिक्षण देता है।
2. **शिक्षण के उद्देश्य** - ज्ञान के हस्तांतरण अध्यापन कला में पाठ्यक्रम को केन्द्र में रखकर उद्देश्यों का निर्माण किया जाता है।
   ज्ञान के निर्माण अध्यापन कला में छात्रों के वास्तविक जीवन, उनकी आवश्यकताओं एवं रूचियों को ध्यान में रख कर उद्देश्यों का निर्माण किया जाता है।
3. **अधिगम गतिविधियाँ** - ज्ञान हस्तांतरण में शिक्षण की गतिविधियाँ शिक्षक द्वारा नियंत्रित होती हैं। इसमें छात्र निष्क्रिय भूमिका में रहते हैं। इसमें छात्र केवल शिक्षक द्वारा दिये गये ज्ञान को ग्रहण कर उसका प्रत्यास्मरण करते हैं।
   जबकि ज्ञान के निर्माण में छात्र केन्द्रित अधिगम गतिविधियों का आयोजन किया जाता है। इसमें छात्र ज्ञान के साथ सक्रिय रूप में अन्तःक्रिया करके प्रत्यय का निर्माण एवं ज्ञान के बोध का विकास करते हैं।

4. **शिक्षण का स्वरूप** - ज्ञान हस्तांतरण में शिक्षण का स्वरूप यांत्रिक होता है। इसमें शिक्षक उद्दीपक प्रस्तुत करता है तथा छात्र उन प्रस्तुत किये गये उद्दीपकों के प्रति अपनी प्रतिक्रियाऐं करते हैं।
   जबकि ज्ञान निर्माण में शिक्षण का स्वरूप सर्वांगी होता है। इसमें छात्रों द्वारा अधिकतम ज्ञानेन्द्रियों का प्रयोग कर उन्हें ज्ञान निर्माण के लिये प्रोत्साहित किया जाता है। जहां शिक्षण का यांत्रिक स्वरूप दिखाने एवं बताने पर बल देता है वहीं सर्वांगी स्वरूप अनुभव द्वारा अधिगम, करके सीखना एवं खोज द्वारा अधिगम पर बल देता है।
5. **छात्र** - ज्ञान हस्तांतरण अध्यापन कला में छात्रों को खाली पात्र के रूप में देखा जाता है। जिसे शिक्षक अथवा विषय विशेषज्ञ द्वारा ज्ञान से भर दिया जाता है।
   वहीं ज्ञान निर्माण अध्यापन कला में यह माना जाता है कि छात्रों के पास अपने वातावरण सम्बन्धी पूर्वज्ञान एवं पूर्व अनुभव होता है, जिन्हें आधार बना कर ही वह नवीन ज्ञान की रचना करता है।
6. **कक्षा कक्ष का वातावरण** - ज्ञान हस्तांतरण अध्यापन कला में कक्षा कक्ष का वातावरण कम संवादात्मक होता है। इसमें शिक्षक तथा छात्रों के मध्य एक सीमित रूप में ही अन्तःक्रियाऐं परिलक्षित होती हैं।
   वहीं ज्ञान निर्माण अध्यापन कला पर आधारित कक्षा कक्ष प्रचुर संवादात्मक तकनीक पर आधारित होता है। जिसमें छात्रों में परस्पर एवं छात्रों की शिक्षक के साथ नियमित रूप से अन्तःक्रियाऐं चलती ही रहती हैं।

इस प्रकार हम कह सकते है कि छात्रों को भावी जीवन में सफल बनाने एवं वास्तविक रूप में उनका सर्वांगीण विकास करने के लिये उन्हें ज्ञान निर्माण में प्रशिक्षित किया जाना ही वर्तमान युग की मांग है। परन्तु वर्तमान युग में हो रहे सूचना के विस्फोट एवं पाठ्यक्रम के विस्तार को देखते हुए ज्ञान हस्तांतरण को भी संपूर्ण रूप से नकारा नहीं जा सकता है। वर्तमान में जहां छात्र शिक्षक अनुपात मानकों से कहीं अधिक है वहां ज्ञान निर्माण पर पूरी तरह निर्भर रह कर छात्रों को वांछित परिणामों तक नहीं पहुंचाया जा सकता है। इसलिये यह आवश्यक है कि शिक्षक पाठ्यक्रम का विश्लेषण कर उन प्रकरणों का चयन करे जो छात्रों के वास्तविक जीवन से सम्बन्धित हों व उन पर चिन्तन व मानसिक क्रियाओं को करने से वह भावी जीवन में समस्याओं के समाधान में सक्षम हो सकेंगे, उन प्रकरणों के लिये ज्ञान निर्माण अध्यापन कला द्वारा शिक्षण कराया जाना चाहिये। अन्य प्रकरणों को ज्ञान हस्तांतरण अध्यापन कला को और अधिक संवादात्मक एवं तकनीक से समृद्ध बनाकर अधिगम कराया जाना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न 6

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये |

1. ज्ञान निर्माण कला के केन्द्र में छात्रों में ज्ञान निर्माण एवं _________ का विकास करना होता है।
2. पारंपरिक रूप में शिक्षण का उद्देश्य छात्रों को पाठ्यपुस्तकों में दिये गये तथ्यों और सिद्धान्तों का _______________कराया जाता है।
3. ज्ञान हस्तांतरण में शिक्षण की गतिविधियाँ शिक्षक द्वारा ___________ होती हैं।

4. ज्ञान निर्माण अध्यापन कला में यह माना जाता है कि छात्रों के पास अपने वातावरण सम्बन्धी ________________________होता है, जिन्हें आधार बना कर ही वह नवीन ज्ञान की रचना करता है।

10.9 सारांश

शिक्षण अधिगम की विधियों से अभिप्राय उस विवरण से है जिसके द्वारा शिक्षक छात्रों को कैसे सिखाना है? के बारे में योजना बनाता है। यद्यपि प्रभावी अधिगम के लिये कुछ शिक्षण विधियों एवं अधिगम सिद्धान्तों को मिलाकर शिक्षक अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये प्रयोग करते रहते हैं। एक प्रभावी और चिन्तनशील शिक्षक होने के लिये यह आवश्यक है कि अपनी शिक्षण अधिगम विधि की योजना के प्रत्येक पहलू पर गहनता से विचार किया जाये। तभी वह बालकों के अधिगम को सुगम बना सकता है।

लघु समूह शिक्षण अधिगम तात्पर्य छात्रों व शिक्षक की उस अन्तःक्रिया से है जिसमें कक्षा में छात्रों की संख्या सीमित होती है। छात्रों की इस संख्या में 02 से लेकर 25 तक छात्र शामिल हो सकते हैं, जो कि एक अथवा एक से अधिक बार किसी विषय विशिष्ट चर्चा के लिये एकजुट होते हैं। लघु समूह शिक्षण अधिगम को समस्या आधारित अधिगम की संज्ञा भी दी जाती है। जिसमें अधिगम लघु छात्र समूह में एवं नियंत्रित परिस्थितियों में कराया जाता है। लघु समूह शिक्षण से तत्पर्य छात्र केन्द्रित शिक्षण से है, जिसमें छात्र किसी विशिष्ट विषय पर स्वतंत्र रूप से चर्चा करते हों। सुनियोजित लघु समूह शिक्षण अधिगम के स्पष्ट लाभ छात्रों के अधिगम पर परिलक्षित होते हैं। वह इस प्रकार के शिक्षण से बेहतर प्रत्यास्मरण, चिन्तन व प्रत्ययों का संश्लेषण कर सकते हैं।

वृहद् समूह शिक्षण अधिगम शिक्षण की प्रचीन विधियों में से एक है। वृहद् समूह शिक्षण अधिगम वह प्रक्रिया है जिसमें एक शिक्षक 30 या उससे अधिक अधिगमकर्ताओं के साथ एक समय में किसी विषय विशेष पर अन्तःक्रिया करता है। व्याख्यान विधि वृहद् समूह शिक्षण की सबसे प्रचलित विधि है, जिसके द्वारा शिक्षक ज्ञान का हस्तांतरण करता है। वृहद् समूह शिक्षण अधिगम को अधिक प्रभावी बनाने के लिये निम्न चार तत्वों पर ध्यान देना आवश्यक है -प्रेरणात्मक सन्दर्भ, अधिगम क्रियाऐं, दूसरों के साथ अन्तःक्रियाऐं, सुसंगठित ज्ञान का आधार।

व्यक्तिगत शिक्षण अधिगम छात्र और उसकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर कराया जाता है। व्यक्तिगत शिक्षण अधिगम में सभी छात्रों की प्रगति, उनकी छुपी हुई क्षमताओं आदि का विकास किया जाता है। इस प्रकार की अधिगम परिस्थिति में प्रत्येक छात्र को उसके स्तर के अनुकूल कार्य दिये जाते हैं क्योंकि इस विधि की मान्यता है कि प्रत्येक छात्र दूसरे छात्र से भिन्न होता है व उसकी आवश्यकताऐं भी अलग होती हैं। इसलिये व्यक्तिगत शिक्षण अधिगम में छात्रों की आवश्यकताओं व क्षमताओं के अनुरूप विषय वस्तु का संगठन व नियोजन किया जाता है।

सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम में छात्र विभिन्न दलों में कार्य करते हुए किसी प्रश्न का उत्तर खोजते हैं अथवा कोई अर्थपूर्ण प्रोजेक्ट बनाते हैं। सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम में छात्र समूह में किसी संगठित क्रिया पर मिलकर कार्य करते हैं। प्रत्येक छात्र अपने कार्य के लिये व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार होता है और समूह के कार्य का भी मूल्यांकन किया जाता है। सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम के वातावरण के

निर्माण हेतु निम्न तीन चीजों की अत्यन्त आवश्यकता होती हैं - पहली उस वातावरण में छात्र सुरक्षित अनुभव करें तथा साथ ही उन्हें वह वातावरण चुनौतीपूर्ण भी प्रतीत हो। समूह का आकार छोटा हो ताकि प्रत्येक छात्र की प्रतिभागिता सुनिश्चित की जा सके। जो भी कार्य छात्रों द्वारा किया जाना है, उसे निश्चित रूप में स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया हो।

शिक्षण के लिये अध्यापकों के द्वारा दो प्रमुख कलाओं को अपनाया जाता है। इनमें पहली है पारंपरिक ज्ञान के हस्तांतरण की कला। इसका केन्द्र बिन्दु पाठ्यक्रम होता है। दूसरी कला होती है उन्नत ज्ञान निर्माण कला। इसके केन्द्र में छात्रों में ज्ञान निर्माण एवं समझ का विकास करना होता है। पारंपरिक रूप में शिक्षण का उद्देश्य छात्रों को तीन प्रमुख कौशलों पढ़ना, लिखना एवं गणना करना में तैयार करना होता है। छात्रों को पाठ्यपुस्तकों में दिये गये तथ्यों और सिद्धान्तों का प्रत्यास्मरण कराया जाता है। पारंपरिक मूल्यांकन की विधियाँ भी यही सुनिश्चित करती हैं कि छात्रों को विभिन्न प्रत्यय किस सीमा तक स्मरण हो गये हैं। पारंपरिक शिक्षण परिस्थिति में शिक्षण को ज्ञान के हस्तांतरण के रूप में ही परिलक्षित किया जाता है। परन्तु आधुनिक परिवेश में संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के विकास के साथ यह माना जाने लगा है कि जीवन में उपस्थित होने वाली समस्याओं के लिये रटा हुआ ज्ञान ही आवश्यक नहीं है वरन् छात्रों में उस ज्ञान की समझ होना भी आवश्यक है। तभी वे उस ज्ञान का प्रयोग करने में सक्षम हो सकते हैं। इसीलिये आधुनिक शिक्षण अधिगम विधि अधिगम के साथ बोध के विकास पर बल देती है। यह तर्क एवं चिन्तन से भी सम्बन्धित होती है।

10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. अधिगम परिणामों 2. सीखते 3. योजना

अभ्यास प्रश्न 2

1. सीमित 2. स्वतंत्र 3. सुगमकर्ता

अभ्यास प्रश्न 3

1. हस्तांतरण 2. पूर्वज्ञान एवं अनुभव 3. सारांश

अभ्यास प्रश्न 4

1. आवश्यकताओं 2. स्तर के अनुकूल 3. निर्धारकों

अभ्यास प्रश्न 5

1. संगठित 2. समान अवसर 3. जबावदेही

अभ्यास प्रश्न 6

1. समझ 2. प्रत्यास्मरण 3. नियंत्रित 4. पूर्वज्ञान एवं पूर्व अनुभव

10.11 निबंधात्मक प्रश्न

- लघु समूह शिक्षण की व्याख्या कीजिये।
- वृहद समूह शिक्षण की व्याख्या कीजिये।
- व्यक्तिगत शिक्षण से क्या अभिप्राय है स्पष्ट कीजिए।
- सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम करवाने के लिए शिक्षक को किस प्रकार योजना बनानी चाहिए सविस्तार व्याख्या कीजिये।
- ज्ञान हस्तांतरण व ज्ञान निर्माण में क्या अंतर होता है इसका वर्णन कीजिये।

10.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

- पाठक,पी.डी.(2006),शिक्षा मनोविज्ञान, आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।
- माथुर, डा. एस.एस. (1999), शिक्षा मनोविज्ञान, आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।
- सिंह, अरूण कुमार. (1998), मनोविज्ञान के सम्प्रदाय एवं इतिहास, मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली।
- माथुर, डा. एस.एस. (1999), समाज मनोविज्ञान, आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।
- सिंह, अरूण कुमार. (1999) समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली।
- श्रीवास्तव, डा. डी. एन., सहित्यिक एवं मनोवैज्ञानिक अनुसंधान, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
- बैरन, राबर्ट ए.; बायर्न, डौन. आर. (2004), सामाजिक मनोविज्ञान, दिल्लीर: पीयर्सन एजूकेशन प्रा. लि.।
- श्रीवास्तव, डा. डी. एन., समाज मनोविज्ञान।
- वर्मा, डा. रामपाल सिंह.(2006),शिक्षण एवं अधिगम का मनोविज्ञान, आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।
- सारस्वत, डा. मालती.(1999),शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, लखनऊः आलोक प्रकाशन।

इकाई - 11

शिक्षण के आधार

Base of Teaching

इकाई रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 शिक्षण का अर्थ

11.3.1 राजनीतिक व्यवस्था में शिक्षण का अर्थ

11.3.2 परिभाषाएं

11.4 शिक्षण की प्रकृति

11.5 शिक्षण की विशेषतायें

11.6 शिक्षण के कार्य

11.7 शिक्षण के सिद्धान्त

11.7.1 शिक्षण के सामान्य सिद्धान्त

11.7.2 शिक्षण के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त

11.8 शिक्षण के चरण

11.8.1 पूर्व क्रियात्मक चरण

11.8.2 क्रियात्मक क्रियान्विति अथवा प्रयोगात्मक चरण

11.8.3 परा क्रियात्मक अथवा मूल्यांकन चरण

11.9 व्यवहारवादियों के अनुसार शिक्षण प्रक्रिया

11.9.1 व्यवहारवादी शिक्षण प्रक्रिया की मान्यताऐं

11.9.2 व्यवहार परिवर्तन हेतु शिक्षण प्रक्रिया की व्याख्या

11.10 संज्ञानवादी शिक्षण प्रक्रिया

11.10.1 संज्ञानवादी शिक्षण प्रक्रिया की मान्यताऐं

11.10.2 संज्ञानवादी शिक्षण प्रक्रिया की व्याख्या

11.11 रचनात्मक शिक्षण प्रक्रिया

11.11.1 रचनात्मक शिक्षण प्रक्रिया की मान्यताऐं
11.11.2 रचनात्मक शिक्षण प्रक्रिया की व्याख्या
11.13 सारांश
11.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.15 निबंधात्मक प्रश्न
11.16 संदर्भ ग्रंथ सूची

11.1 प्रस्तावना

शिक्षण तथा अधिगम एक दूसरे की पूरक प्रक्रियाऐं हैं। दोनों ही प्रक्रियाओं में शिक्षक, बालक तथा पाठ्यक्रम को केन्द्र में रखकर कार्य किया जाता है। प्रस्तुत इकाई में हम शिक्षण का अर्थ, प्रकृति एवं इसके कार्य तथा प्रमुख सिद्धान्तों की चर्चा करेंगे तथा शिक्षण प्रक्रिया के प्रमुख चरणों को जानने एवं समझने का प्रयत्न करेंगे।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई को सम्पन्न करने तथा अध्ययन करने के पश्चात आप को इस योग्य होना चाहिये कि आप -

- शिक्षण का अर्थ, प्रकृति, विशेषतायें एवं कार्यों से परिचित हो सकेंगे।
- शिक्षण के सिद्धान्तों एवं शिक्षण के चरणों की व्याख्या कर सकेंगे।
- व्यवहारवादी, संज्ञानवादी एवं रचनात्मक शिक्षण प्रक्रिया की मान्यताओं को समझ सकें एवं व्याख्या कर सकेंगे।

11.3 शिक्षण का अर्थ

शिक्षण एक सामाजिक प्रक्रिया है। जो हर देश की राजनीतिक व्यवस्थाए सामाजिक ,दार्शनिक मूल्यों और संस्कृति पर अपनी छाप छोड़ती है। शिक्षण शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है सिखाना। अपने संकीर्ण अर्थ में शिक्षण कक्षा कक्ष में दिया गया परामर्श है तथा व्यापक अर्थ में यह आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। शिक्षण वह प्रक्रिया है जिसमें बालकों को उनके भावी जीवन हेतु तैयार किया जाता है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में प्राप्त अनुभवों का प्रयोग किसी भी बालक द्वारा अपने भावी जीवन में उत्पन्न होने वाली समस्याओं के समाधान हेतु किया जाता है। शिक्षण द्वारा ही कोई भी बालक अपने भावी जीवन में उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों से सामन्जस्य स्थापित करने में सफल होता है।

11.3.1 राजनीतिक व्यवस्था में शिक्षण का अर्थ -

1. **निरंकुशता में अर्थ-** शिक्षण की इस प्रणाली में शिक्षक को प्राथमिक जगह दी जाती है और विद्यार्थियों को गौण स्थान दिया जाता है यहां शिक्षक खुद को एक आदर्श के रूप में समझता है

अपनी इच्छा के अनुसार ज्ञान देता है और विद्यार्थियों की तुलना में सक्रिय रहता है। विद्यार्थियों की भूमिका सिर्फ मूक दर्शकों की बनी रहती है और उन्हें किसी भी तरह से बातचीत करने के लिए कोई अधिकार नहीं है।

2. **लोकतंत्र में अर्थ -** शिक्षण की इस प्रणाली में विद्यार्थियों को प्राथमिक जगह और शिक्षक को द्वितीयक जगह दी जाती है। शिक्षक और छात्रों के बीच एक स्वतंत्र बातचीत होती है।
3. **अहस्तक्षेप में अर्थ -** शिक्षक शिक्षण की इस प्रणाली में एक दोस्त की तरह है। यहां शिक्षक छात्रों की समस्याओं को हल करने के लिए के लिए अवसर प्रदान करता है तथा उनकी गतिविधियों में हस्तक्षेप नहीं करता है।

शिक्षण शब्द के अर्थ को विभिन्न मनोविज्ञानियों द्वारा दी गईं परिभाषाओं के द्वारा और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है।

11.3.2 परिभाषाएं

स्मिथ: "शिक्षण क्रियाओं का एक संगठन है जिसका उद्देश्य अधिगम को उत्पन्न करना है।"

मॉरिसन: "शिक्षण एक अधिक परिपक्व व्यक्तित्व और एक कम परिपक्व के बीच एक अंतरंग संपर्क है।"

थॉमस ग्रीन: " शिक्षण एक बच्चे के विकास के लिए किया जाता है जो शिक्षक का काम है।"

अभ्यास प्रश्न - 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. शिक्षण की लोकतांत्रिक प्रणाली में विद्यार्थियों ______ जगह और शिक्षक को ______ जगह दी जाती है।
2. शिक्षण क्रियाओं का एक संगठन है जिसका उद्देश्य ______को उत्पन्न करना है।
3. शिक्षण एक अधिक परिपक्व व्यक्तित्व और एक कम परिपक्व के बीच एक _______ है।

11.4 शिक्षण की प्रकृति

शिक्षण की प्रकृति को निम्न बिन्दुओं की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है -

1. शिक्षण एक द्विध्रुवी प्रक्रिया है। जॉन एडम के अनुसार इसका एक ध्रुव शिक्षक है और दूसरा शिष्य है।
2. अपने संकीर्ण अर्थ में शिक्षण कक्षा कक्ष में दिया गया परामर्श है तथा व्यापक अर्थ में यह आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। यह किसी भी समय किसी भी व्यक्ति अथवा वस्तु से प्राप्त किया जाने वाला अनुभव है।
3. यह एक त्रिध्रुवीय प्रक्रिया है इसके तीन ध्रुव हैं - शिक्षक, छात्र तथा पाठ्यक्रम।
4. यह एक व्यावसायिक गतिविधि है जिसमें अनुभव, परिपक्वता और विषय विशेषज्ञता समाहित होते हैं।

5. यह शिक्षक और छात्र के बीच एक अंतःक्रिया है।
6. यह एक गतिविधि है जो शिक्षार्थियों या विद्यार्थियों की उनके व्यवहार में वांछित परिवर्तन या संशोधन लाने के लिए मदद करती है ।

अभ्यास प्रश्न - 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. शिक्षण एक द्विध्रुवी प्रक्रिया है। जॉन एडम के अनुसार इसका एक ध्रुव ______ है और दूसरा ____ है।
2. शिक्षण एक व्यावसायिक गतिविधि है जिसमें अनुभव, परिपक्वता और ____________ समाहित होते हैं।
3. शिक्षण एक गतिविधि है जो शिक्षार्थियों या विद्यार्थियों की उनके व्यवहार में ______________लाने के लिए मदद करती है ।

11.5 शिक्षण की विशेषतायें

किसी वस्तु को पूरी तरह समझने के लिये आवश्यक है कि उसकी विशेषताओं को समझा जाये। शिक्षण को भी इसकी विशेषताओं के माध्यम से बेहतर रूप में समझा जा सकता है। शिक्षण की विशेषताओं का वर्णन निम्न बिन्दुओं के माध्यम से किया जा सकता है -

1. **शिक्षण एक संवेदात्मक प्रक्रिया है-** अच्छे शिक्षण की मुख्य विशेषताओं में से एक है कि यह संवेदात्मक प्रक्रिया होनी चाहिए। इसमें शिक्षक एवं छात्र के मध्य मित्रवत सम्बन्ध होने चाहिये जिसमें छा खुलकर अपनी समस्याओं को शिक्षक के सामने रख सकें।
2. **शिक्षण औपचारिक और अनौपचारिक दोनों है-** शिक्षण की एक और विशेषता है कि यह औपचारिक रूप से या अनौपचारिक रूप से उत्पन्न हो सकती है। औपचारिक शिक्षा का मतलब निश्चित उद्देश्य के साथ एक संगठित प्रणाली से है, इसके अनुसार यह व्यवस्थित, निश्चित और जानबूझकर बनाई गई योजना है। अनौपचारिक शिक्षण प्रणाली का मतलब है कि यह अनियोजित, आनुषंगिक और अनिश्चित है।
3. **शिक्षण एक कला तथा विज्ञान दोनों है -** एक कला के रूप में जहां इसमें प्रतिभा, अभ्यास एवं सृजनात्मकता की अवश्यकता होती है वहीं दूसरी ओर विज्ञान के रूप में यह तकनीक, प्रक्रियाओं और कौशल को समाहित करती है।
4. **शिक्षण एक पक्षीय नहीं है -** औपचारिक या अनौपचारिक किसी भी रूप में शिक्षण एक पक्षीय नहीं है। इसमें शिक्षक तथा अधिगमकर्ता दोनों का होना अवश्यक है।अच्छे शिक्षण की मुख्य विशेषता यह है कि में शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों पूरी तरह से सक्रिय होने चाहिये।
5. **शिक्षण एक स्वतंत्र गतिविधि नहीं है -** मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। शिक्षण एक सामाजिक प्रक्रिया है अपने समाज के अन्य सदस्यों के साथ संबंधोंकी स्थापना के लिए तथा अपनी जरूरतों को भी पूरा करने के लिए शिक्षण की अवश्यकता होती है। क्योंकि शिक्षा

व्यवस्था के द्वारा ही बालकों के व्यवहार में सुधार लाने, सामाजिक रूप से स्वीकार्य, नैतिक रूप से सुसंस्कृत, बौद्धिक शारीरिक रूप से सक्षम बनाने आदि का कार्य किया जाता है।

6. **शिक्षण एक योजना बनाई गतिविधि है -** अच्छा शिक्षण सुनियोजित और अच्छी तरह से तैयार की गई गतिविधि है। यह एक व्यवस्थित तरीके से आयोजित किया जाता है। शिक्षण से पहले एक शिक्षक स्वयं को तैयार करता है। शिक्षण को सफल बनाने के क्रम में वह पुस्तकों, पत्रिकाओं, सन्दर्भ ग्रन्थों तथा विभिन्न स्रोतों से सारी जानकारी एकत्र करता है।

7. **शिक्षण नैदानिक और उपचारात्मक है -** अच्छा शिक्षण नैदानिक और उपचारात्मक होता है क्योंकि एक अच्छा शिक्षक अपने विद्यार्थियों के हितों योग्यताओं और क्षमताओं को जानता है। वह अपने शिक्षार्थियों के व्यक्तिगत तथा उन्हीं के आधार पर भेदों को जानता है और उन्हीं के अनुसार शिक्षण प्रक्रिया में शामिल होने वाले दृश्य, शैक्षिक वातावरण, उपयुक्त शिक्षण सामग्री, शिक्षण विधियों आदि का चयन करता है। वह शिक्षार्थियों की समस्याओं का पता करने के लिये में नैदानिक तकनीक का उपयोग करता है और फिर उसके अनुसार वह उन कठिनाइयों को दूर करने के लिए उपयुक्त उपचारात्मक उपायों का सुझाव देता है।

8. **शिक्षण में संचार कौशल का महत्वपूर्ण स्थान है -** अच्छा शिक्षण बेहतर संचार पर निर्भर करता है। जितना अधिक बेहतर संचार की प्रक्रिया होगी शिक्षण भी उतना ही बेहतर होगा।

9. **शिक्षण विश्लेषण और व्याख्या के योग्य है -** अच्छे शिक्षण में विश्लेषण और मूल्यांकन किया जा सकता है। विश्लेषण और मूल्यांकन शिक्षण की प्रक्रिया में वांछित सुधार लाने के लिए आवश्यक पृष्ठपोषण उपलब्ध करा सकता है। उदाहरण के लिए शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में एक नया नवाचार सूक्ष्म शिक्षण है। यह ऐसी तकनीक है जिससे हम अच्छे और प्रभावी शिक्षक बनाने के लिए निरीक्षण के विभिन्न कौशलों के माध्यम से उन्हें अपने शिक्षण का विश्लेषण और मूल्यांकन करने का प्रशिक्षण देते हैं।

10. **अच्छा शिक्षण लोकतांत्रिक होता है -** अच्छा शिक्षण हमेशा अपने रवैये में लोकतांत्रिक होता है। यह एक लोकतांत्रिक माहौल बनाने के लिए प्रयास करता है, जिसमें हर व्यक्ति को सभी मामलों में सम्मान दिया जाता है। इस माहौल में हर व्यक्ति, हर दूसरे व्यक्ति के बराबर अधिकारों हकदार होते है तथा किसी के भी साथ जाति रंग धर्म आदि के आधार पर किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न - 3

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. औपचारिक शिक्षा का मतलब निश्चित उद्देश्य के साथ एक संगठित प्रणाली से है, इसके अनुसार यह ________________________ बनाई गई योजना है।
2. अच्छा शिक्षण ____________ और अच्छी तरह से तैयार की गई गतिविधि है।
3. विश्लेषण और मूल्यांकन शिक्षण की प्रक्रिया में वांछित सुधार लाने के लिए आवश्यक __________उपलब्ध करा सकता है।

11.6 शिक्षण के कार्य

हम शिक्षण के कार्यों पर चर्चा करने से पहले हम शिक्षण के चरों पर चर्चा करेंगे। उन सभी कारकों और स्थितियों को जिन पर शिक्षण प्रक्रिया निर्भर करती है चर कहा जाता है। मुख्य शिक्षण चरों में स्वतंत्र परतंत्र और बीच के चर शामिल हैं। शिक्षण की प्रक्रिया के दौरान जो चर व्यवहार में परिवर्तन से गुजरते हैं परतंत्र चर कहलाते हैं। छात्र और उनके व्यवहार में समय समय पर संशोधन होता रहता है शिक्षण प्रक्रिया के द्वारा छात्र और उनके व्यवहार में संशोधन लाया जाता है। एक छात्र का व्यवहार कितना परिवर्तित होता है यह काफी हद तक शिक्षण की प्रकृति और शिक्षक के प्रयासों पर निर्भर करता है। छात्रों का क समय समय पर शिक्षक की इच्छाओं के अनुरूप क्रियाऐं करनी पड़ती हैं। इस प्रकार शिक्षण प्रक्रिया में छात्र को परतंत्र चर की भूमिका निभानी पड़ती है तथा शिक्षक एक स्वतंत्र चर की भूमिका निभाता है शिक्षक के द्वारा परिस्थितियों पर पूर्ण नियंत्रण रखते हुए छात्रों के व्यवहार को प्रभवित किया जाता है।

शिक्षक और छात्र के अलावा उन सभी कारकों यथा पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियाँ और तकनीक ऑडियो विजुअल एड्स आदि को हस्तक्षेपी चर कहा जाता है अर्थात वे स्थितियां जो शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में अपनी भूमिका निभाती हैं । हालांकि ये प्रकृति में बेजान होते हैं लेकिन यह स्वतंत्र चर और परतंत्र चरों के बीच सम्बन्ध बनाते हैं। यह उन्हें अपने अपने कार्य करने के लिए मदद करता है। शिक्षण के कार्यों को निम्न तीन रूपों में विभाजित किया जा सकता है, ये तीन प्रकार निम्नलिखित हैं -

1. **निदानात्मक कार्य -** शिक्षण के मुख्य कार्यों में पढ़ाना और विद्यार्थियों के लिए जानकारी का प्रसार ही नहीं बल्कि छात्रों की समस्याओं का निदान करना है। एक अध्यापक को हर कोण से अपने छात्रों को निदान प्रस्तुत करने के लिए अपने छात्रों की शारीरिक, भावनात्मक बौद्धिक क्षमताओं और कमजोरियों का पता होने के साथ ही शिक्षण विधियों और तकनीकों, शिक्षण सामग्री और सहायक सामग्री आदि का पता होना भी आवश्यक है। इसके साथ ही एक शिक्षक को अपनी क्षमताओं का पता होना भी आवश्यक है।
2. **आदेशात्मक कार्य -** छात्रों का सही से निदान करने के पश्चात शिक्षक का अगला कार्य आदेशात्मक कार्य होता है। वह उनके व्यक्तिगत भेद या सीखने की समस्याओं के अनुसार सुझाव देता है। वह छात्रों की क्षमताए रूचियों और उपलब्ध संसाधनों तथा उपकरणों को धन में रखते हुए विषय वस्तु विधियाँ और तकनीक शिक्षण कौशल और प्रतिपुष्टि आदि के बारे में सुझाव दे सकता है।
3. **मूल्यांकन कार्य** - आदेशात्मक या सुझाव कार्यों के बाद शिक्षक अब मूल्यांकन कार्य करता है। शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया के मूल्यांकन के लिए अलग. अलग मूल्यांकन तकनीकों का उपयोग किया जाता है जैसे लिखित, मौखिक और व्यावहारिक परीक्षण, अवलोकन, साक्षात्कार आदि। इन मूल्यांकन तकनीकों के माध्यम से पूरे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की सफलता या असफलता का मूल्यांकन किया जाता है। यदि शिक्षक द्वारा निर्धारित लक्ष्य और उद्देश्यों को हासिल किया गया है तो यह शिक्षक

द्वारा अपनाये गये निदानात्मक और आदेशात्मक कार्य यही थे। मूल्यांकन यदि शिक्षण के लक्ष्य और उद्देश्यों को हासिल नहीं किया गया है तो यह पता लगाया जाना चाहिए कि गलती कहां हुई। यह नैदानिक या आदेशात्मक कार्यों में उपयोग में भी हो सकती है। यह मूल्यांकन तकनीक शिक्षक और छात्र दोनों के लिए उपयोगी है। शिक्षक को इसके द्वारा यह पता चलता है कि उसे अपनी तकनीकों को बदलने की जरूरत है अथवा नहीं।

उपरोक्त तीन प्रकारों के आधार पर शिक्षण के कार्यों को निम्न बिन्दुओं के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है -

1. शिक्षण का मुख्य कार्य किसी विषय के पक्ष और विपक्ष के बारे में छात्रों को सूचित करना है। एक अच्छे शिक्षक को अपने विषय क्षेत्र में पारंगत होना चाहिये।
2. शुरूआत दिशा और प्रशासन शिक्षण का दूसरा मुख्य कार्य शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का प्रारम्भ करना, निर्देशन करना तथा प्रशासन करना है तथा उस प्रक्रिया में उपस्थित होने वाली बाधाओं के सबंध में समुचित निर्णय लेना है।
3. शिक्षण बच्चों को प्रशंसा, पुनर्बलन तथा अनुकूल वातावरण आदि के सम्बन्ध में सुरक्षा देने का कार्य करता है। हमने कई बच्चों को देखा है जो हमेशा अन्य सहपाठियों से अलग रहते हैं शिक्षक का कार्य है कि यह उनकी समस्याओं का पता लगाये कि अन्य सहपाठियों से उनके अलगाव या अस्वीकृति के पीछे क्या कारण है और उन छात्रों को फिर से जीवन में लाने के लिए संभव समाधान का सुझाव देकर उनकी सहायता करना।
4. मूल्यांकन, रिकॉर्डिंग और रिपोर्टिंग - मूल्यांकन छात्रों की प्रगति के लिए जरूरी है। एक शिक्षक मूल्यांकन के माध्यम से ही अपनी शिक्षण प्रक्रिया के बारे में पता लगा सकता है कि वह सफल था अथवा नहीं।
5. शिक्षण का एक प्रमुख कार्य नैदानिक कार्य है। प्रत्येक कक्षा में ऐसे छात्र होते है जो अपने अधिगम वृद्धि एवं विकास में आशातीत सुधार नहीं कर पाते हैं। एक अच्छा शिक्षक ऐसे छात्रों की समस्याओं का पता लगाकर उन्हें उनकी समस्याओं के समाधान के लिये आवश्यक सुझाव प्रदान करता है।
6. विद्यालय एक लघु समाज होता है। अतः एक अच्छा शिक्षक समाज तथा उससे जुड़ी विभिन्न संस्थाओं के लक्ष्यों को पूरा करते हुए उनके साथ बेहतर सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करता है।
7. शिक्षण का एक और प्रमुख कार्य कक्षा कक्ष सामगी को बेहतर रूप से व्यवस्थित और संगठित करना है। इन सुविधाओं की व्यवस्था परिस्थितियों के अनुरूप की जानी चहिये ताकि छात्र अध्ययन प्रक्रिया में अधिक रूचि ले सकें।
8. बालकों की आवश्यकताओं एवं स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप की विषय वस्तु का चयन एवं पाठ्यक्रम का निर्माण करना भी शिक्षण का एक प्रमुख कार्य है।

9. आधुनिक युग विज्ञान और प्रौद्योगिकी का युग है। इसने एक व्यक्ति के लिए विकास एवं सुविधाओं के साथ ही परेशानियों और तनाव का वातावरण उत्पन्न किया है। एक अच्छा शिक्षण एक बालक को आधुनिक समाज की बदलती परिस्थितियों के लिए खुद को समायोजित करने में भी सहायता प्रदान करता है।
10. बालकों को भावनात्मक स्थिरता प्रदान करना भी शिक्षण का एक प्रमुख कार्य है। जैसा कि हम जानते है कि किशोरावस्था भावनाओं और संवेगों की अवस्था होती है। इन भावनाओं को उचित निर्देशन न मिलने पर ये बालकों को विनाश की ओर ले जाते है। अतः एक अच्छा शिक्षक बालकों की भावनाओं एवं संवेगों को उचित दिशा प्रदान करते हुए उन्हें भावनात्मक स्थिरता प्रदान करता है।

अभ्यास प्रश्न - 4

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. शिक्षण का मुख्य कार्य किसी विषय के ___________ के बारे में छात्रों को सूचित करना है।
2. एक अच्छा शिक्षक ऐसे छात्रों की समस्याओं का पता लगाकर उन्हें उनकी समस्याओं के समाधान के लिये ____________ प्रदान करता है।
3. एक अच्छा शिक्षण एक बालक को आधुनिक समाज की बदलती परिस्थितियों के लिए खुद को _________ करने में भी सहायता प्रदान करता है।

11.7 शिक्षण के सिद्धान्त

शिक्षण व्यवसाय उतना आसान नहीं है जितना कि हम इसे समझते हैं। इसे सफल बनाने के लिये खून, पसीने और आंसूओं की आवश्यकता होती है। किसी विषय को पढ़ाने हेतु विषय विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है जो उस विषय के लक्ष्यों, उद्देश्यों, बालकों की वैयक्तिक भिन्नताओं, विषय एवं छात्रों के अनुरूप शिक्षण विधियों तथा अन्य पारिस्थिकीय प्रभावी कारकों को ध्यान में रखते हुए अध्यापन कराता है। किसी विषय के अध्यापन के लिये अध्यापक को शिक्षण के सिद्धान्तों की आवश्यकता होती है। यह सिद्धान्त अनुभव, अनुसंधान सामान्य परंपराओं एवं बालकों के मनोवैज्ञानिक स्वरूप पर आधारित होते हैं। यह सिद्धान्त शिक्षण को प्रभावी एवं अधिगम को अभिप्रेरित करने का कार्य करते हैं। शिक्षण के इन सिद्धान्तों को दो भागों में बांटा जा सकता है -

1. सामान्य सिद्धान्त
2. मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त

11.7.1 शिक्षण के सामान्य सिद्धान्त

यह वे सिद्धान्त होते हैं जिनके अभ्युदय का आधार अनुभव, अनुसंधान सामान्य परंपराऐं होती हैं। ये सिद्धान्त शिक्षक को सही दिशा प्रदान करते हैं। इनमें से कुछ प्रमुख सामान्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं -

1. **लक्ष्य एवं उद्देश्यों की निश्चितता का सिद्धान्त** - किसी भी शिक्षण की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम उसके लक्ष्य व उद्देश्य निश्चित हों। विषय वस्तु एवं

बालकों की वैयक्तिक भिन्नताओं के आधार पर निश्चित किये गये इन सिद्धान्तों के आधार पर ही शिक्षण विधि एवं अन्य शिक्षण क्रियाओं का चयन किया जाता है। ये सिद्धान्त शिक्षण प्रक्रिया को उद्देश्यपूर्ण बनाते हैं।

2. **नियोजन का सिद्धान्त** - प्रत्येक सफलता के पीछे समुचित नियोजन निहित होता है। एक शिक्षक को प्रभावी शिक्षण के लिये अपने पाठ को प्रस्तुतीकरण से पूर्व समुचित रूप में नियोजित करना चाहिये। नियोजन में विषय वस्तु का चयन, विभाजन एवं पुनरावृत्ति शामिल होती है।
3. **क्रिया (करके सीखना) का सिद्धान्त** - शिक्षक को विषय वस्तु को व्याख्यान विधि की अपेक्षा क्रिया विधि के द्वारा प्रस्तुत किया जाना चाहिये। बालकों द्वारा स्वक्रिया के आधार पर प्राप्त किया गया अधिगम प्रभावी, स्पष्ट, रूचिपूर्ण एवं अधिक समय तक याद रहता है।
4. **वैयक्तिक विभिन्नताओं का सिद्धान्त** - प्रत्येक कक्षा में उपस्थित बालकों की रूचियां, क्षमताऐं, अभिवृत्तियां तथा बुद्धि का स्तर भिन्न होता है। अतः शिक्षक को इन वैयक्तिक भिन्नताओं को ध्यान में रखकर ही विभिन्न शिक्षण विधियों एवं कक्षा कक्ष नीतियों का चयन करना चाहिये।
5. **सहसम्बद्धता का सिद्धान्त** - शिक्षण का उद्देश्य केवल बालकों को विषयों की सूचना प्रदान करना ही नहीं बल्कि उन्हें भावी जीवन में सफल बनाना है। अतः शिक्षक द्वारा प्रदान किया गया ज्ञान उनके वास्तविक जीवन से न केवल सम्बन्धित होना चाहिये बल्कि उनकी वास्तविक जीवन की समस्याओं के समाधान में उनकी सहायता करने वाला होना चाहिये।
6. **लोकतांत्रिकता का सिद्धान्त** - एक अच्छे शिक्षक को बालकों को समान अवसर प्रदान करने चाहिये तथा उनमें जाति, धर्म, भाषा, रंग तथा सामाजिक व आर्थिक स्तर के आधार पर किसी भी प्रकार का भेद भाव नहीं करना चाहिये।
7. **आदर्श प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त** - अक्सर देखा जाता है कि बालक अपने अध्यापकों का अनुकरण करते हैं। अतः शिक्षकों को उनके समक्ष व्यवहार, व्यक्तित्व, ईमानदारी, सत्यता, एवं निष्ठा से सम्बन्धित एक आदर्श स्वरूप प्रस्तुत करना चाहिये।
8. **विकासशीलता का सिद्धान्त** - एक अच्छा शिक्षक बालकों का सर्वांगीण विकास करने वाला होता है। इसके लिये एक अध्यापक को अपनी शिक्षण विधियों एवं नीतियों को आवश्यकतानुसार परिवर्तित एवं सुधार करते हुए बालकों का सर्वांगीण विकास करने वाला होना चाहिये।

11.7.2 शिक्षण के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है ये वे सिद्धान्त होते हैं जिनके अभ्युदय का आधार बालकों की मनोवैज्ञानिक संरचना होती हैं। ये सिद्धान्त शिक्षक को सही दिशा प्रदान करते हैं। इनमें से कुछ प्रमुख मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त निम्नलिखित हैं -

1. **अभिप्रेरणा एवं रूचि का सिद्धान्त** - किसी भी शिक्षण की प्रभावशीलता एवं सफलता शिक्षक एवं छात्र दोनों की अभिप्रेरणा एवं रूचि पर निर्भर करती है। अभिप्रेरणा एवं रूचि किसी भी क्रिया के लिये ऊर्जा प्रदान करती हैं।
2. **पुनरावृत्ति एवं अभ्यास का सिद्धान्त** - किसी भी विषय को लम्बे समय तक याद रखने के लिये उसकी पुनरावृत्ति एवं अभ्यास आवश्यक है। अतः एक अच्छे शिक्षण को बालकों को पुनरावृत्ति एवं अभ्यास के पर्याप्त अवसर प्रदान करने चाहिये।
3. **प्रतिपुष्टि एवं पुनर्बलन का सिद्धान्त** - प्रतिपुष्टि बालकों तथा शिक्षक दोनों को उनकी सफलता एवं असफलता के स्तर से परिचित कराती है। अतः अच्छे शिक्षण के लिये यह आवश्यक है कि वह अपनी सफलता के स्तर की जांच करे तथा आवश्यक क्षेत्रों को पुनर्बलन प्रदान करना चाहिये।
4. **विविधता का सिद्धान्त** - एक जैसी शिक्षण विधियों तथा भाषा के प्रयोग से अध्ययन नीरस एवं उबाऊ हो जाता है जबकि शिक्षण में विविधता कक्षा कक्ष के वातावरण को जीवंतता प्रदान करती है। अतः एक अच्छे शिक्षण के लिये आवश्यक है कि वह शिक्षण के दौरान विभिन्न माध्यमों से विविधताओं का प्रयोग करे।
5. **सृजनात्मककता के विकास का सिद्धान्त** - एक श्रेष्ठ शिक्षक वह होता है जो सृजनात्मकता का विकास करता है। अतः शिक्षण में रटने की प्रवृत्ति के स्थान पर सृजनात्मकता को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये।
6. **सहानुभूति एवं उदारता का सिद्धान्त** - कक्षा कक्ष का कठोर वातावरण छात्रों में भय, कुण्ठा आदि भावों को विकसित कर देता है जिससे वह अधिगम में अनुभव की जाने वाली समस्याओं को अभिव्यक्त नहीं कर पाते हैं। अतः एक श्रेष्ठ शिक्षक के लिये आवश्यक है कि वह छात्रों के प्रति सहानुभूति एवं उदारता का व्यवहार रखे।
7. **पुनर्रचना का सिद्धान्त** - कक्षा कक्ष में नीरसता एवं उबाऊपन को समाप्त कर रूचिपूर्ण वातावरण के निर्माण के लिये सिद्धान्त का पालन किया जाना चाहिये। इसकी सहायता से छात्रों की रूचि एवं अवधान को विषय के प्रति आकर्षित किया जा सकता है।
8. **केन्द्रिक प्रशिक्षण का सिद्धान्त** - अधिगम में इन्द्रियों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। कहा जाता है कि इन्द्रियां अधिगम का द्वार होती हैं। जितनी अधिक इन्द्रियों का प्रयोग किसी विषय के शिक्षण के लिये किया जाता है, उसका अधिगम उतना ही अधिक प्रभावशाली होता है। अतः एक अच्छी शिक्षण - अधिगम प्रक्रिया के दौरान अधिकतम इन्द्रियों का प्रयोग करता है।

अभ्यास प्रश्न - 5

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. शिक्षण के सामान्य सिद्धान्त के अभ्युदय का आधार _______________ होती हैं।
2. शिक्षण के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के अभ्युदय का आधार बालकों की ____________होती हैं।
3. एक श्रेष्ठ शिक्षक के लिये आवश्यक है कि वह छात्रों के प्रति ____________का व्यवहार रखे।

11.8 शिक्षण के चरण

शिक्षण सामाजिक वातावरण में घटित होने वाली एक अत्यंत जटिल प्रक्रिया है। अतः इसे विद्यार्थियों के अधिगम स्तर तक सफल बनाने के लिये इसे एक चरणबद्ध रूप में व्यवस्थित किया जाना चाहिये। जैक्सन के अनुसार शिक्षण के इन चरणों को निम्न तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है -

1) पूर्व क्रियात्मक चरण
2) क्रियात्मक अथवा प्रयोगात्मक चरण
3) परा क्रियात्मक अथवा मूल्यांकन चरण

11.8.1 पूर्व क्रियात्मक चरण -

इसे शिक्षण का नियोजन सम्बन्धी चरण भी कहा जाता है। इस चरण में कक्षा कक्ष में होने वाली शिक्षण क्रिया से पूर्व उस क्रिया को सफल बनाने सम्बन्धी समस्त योजना जैसे - क्या पढ़ाना है?, कैसे पढ़ाना है?, छात्रों को कैसे अभिप्रेरित किया जाये?, कौनसी तकनीकों, शिक्षण विधियों एवं सहायक सामग्री का प्रयोग किया जाना चाहिये? आदि की तैयारी की जाती है।

इस चरण में निम्न गतिविधियों को शामिल किया जा सकता है -

1) **उद्देश्यों का निर्माण** - इस चरण में शिक्षक द्वारा छात्रों के व्यवहारगत परिवर्तनों के रूप में प्राप्त किये जाने वाले उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। यह उद्देश्य शिक्षण को दिशा प्रदान करते हैं। इन उद्देश्यों को छात्रों के प्रविष्टि व्यवहार तथा निकास व्यवहार के रूप में दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।
2) **विषय वस्तु का निर्णय करना** - इस चरण में छात्रों के समक्ष प्रस्तुत की जाने वाली विषय वस्तु का निर्धारण किया जाता है। इस विषय वस्तु का निर्धारण करते समय निम्न बातों का ध्यान रखा जाना आवश्यक है -
    1) छात्रों के लिये प्रस्तावित पाठ्यक्रम की आवश्यकतायें।
    2) छात्रों का प्रविष्टि व्यवहार।
    3) छात्रों का निकास व्यवहार।
    4) छात्रों के लिये उपयुक्त अभिप्रेरणा का स्तर।
    5) विषय वस्तु एवं छात्रों के अनुरूप विभिन्न शिक्षण विधियाँ एवं तकनीकें।

3) **विषय वस्तु का क्रमबद्धीकरण** - विषय वस्तु के चयन के उपरांत उसे एक मनोवैज्ञानिक एवं तार्किक रूप में क्रमबद्ध किया जाता है। जिससे छात्रों में अधिगम का श्रेष्ठ स्थानान्तरण संभव हो सके।

4) **शिक्षण विधियों एवं प्रविधियों का चयन** - इस चरण में विषय वस्तु के क्रमबद्धीकरण के पश्चात उन विधियों एवं प्रविधियों का चयन किया जाता है जिनके प्रयोग द्वारा विषय वस्तु को बेहतर रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

5) **शिक्षण विधियों एवं प्रविधियों का विभाजन** - इस चरण में चयनित शिक्षण विधयों एवं प्रविधियों का विभाजन इस प्रकार किया जाता है, जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि उनका प्रयोग कब, कहां एवं किस प्रकार किया जाना है।

11.8.2 क्रियात्मक क्रियान्विति अथवा प्रयोगात्मक चरण -

इस चरण में वे सभी गतिविधयां शामिल होती हैं जिनका प्रयोग एक शिक्षक कक्षा में प्रवेश करने से लेकर विषय वस्तु के प्रस्तुतीकरण की समाप्ति तक करता है। यह चरण तकनीकि शब्दावली की व्याख्या, सन्देहों के निवारण तथा नवीन सूचनाओं के ग्रहण करने से सम्बन्धित होता है।

इस चरण में निम्न गतिविधियों को शामिल किया जा सकता है -

1) **कक्षा का अनुमान लगाना** - कक्षा कक्ष में प्रवेश करने के कुछ ही पलों में शिक्षक कक्षा में उपस्थित छात्रों के बारे में अनुमान लगा लेता है कि कौन से बालक उसके शिक्षण में सहायक हो सकते हैं तथा कौन से बालक बाधा पहुंचा सकते है। इसके साथ ही बालक भी शिक्षक को देखकर उसके व्यक्तित्व का अनुमान लगा लेते हैं।

2) **अधिगमकर्ताओं का निदान** - शिक्षक कक्षा में उपस्थित छात्रों को देखकर विभिन्न तकनीकों से उनकी क्षमताओं, योग्यताओं, रूचियों, अभिवृत्तियों एवं शैक्षिक स्तर आदि का निदान करता है।

3) **क्रिया एवं प्रतिक्रिया** - छात्रों के निदान के उपरांत अध्यापक विषय वस्तु का छात्रों के समक्ष प्रस्तुतीकरण करता है। इस प्रस्तुतीकरण के दौरान शिक्षक एवं छात्रों में मध्य परस्पर अन्तःक्रिया चलती रहती है। यह अन्तःक्रियाऐं शाब्दिक एवं अशाब्दिक दोनों रूपों में होती है। इन अन्तःक्रियाओं के आधार पर ही शिक्षक प्रेरणा, पुनर्बलन एवं अन्य प्रविधियों का प्रयोग करता है।

11.8.3 परा क्रियात्मक अथवा मूल्यांकनचरण -

प्रयोगात्मक चरण की समाप्ति के साथ ही शिक्षक शिक्षण की सफलता एवं प्रभावशीलता की जांच करता है। इस चरण में वह प्रश्न पूछने जैसी तकनीकों के प्रयोग द्वारा यह सुनिश्चित करता है कि क्या नियोजन के उद्देश्यों को प्राप्त कर लिया गया है अथवा नहीं। इसमें छात्रों का मूल्यांकन करने सम्बन्धी समस्त तकनीकें समाहित होती है।

इस चरण में निम्न गतिविधियाँ शामिल होती हैं -

1) **शिक्षण द्वारा उत्पन्न परिवर्तनों के सटीक क्षेत्रों को परिभाषित करना** - शिक्षक छात्रों के प्रविष्टि व्यवहार एवं निकास व्यवहार की जांच कर यह पता लगाता है कि छात्रों के व्यवहारों में अपेक्षित परिवर्तन हुआ है अथवा नहीं।
2) **समुचित जांच/परख युक्तियों का चयन** - शिक्षक द्वारा छात्रों के व्यवहार में आये परिवर्तनों को मापने के लिये उपयुक्त जांच अथवा परख युक्तियों का चयन किया जाता है। इन युक्तियों के चयन में यह ध्यान में रखा जाता है कि वे वैद्य एवं विश्वसनीय हों।
3) **प्रविधियों में परिवर्तन के सम्बन्ध में साक्ष्यों का संकलन** - शिक्षक प्रयोगात्मक चरण में प्रयुक्त विभिन्न तकनीकों, अनुदेशन प्रक्रियाओं एवं विधियों के पक्ष में साक्ष्यों का संकलन किया जाता है। इन साक्ष्यों के द्वारा ही जाना जाता है कि छात्रों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन हुआ अथवा नहीं। साथ ही यह भी जाना जाता है कि शिक्षक ने छात्रों का सही से निदान किया है अथवा नहीं।

अभ्यास प्रश्न - 6

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. पूर्व क्रियात्मक चरण को ___________ सम्बन्धी चरण भी कहा जाता है।
2. ____________________ चरण में वे सभी गतिविधयां शामिल होती हैं जिनका प्रयोग एक शिक्षक कक्षा में प्रवेश करने से लेकर विषय वस्तु के प्रस्तुतीकरण की समाप्ति तक करता है।
3. परा क्रियात्मक अथवा मूल्यांकन चरण में शिक्षक सुनिश्चित करता है कि ____________ को प्राप्त कर लिया गया है अथवा नहीं।

11.9 व्यवहारवादियों के अनुसार शिक्षण प्रक्रिया

व्यवहारवादियों के अनुसार अधिगम उद्दीपक प्रक्रियाओं द्वारा संचालित व्यवहार परिवर्तन की एक यांत्रिक प्रक्रिया होती है। इस व्यवहार को पुनर्बलन द्वारा सुदृढ़ किया जाता है। व्यवहारवादी शिक्षण प्रक्रिया में बालक को निष्क्रिय प्राणी मानते हैं, जो उद्दीपकों के प्रति प्रतिक्रिया करता है। इस मत के अनुसार बालक एक खाली स्लेट की भांति होता है और उसके व्यवहार को पुनर्बलन द्वारा शिक्षक आकृति देता है। शिक्षण प्रक्रिया एक व्यवहार परिवर्तन की प्रक्रिया होती है, जिसमें धनात्मक व ऋणात्मक पुनर्बलन वांछित व्यवहार की पुनरावृत्ति पर बल देते हैं व दण्ड के द्वारा अवांछित व्यवहार को नियंत्रित किया जाता है।

11.9.1 व्यवहारवादी शिक्षण प्रक्रिया की मान्यताऐं -

व्यवहारवादी परिपेक्ष्य में शिक्षण प्रक्रिया की निम्न मान्यताओं पर बल दिया जाता है -

1) शिक्षण में विषय वस्तु को छोटी - छोटी सूचनाओं में विभाजित करके छात्र/छात्राओं के समक्ष प्रस्तुत करने से अधिगम होता है।

2) निर्देशों का मुख्य आकर्षण अधिगमकर्ता का व्यवहार होता है।

3) शिक्षण में पुनरावृत्ति व संयोजन निहित होते हैं। यह एक यांत्रिक प्रक्रिया होती है।

4) व्यवहारवादी शिक्षक नवीन व्यवहार पर तब तक ध्यान देते हैं जब तक वह व्यवहार स्वचलित नहीं हो जाता है।

5) शिक्षक बालकों के समक्ष उद्दीपक सामग्री प्रस्तुत करके प्रतिक्रिया के लिये प्रोत्साहित करता है तथा बालक इस उद्दीपक के ग्रहणकर्ता के रूप में होता है, जब तक उसमें वांछित व्यवहार स्थायी नहीं हो जाता।

6) शिक्षण प्रक्रिया में छात्रों द्वारा त्रुटियों को अपूर्ण अनुबंधन के रूप में लिया जाता है और इन्हें पुनरावृत्ति एवं अनुबंधन द्वारा कम किया जाता है।

11.9.2 व्यवहार परिवर्तन हेतु शिक्षण प्रक्रिया की व्याख्या -

व्यवहारवादियों के अनुसार शिक्षण का केन्द्र व्यवहार परिवर्तन होता है तथा व्यवहार परिवर्तन हेतु शिक्षण प्रक्रिया को निम्न चरणों में उल्लेखित किया जा सकता है -

1) **वांछित व्यवहार परिवर्तन का स्पष्टीकरण** - यह शिक्षण का प्रथम चरण होता है जिसमें शिक्षक यह सुनिश्चित करता है कि किसी विषय या प्रकरण के शिक्षण - अधिगम के उपरांत छात्रों के व्यवहार में क्या परिवर्तन होंगे व उनका मूल्यांकन कैसे किया जायेगा? इस चरण में शिक्षण के उद्देश्य निर्धारित किये जाते हैं।

2) **धनात्मक/ऋणत्मक शिक्षण अधिगम वातावरण सुनिश्चित करना** - दूसरे चरण में शिक्षण प्रक्रिया हेतु उपयुक्त वातावरण के विकास पर ध्यान दिया जाता है। वातावरण से भय एवं घबराहट जैसे नकारात्मक उद्दीपकों को हटाने के प्रयास किये जाते हैं ताकि बालक शिक्षक द्वारा दिये गये उद्दीपकों को ठीक प्रकार से ग्रहण करके प्रतिक्रिया दे सके।

3) **निर्देशात्मक प्रारूप का विकास** - यह शिक्षण प्रक्रिया का तीसरा महत्वपूर्ण चरण है। इसमें शिक्षक किसी प्रकरण के निर्देश हेतु प्रारूप विकसित करता है। प्रकरण की विषय वस्तु को छोटे - छोटे बिन्दुओं में विभाजित करके उनके प्रस्तुतीकरण पर ध्यान केन्द्रित करता है व उपयुक्त शिक्षण विधियों का चुनाव करता है।

4) **अधिगम क्रियाओं का चयन** - इस चरण में शिक्षक उन क्रियाओं का नियोजन करता है जिनके द्वारा उद्दीपक सामग्री बालकों के समक्ष प्रस्तुत की जानी है। इसी चरण में वह दृश्य - श्रव्य सामग्रियों का चयन व उनके विकास के बारे में भी पहले से ही योजना तैयार कर लेता है।

5) **उपयुक्त पुनर्बलन का चयन** -शिक्षण प्रक्रिया में वांछित व्यवहार को पुनर्बलन द्वारा दृढ़ किया जाता है तो उपयुक्त पुनर्बलन का चयन भी शिक्षण प्रक्रिया का एक अहम चरण होता है। जब कक्षा में कोई बालक सही उत्तर देता है तो वह आन्तरिक रूप से पुनर्बलित होता है व उसको बाह्य पुनर्बलन जैसे - प्रशंसा, पुरूस्कार आदि के द्वारा भी प्रतिक्रिया के लिये

प्रोत्साहित किया जाता हे। पुनर्बलन का चयन उपयोग का समय व तरीके का ज्ञान भी शिक्षक के लिये महत्वपूर्ण है।

6) **शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का वास्तविक संचालन** - इस चरण में शिक्षक द्वारा पूर्व नियोजन के अनुसार शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का वास्तविक संचालन किया जाता है व आवश्यकतानुसार उद्देश्य प्राप्ति के लिये अवश्यक संशोधन भी किये जाते हैं।

7) **मूल्यांकनकरना** - यह शिक्षण प्रक्रिया का अंतिम चरण होता है, जिसमें शिक्षक छात्रों के व्यवहार में हुए परिवर्तनों का मूल्यांकन कर उद्देश्यों की प्राप्ति को सुनिश्चित करता है।

अभ्यास प्रश्न - 7

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. व्यवहारवादी परिपेक्ष्य में शिक्षण में ________को छोटी - छोटी सूचनाओं में विभाजित करके प्रस्तुत करने से अधिगम होता है।
2. निर्देशों का मुख्य आकर्षण ____________ का व्यवहार होता है।
3. व्यवहारवादी शिक्षक नवीन व्यवहार पर तब तक ध्यान देते हैं जब तक वह व्यवहार __________ नहीं हो जाता है।
4. व्यवहारवादियों के अनुसार शिक्षण का केन्द्र __________ होता है
5. शिक्षण प्रक्रिया में __________ को पुनर्बलन द्वारा दृढ़ किया जाता है

11.10 संज्ञानवादी शिक्षण प्रक्रिया -

संज्ञानवादी विचारधारा का मत है कि शिक्षण द्वारा न केवल बालक के व्यवहार में परिवर्तन होता है बल्कि उसके संज्ञानात्मक चिन्तन में भी परिवर्तन होता है। इसीलिये उनका ध्यान बालक की आन्तरिक मानसिक क्रियाओं पर केन्द्रित होता है। संज्ञानवादी इस बात पर अधिक बल देते है कि व्यक्ति अपने वातावरण को समझने के लिये कैसे प्रत्ययों का निर्माण एवं प्रत्यक्षीकरण करता है। संज्ञानवादियों की शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की आधारशिला मानव स्मृति होती है। अगर स्मृति नहीं है तो अधिगम भी नहीं हो सकता है और बिना अधिगम के स्मृति एक खाली पात्र के समान है। बालक के मस्तिष्क की आन्तरिक प्रक्रियाओं को समझना एक चुनौती पूर्ण कार्य होता है इसलिये संज्ञानवादी अपना ध्यान बालक की स्मृति एवं समस्या समाधान पर लगाकर मानसिक प्रक्रियाओं की व्याख्या करते हैं।

11.10.1 संज्ञानवादी शिक्षण प्रक्रिया की मान्यताऐं -

संज्ञानवादी शिक्षण प्रक्रिया निम्न मान्यताओं पर आधारित होती है -

1) संज्ञानवादी शिक्षण प्रक्रिया में सामाजिक - सांस्कृतिक अन्तःक्रियाओं पर बल दिया जाता है। जिसके अन्तर्गत छात्रों और उनके वातावरण के मध्य अर्थपूर्ण सम्बन्ध निहित होते हैं।

2) संज्ञानवादी शिक्षण प्रक्रिया में छात्र निष्क्रिय नहीं होते अपितु वह अपने विचारों एवं व्यवहारों से प्रभावित होकर वातावरण के साथ सउद्देश्य अन्तःक्रिया करते हैं।

3) छात्र स्वचालित यंत्र न होकर विचारपूर्ण व उद्देश्यपूर्ण प्राणी होते हैं। जो अपने वातावरण से अर्थ निकालते हैं।

4) छात्रों को सक्रिय अधिगमकर्ता बनाने के लिये संज्ञानवादी शिक्षण प्रक्रिया में अभिप्रेरणा का महत्वपूर्ण स्थान होता है।

5) अधिगम छात्र की आन्तरिक मानसिक प्रक्रियाओं के साथ अनुकूलन के फलस्वरूप होता है, जिसके द्वारा छात्र नवीन अनुभवों की अनुभूति करते हैं।

11.10.2 संज्ञानवादी शिक्षण प्रक्रिया की व्याख्या -

संज्ञानवादी शिक्षण प्रक्रिया के निम्न प्रमुख चरण होते हैं -

1) **पाठ्यक्रम व विषय सम्बन्धी कार्यों और गतिविधियों का विभेदीकरण** - यह शिक्षण का पहला चरण होता है जिसमें शिक्षक यह सुनिश्चित करता है कि बालकों में सम्पादित कराये जाने वाले कार्य व गतिविधियाँ उनकी बौद्धिक क्षमताओं की आवश्यकताओं के अनुरूप हैं या नहीं। पाठयक्रम को विभिन्न कार्य एवं गतिविधियों में विभाजित करके छात्रों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है ताकि वह उनसे जुड़ सकें। अगर यह कार्य अधिक कठिन होते हैं तो बालकों में असफलता व निराशा की भावना उत्पन्न उत्पन्न हो सकती हैं वहीं सरल कार्य बालकों में बोरियत पैदा कर सकते हैं। इस चरण में यही महत्वपूर्ण है कि जो भी कार्य दिये जायें वह बालकों की बौद्धिक क्षमता से मेल खाते हों ताकि वे कार्यों को चुनौती के रूप में स्वीकार कर सकें। बालकों को अपनी सफलता से प्राप्त प्रेरणा से आगे की शिक्षण प्रक्रिया को बल मिलता है। गतिविधियों का विभेदीकरण भी एक चुनौतीपूर्ण कार्य है, जिसमें शिक्षक का ज्ञान एवं अनुभव महत्वपूर्ण होते हैं। संज्ञानवादी शिक्षण प्रक्रिया में पाठ्यक्रम के विभेदीकरण में निम्न बिन्दुओं का ध्यान रखा जाना चाहिये -

   I) कार्यों में विविधता होनी चाहिये तथा अलग - अलग बौद्धिक क्षमताओं वाले बालकों को उन्हीं के अनुरूप कार्य मिलने चाहिये।

   2) वांछित परिणामों में भी विविधता पर ध्यान देना चाहिये। यद्यपि सभी छात्र एक जैसे कार्यों को करते हैं पर परिणामों का आकलन उनकी बौद्धिक क्षमताओं के अनुरूप ही करना चाहिये।

   3) सहायता के स्तर में विविधता होनी चाहिये। कक्षा में छात्र विभिन्न बौद्धिक क्षमताओं वाले होते हैं। कुछ बालक कार्यों को स्वयं बिना किसी सहायता के पूर्ण करने में सक्षम होते हैं। वहीं कुछ छात्रों को सहायता की आवश्यकता होती है। किस छात्र को कितनी सहायता दी जानी चाहिये, इसका आकलन भी शिक्षक द्वारा किया जाना चाहिये।

2) **शिक्षक छात्र अन्त:क्रिया में पूर्वज्ञान को मचान के रूप में रखते हुऐ नये ज्ञान की रचना करना** - इस चरण में बालकों के विषय अथवा प्रकरण सम्बन्धी पूर्वज्ञान के बारे में

विचार किया जाता है क्योंकि बालक नवीन ज्ञान को पूर्व ज्ञान से जोड़कर ही बेहतर अधिगम कर सकते हैं। विभिन्न अनुसंधान भी इस बात का समर्थन करते हैं।

इस चरण में निम्न बिन्दुओं का ध्यान रखा जाना चाहिये -

1) सामूहिकता को बढ़ावा देना - किसी कार्य को करने के लिये शिक्षक - छात्र एवं छात्रों के समूह को मिल कर कार्य करने को प्रोत्साहन देना चाहिये।
2) पारस्परिक अन्तःक्रिया को बढ़ावा देना - शिक्षण प्रक्रिया में छात्रों व शिक्षक को एक दूसरे के विचारों को सुनना, साझा करना व वैकल्पिक दृष्टिकोण के विकास को बड़ावा दिया जाना चाहिये।
3) कक्षा कक्ष वातावरण सहायक होना चाहिये ताकि बालक स्वतंत्र रूप से व आत्मविश्वास पूर्वक विचारों को स्पष्ट कर सकें।
4) विचारों के संचय पर बल देना चाहिये, जिसमें शिक्षक व छात्र दोनों के विचार शामिल होने चाहिये।
5) शिक्षक छात्र अन्तःक्रिया उद्देश्यपूर्ण होनी चाहिये - शिक्षक को कक्षा में होने वाली अन्तःक्रिया को योजनापूर्ण एवं उद्देश्यपूर्ण दिशा में अग्रसारित करना चाहिये।

3) **मूल्यांकन व पृष्ठपोषण -** इस चरण में शिक्षक यह सुनिश्चित करता है कि उसके द्वारा रचनात्मक, विशिष्ट एवं नैदानिक पृष्ठपोषण का प्रवाह किया गया अथवा नहीं। वह इस चरण में यह पता लगाता है कि बालक की संज्ञानात्मक सोच में कितना परिवर्तन आया है।

अभ्यास प्रश्न - 8

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. संज्ञानवादी शिक्षण प्रक्रिया में सामाजिक - सांस्कृतिक ________ पर बल दिया जाता है।
2. संज्ञानवादी शिक्षण प्रक्रिया में छात्र निष्क्रिय नहीं होते अपितु वह अपने विचारों एवं व्यवहारों से प्रभावित होकर वातावरण के साथ __________ करते हैं।
3. अधिगम छात्र की ___________के साथ अनुकूलन के फलस्वरूप होता है, जिसके द्वारा छात्र नवीन अनुभवों की अनुभूति करते हैं।

11.11 रचनात्मक शिक्षण प्रक्रिया -

संरचनावाद का मत है कि व्यक्ति अपने आस - पास के वातावरण, जिसमें वह रहता है, के बारे में स्वयं ही समझ विकसित करता है, जो कि उसके पूर्व अनुभवों पर आधारित होती है। इस मत के अनुसार बालक में ज्ञान बाहर से नहीं डाला जाता बल्कि वह आत्म चेतना के विकास से ज्ञान का निर्माण करता है। रचनावादी परिपेक्ष्य में अधिगमकर्ता शिक्षण प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाते हुए नवीन ज्ञान को पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित कर प्रत्ययों का निर्माण करता है।

11.11.1 रचनात्मक शिक्षण प्रक्रिया की मान्यताऐं -

रचनात्मक शिक्षण प्रक्रिया की प्रमुख मान्यताऐं निम्न हैं -

1) रचनात्मक शिक्षण में ज्ञान को निर्मित करने को सक्रिय प्रक्रिया माना गया है।
2) रचनात्मक शिक्षण के अनुसार शिक्षक का कार्य छात्रों की ज्ञान निर्माण करने में सहायता करना है।
3) शिक्षकों को छात्रों के पूर्व ज्ञान को आधार मानते हुए विचारोत्तेजक प्रश्नों से शिक्षण प्रक्रिया को आरम्भ करना चाहिये।
4) शिक्षण प्रक्रिया में सामाजिकता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
5) शिक्षण प्रक्रिया में सामाजिक अन्तःक्रिया को भी पर्याप्त स्थान दिया जाना चाहिये क्योंकि यह ज्ञान के निर्माण में सहायक होती है।

11.11.2 रचनात्मक शिक्षण प्रक्रिया की व्याख्या -

रचनात्मक शिक्षण प्रक्रिया की व्याख्या को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है -

1) रचनात्मक शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षक की महत्वपूर्ण पर गौण भूमिका होती है। वह केवल अधिगम के सुगमकर्ता के रूप में कार्य करता है।
2) रचनात्मक शिक्षण प्रक्रिया में छात्रों को पूर्व नियोजित चुनौतीपूर्ण गतिविधियों में व्यस्त किया जाता है। जिसे वह सामूहिक व व्यक्तिगत रूप से पूर्ण करते हैं।
3) अधिगम के समय छात्र प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक अन्तःक्रिया में प्रतिभाग करते हैं, व कार्यों से निष्कर्ष निकाल कर प्रत्ययों का निर्माण करते हैं।
4) रचनात्मक शिक्षण प्रक्रिया में छात्र की प्रगति व कार्य को समाप्त करने की जिम्मेदारी स्वयं उसी की होती है। जिन्हें वह गतिविधियों के उद्देश्यों की प्राप्ति कर के पूरा करता है।
5) रचनात्मक शिक्षण प्रक्रिया में छात्रों में ज्ञान के साथ - साथ विभिन्न सामाजिक कौशलों का विकास भी होता है।
6) समूह द्वारा कोई कार्य करने के उपरांत कक्षा में उस पर सामूहिक चर्चा करवायी जाती है। जिससे छात्र अपने द्वारा निर्मित प्रत्ययों को और भी अधिक गहनता से समझ पाते हैं।
7) रचनात्मक शिक्षण प्रक्रिया में मूल्यांकन भी सामूहिक रूप में किया जाता है।
8) रचनात्मक शिक्षण प्रक्रिया को कक्षा कक्ष में सहकारी अधिगम विधि, अनुभवात्मक अधिगम विधि, सहयोगपूर्ण अधिगम विधि आदि विधियों के सहयोग द्वारा कार्यान्वित किया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न - 9

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. रचनात्मक शिक्षण में ज्ञान को निर्मित करने को __________ माना गया है।

2. रचनात्मक शिक्षण के अनुसार शिक्षक का कार्य छात्रों की ___________करने में सहायता करना है।
3. रचनात्मक शिक्षण प्रक्रिया में छात्रों को पूर्व नियोजित ____________ में व्यस्त किया जाता है। जिसे वह सामूहिक व व्यक्तिगत रूप से पूर्ण करते हैं।

11.13 सारांश

शिक्षण अपने संकीर्ण अर्थ में कक्षा कक्ष में दिया गया परामर्श है तथा व्यापक अर्थ में यह आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। शिक्षण वह प्रक्रिया है जिसमें बालकों को उनके भावी जीवन हेतु तैयार किया जाता है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में प्राप्त अनुभवों का प्रयोग किसी भी बालक द्वारा अपने भावी जीवन में उत्पन्न होने वाली समस्याओं के समाधान हेतु किया जाता है।

शिक्षण एक द्विध्रुवी प्रक्रिया है। किसी भी समय किसी भी व्यक्ति अथवा वस्तु से प्राप्त किया जाने वाला अनुभव है। यह एक त्रिध्रुवीय प्रक्रिया हैए इसके तीन ध्रुव हैं शिक्षक छात्र तथा पाठ्यक्रम। यह एक व्यावसायिक गतिविधि है जिसमें अनुभव परिपक्वता और विषय विशेषज्ञता समाहित होते हैं। यह शिक्षक और छात्र के बीच एक अंतःक्रिया है। यह एक गतिविधि है जो शिक्षार्थियों या विद्यार्थियों की उनके व्यवहार में वांछित परिवर्तन या संशोधन लाने के लिए मदद करती है । शिक्षण नैदानिक और उपचारात्मक है। शिक्षण में संचार कौशल का महत्वपूर्ण स्थान है ।

शिक्षण के कार्यों को निम्न तीन रूपों में विभाजित किया जा सकता है - निदानात्मक कार्य - शिक्षण के मुख्य कार्यों में पढ़ाना और विद्यार्थियों के लिए जानकारी का प्रसार ही नहीं बल्कि छात्रों की समस्याओं का निदान करना है। आदेशात्मक कार्य - छात्रों का सही से निदान करने के पश्चात शिक्षक का अगला कार्य आदेशात्मक कार्य होता है। मूल्यांकन कार्य - आदेशात्मक या सुझाव कार्यों के बाद शिक्षक अब मूल्यांकन कार्य करता है।

किसी विषय के अध्यापन के लिये अध्यापक को शिक्षण के सिद्धान्तों की आवश्यकता होती है। यह सिद्धान्त अनुभव, अनुसंधान सामान्य परंपराओं एवं बालकों के मनोवैज्ञानिक स्वरूप पर आधारित होते हैं। यह सिद्धान्त शिक्षण को प्रभावी एवं अधिगम को अभिप्रेरित करने का कार्य करते हैं। शिक्षण के सामान्य सिद्धान्त वे सिद्धान्त होते हैं जिनके अभ्युदय का आधार अनुभव, अनुसंधान सामान्य परंपराऐं होती हैं। ये सिद्धान्त शिक्षक को सही दिशा प्रदान करते हैं। शिक्षण के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त वे सिद्धान्त होते हैं जिनके अभ्युदय का आधार बालकों की मनोवैज्ञानिक संरचना होती हैं।

शिक्षण सामाजिक वातावरण में घटित होने वाली एक अत्यंत जटिल प्रक्रिया है। अतः इसे विद्यार्थियों के अधिगम स्तर तक सफल बनाने के लिये इसे एक चरणबद्ध रूप में व्यवस्थित किया जाना चाहिये। पूर्व क्रियात्मक चरण - इसे शिक्षण का नियोजन सम्बन्धी चरण भी कहा जाता है। इस चरण में कक्षा कक्ष में होने वाली शिक्षण क्रिया से पूर्व उस क्रिया को सफल बनाने सम्बन्धी समस्त योजना जैसे - क्या पढ़ाना है?, कैसे पढ़ाना है?, छात्रों को कैसे अभिप्रेरित किया जाये?, कौनसी तकनीकों, शिक्षण विधियों एवं सहायक सामग्री का प्रयोग किया जाना चाहिये? आदि की तैयारी की जाती है।

क्रियात्मक क्रियान्विति अथवा प्रयोगात्मक चरण - इस चरण में वे सभी गतिविधियां शामिल होती हैं जिनका प्रयोग एक शिक्षक कक्षा में प्रवेश करने से लेकर विषय वस्तु के प्रस्तुतीकरण की समाप्ति तक करता है। यह चरण तकनीकि शब्दावली की व्याख्या, सन्देहों के निवारण तथा नवीन सूचनाओं के ग्रहण करने से सम्बन्धित होता है।

परा क्रियात्मक अथवा मूल्यांकन चरण - प्रयोगात्मक चरण की समाप्ति के साथ ही शिक्षक शिक्षण की सफलता एवं प्रभावशीलता की जांच करता है। इस चरण में वह प्रश्न पूछने जैसी तकनीकों के प्रयोग द्वारा यह सुनिश्चित करता है कि क्या नियोजन के उद्देश्यों को प्राप्त कर लिया गया है अथवा नहीं। इसमें छात्रों का मूल्यांकन करने सम्बन्धी समस्त तकनीकें समाहित होती है।

व्यवहारवादियों के अनुसार अधिगम उद्दीपक प्रक्रियाओं द्वारा संचालित व्यवहार परिवर्तन की एक यांत्रिक प्रक्रिया होती है। इस व्यवहार को पुनर्बलन द्वारा सुदृढ़ किया जाता है। व्यवहारवादी शिक्षण प्रक्रिया में बालक को निष्क्रिय प्राणी मानते हैं, जो उद्दीपकों के प्रति प्रतिक्रिया करता है। इस मत के अनुसार बालक एक खाली स्लेट की भांति होता है और उसके व्यवहार को पुनर्बलन द्वारा शिक्षक आकृति देता है। शिक्षण प्रक्रिया एक व्यवहार परिवर्तन की प्रक्रिया होती है, जिसमें धनात्मक व ऋणात्मक पुनर्बलन वांछित व्यवहार की पुनरावृत्ति पर बल देते हैं व दण्ड के द्वारा अवांछित व्यवहार को नियंत्रित किया जाता है।

संज्ञानवादी विचारधारा का मत है कि शिक्षण द्वारा न केवल बालक के व्यवहार में परिवर्तन होता है बल्कि उसके संज्ञानात्मक चिन्तन में भी परिवर्तन होता है। इसीलिये उनका ध्यान बालक की आन्तरिक मानसिक क्रियाओं पर केन्द्रित होता है। संज्ञानवादी इस बात पर अधिक बल देते है कि व्यक्ति अपने वातावरण को समझने के लिये कैसे प्रत्ययों का निर्माण एवं प्रत्यक्षीकरण करता है। संज्ञानवादियों की शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की आधारशिला मानव स्मृति होती है। अगर स्मृति नहीं है तो अधिगम भी नहीं हो सकता है और बिना अधिगम के स्मृति एक खाली पात्र के समान है। बालक के मस्तिष्क की आन्तरिक प्रक्रियाओं को समझना एक चुनौती पूर्ण कार्य होता है इसलिये संज्ञानवादी अपना ध्यान बालक की स्मृति एवं समस्या समाधान पर लगाकर मानसिक प्रक्रियाओं की व्याख्या करते हैं।

संरचनावाद का मत है कि व्यक्ति अपने आस - पास के वातावरण, जिसमें वह रहता है, के बारे में स्वयं ही समझ विकसित करता है, जो कि उसके पूर्व अनुभवों पर आधारित होती है। इस मत के अनुसार बालक में ज्ञान बाहर से नहीं डाला जाता बल्कि वह आत्म चेतना के विकास से ज्ञान का निर्माण करता है। रचनावादी परिपेक्ष्य में अधिगमकर्ता शिक्षण प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाते हुए नवीन ज्ञान को पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित कर प्रत्ययों का निर्माण करता है।

11.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न - 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. प्राथमिक, द्वितीयक 2. अधिगम 3. अंतरंग संपर्क

अभ्यास प्रश्न - 2

1. शिक्षक, शिष्य 2. विषय विशेषज्ञता 3. वांछित परिवर्तन।

अभ्यास प्रश्न - 3

1. व्यवस्थित, निश्चित और जानबूझकर 2. सुनियोजित 3. पृष्ठपोषण

अभ्यास प्रश्न - 4

1. पक्ष और विपक्ष 2. आवश्यक सुझाव 3.समायोजित

अभ्यास प्रश्न - 5

1. अनुभव, अनुसंधान सामान्य परंपराऐं 2. मनोवैज्ञानिक संरचना एवं उदारता 3. सहानुभूति

अभ्यास प्रश्न - 6

1. नियोजन 2. क्रियात्मक 3. नियोजन के उद्देश्यों

अभ्यास प्रश्न - 7

1. विषय वस्तु 2. अधिगमकर्ता 3. स्वचलित
4. व्यवहार परिवर्तन 5. वांछित व्यवहार

अभ्यास प्रश्न - 8

1. अन्तःक्रियाओं 2. सउद्देश्य अन्तःक्रिया
3. आन्तरिक मानसिक प्रक्रियाओं

अभ्यास प्रश्न - 9

1. सक्रिय प्रक्रिया 2. ज्ञान निर्माण 3. चुनौतीपूर्ण गतिविधियों

11.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. शिक्षण का अर्थ, प्रकृति, विशेषतायें एवं कार्यों की व्याख्या कीजिये?
2. शिक्षण के सिद्धान्तों एवं शिक्षण के चरणों की व्याख्या कीजिये?
3. व्यवहारवादी, संज्ञानवादी एवं रचनात्मक शिक्षण प्रक्रिया की मान्यताओं पर प्रकाश डालिये?

11.16 संदर्भ ग्रंथ सूची

- माथुर, डा. एस.एस. (1999), समाज मनोविज्ञान, आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।
- सिंह, अरूण कुमार. (1999) समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली।
- वर्मा, डा. रामपाल सिंह.(2006),शिक्षण एवं अधिगम का मनोविज्ञान, आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।
- सारस्वत, डा. मालती.(1999),शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, लखनऊः आलोक प्रकाशन।

- माथुर, डा. एस.एस. (1999), शिक्षा मनोविज्ञान, आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।
- सिंह, अरूण कुमार. (1998), मनोविज्ञान के सम्प्रदाय एवं इतिहास, मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली।
- Solso, R.L. (2001), Cognitive Psychology, Bangalore; Pearson Education.
- Pestonjee, D.M. (2003), Third Handbook of Psychological and Social Instruments (2 vol.) Concept Publishing Company.
- Myers, D. (2011), Social Psychology (English) 10th Edition: McGraw Hill Education (India) Private Limited.

इकाई – 12

अधिगम और शिक्षण में सम्बन्ध

Interrelationship between Learning and Teaching

अधिगम का अर्थ, शिक्षण का अर्थ, अधिगम निर्देशित शिक्षण प्रक्रिया, विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण (जिसमें विद्यार्थी शिक्षण का हृदय हो), शिक्षण एक जटिल संस्था के रूप में, शिक्षण के द्वारा विद्यार्थी के गुणों को बदलना

Meaning of learning, Meaning of teaching, Teaching process directed at learning, Learner centred teaching and that the learner is at the heart of teaching, Teaching as highly complex enterprise, Shaping of learners' attributes by the work of teaching

इकाई की रुपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 अधिगम का अर्थ
12.4 शिक्षण का अर्थ
12.5 अधिगम निर्देशित शिक्षण प्रक्रिया
12.6 विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण
12.7 शिक्षण एक जटिल संस्था के रूप में
12.8 शिक्षण के द्वारा विद्यार्थी के गुणों को बदलना
12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.10 निबंधात्मक प्रश्न
12.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.1 प्रस्तावना

शिक्षा के क्षेत्र में अधिगम तथा शिक्षण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अधिगम तथा शिक्षण दोनों का ही आधार शिक्षा मनोविज्ञान है। चूँकि शिक्षण का मूल एवं अंतिम उद्देश्य अधिगम होता है अतः हम कह सकते हैं कि शिक्षण साधन है एवं अधिगम साध्य है। एक यदि प्रक्रिया है तो दूसरा उसका परिणाम है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि शिक्षण एवं अधिगम में घनिष्ट सम्बन्ध है।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

- अधिगम का अर्थ समझ सकेंगे।
- शिक्षण का अर्थ जान सकेंगे।
- अधिगम निर्देशित शिक्षण प्रक्रिया की व्याख्या कर सकेंगे।
- विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण का उल्लेख कर सकेंगे।
- सांस्कृतिक प्रत्युतरित शिक्षण बता सकेंगे।
- सन्दर्भ युक्त शिक्षण का वर्णन कर सकेंगे।
- शिक्षण एक जटिल संस्था के रूप में लिख सकेंगे।
- शिक्षण के द्वारा विद्यार्थी के गुणों को बदलने की व्याख्या कर सकेंगे।
- विविधता युक्त कक्षा कक्ष में शिक्षण का विश्लेषण-बता सकेंगे।

12.3 अधिगम का अर्थ (Meaning of Learning)

अधिगम को सामान्य भाषा में सीखना कहा जाता है। प्रत्येक व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक कुछ न कुछ सीखता ही रहता है। यह प्रक्रिया हर घड़ी और हर जगह चलती रहती है जिसके द्वारा व्यक्ति नए-नए अनुभव प्राप्त करता है। इन अनुभवों के प्रयोग से वह अपने व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाता है, जिसे हम सीखना या अधिगम कहते हैं।

वुडवर्थ के अनुसार- सीखना, विकास की प्रक्रिया है।

(***Learning is a process of development***)

अधिगम की प्रक्रिया केवल विद्यालयों में ही नहीं होती, वरन व्यक्ति अपने परिवार, समाज, दोस्तों, अपरिचित व्यक्तियों, संस्कृति, सिनेमा आदि से भी थोड़ी या अधिक शिक्षा ग्रहण करता है। इस प्रकार वह नित्यप्रति सीखता है और अपने जीवन में आवश्यक परिवर्तन लाते हुए आगे बढ़ता है।

According to Gates and Others-

"Learning is a process of improvement."

एच. एल. किग्सले ने अधिगम को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "**अभ्यास तथा प्रशिक्षण के फलस्वरूप नवीन तरीके से व्यवहार करने अथवा व्यवहार में परिवर्तन लाने की प्रक्रिया को अधिगम कहते हैं**।"

चार्ल्स ई.स्किनर के अनुसार

"व्यवहार में उत्तरोत्तर अनुकूलन की प्रक्रिया ही अधिगम है।"

(Learning is the process of progressing behaviour adaptation.)

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि मनोवैज्ञानिक अधिगम अथवा सीखने को व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन या व्यवहार का संगठन मानते हैं।

12.4 शिक्षण का अर्थ (Meaning of Teaching)

शिक्षण शब्द अंग्रेजी के Teaching शब्द का हिंदी रूपांतरण है। शिक्षण मुख्य रूप से तीन स्तंभों के मध्य की क्रिया होती है जिसके फलस्वरूप एक निश्चित परिणाम निकल कर आता है। इसमें प्रथम स्तम्भ शिक्षक होता है जिसके पास अपनी योग्यता, गुण, अनुभव और अपना दृष्टिकोण होता है। द्वितीय स्तम्भ विद्यार्थी होता है। इसका कार्य अधिगम होता है जिसके व्यवहार में परिवर्तन होता है। इसके भी अपनी योग्यता, आदर्श आदि होते हैं। तृतीय स्तम्भ पाठ्यक्रम होता है जिसके द्वारा शिक्षक, विद्यार्थियों के व्यवहार में परिवर्तन करता है। इन तीनों स्तंभों के मध्य कक्षा में विचारों के आदान-प्रदान की क्रिया को शिक्षण कहा जाता है।

रायबर्न ने शिक्षण को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है-

"शिक्षण के तीन बिंदु हैं- शिक्षक, विद्यार्थी एवं पाठ्यवस्तु। इन तीनों के बीच सम्बन्ध स्थापित करना ही शिक्षण है। यह सम्बन्ध बालक की शक्तियों के विकास में सहायता प्रदान करता है।"

"There are three focal points in teaching - The Teacher, the child and the subject. Teaching is a relationship which is established between these three. This relationship helps the child to develop his power. "

क्लार्क के अनुसार-

"शिक्षण वह प्रक्रिया है जो विद्यार्थी के व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिए नियोजित तथा संचालित की जाती है।"

"Teaching is an activity which designed and performed to produce change in student behaviour. "

गेज ने शिक्षण को परिभाषित करते हुए लिखा है कि

"शिक्षण पारस्परिक प्रभावों का वह रूप है जिसका उद्देश्य दूसरे व्यक्ति की व्यवहार क्षमताओं में परिवर्तन लाना है।"

"Teaching is a form of inter personal influence aimed at changing the behaviour potential of another person. "

अभ्यास प्रश्न :-1

1. अधिगम को सामान्य भाषा में -------------------- कहा जाता है।
2. वुडवर्थ के अनुसार सीखना, -------------------- की प्रक्रिया है।
3. शिक्षण शब्द अंग्रेजी के --------------------शब्द का हिंदी रूपांतरण है।
4. शिक्षण के तीन बिंदु हैं- शिक्षक, विद्यार्थी एवं ------------------------।
5. गेज के अनुसार शिक्षण दूसरे व्यक्ति की ------------------ ----------में परिवर्तन लाना है।

12.5 अधिगम निर्देशित शिक्षण प्रक्रिया (Teaching process directed at learning)

अधिगम तथा शिक्षण में घनिष्ट सम्बन्ध है। मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु तक नई चीजों को सीखता है और उसके अनुसार अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है। यदि व्यवहार में सुधार को लेकर अधिगम को परिभाषित करें तो हम कह सकते हैं कि "व्यवहारों का परिमार्जन ही अधिगम है।" वही शिक्षण का क्षेत्र अधिगम की तरह व्यापक नहीं है। व्यक्ति शिक्षण के अलावा अपने अनुभव, ज्ञानेन्द्रियों, अनुकरण, अंतर्दृष्टि आदि से भी ज्ञान प्राप्त करता है। उदहारण के लिए बच्चा जन्म के समय पूर्णतः असहाय होता है। वह अपनी प्रत्येक आवश्यकता के लिए अपने माँ- बाप पर निर्भर रहता है। किन्तु समय के साथ वह स्वयं अनुभव द्वारा अपने व्यवहार में परिवर्तन लाता है। जैसे कि जब वह किसी गरम वस्तु को पकड़ने से जलन का अनुभव करता है तो उसे यह अनुभव होता है कि अब वह गर्म चीजों को या तो पकड़ेगा ही नहीं या फिर सावधानी बरतेगा। इसी प्रकार बालक विभिन्न परिस्थितियों से अनुभव प्राप्त करते हुए अपने व्यवहार में परिवर्तन लाता है।

परन्तु शिक्षण में इतनी व्यापकता नहीं है। प्रत्येक शिक्षण से अधिगम हो यह आवश्यक नहीं होता। शिक्षक बच्चे के लिए परिस्थितियां तो उत्पन्न करा सकता है किन्तु किसी चीज बच्चे को जबरदस्ती नहीं सिखा सकता। बच्चे का जो पूर्व अधिगम होता है वह शिक्षण के स्तर तथा गति को प्रभावित करता है। एक शिक्षक को चाहिए कि वह कक्षा के छात्रों के पूर्व अधिगम के आधार पर ही शिक्षण का आयोजन करे और उसी अनुरूप शिक्षण प्रविधियाँ और नीतियां बनाये। इस प्रकार शिक्षण सिद्धांतों का विकास अधिगम सिद्धांतों के आधार पर होता है। अगर देखा जाये तो शिक्षण और अधिगम परिस्थितियों का व्यवस्थीकरण है।

अभ्यास प्रश्न :-2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये |

1. व्यवहारों का परिमार्जन ही -------------------- है।
2. प्रत्येक -------------------- से अधिगम हो यह आवश्यक नहीं होता।
3. बालक विभिन्न परिस्थितियों से अनुभव प्राप्त करते हुए अपने ------------------- में परिवर्तन लाता है।
4. शिक्षण का क्षेत्र ----------------------- की तरह व्यापक नहीं है।
5. शिक्षण सिद्धांतों का विकास ----------------------- के आधार पर होता है।

12.6 विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण

विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण में बालक शिक्षा का केंद्र बिंदु होता है। इसके अंतर्गत बालक की रुचियों, आवश्यकताओं, इच्छाओं, योग्यता, प्रतिभा, कठिनाईयों और व्यक्तित्व से सम्बंधित अन्य भिन्नताओं को ध्यान में रख कर शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। आदर्शवाद में शिक्षा का केंद्र बिंदु शिक्षक होता

था जिसका उद्देश्य बालक के मष्तिष्क में ज्ञान को भरना मात्र था । परन्तु प्रकृतिवादी शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षा के केंद्र में बालक को रखा और उसके सर्वांगीण विकास पर बल दिया । रूसो ने बताया कि शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक और पाठ्यक्रम से अधिक महत्त्वपूर्ण बालक की रुचि, योग्यता, इच्छा, आवश्यकता आदि होती है जिसके अनुसार ही उसे शिक्षा दी जानी चाहिए । रूसो के विचारों का समर्थन करते हुए पेस्टालाजी, फ्रोबेल आदि ने भी बाल केन्द्रित शिक्षा पर बल दिया और शिक्षा में मनोवैज्ञानिक प्रवृति को जन्म दिया ।

आधुनिक समय में शिक्षा प्रणाली बाल केन्द्रित है जिसमें बालक का स्थान प्रमुख है अर्थात ***"शिक्षा बालक के लिए है, बालक शिक्षा के लिए नहीं है ।"*** वर्तमान समय में यह आवश्यक है कि शिक्षक को विषयों के ज्ञान के साथ-साथ बालकों के मनोविज्ञान की भी जानकारी होनी चाहिए । शिक्षक को चाहिए कि वह बच्चों की आवश्यकताओं, रुचियों, मानसिक स्तर, व्यक्तित्य आदि की भी पूरी जानकारी रखे और उसी के अनुसार उन्हें शिक्षा प्रदान करे ।

बाक केन्द्रित शिक्षा के अंतर्गत ऐसी मनोवैज्ञानिक शिक्षण विधियों का निर्माण किया जाता है जिससे बच्चा आसानी से किसी चीज को सीख जाता है । पाठ्यक्रम के निर्माण में भी बालक की व्यक्तिगत भिन्नताओं, मूल्यों और सीखने के सिद्धांतों को मनोवैज्ञानिक आधार बनाया जाता है । रूसो ने बालक के सम्बन्ध में लिखा है कि "***बालक एक ऐसी पुस्तक है जिसे शिक्षक को अद्योपांत पढ़ना पड़ता है*** ।"

अभ्यास प्रश्न :-3

सही विकल्प का चयन करें -

1. विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण में बालक/ शिक्षक शिक्षा का केंद्र बिंदु होता है ।
2. आदर्शवाद में शिक्षा का केंद्र बिंदु शिक्षक/ बालक होता था ।
3. प्रकृतिवादी शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षा के केंद्र में बालक/ पाठ्यक्रम को रखा ।
4. आधुनिक समय में शिक्षा प्रणाली बाल/ शिक्षक केन्द्रित है ।
5. शिक्षक को विषयों के ज्ञान के साथ-साथ बालकों के मनोविज्ञान की जानकारी होनी चाहिए/ नहीं होनी चाहिए ।

12.7 शिक्षण एक जटिल संस्था के रूप में

शिक्षण एक जटिल प्रक्रिया है । शिक्षण साउद्देश्य दी जाने वाली प्रक्रिया है, साथ ही यह कभी- कभी अनजाने में भी दी जाती है । जैसे- कक्षा में जब अध्यापक किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बच्चों को पढ़ाता है, तब इसे साभिप्राय शिक्षण कहा जाता है वहीँ जब बच्चे अपने आस-पास के वातावरण, घर और समाज के रीति-रिवाज, मित्रों आदि से कुछ सीखते हैं तो इसे अनभिप्रेत शिक्षण कहा जाता है । इस प्रकार शिक्षण का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है ।

शिक्षण, शिक्षक तथा विद्यार्थियों के बीच चलने वाली पारस्परिक अंतःक्रिया है जो विद्यार्थियों को एक निश्चित उद्देश्य की ओर ले जाती है । शिक्षण करते समय अध्यापक को विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों का

सामना करना पड़ता है। जैसे कभी भिन्नता की तो कभी नवीन शिक्षण विधियों की। पर एक कुशल अध्यापक वही होता है जो इन कठिनाइयों का निराकरण करते हुए अपना कार्य करते हैं।

12.8 शिक्षण के द्वारा विद्यार्थी के गुणों को बदलना

शिक्षण के द्वारा विद्यार्थियों के गुणों में धीरे- धीरे बदलाव किया जाता है अर्थात शिक्षा काल में सद्गुणों का विकास किया जाता है। इस विकास के द्वारा बालक में सामाजिकता और नागरिकता का विकास होता है। सामान्यतः देखा जाये तो शिक्षण द्वारा विद्यार्थियों में निम्नलिखित गुणों का विकास या बदलाव होता है-

1. शिक्षण के द्वारा विद्यार्थी को उसके जीवन से सम्बंधित उपयोगी ज्ञान प्राप्त होता है।
2. शिक्षण से विद्यार्थी की मानसिक शक्तियों का विकास होता है।
3. विद्यार्थी में संवेदनशीलता का विकास होता है।
4. विद्यार्थी में वातावरण के प्रति समायोजन की क्षमता विकसित होती है।
5. शिक्षण के द्वारा विद्यार्थी में आत्माभिव्यक्ति का विकास होता है जिसके द्वारा वह अपने अनुभव और विचारों को दूसरों के समक्ष प्रस्तुत कर पता है।
6. शिक्षण के द्वारा विद्यार्थी में क्रियात्मक पहलू का विकास होता है।
7. शिक्षण से विद्यार्थी की वैयक्तिक रुचियों का विकास होता है।
8. शिक्षण से विद्यार्थी में आत्मविश्वास तथा आत्मानुभूति की भावना जागृत होती है।
9. विद्यार्थी में सृजनात्मक क्षमता का विकास होता है।
10. शिक्षण द्वारा विद्यार्थी नवीन ज्ञान के लिए प्रेरित होते हैं।
11. शिक्षण विद्यार्थी में पाई जाने वाली पाशविक प्रवृतियों को समाप्त करता है तथा उसमें मानवीय गुणों का विकास करता है।
12. यह विद्यार्थी को उपयोगी और उपयुक्त राह की ओर अग्रसित करता है।

अभ्यास प्रश्न :-4

सही विकल्प का चयन करें -

1. शिक्षा काल में सद्गुणों/दुर्गुणों का विकास किया जाता है।
2. शिक्षण के द्वारा विद्यार्थी में उग्रशीलता / संवेदनशीलता का विकास होता है।
3. शिक्षण विद्यार्थी को उपयोगी/ अनुपयोगी राह की ओर अग्रसित करता है।
4. शिक्षण विद्यार्थी में पाई जाने वाली मानविक/ पाशविक प्रवृतियों को समाप्त करता है।
5. शिक्षण से विद्यार्थी में आत्मविश्वास की भावना जागृत होती/ नहीं होती है।

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न -1

1.सीखना 2. विकास

3. Teaching 4. पाठ्यवस्तु

5. व्यवहार क्षमताओं

अभ्यास प्रश्न -2

1. अधिगम 2. शिक्षण

3. व्यवहार 4. अधिगम

5. अधिगम सिद्धांतों

अभ्यास प्रश्न -3

1. बालक 2. शिक्षक

3. बालक 4. बाल

5. होनी चाहिए

अभ्यास प्रश्न -4

1. सद्गुणों 2. संवेदनशीलता

3. उपयोगी 4. पाशविक

5. होती

12.10 निबंधात्मक प्रश्न

1- अधिगम निर्देशित शिक्षण प्रक्रिया की व्याख्या करें।

2- शिक्षण का केंद्र बिंदु विद्यार्थी होता है। उदाहरण सहित स्पष्ट करें।

3- शिक्षण के द्वारा विद्यार्थी के गुणों में किस प्रकार परिवर्तन होता है ?

4- शिक्षण एक जटिल संस्था है। इस कथन पर अपने विचार व्यक्त करें।

12.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

- चौहान, आर.एस. और अन्य (2001), *शिक्षा एवं शिक्षण सिद्धांत,* आगरा: साहित्य प्रकाशन।
- सिंह, आर. (2009). *अधिगम का मनोविज्ञान,* आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन।
- अग्रवाल, बी.बी. (1996). *आधुनिक भारतीय शिक्षा और समस्याएँ,* आगरा: विनोद पुस्तक मंदिर।
- नोटियाल, जे. *बाल विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया* , आगरा: विनोद पुस्तक मंदिर।

इकाई - 13

शिक्षक के गुण एवं भूमिका

Attributes and Role of Teacher

इकाई रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 शिक्षक के व्यावसायिक गुण

13.4 शिक्षक के व्यक्तिगत गुण

13.5 शिक्षक की ज्ञान के हस्तान्तरण कर्ता के रूप में भूमिका

13.6 शिक्षक की एक आदर्श के रूप में भूमिका

13.7 शिक्षक की सुगमकर्ता के रूप में भूमिका

13.8 शिक्षक की एक मध्यस्थ के रूप में भूमिका

13.9 शिक्षक की एक सह अधिगमकर्ता के रूप में भूमिका

13.10 सारांश

13.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

13.12 निबंधात्मक प्रश्न

13.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

13.1 प्रस्तावना

शिक्षा को दोध्रुवीय और त्रिध्रुवीय प्रक्रिया माना जाता है, और दोनों ही प्रक्रियाओं में शिक्षक एक ध्रुव पर रहता है। शिक्षक के महत्व को शब्दों में व्यक्त करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। प्रस्तुत इकाई में शिक्षक के व्यावसायिक व व्यक्तिगत गुणों पर प्रकाश डालते हुए शिक्षक की विभिन्न भूमिकाओं यथा हस्तान्तरणकर्ता, सुगमकर्ता, मध्यस्थ, सह अधिगमकर्ता आदि के बारे में भी अध्ययन करेंगें

13.2 उद्देश्य

इस इकाई को सम्पन्न करने तथा अध्ययन करने के पश्चात आप को इस योग्य होना चाहिये कि आप -

- शिक्षक के व्यावसायिक गुणों की व्याख्या कर सकेंगे।

- शिक्षक के व्यक्तिगत गुणों का वर्णन कर सकेंगे।
- शिक्षक की अधिगम के हस्तान्तरणकर्ता के रूप में दायित्वों को सूचीबद्ध कर सकेंगे।
- शिक्षक की अधिगम के मध्यस्थ की भूमिका को समझ सकेंगे।
- शिक्षक की अधिगम के सुगमकर्ता के रूप में कार्यों का वर्णन कर सकेंगे।
- शिक्षक को सह अधिगमकर्ता के रूप में समझ सकेंगे।

13.3 शिक्षक के व्यावसायिक गुण

शिक्षण एक कठिन कार्य है। एक अध्यापक का कार्य केवल छात्रों को विषय वस्तु से सम्बन्धित निर्देश देना ही नहीं होता बल्कि छात्रों के विकास हेतु चुनौतीपूर्ण एवं सौहार्दपूर्ण वातावरण का निर्माण करना होता है। एक अच्छा शिक्षण किसी शिक्षक के न केवल ज्ञान एवं कौशलों से सम्बन्धित होता है बल्कि छात्रों के प्रति उसकी अभिवृत्ति, उसके विषय ज्ञान एवं उसके कार्य से भी सम्बन्धित होता है। एक अच्छे शिक्षक के व्यावसायिक गुणों को निम्न बिन्दुओं के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है -

1. **एक अच्छा शिक्षक छात्रों का सम्मान करता है** - एक अच्छे शिक्षक के कक्षा कक्ष में प्रत्येक व्यक्ति के विचारों, भावनाओं एवं मतों को पूर्ण सम्मान दिया जाता है। छात्र अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति में स्वयं को सुरक्षित अनुभव करते हैं।
2. **एक अच्छा शिक्षक कक्षा कक्ष में सामुदायिकता का भाव विकसित करता है** - एक अच्छे शिक्षक के द्वारा कक्षा कक्ष में सहयोगात्मक एवं सौहार्दपूर्ण अधिगम वातावरण का निर्माण किया जाता है।
3. **शिक्षण व्यवसाय एवं छात्रों के प्रति समर्पण भाव** - एक शिक्षक से यही अपेक्षा होती है कि वह अपने कार्य के प्रति समर्पित रहे तथा छात्रों की प्रगति एवं उपलब्धियों की जिम्मेदारी उठाते हुऐ अपना कार्य पूरी निष्ठा से करे।
4. **विषय वस्तु पर स्वामित्व होना** - शिक्षक के द्वारा जिस विषय को पढ़ाया जाता है, उस पर उसकी पकड़ होनी चाहिये। तभी वह शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में छात्रों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देकर उनकी जिज्ञासा को शांत कर सकता है। एक शिक्षक को अपने विषय के अतिरिक्त अन्य विषयों का ज्ञान भी आवश्यक है।
5. **अच्छी योजना बनाने में सक्षम** - केवल अच्छे विषय ज्ञान से ही शिक्षक सफल नहीं हो सकता, शिक्षण के लिये पर्याप्त योजना बनाने की आवश्यकता होती है। यह योजना विषय वस्तु, छात्रों की अवश्यकताओं आदि को ध्यान में रखकर बनानी होती है। अतः एक शिक्षक को स्पष्ट एवं सुसंगठित योजना बनाने में सक्षम होना चाहिये।
6. **कक्षा कक्ष प्रबंधन एवं संगठन** - एक अच्छा शिक्षक शिक्षण के प्रारंभ में ही कक्षा कक्ष का प्रबंधन एवं संगठन छात्रों की यचियों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप करता है ताकि अधिगम के लिये एक अभिप्रेरणा एवं सौहार्द युक्त वातावरण तैयार हो सके।

7. **व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर ध्यान** - शिक्षक को कक्षा में अनेक छात्रों को एक साथ पढ़ाना होता है, जो एक दूसरे से एक अथवा अनेक क्षमताओं में भिन्न होते हैं। एक अच्छा शिक्षक शिक्षण में छात्रों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ध्यान में रखकर शिक्षण की रणनीति बनाता है व उसकी क्रियान्विति करता है ताकि सभी छात्र एक साथ प्रगति कर सकें।
8. **उच्च स्तरीय सम्प्रेषण कौशल** - एक अच्छे शिक्षक के लिये उच्च स्तरीय सम्प्रेषण कौशलों का होना परम आवश्यक है। शिक्षक अपनी सम्प्रेषण क्षमताओं के अनुरूप ही विषय के उद्देश्यों एवं विषय वस्तु को छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करता है। अच्छे सम्प्रेषण से युक्त वातावरण में छात्र रूचिपूर्वक शिक्षक को सुनना पसंद करते हैं।
9. **शिक्षक का आत्मविश्वास -** शिक्षक का आत्मविश्वास उसकी शिक्षण की प्रभावशीलता को प्रभावित करता है। शिक्षक का विषय वस्तु को पढ़ाने का आत्मविश्वास छात्रों द्वारा अर्जित अधिगम के परिणामों को भी प्रभावित करता है। अगर एक शिक्षक अपने विषय से स्नेह नहीं रखता है, तो उसके छात्र भी उस विषय के प्रति रूचि विकसित नहीं कर पाते हैं।
10. **अधिगम के लिये प्रेरणा देना** - शिक्षकों के सन्दर्भ में एक कहावत है -

एक साधारण शिक्षक पढ़ाता है,

एक अच्छा शिक्षक समझाता है,

एक सर्वोच्च शिक्षक अभिप्रेरित करता है।

शिक्षक का प्रमुख उत्तरदायित्व है कि वह छात्रों को सीखने के लिये प्रेरणा दे। यदि शिक्षक इसमें सफल हो जाता है तो उसे अधिगम परिणाम भी बहुत अच्छे प्राप्त होते हैं। एक अच्छा शिक्षक अपने छात्रों की विषय में रूचि विकसित करता है ताकि वह उस विषय के बारे में गहनता से से जानने को उत्सुक हो सकें।

11. **सम्मान, निष्पक्षता एवं समानता की भावना** - एक शिक्षक छात्रों के लिये आदर्श भूमिका में होता है। यदि वह छात्रों को सम्मान देता है तो छात्र भी सम्मानपूर्वक व्यवहार करना सीखते हैं। एक कक्षा में विभिन्न मानसिक क्षमता, धर्म, जाति, लिंग एवं सामाजिक - आर्थिक स्तर के छात्र होते हैं। शिक्षक को उन सभी के प्रति निष्पक्षता एवं समानता की भावना रखनी चाहिये।
12. **शिक्षक के स्वयं का अधिगम विकास** - एक अच्छा शिक्षक हमेशा स्वयं को अधिगमकर्ता की भूमिका में रखता है। वह हमेशा ही सीखने को तत्पर रहता है। एक अच्छा शिक्षक निरंतर अपने विषय सम्बन्धी ज्ञान का नवीनीकरण करता रहता है।

अभ्यास प्रश्न 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. शिक्षक के द्वारा जिस विषय को पढ़ाया जाता है, उस पर उसकी __________ होनी चाहिये।
2. एक शिक्षक को स्पष्ट एवं ____________ योजना बनाने में सक्षम होना चाहिये।
3. शिक्षक का विषय वस्तु को पढ़ाने का _________________ छात्रों द्वारा अर्जित अधिगम के परिणामों को भी प्रभावित करता है।
4. शिक्षक का प्रमुख उत्तरदायित्व है कि वह छात्रों को सीखने के लिये __________ दे।

13.4 शिक्षक के व्यक्तिगत गुण

एक अच्छे शिक्षक के व्यक्तिगत गुणों को निम्न बिन्दुओं के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है -

1. **प्रभावी व्यक्तित्व का स्वामी** - शिक्षक का व्यक्तित्व, जिसमें सभी पक्ष शामिल होते हैं, प्रभावी होना चाहिये। छात्र यदि किसी शिक्षक के व्यक्तित्व से प्रभावित होते हैं तो वे उसके शिक्षण में भी रूचि लेते हैं तथा मन लगाकर अधिगम करते हैं। साथ ही छात्र अपने शिक्षकों का अनुकरण करते हैं। अतः छात्रों के चरित्र निर्माण एवं उनमें श्रेष्ठ सामाजिक गुणों के विकास के लिये भी शिक्षक के व्यक्तित्व का प्रभावी होना आवश्यक है।
2. **शिक्षक में सहानुभूति की भावना होनी चाहिये** - शिक्षक को छात्रो के प्रति सहानुभूति पूर्वक व्यवहार करना चाहिये तभी छात्र शिक्षक के प्रति जुड़ाव महसूस करते हैं तथा अपनी समस्याओं को शिक्षक के साथ साझा करते हैं। शिक्षक के द्वारा छात्रों की इन समस्याओं का निदान प्रस्तुत किया जाना चाहिये।
3. **शिक्षक में बौद्धिक व नैतिक ईमानदारी की भावना होनी चाहिये** - शिक्षक का व्यक्तित्व छात्रों के लिये अनुकरणीय होता है। अतः यह आवश्यक है कि शिक्षक को बौद्धिक व नैतिक रूप से ईमानदार होना चाहिये। यदि उसे छात्र के किसी प्रश्न का उत्तर नहीं आता है तो वह उसे डाटने की अपेक्षा यह स्वीकार करना चाहिये कि अभी उसे इसका उत्तर नहीं आता है परंतु वह इसके बारे में अध्ययन करके छात्रों को इसका उत्तर देगा। इस प्रकार शिक्षक को बौद्धिक व नैतिक रूप से ईमानदारी का प्रदर्शन करना चाहिये।
4. **शिक्षक में अनुकूलन की क्षमता होनी चाहिये** - शिक्षक में परिस्थिति के साथ अनुकूलन की क्षमता होनी चाहिये। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के दौरान प्रकट हुई किसी भी अप्रत्याशित स्थिति या समस्या के अनुरूप ही उसे अपनी पूर्व नियोजित पाठ योजना में परिवर्तन करना आना चाहिये। यदि शिक्षक द्वारा नियोजित विधि से छात्र समझ नहीं पा रहे हों तो उसे छात्रों के अनुरूप नई विधि अपनाने की समझ होनी चाहिये।
5. **छात्रों का ध्यान रखने की क्षमता** - एक अच्छे शिक्षक को अपने छात्रों का ध्यान रखना चाहिये। उसे अपनी कक्षा में बालकों की विभिन्नताओं की जानकारी होनी चाहिये। इन

विभिन्नताओं के अनुसार ही उसे शिक्षण कराना चाहिये ताकि सभी छात्र लाभान्वित हो सकें।

6. **दयालुता की भावना** - एक शिक्षक में दया की भावना का होना परम आवश्यक है। यदि कोई छात्र किसी कारणवश वांछित परिणामों को प्राप्त नहीं कर पाता है तो शिक्षक के लिये आवश्यक है कि वह उसकी समस्याओं का पता लगाकर उनके निदान के लिये तत्पर रहे। यह समस्या विद्यालय अथवा विद्यालय से बाहर से भी सम्बन्धित हो सकती है।
7. **सहकारिता की भावना** - एक अच्छे शिक्षक को छात्र, अभिभावक एवं विद्यालय के अन्य कर्मचारियें के प्रति सहयोग की भावना वाला होना चाहिये ।
8. **सृजनात्मक क्षमता** - एक अच्छे शिक्षक को सृजनात्मक होना चाहिये । उसमें अपने पाठ को आकर्षक एवं अद्वितीय स्वरूप में ढ़ालने की क्षमता होनी चाहिये। उसे अपने छात्रों का विषय वस्तु में ध्यान आकृष्ट करने के लिये नये - नये तरीकों को शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में एकीकृत करना चाहिये ।
9. **दृढ़ निश्चयी** - एक अच्छे शिक्षक को अपने छात्रों को सफलता दिलाने के लिये दृढ़ निश्चयी होना चाहिये । उसे छात्रों की आवश्यकता अनुसार अधिगम अनुभव देने के लिये तैयार होना चाहिये ।
10. **तदानुभूति की भावना** - कक्षा के पिछड़े बालकों की सहायता हेतु शिक्षक को स्वयं को उनके स्थान पर रखकर उनकी समस्याओं से परिचित होकर आवश्यक निदान करना चाहिये। यदि किसी शिक्षक की कक्षा में समस्यात्मक बालक हो तो उसके प्रति भी शिक्षक को तदानुभूति पूर्वक व्यवहार करना चाहिये।
11. **निर्भीकता** - एक अच्छे शिक्षक को निडर एवं निर्भीक होना चाहिये। उसके द्वारा गैर पारंपरिक विधि अपनाने पर उसे अलोचनाओं का शिकार होना पड़ सकता है। एक अच्छे शिक्षक को इन आलोचनाओं की परवाह किये बिना ही अपने छात्रों की अच्छाई एवं सफलता के लिये निरंतर प्रयासरत रहना चाहिये।
12. **उदारता की भावना** - एक अच्छे शिक्षक के स्वभाव में सहिष्णुता का होना भी आवश्यक है। उसे छात्रों की पाठयेत्तर कार्यों एवं विषय वस्तु से पृथक अन्य विषयों में भी सहायता देने के लिये तत्पर रहना चाहिये।
13. **सहिष्णु एवं धैर्यवान** - एक अच्छे शिक्षक को शिक्षण कार्य के दौरान सहनशीलता एवं धैर्य का प्रदर्शन करना चाहिये। उसे वांछित अधिगम परिणामों को प्राप्त करने के लिये पर्याप्त सहनशीलता, धैर्य एवं परिश्रम की आवश्यकता पड़ सकती है।
14. **साधन सम्पन्नता** - अपनी शिक्षण अधिगम गतिविधियों को समृद्ध बनाने के लिये एक अच्छे शिक्षक को साधन संपन्न होना आवश्यक है। उसे किसी भी प्रकरण से सबन्धी छात्रों के वास्तविक जीवन से सम्बन्धी उदाहरण एवं गतिविधियाँ आदि कराने में सक्षम होना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. शिक्षक को छात्रो के प्रति ____________ व्यवहार करना चाहिये तभी छात्र शिक्षक के प्रति जुड़ाव महसूस करते हैं।
2. शिक्षक को __________ व ___________ रूप से ईमानदार होना चाहिये
3. एक अच्छे शिक्षक को _______________ की परवाह किये बिना ही अपने छात्रों की अच्छाई एवं सफलता के लिये निरंतर प्रयासरत रहना चाहिये।
4. अपनी शिक्षण अधिगम गतिविधियों को समृद्ध बनाने के लिये एक अच्छे शिक्षक को ____________ होना आवश्यक है।

13.5 शिक्षक की ज्ञान के हस्तान्तरणकर्ता के रूप में भूमिका

शिक्षक की ज्ञान के हस्तान्तरणकर्ता के रूप में भूमिका प्राचीन काल से ही प्रचलित है। ज्ञान के हस्तां तरण की कला एक पारंपरिक विधि है। इसका केन्द्र बिन्दु पाठ्यक्रम होता है। पारंपरिक रूप में शिक्षण का उद्देश्य छात्रों को तीन प्रमुख कौशलों पढ़ना, लिखना एवं गणना करना में तैयार करना होता है। छात्रों को पाठ्यपुस्तकों में दिये गये तथ्यों और सिद्धान्तों का प्रत्यास्मरण कराया जाता है। पारंपरिक मूल्यां कन की विधियाँ भी यही सुनिश्चित करती हैं कि छात्रों को विभिन्न प्रत्यय किस सीमा तक स्मरण हो गये हैं। पारंपरिक शिक्षण परिस्थिति में शिक्षण को ज्ञान के हस्तां तरण के रूप में ही परिलक्षित किया जाता है। इसमें शिक्षक अपने ज्ञान को छात्रों में विभिन्न विधियों द्वारा हस्तां तरित करता है। आधुनिक युग में ज्ञान के हस्तां तरण की अनेक आलोचनाऐं की जाती हैं। फिर भी एक शिक्षक द्वारा ज्ञान के हस्तां तरण की प्रक्रिया को निम्न परिस्थितियों में अपनाया जाता है।

1. जब शिक्षण के उद्देश्यों का छात्रों को ज्ञान देना हो।
2. जब किन्हीं तथ्यों एवं प्रक्रियाओं की जानकारी देना हो।
3. उन तथ्यों का ज्ञान देने के लिये जिनके सम्बन्ध में छात्रों को किसी भी प्रकार का पूर्व ज्ञान नहीं हो।

ज्ञान के हस्तां तरण में शिक्षण अधिगम में शामिल विभिन्न घटकों के सन्दर्भ में एक शिक्षक की भूमिका को निम्न बिन्दुओं के द्वारा समझा जा सकता है -

1. **ज्ञान का स्वरूप** - ज्ञान के हस्तां तरण में ज्ञान के स्वरूप को ज्ञान के भण्डार के रूप में देखा जाता है। जिसमें कई तथ्य, प्रत्यय एवं सिद्धान्त शामिल होते हैं, जिन्हें शिक्षक कक्षा में छात्रों को बताता है एवं स्मरण करवाता है।
2. **शिक्षण के उद्देश्य** - एक शिक्षक द्वारा ज्ञान के हस्तां तरण अध्यापन कला में पाठ्यक्रम को केन्द्र में रखकर उद्देश्यों का निर्माण किया जाता है।

3. **अधिगम गतिविधियाँ** - ज्ञान हस्तांतरण में शिक्षण की गतिविधियाँ शिक्षक द्वारा नियंत्रित होती हैं। इसमें छात्र निष्क्रिय भूमिका में रहते हैं। इसमें छात्र केवल शिक्षक द्वारा शिक्षक द्वारा दिये गये ज्ञान को ग्रहण कर उसका प्रत्यास्मरण करते हैं।
4. **शिक्षण का स्वरूप** - ज्ञान हस्तांतरण में शिक्षण का स्वरूप यांत्रिक होता है। इसमें शिक्षक उद्दीपक प्रस्तुत करता है तथा छात्र उन प्रस्तुत किये गये उद्दीपकों के प्रति अपनी प्रतिक्रियाऐं करते हैं।
5. **छात्र** - ज्ञान हस्तांतरण अध्यापन कला में छात्रों को खाली पात्र के रूप में देखा जाता है। जिसे शिक्षक अथवा विषय विशेषज्ञ द्वारा ज्ञान से भी दिया जाता है।
6. **कक्षा कक्ष का वातावरण** - ज्ञान हस्तांतरण अध्यापन कला में कक्षा कक्ष का वातावरण कम संवादात्मक होता है। इसमें शिक्षक तथा छात्रों के मध्य एक सीमित रूप में ही अन्तःक्रियाऐं परिलक्षित होती हैं।

ज्ञान के हस्तांतरणकर्ता के रूप में ज्ञान के हस्तांतरण की प्रक्रिया में एक शिक्षक द्वारा निम्न क्रियाऐं की जाती हैं -

1. **शिक्षण के लिये योजना तैयार करना** - ज्ञान हस्तांतरण के लिये सर्वपंथम शिक्षक द्वारा एक योजना तैयार की जाती है। जिसमें शिक्षण के उद्देश्य स्पष्ट किये जाते हैं, विषय वस्तु का विश्लेषण कर प्रकरण का चुनाव किया जाता है, शिक्षण विधि का चुनाव किया जाता है, तथा उद्देश्यों की प्राप्ति को सुनिश्चित कराने हेतु मूल्यांकन प्रविधियों के बारे में भी योजना बनाई जाती है।
2. शिक्षण बिन्दु के अनुसार तथ्यों की जानकारी छात्रों को दी जाती है तथा तथ्यों को स्पष्ट करने के लिये दृष्टांतों व उदाहरणों की सहायता ली जाती है।
3. शिक्षक द्वारा समय - समय पर छात्रों से प्रश्न पूछे जाते हैं। छात्रों द्वारा इन प्रश्नों के दिये गये उत्तर सही है अथवा नहीं, इसके सम्बन्ध में प्रतिपुष्टि भी प्रदान की जाती है।
4. प्रदर्शन विधि का उपयोग कर विभिन्न कौशलों एवं प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान की जाती है।
5. शिक्षक द्वारा छात्रों के लिये ज्ञान के अभ्यास करने हेतु उन्हें पर्याप्त अवसर भी उपलब्ध करवाये जाते हैं।
6. नवीन ज्ञान को छात्रों के समक्ष बार -बार दोहराया जाता है।
7. शिक्षक ज्ञान के विशेषज्ञ के रूप में कार्य करते हैं, जो छात्रों के व्यवहार में तथ्यों के ज्ञान द्वारा वांछित परिवर्तन लाने का प्रयास करते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते है कि छात्रों को भावी जीवन में सफल बनाने एवं वास्तविक रूप में उनका सर्वांगीण विकास करने के लिये तथा सूचना के विस्फोट एवं पाठ्यक्रम के विस्तार को देखते हुए ज्ञान हस्तांतरण में एक शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वर्तमान में जहां छात्र शिक्षक अनुपात मानकों से कहीं अधिक है वहां ज्ञान निर्माण पर पूरी तरह निर्भर रह कर छात्रों को वांछित परिणामों तक नहीं

पहुंचाया जा सकता है। इसलिये यह आवश्यक है कि एक शिक्षक द्वारा ज्ञान के हस्तांतरण को और अधिक संवादात्मक एवं तकनीक से समृद्ध बनाकर अधिगम कराया जाना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न 3

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. शिक्षक द्वारा ज्ञान के हस्तांतरण की प्रक्रिया को जब किन्हीं ________________ की जानकारी देना हो अपनाया जाता है।
2. ज्ञान के हस्तांतरण में ज्ञान के स्वरूप को ____________ के रूप में देखा जाता है।
3. ज्ञान हस्तांतरण में शिक्षण की गतिविधियाँ __________ नियंत्रित होती हैं।

13.6 शिक्षक की एक आदर्श के रूप में भूमिका

शिक्षक केवल एक कक्षा कक्ष निर्देशक न होकर एक लघु समाज के प्रतिनिधि के रूप में होता है, जिसका उत्तरदायित्व बालकों को में श्रेष्ठ सामाजिक गुणों का विकास करते हुए उन्हें समाज के श्रेष्ठ नागरिक के रूप में विकसित करना होता है। बालक एक शिक्षक से प्रभावित होकर न केवल उसके निर्देशों का पालन करते हैं बल्कि व्यावहारिक जीवन में उसके जीवन चरित्र, उसकी आदतों एवं उसके व्यवहारों का भी अनुकरण करते हैं। अतः शिक्षक को न केवल मौखिक रूप में बल्कि अपने चरित्र से भी बालकों के समक्ष एक आदर्श का प्रदर्शन करता चाहिये। उसे बालकों के समक्ष सदैव श्रेष्ठ सामाजिक एवं नागरिक गुणों का प्रदर्शन करना चाहिये। एक आदर्श व्यक्ति वह होता है सि हम सराहते है तथा उसी के जैसा बनने की चाह रखते हैं। एक आदर्श के रूप में एक अच्छा शिक्षक अपने बालकों को प्रेरित करता है कि वह उसी के अनुरूप व्यवहार का प्रदर्शन करें।

एक आदर्श के रूप में एक शिक्षक की भूमिका को निम्नलिखित बिन्दुओं के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है -

1. **श्रेष्ठ सामाजिक गुणों का प्रदर्शन करना** - एक आदर्श के रूप में एक शिक्षक को श्रेष्ठ सामाजिक गुणों का प्रदर्शन करना चाहिये। उसे अपने नैतिक एवं चारित्रिक रूप से एक अनुकरणात्मक व्यवहार का प्रदर्शन करना चाहिये। उसे बालकों के समक्ष सच्चाई, ईमानदारी, दया, परोपकार, सहानुभूति, सर्व धर्म समभाव, परिश्रम एवं कर्तव्य निष्ठा जैसे सामाजिक गुणों का प्रदर्शन करना चाहिये तथा बालकों में भी ऐसे ही श्रेष्ठ सामाजिक गुणों के विकास हेतु निरंतर प्रयासरत रहना चाहिये।
2. **अपने व्यवहार को नियंत्रित करना** - अगर शिक्षक बालकों का आदर्श है तो वह हमेशा उसका अवलोकन एवं अनुकरण करते हैं। ऐसे में शिक्षक को अपने व्यवहार छात्रों में विकसित किये जाने वाले वांछित गुणों के अनुरूप ही नियंत्रित करना चाहिये तथा प्रयास करना चाहिये कि बालकों के समक्ष किसी भी व्यभिचार युक्त व्यवहार का प्रदर्शन न होने पाये।

3. **छात्रों को अपनी चिन्तन प्रक्रिया से अवगत कराना** - शिक्षक को छात्रों के समक्ष अपनी चिन्तन प्रक्रिया को स्पष्ट करना चाहिये जैसे वह क्या सोचता है, कैसे सोचता है, किसी समस्या को कैसे हल करता है व किस प्रकार निष्कर्षों को प्राप्त करता है। इस प्रक्रिया से वह छात्रों में निर्णय लेने के कौशल का विकास कर सकता है।
4. **छात्रों को प्रेरित करना** - एक आदर्श के रूप में एक शिक्षक को अपने छात्रों को अभिप्रेरित करना चाहिये क्योंकि प्रेरणा से बड़ा और कोई उद्दीपक एवं अधिगम नहीं होता है। एक सही रूप से अभिप्रेरित व्यक्ति किसी भी प्रकार का अधिगम करने एवं किसी भी समस्या का स्वयं से समाधान करने में सक्षम होता है।
5. **अपने मूल्यों के समुच्चय का प्रदर्शन** - एक आदर्श के रूप में एक शिक्षक को अपने छात्रों में उच्च मूल्यों के विकास के लिये अपने जीवन के मूल्यों के समुच्चय का प्रदर्शन करना चाहिये, जिसे देखकर छात्रों के द्वारा भी अपने लिये वैसे ही श्रेष्ठ सामाजिक एवं चारित्रिक मूल्यों का निर्माण कर लिया जाता है।

अभ्यास प्रश्न 4

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. एक आदर्श के रूप में एक शिक्षक को श्रेष्ठ ______________ प्रदर्शन करना चाहिये।
2. शिक्षक को अपने व्यवहार छात्रों में विकसित किये जाने वाले वांछित गुणों के अनुरूप ही _________ करना चाहिये।
3. शिक्षक को छात्रों के समक्ष अपनी चिन्तन प्रक्रिया को स्पष्ट करना इस प्रक्रिया से वह छात्रों में _________ का विकास कर सकता है।

13.7 शिक्षक की सुगमकर्ता के रूप में भूमिका

आधुनिक शिक्षण कला में एक शिक्षक की भूमिका एक निर्देशक एवं नियंत्रक के रूप में न होकर एक परामर्शदाता एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के सुगमकर्ता के रूप में होती है। एक परामर्शदाता एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के सुगमकर्ता के रूप में शिक्षक को छात्रों में ज्ञान निर्माण एवं समझ का विकास करना होता है। आधुनिक परिवेश में संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के विकास के साथ यह माना जाने लगा है कि जीवन में उपस्थित होने वाली समस्याओं के लिये रटा हुआ ज्ञान ही आवश्यक नहीं है वरन् छात्रों में उस ज्ञान की समझ होना भी आवश्यक है। तभी वे उस ज्ञान का प्रयोग करने में सक्षम हो सकते हैं। इसीलिये आधुनिक शिक्षण अधिगम विधि अधिगम के साथ बोध के विकास पर बल देती है। यह तर्क एवं चिन्तन से भी सम्बन्धित होती है।

एक परामर्शदाता एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के सुगमकर्ता के रूप में एक अध्यापक की भूमिका को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है -

1. एक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के सुगमकर्ता के रूप में शिक्षक द्वारा ज्ञान के निर्माण में ज्ञान के स्वरूप को प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है। जिसमें शिक्षक छात्रों को चिन्तन एवं तर्क

आदि के प्रयोग द्वारा अपने पूर्व ज्ञान एवं अनुभव के आधार पर ज्ञान के निर्माण का प्रशिक्षण देता है।

2. एक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के सुगमकर्ता के रूप में शिक्षक द्वारा छात्रों के वास्तविक जीवन, उनकी आवश्यकताओं एवं रूचियों को ध्यान में रख कर उद्देश्यों का निर्माण किया जाता है।
3. एक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के सुगमकर्ता के रूप में शिक्षक द्वारा छात्र केन्द्रित अधिगम गतिविधियों का आयोजन किया जाता है। इसमें छात्र ज्ञान के साथ सक्रिय रूप में अन्तःक्रिया करके प्रत्यय का निर्माण एवं ज्ञान के बोध का विकास करते हैं।
4. एक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के सुगमकर्ता के रूप में शिक्षक द्वारा प्रदान किये जाने वाले शिक्षण का स्वरूप सर्वांगी होता है। इसमें छात्रों द्वारा अधिकतम ज्ञानेन्द्रियों का प्रयोग कर उन्हें ज्ञान निर्माण के लिये प्रोत्साहित किया जाता है। जहां शिक्षण का यांत्रिक स्वरूप दिखाने एवं बताने पर बल देता है वहीं सर्वांगी स्वरूप अनुभव द्वारा अधिगम, करके सीखना एवं खोज द्वारा अधिगम पर बल देता है।
5. एक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के सुगमकर्ता के रूप में शिक्षक द्वारा यह माना जाता है कि छात्रों के पास अपने वातावरण सम्बन्धी पूर्वज्ञान एवं पूर्व अनुभव होता है, जिन्हें आधार बना कर ही वह नवीन ज्ञान की रचना करता है।
6. एक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के सुगमकर्ता के रूप में शिक्षक द्वारा निर्मित एवं संरचित कक्षा कक्ष प्रचुर संवादात्मक तकनीक पर आधारित होता है। जिसमें छात्रों में परस्पर एवं छात्रों की शिक्षक के साथ नियमित रूप से अन्तःक्रियाऐं चलती ही रहती हैं।

एक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के सुगमकर्ता के रूप में शिक्षक को एक साथ निम्न क्रियाओं का प्रबंधन करना होता है -

1. समूह
2. गतिविधियाँ
3. अधिगम

इस प्रकार के शिक्षण अधिगम वातावरण में शिक्षक अधिगम के सुगमकर्ता की तरह कार्य करता है। जो समूह चर्चा को प्रारंभ करता है, विचारजन्य प्रश्न पूछता है, प्रक्रिया और कार्यों का निर्देशन करता है और छात्रों की सक्रिय सहभागिता को सुनिश्चित करता है। एक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के सुगमकर्ता के रूप में शिक्षक को अधिगम प्रक्रिया में कई तरह से व्यवहार करने पड़ते हैं। जिनके अलग - अलग उद्देश्य होते हैं। इसलिये एक शिक्षक को कई प्रकार की भूमिकायें अपनानी पड़ती हैं।

एक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के सुगमकर्ता के रूप में शिक्षक की कुछ प्रमुख व्यवहारों को निम्न बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है -

1. एक निर्देशक के रूप में छात्रों को निर्देश देने की भूमिका।
2. एक परामर्शदाता के रूप में छात्रों को समस्या समाधान एवं परामर्श देने की भूमिका।
3. एक मित्र के रूप में छात्रों से मिलकर उन्हें सहज बनाने की भूमिका।

4. एक पक्षपात रहित व्यक्ति के रूप में समूह के सदस्यों को स्वतंत्र रूप से कार्य करने के लिये प्रोत्साहन करना।
5. एक प्रबंधक के रूप में सामूहिक गतिशीलता का प्रबंध करने की भूमिका।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के सुगमकर्ता के रूप में एक शिक्षक किसी मंच के संचालक की तरह होता है। जिसका उत्तरदायित्व छात्रों द्वारा किये जाने वाले कार्यों एवं गतिविधियों के लिये आवश्यक तैयारी करना होता है। इन गतिविधियों के प्रदर्शन के दौरान वह एक कोने में खड़ा रहकर इनका अवलोकन करता है तथा आवश्यक निर्देश एवं सुझाव देता है तथा इनकी समाप्ति पर वह निष्कर्षों का प्रस्तुत करता है।

अभ्यास प्रश्न 5

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. सुगमकर्ता के रूप में शिक्षक छात्रों को _____________ आदि के प्रयोग द्वारा अपने पूर्व ज्ञान एवं अनुभव के आधार पर ज्ञान के निर्माण का प्रशिक्षण देता है।
2. सुगमकर्ता के रूप में शिक्षक द्वारा ____________ अधिगम गतिविधियों का आयोजन किया जाता है।
3. सुगमकर्ता के रूप में शिक्षक द्वारा प्रदान किये जाने वाले शिक्षण का स्वरूप __________ होता है।

13.8 शिक्षक की एक मध्यस्थ के रूप में भूमिका -

एक मध्यस्थ की भूमिका में शिक्षक शिक्षण अधिगम के लिये एक पृष्ठभूमि अथवा एक आधार का निर्माण करता है। छात्र जिस वातावरण में अन्तःक्रिया करता है, शिक्षक उसी वातावरण में कुछ चीजें एकत्रित करता है। जो छात्रों के लिये उद्दीपक के रूप में कार्य करती हैं व उसकी चिन्तन प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में एक मध्यस्थ के रूप में एक शिक्षक की भूमिका को निम्न रूप में सारगर्भित किया जा सकता है -

1. शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में एक मध्यस्थ के रूप में एक शिक्षक छात्रों के लिये खोज करने की स्थितियों को प्रकट करता है। इसमें शिक्षक के द्वारा कक्षा कक्ष में बालकों के समक्ष कुछ ऐसी समस्याओं को प्रस्तुत किया जाता है जिनको छात्रों को खोज करके एवं निष्कर्ष निकाल कर हल करना होता है।
2. कक्षा के भैतिक वातावरण को आकर्षक, मनलुभावन एवं रोमांचक बनाता है ताकि छात्र सीखने व चिन्तन करने के लिये तत्पर हो सकें।
3. शिक्षक छात्रों से वह क्या ढूढ़ रहे के सम्बन्ध में समय - समय पर जानकारी लेता है ताकि वह उनकी चिन्तन प्रक्रिया के बारे में अवगत हो सके तथा उन्हें निर्देशित कर सके।
4. जटिल समस्याओं को परिभाषित करने में छात्रों की सहायता करता है।

5. छात्रों को खोजकर्ता, कलाकार, डिजाइनर, शिकारी आदि की रचनात्मक भूमिकाओं में स्थान देता है।
6. शिक्षक छात्रों को नवीन एवं विचित्र स्थितियों में उनके द्वारा प्राप्त किय गये अधिगम के मूल्यांकन करने के लिये पर्याप्त अवसर प्रदान करता है।
7. बुनियादी मानव गतिविधियों में से शिक्षण उपयोगी सामग्री का चयन करता है तथा इन्हें ज्वलंत एवं आकर्षक विषय वस्तु रूप में ढाल देता है।
8. शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में एक मध्यस्थ के रूप में एक शिक्षक किसी भी कौशल के प्रदर्शन के लिये सबसे अच्छा प्रतिमान स्थापित करता है।
9. छात्रों के पूर्व अनुभवों को आधार बनाते हुए नवीन अनुभवों को समृद्धता एवं विविधता प्रदान करता है।
10. शिक्षक छात्रों के बहुसंवेदी अनुभवों का स्वाभाविक रूप से प्रयोग करने के अवसर प्रदान करता है।
11. छात्रों से खुले प्रश्न पूछता है ताकि उनके अपसारी चिन्तन का विकास हो सके।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में एक मध्यस्थ के रूप में एक शिक्षक छात्रों एवं अधिगम वातावरण के मध्य एक योजक कड़ी के रूप में कार्य करता है। वह शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के एक सुचालक की तरह होता है, जो छात्रों द्वारा अधिगम प्राप्त किये जाने के लिये अधिगम वातावरण का निर्माण एवं उसका निर्देशन करता है।

अभ्यास प्रश्न 6

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. एक मध्यस्थ के रूप में एक शिक्षक छात्रों के लिये __________ करने की स्थितियों को प्रकट करता है।
2. शिक्षक कक्षा के ________________ को आकर्षक, मनलुभावन एवं रोमांचक बनाता है ताकि छात्र सीखने व चिन्तन करने के लिये तत्पर हो सकें।
3. शिक्षक छात्रों को नवीन एवं विचित्र स्थितियों में उनके द्वारा प्राप्त किय गये अधिगम के _____________करने के लिये पर्याप्त अवसर प्रदान करता है।
4. शिक्षक छात्रों के _________________ अनुभवों का स्वाभाविक रूप से प्रयोग करने के अवसर प्रदान करता है।

13.9 शिक्षक की एक सह अधिगमकर्ता के रूप में भूमिका -

अधिगम अपने विस्तृत अर्थ में कक्षा कक्ष में चलने वाली प्रक्रिया न होकर एक आजीवन चलने वाली प्रक्रिया होती है। जहां हर व्यक्ति प्रति पल अपने वातावरण से कुछ न कुछ ग्रहण करता रहता है। इसके अनुसार ज्ञान एक असीमित स्वरूप लिये होता है, जिसे एक निश्चित कालांतर में प्राप्त करना किसी भी व्यक्ति के लिये असंभव कार्य होता है। अतः किसी भी व्यक्ति का ज्ञान उसके जीवन के किसी भी स्तर पर

पूर्ण नहीं होता है। उसमें सदैव नवीन ज्ञान को जोड़ने एवं पूर्व ज्ञान को संशोधित करने की आवश्यकता बनी रहती है। नित्य प्रति हो रहे नवीन आविष्कारों एवं सूचनाओं के विस्तारीकरण के कारण ऐसा करना और भी आवश्यक हो जाता है।

एक शिक्षक भी इसका अपवाद नहीं है। एक अच्छा शिक्षक वही कहलाता है जो समय के अनुसार अपने ज्ञान को परिवर्तित एवं नवीन ज्ञान को पूर्व ज्ञान में समाहित करते हुए अपने ज्ञान को अद्यतन बनाये रखता है। एक सह अधिगमकर्ता के रूप में शिक्षक का मुख्य उद्देश्य छात्रों को स्व अधिगम के लिये प्रेरित करना होता है। एक छात्र जब अपने अध्यापक को अपने सह अधिगमकर्ता के रूप में देखता है तो वह आन्तरिक रूप से अभिप्रेरित होकर उसके साथ मिलकर ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में शामिल होता है।

एक सह अधिगम कर्ता के रूप में एक शिक्षक छात्रों की वास्तविक मानसिक योग्यताओं एवं क्षमताओं से बेहतर रूप से परिचित होता है। उसे छात्रों की अधिगम स्थितियों का ज्ञान होता है तथा वह यह समझ पाता है कि कौन या छात्र किन परिस्थितियों में बेहतर अधिगम प्राप्त कर पाता है। एक सह अधिगमकर्ता के रूप में कार्य कर पाने से शिक्षक को छात्रों की अधिगम गति का ज्ञान होता है।

एक सह अधिगमकर्ता के रूप में शिक्षक के लिये यह आवश्यक है कि वह यह समझे कि इस प्रक्रिया में उत्पन्न होने वाला समस्त ज्ञान महत्वपूर्ण होता है। ज्ञान का स्त्रोत केवल शिक्षक न होकर छात्र भी हो सकते हैं। शिक्षक एवं छात्र दानों की ही भूमिका आपस में हस्तांतरित होती रहती है। इस प्रक्रिया में ज्ञान का स्वरूप अन्योन्य होता है। इस प्रक्रिया के द्वारा प्राप्त किये जाने वाले अधिगम का स्वरूप सामाजिक एवं व्यक्तिगत दोनों प्रकार का होता है।

शिक्षक के एक सह अधिगमकर्ता के रूप में कार्य करने से छात्र तथा अध्यापक दोनों आपस में जुड़ाव अनुभव करते है। छात्रों एवं शिक्षक के मध्य परस्पर विश्वास की भावना का जन्म होता है।

एक सह अधिगमकर्ता के रूप में कार्य करते समय शिक्षक को अपनी शक्तियों को छात्रों में वितरित कर देना चाहिये क्योंकि यह एक छात्र सशक्तिकरण की प्रक्रिया है। इसमें छात्रों में शिक्षक के साथ मिलकर कार्य करने से उनकी मानसिक एवं चिन्तनात्मक शक्तियों का विकास होता है। मिलकर कार्य करने से छात्रों में प्रेम, करूणा, सहयोग, दया, परोपकार, सहनशीलता आदि श्रेष्ठ सामाजिक गुणों का विकास होता है।

एक सह अधिगमकर्ता के रूप में एक अध्यापक की भूमिका एक सुगमकर्ता की होती है। वह छात्रों के लिये एक मंच सजाने वाले की तरह होता है। जिस पर छात्र अपनी क्रियाऐं करते हैं। एक सह अधिगमकर्ता के रूप में एक अध्यापक के द्वारा छात्रों को क्रिया कारने की पूर्ण स्वतंत्रता के साथ की उन्हें कार्य करने के अधिकतम अवसर प्रदान करने चाहिये।

13.10 सारांश

शिक्षण एक कठिन कार्य है। एक अध्यापक का कार्य केवल छात्रों को विषय वस्तु से सम्बन्धित निर्देश देना ही नहीं होता बल्कि छात्रों के विकास हेतु चुनौतीपूर्ण एवं सौहार्दपूर्ण वातावरण का निर्माण करना

होता है। एक अच्छा शिक्षण किसी शिक्षक के न केवल ज्ञान एवं कौशलों से सम्बन्धित होता है बल्कि छात्रों के प्रति उसकी अभिवृत्ति, उसके विषय ज्ञान एवं उसके कार्य से भी सम्बन्धित होता है।

एक अच्छे शिक्षक के कक्षा कक्ष में प्रत्येक व्यक्ति के विचारों, भावनाओं एवं मतों को पूर्ण सम्मान दिया जाता है। एक अच्छे शिक्षक के द्वारा कक्षा कक्ष में सहयोगात्मक एवं सौहार्दपूर्ण अधिगम वातावरण का निर्माण किया जाता है। एक शिक्षक से यही अपेक्षा होती है कि वह अपने कार्य के प्रति समर्पित रहे तथा छात्रों की प्रगति एवं उपलब्धियों की जिम्मेदारी उठाते हुऐ अपना कार्य पूरी निष्ठा से करे। शिक्षक के द्वारा जिस विषय को पढ़ाया जाता है, उस पर उसकी पकड़ होनी चाहिये। तभी केवल अच्छे विषय ज्ञान से ही शिक्षक सफल नहीं हो सकता, शिक्षण के लिये पर्याप्त योजना बनाने की आवश्यकता होती है।

एक अच्छे शिक्षक के व्यक्तिगत गुणों को निम्न बिन्दुओं के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है - प्रभावी व्यक्तित्व का स्वामी, शिक्षक में सहानुभूति की भावना होनी चाहिये, शिक्षक में बौद्धिक व नैतिक ईमानदारी की भावना होनी चाहिये, शिक्षक में अनुकूलन की क्षमता होनी चाहिये, छात्रों का ध्यान रखने की क्षमता, दयालुता की भावना, सहकारिता की भावना, सृजनात्मक क्षमता, दृढ़ निश्चयी होना चाहिये।

शिक्षक की ज्ञान के हस्तान्तरणकर्ता के रूप में भूमिका प्राचीन काल से ही प्रचलित है। ज्ञान के हस्तां तरण की कला एक पारंपरिक विधि है। इसका केन्द्र बिन्दु पाठ्यक्रम होता है। पारंपरिक रूप में शिक्षण का उद्देश्य छात्रों को तीन प्रमुख कौशलों पढ़ना, लिखना एवं गणना करना में तैयार करना होता है। छात्रों को पाठ्यपुस्तकों में दिये गये तथ्यों और सिद्धान्तों का प्रत्यास्मरण कराया जाता है। पारंपरिक मूल्यां कन की विधियाँ भी यही सुनिश्चित करती हैं कि छात्रों को विभिन्न प्रत्यय किस सीमा तक स्मरण हो गये हैं। पारंपरिक शिक्षण परिस्थिति में शिक्षण को ज्ञान के हस्तां तरण के रूप में ही परिलक्षित किया जाता है।

शिक्षक केवल एक कक्षा कक्ष निर्देशक न होकर एक लघु समाज के प्रतिनिधि के रूप में होता है, जिसका उत्तरदायित्व बालकों को में श्रेष्ठ सामाजिक गुणों का विकास करते हुए उन्हें समाज के श्रेष्ठ नागरिक के रूप में विकसित करना होता है। बालक एक शिक्षक से प्रभावित होकर न केवल उसके निर्देशों का पालन करते हैं बल्कि व्यावहारिक जीवन में उसके जीवन चरित्र, उसकी आदतों एवं उसके व्यवहारों का भी अनुकरण करते हैं। अतः शिक्षक को न केवल मौखिक रूप में बल्कि अपने चरित्र से भी बालकों के समक्ष एक आदर्श का प्रदर्शन करता चाहिये। उसे बालकों के समक्ष सदैव श्रेष्ठ सामाजिक एवं नागरिक गुणों का प्रदर्शन करना चाहिये।

आधुनिक शिक्षण कला में एक शिक्षक की भूमिका एक निर्देशक एवं नियंत्रक के रूप में न होकर एक परामर्शदाता एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के सुगमकर्ता के रूप में होती है। एक परामर्शदाता एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के सुगमकर्ता के रूप में शिक्षक को छात्रों में ज्ञान निर्माण एवं समझ का विकास करना होता है। आधुनिक परिवेश में संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के विकास के साथ यह माना जाने लगा है कि जीवन में उपस्थित होने वाली समस्याओं के लिये रटा हुआ ज्ञान ही आवश्यक नहीं है वरन् छात्रों में उस ज्ञान की समझ होना भी आवश्यक है। तभी वे उस ज्ञान का प्रयोग करने में सक्षम हो सकते हैं। इसीलिये आधुनिक शिक्षण अधिगम विधि अधिगम के साथ बोध के विकास पर बल देती है। यह तर्क एवं चिन्तन से भी सम्बन्धित होती है।

एक मध्यस्थ की भूमिका में शिक्षक शिक्षण अधिगम के लिये एक पृष्ठभूमि अथवा एक आधार का निर्माण करता है। छात्र जिस वातावरण में अन्तःक्रिया करता है, शिक्षक उसी वातावरण में कुछ चीजें एकत्रित करता है। जो छात्रों के लिये उद्दीपक के रूप में कार्य करती हैं व उसकी चिन्तन प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं।

अधिगम अपने विस्तृत अर्थ में कक्षा कक्ष में चलने वाली प्रक्रिया न होकर एक आजीवन चलने वाली प्रक्रिया होती है। जहां हर व्यक्ति प्रति पल अपने वातावरण से कुछ न कुछ ग्रहण करता रहता है। इसके अनुसार ज्ञान एक असीमित स्वरूप लिये होता है, जिसे एक निश्चित कालांतर में प्राप्त करना किसी भी व्यक्ति के लिये असंभव कार्य होता है। अतः किसी भी व्यक्ति का ज्ञान उसके जीवन के किसी भी स्तर पर पूर्ण नहीं होता है। उसमें सदैव नवीन ज्ञान को जोड़ने एवं पूर्व ज्ञान को संशोधित करने की आवश्यकता बनी रहती है। नित्य प्रति हो रहे नवीन आविष्कारों एवं सूचनाओं के विस्तारीकरण के कारण ऐसा करना और भी आवश्यक हो जाता है।

13.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. पकड़ 2. सुसंगठित 3. आत्मविश्वास
4. प्रेरणा

अभ्यास प्रश्न 2

1. सहानुभूतिपूर्वक 2. बौद्धिक, नैतिक 3. आलोचनाओं 4. साधन संपन्न

अभ्यास प्रश्न 3

1. तथ्यों एवं प्रक्रियाओं 2. ज्ञान के भण्डार 3. शिक्षक

अभ्यास प्रश्न 4

1. सामाजिक गुणों 2. नियंत्रित 3. निर्णय कौशल

अभ्यास प्रश्न 5

1. चिन्तन एवं तर्क 2. छात्र केन्द्रित 3. सर्वांगी

अभ्यास प्रश्न 6

1.खोज 2. भैतिक वातावरण 3. मूल्यांकन 4.बहुसंवेदी

13.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. शिक्षक के व्यावसायिक गुणों की व्याख्या कीजिये?
2. एक अच्छे शिक्षक में कौन से व्यक्तिगत गुण होने चाहिए स्पष्ट कीजिये?
3. एक शिक्षक छात्रों के लिए आदर्श बन कर किस प्रकार कार्य कर सकता है?
4. शिक्षक की ज्ञान हस्तान्तरणकर्ता की भूमिका का वर्णन कीजिये?

5. शिक्षक कैसे अधिगम का सुगमकर्ता बन सकता है?
6. शिक्षक की मध्यस्थ के रूप में भूमिका की व्याख्या कीजिये?
7. शिक्षक एक सहधिगमकर्ता कैसे बन सकता है स्पष्ट कीजिये?

13.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

- सिंह, अरूण कुमार. (1998), मनोविज्ञान के सम्प्रदाय एवं इतिहास, मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली।
- पाठक, डा. आर.पी.(2007), उच्च शिक्षा मनोविज्ञान,नई दिल्लीः राधा पब्लिकेशन्स।
- सारस्वत, डा. मालती.(1999),शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, लखनऊः आलोक प्रकाशन।
- पाठक,पी.डी.(2006),शिक्षा मनोविज्ञान, आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।
- माथुर, डा. एस.एस. (1999), शिक्षा मनोविज्ञान, आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।

इकाई - 14

अध्यापक की सहभागिता और शिक्षण के लिये निहितार्थ

Involvement of Teachers's and implications for teaching

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 योजना बनाने में शिक्षक की सहभागिता

14.4 शिक्षक की खोजबीन करने में सहभागिता

14.4.1 खोजबीन के दौरान ध्यान रखी जाने वाली बातें

14.4.2 खोजबीन और शिक्षण अधिगम प्रक्रिया

14.5 साझा करने या बांटने में शिक्षक का जुड़ाव

14.6 शिक्षक का प्रतिबिंबन से जुड़ाव

14.7 विश्लेषणात्मक लेखन

14.7.1 विश्लेषणात्मक लेखन की विशेषताएं

14.7.2 विश्लेषणात्मक लेखन और शिक्षक की सहभागिता

14.7.3 विश्लेषणात्मक लेखन के दौरान ध्यान रखी जाने वाली बातें

14.7.4 शिक्षण में निहितार्थ

14.8 अध्यापक दैनिन्दिनी के अध्ययन का तरीका

14.8.1 अध्यापक दैनिन्दिनी का अध्ययन और इसका शिक्षण में उपयोग

14.9 निष्कर्ष

14.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

14.11 निबंधात्मक प्रश्न

14.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

14.1 प्रस्तावना

शिक्षक और शिक्षण की राष्ट्रीय विकास और राष्ट्रीय निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षक को इसी दृष्टि से तैयारी करने हेतु सेवापूर्व प्रशिक्षण तथा सेवा में आने के बाद वृत्ति विकास हेतु सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। इस प्रकार शिक्षक और शिक्षण के विकास हेतु सदैव प्रयास किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि शिक्षक का विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम व गतिविधियों में सहभागिता का सुनिश्चित किया जाए। विद्यालय में एकाधिक जिम्मेदारियों के निर्वहन में शिक्षक अपना योगदान देता है। यदि शिक्षक के संदर्भ में देखा जाए तो योजना का निर्माण करना प्रस्तुतीकरण करना, अनुभवों को साझा करने, खोजकर्ता की भूमिका निभाना, विचारों को प्रतिबिंबित करना अथवा चिंतन करना, अध्यापक दैनिन्दिनी की पूर्ति आदि अनेक प्रयास शिक्षक के द्वारा किये जाते हैं। परिवर्तन के इस दौर में सुविधाप्रदाता के रूप में अपनी पहचान बनाकर विद्यार्थियों को अवसर उपलब्ध कराना की शिक्षक की महत्वपूर्ण कर्तव्य है। इस प्रकार शिक्षक की सहभागिता प्रयास और योगदान पर उसकी उसकी प्रतिष्ठा निर्भर करती है। इन्हीं पर चर्चा के माध्यम से हम अध्यापक की सहभागिता के प्रति अपनी समझ बनाने का प्रयास करेंगे।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- शिक्षक की विभिन्न प्रकार की सहभागिता बता सकेंगे।
- शिक्षक को विभिन्न प्रकार की सहभागिता में विद्यार्थी को सहभागिता के अवसरों पर चर्चा कर सकेंगे।
- शिक्षण योजना निर्माण और प्रस्तुतीकरण से जुड़ी सहभागिता को समझ सकेंगे।
- शिक्षक की साझा करने की अभिवृत्ति की व्याख्याकर सकेंगे।
- शिक्षक की खोजबीनकर्ता के रूप में भूमिका को स्पष्ट कर सकेंगे।
- शिक्षक की स्वयं व विद्यार्थियों का प्रतिबिंबित करने के अवसरों में संबंधबता सकेंगे।
- अध्यापक दैनिन्दिनी को पढ़ने के उपर्युक्त तरीकें और इस दौरान ध्यान रखी जाने वाली बातों को समझ सकेंगे।

14.3 योजना बनाने में शिक्षक की सहभागिता

''नियोजन आगे देखना है, भावी घटनाओं की संकल्पना है तथा वर्तमान में भविष्य को प्रभावित करने वाले निर्णय लेना है।''

विद्यालय के प्रशासन एवं प्रबंधन में शिक्षक की अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। विद्यालय योजना का संस्थागत योजना के निर्माण में संस्था प्रधान के साथ शिक्षक की अपनी उत्तरदायित्वों को निवर्हन करता है। साथ ही विद्यालय की प्रशासनिक, प्रबंधकीय और अन्य भूमिका से जुड़ी जिम्मेदारी भी शिक्षक निभाता है।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की दृष्टि से नियोजन या योजना बनाने की प्रक्रिया को पृथक ओर विशिष्ट संदर्भ में समझने की आवश्यकता है।

जैसाकि शिक्षण सिद्धान्त (Principles of teaching) के संदर्भ में कहा जा सकता है कि नियोजन का सिद्धान्त किसी कार्य को पूर्व योजनानुसार किया जाना सफलता का सूचक है। आत्मविश्वासपूर्ण, जिज्ञासाशील, प्रगतिशील और उपयोगी शिक्षण व्यूह रचनाओं से शिक्षण की सफलता प्राप्त करने के लिए नियोजन किया जाना आवश्यक है। इस प्रकार औपचारिक शिक्षण नियोजन की महत्ता सर्वाधिक है। इसीलिए शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सामान्यत: चार सोपानों नियोजन (Planning), व्यवस्था (Organizing), मार्गदर्शन (Leading), तथा नियंत्रण (Controlling)के रूप में समझा जाता है।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया और नियोजन के संबंधोंव स्वरूपों को निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है -

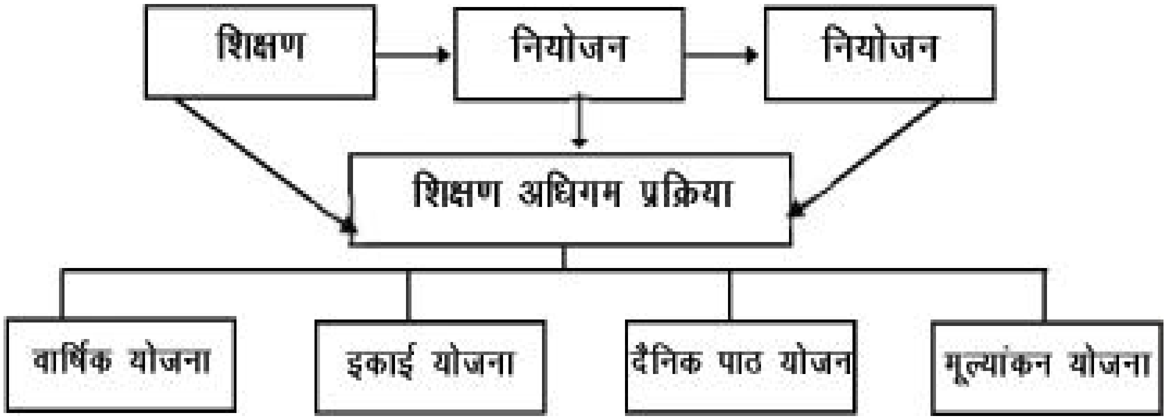

शिक्षण से जुड़ी दीर्घकालीन एवं वर्षपर्यन्त से संबंधित योजना के रूप में वार्षिक योजना को जाना पहचाना जाता है। यह योजना संपूर्ण सत्र से संबंधितशिक्षण गतिविधियों का एक मानचित्र प्रस्तुत करती है। यह योजना अध्यापक के लिए एक निर्देशक तथा मार्गदर्शक का कार्य करती है ताकि वर्षपर्यन्त शिक्षण से संबंधितयोजनाओं की क्रियान्वित की जा सके। विभिन्न कक्षाओं के लिए चूंकि विभिन्न स्तर के पाठ्यक्रम तथा विद्यार्थी उपलब्ध होते हैं अत: सभी के लिए पृथक पृथक योजनाएं तैयार की जाती है। वार्षिक योजना में पाठ्यवस्तु का विश्लेषण तथा विभाजन कार्य दिवसों तथा कालांश, उद्देश्यों का निर्धारण, उप-सत्र योजना तथा शिक्षण अधिगम सामग्री का ब्यौरा दिया जाता है। नियोजन की दृष्टि से यह आधार स्तम्भ ही सत्र की योजना और उसकी गुणवत्ता को प्रस्तुत करती है। यही शिक्षण अधिगम

प्रक्रिया के प्रथम चरण को सशक्त और मजबूज रूप प्रदान करती है। वार्षिक योजना यदि सोच समझकर, विचारपूर्वक बनायी गयी हो तो वर्षभर पाठ्यचर्या और उसके क्रियान्वयन में कठिनाई आने की संभावना कम से कम होती है। इस प्रकार वार्षिकम योजना के निर्माण में शिक्षक की ऊर्जा लगना स्वभाविक है।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के दूसरे तथा अप्रत्यक्ष चरण के रूप में शिक्षक द्वारा इकाई योजना का भी निर्माण किया जाता है। इस दौरान शिक्षक पाठ्यक्रम से संबंधितचयनित इकाई से संबंधितएक मानचित्र तैयार करता है ताकि कक्षा शिक्षण की वास्तविक परिस्थिति में इस योजना को लागू किया जा सके। इस दौरान उपइकाई का नाम शिक्षण उद्देश्य शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, शिक्षण अधिगम सामग्री तथा मूल्यांकन की रूपरेखा तय की जाती है। अत: यह चरण अत्यन्त ही महत्वपूर्ण माना जा सकता है। शिक्षक और शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की दृष्टि से यह योजना इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि शिक्षण और अधिगम को उचित दिशा प्रदान करती है। इकाई योजना शिक्षण सूत्र 'पूर्ण से अंश की ओर', शिक्षण उद्देश्य' संश्लेषण और मनोविज्ञान के गेस्टाल्टवादी सिद्धान्त का अनुसरण करती है जिससे संपूर्ण चित्र की प्रस्तुतीकरण के पश्चात् एक एक कर भागों की ओर बढ़ा जाता है। इस प्रकार अध्यापक शिक्षण से पूर्व तैयारी का यह यशक्त माध्यम बनाती है हालांकि इससे शिक्षण से पूर्व तैयारी का यह सशक्त माध्यम बनती है हालांकि इससे शिक्षण की यांत्रिकता का बढ़ावा और सृजनात्मकता में कमी की संभावनाएं बनी रहती है। इस प्रकार शिक्षक का इकाई योजना निर्माण में सहभागिता को स्पष्ट किया जा सकता है।

दैनिक पाठयोजना वास्तविक कक्षा शिक्षण और अधिगम प्रक्रिया से संबंधितहै। यह शिक्षक को प्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुतीकरण ओर अधिगम के अवसरों की पूर्ति का मंच होता है। शिक्षक की यदि उपर्युक्त योजनाएं ठीक प्रकार से निर्मित है जो दैनिक पाठ योजना निर्माण और प्रस्तुतीकरण सहज हो जाती है। यही वह प्रयास है जहां शिक्षक कक्षा की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार योजना में परिवर्तन कर अपनी प्रभावशीलता को स्थापित कर सकता है।

दैनिक पाठ योजना के निर्माण में शिक्षक के सामान्य और विशिष्ट उद्देश्य शिक्षण सहायक सामग्री, विधि प्रविधि, वातावरण निर्माण, प्रस्तुतीकरण अधिगम या शिक्षण बिन्दु, मूल्यांकन के साथ शिक्षण के स्वमूल्यांकन को भी सम्मिलित किया जाता है। जब हम निर्माणवादी उपागम की बात करते हैं तो यह भी समझना जरूरी है क दैनिक पाठ योजना में शिक्षण की सहभागिता या भूमिका एक सुविधाप्रदाता की होनी चाहिए, जहां शिक्षक विद्यार्थियों को सीखने के पर्याप्त अवसर उपलब्ध करवाएं, साथ ही विद्यार्थियों के संवाद, चर्चा, प्रस्तुतीकरण, समूह कार्य, मस्तिष्क उद्वेलन की पाठयोजना में जगह हो। यहां शिक्षक की मनोवैज्ञानिक दृष्टि व्यक्तिगत विभिन्नतानुसार सभी को सीखने के अवसरों से जुड़ी होती है।

कई बार सवाल यह उठता है कि दैनिक पाठ योजना क्यों बनायी जाए? वास्तविका में उद्देश्यानुसार शिक्षण के लिये पाठ योजना मार्ग प्रदर्शन प्रदान करती है। विषयवस्तु की उपयुक्त ''तैयारी संदर्भ साहित्यों का अध्ययन तत्कालीन उदाहरण, शिक्षण अधिगम सामग्री की तैयारी तथा मल्यांकन की पूर्व तैयारी हेतु दैनिक पाठ योजना महत्वपूर्ण है। शिक्षक का दैनिक पाठ योजना के निर्माण से जुड़ाव और अह्म भूमिका को उपरोक्त विवरण से समझा जा सकता है।

हालांकि विभिन्न योजनाओं में मूल्यांकन प्रक्रिया का विवरण भी दिया जाता है और विशेषज्ञ दैनिक पाठयोजना के साथ मूल्यांकन और स्वमूल्यांकन जुड़ा होता है लेकिन नवीन मूल्यांकन व्यवस्था जिसे सतत् और व्यापक मूल्यांकन (CCE) के नाम से जाना जाता है, के माध्यम से वर्षपर्यन्त और लगातार बालक का मूल्यांकन होता चला जाता है। मूल्यांकन को हम दो भागों के रूप में समझ सकते है - कक्षा कक्ष में मूल्यांकन तथा गृहकार्य मूल्यांकन। दोनों से ही शिक्षक का जुड़ाव गहराई से है। एक और कक्षा कक्ष में लगातार मूल्यांकन करना तो दूसरी और गृहकार्य को मूल्यांवित करना। विद्यार्थी का मूल्यांकन शिक्षक के मूल्यांकन का भी माध्यम कहलाता है। इसलिए समय समय पर निदानात्मक शिक्षण और उपचारात्ममक शिक्षण के माध्यम से भी विद्यार्थियों की शैक्षिक समस्याओं का समाधान किया जाता है। आवश्यकता इस बात को समझने की है कि शिक्षक की मूल्यांकन के सहभागिता से ही विद्यार्थियों की उपलब्धि पर असर पड़ता है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि शिक्षक के योजना निर्माण, उसके क्रियान्वयन उससे संबंधितचुनौतियों का सामना और समाधान तथा अग्रिम योजना निर्माणए में सुधार आदि उसके क्षेत्र शिक्षण की सहभागिता को स्पष्ट करते है।

अभ्यास प्रश्न 1

1 दैनिक पाठ योजना के प्रस्तुतीकरण में शिक्षक की भूमिका एक -------------------की होनी चाहिए।

2 विद्यार्थियों के मूल्यांकन की नवीन व्यवस्था ----------------------के नाम में प्रचलित है।

14.4 शिक्षक की खोजबीन करने में सहभागिता

सामान्य अर्थ मं अन्वेषण करना, अनसंधान करना, खोजना, ढूढ़ना आदि को शिक्षक के संदर्भ में समझना उपर्युक्त शीर्षक से संबंधितमाना जा सकता है। समय और परिस्थितिनुसार प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में खोजबीन करने के अवसर उपलब्ध होते हैं, लेकिन शिक्षक के लिए इसका महत्व ओर भी अधिक है क्योंकि जैसाकि कोठारी आयोग (1964-66) की शुरूआत ही इस कथन से की गयी है कि भारत के भाग्य निर्माण इस समय उसकी कक्षाओं में हो रहा है। इस प्रकार हम समझ सकते है कि राष्ट्रीय विकास उत्तम नागरिकता का निर्माण करने, सामाजिक परिवर्तन में शिक्षा और शिक्षक की अह्म भूमिका है। अत: इस दृष्टि से शिक्षक की एक खोजनीकर्ता (Teacher as a Explorer) के रूप में अपनी पहचान बनाने की अवश्यकता स्पष्ट दिखाई देती है।

हालांकि विद्यालय तथा समुदाय से संबंधितअनेक ऐसे क्षेत्र हैं जिनकी समस्याओं, चुनौतियों और संबंधों के बारे में शिक्षक को खोजबीन या अन्वेषण करना होता है जैसे विद्यालय प्रबंधन, के साथ संबंधतथा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया आदि। ऐसी स्थिति में शिक्षक एक अनुसंधानकर्ता की भांति प्रत्येक क्षेत्र के विकास तथा समस्या समाधान में अपना अह्म किरदार अदा करता है। शिक्षक की दृष्टि से यहां विद्यार्थी, शिक्षक और शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के संबंधोंको समझना सर्वाधिक आवश्यक प्रतीत होता है।

पाठ्यक्रम में बदलाव से संबंधितराष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (NCF, 2005) में कई स्थानों पर स्पष्ट किया गया है कि शिक्षक को स्वयं के साथ साथ विद्यार्थियों को भी खोजबीन के अवसर उपलब्ध करवाने चाहिए। शिक्षकों को ऐसी सकारात्मक कार्यनीतियों अथवा रणनीतियों की खोजबीन करने की आवश्यकता है ताकि असमर्थ समझे जाने वाले विद्यार्थी सहित सबको शिक्षा का माहौल मिले। दस्तावेज में स्पष्ट किया गया है कि केवल इतिहास नहीं बल्कि सभी विषयों के शिक्षकों को पुरातत्व महत्व के स्थलों का आदरभाव, उनकी महत्ता समझने और खोजबीन की इच्छा को ताकत देनी चाहिए। साथ ही शिक्षक को सहायक सामग्री से जुड़ी आधार सामग्री (Row Material) की भी खोज करने पर जोर दिया गया है ताकि शिक्षण अधिगम सामग्री कई सालों तक काम आ सके।

अध्याक शिक्षा से जुड़ी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (NCFTE, 2009) में की प्रशिक्षकों को खोजबीन करने के अवसरों की उपलब्धता पर जोर दिया गया है और सेवारत प्रशिक्षण काय्रक्रमों में भी शिक्षकों को स्वयं के अभ्यासों की खोजबीन के अवसर मिले। ऐसा स्पष्ट किया गया है। वास्तविकता में सेवापूर्ण तथा सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रम में विषय के अध्यापकों तथा वास्तविक अध्यापकों को खोजबीन करने के भरपूर अवसर उपलब्ध होने चाहिए ताकि वे स्वयं के साथ साथ विद्यार्थियों में भी खोजबीन की जिज्ञासा जागृत करने का प्रयास कर सके। बदलते समय में जहां बालकेन्द्रित शिक्षा पर जोर दिया जा रहा है, शिक्षा में निर्माणवादी उपागम को महत्व दिया जा रहा है वहां खोज बीन तथा उससे जुड़े प्रयासों की कक्षा शिक्षण और शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में अवसरों की जितनी प्रशंसा की जाए उतनी कम ही होगी।

14.4.1 खोजबीन के दौरान ध्यान रखी जाने वाली बाते

खोजबीन की विशेषताओं तथा खोजबीन के दौरान ध्यान रखी जाने वाली बातों को हम सम्मिलित रूप से निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से समझ सकते है -

- जिज्ञासाशीलता का खोजबीन से गहरा संबंधहै। जितनी अधिक जिज्ञासा तथा उत्सुकता होगी, उतनी ही खोजबीन दिशा व्यवस्थित होगी।
- यदि किसी समस्या के समाधान अथवा खोजबीन के प्रति संवेदनशीलता रखी जाए तो खोजबीन के प्रभावी परिणाम की संभावनाहोगी।
- खोजबीन का कल्पना से भी जुड़ाव है। कल्पना करना खोजबीन की आधारशिला से जुड़ी है। कल्पना और परिणाम का संबंधसार्थक खोजबीन का संकेतहोता है।
- विषय मुद्दा और समस्या की गहराई और उद्देश्य के साथ देखने से खोजबीन में सरलता होती है।
- खोजबीन से नवीन ज्ञान की वृद्धि और विकास होता है।
- व्यवस्थित और सुनियोजित होकर खोजबीन की जानी चाहिए।
- खोजबीन धैर्यपूर्वाक की जाती है। शीघ्रता से खोजबीन के परिणाम पर असर पड़ता है।

- अभिवृत्ति की खोजबीन का असर डालती है। आपकी सकारात्मक अभिवृत्ति खोजबीन में मदद करती है। शिक्षक के नाते वैज्ञानिक अभिवृत्ति के साथ मानवीय संबंध अभिवृत्ति भी बनायी जाती है।

  इस प्रकार एक शिक्षक है खोजबीनकर्ता के रूप में अपने पहचान बनाते समय उपर्युक्त बिन्दुओं से जुड़ाव भी जरूरी है।

14.4.2 खोजबीन और शिक्षण अधिगम प्रक्रिया

खोजबीन को यदि हम शिंक्षक और विद्यार्थी की दृष्टि में देखते हैं तो सरलता से समझा जा सकता है कि इसका संबंधशिक्षण अधिगम प्रक्रिया से गहराई में जुड़ा हुआ है। इसे हम निम्नलिखित आरेख से समझने का प्रयास करते हैं -

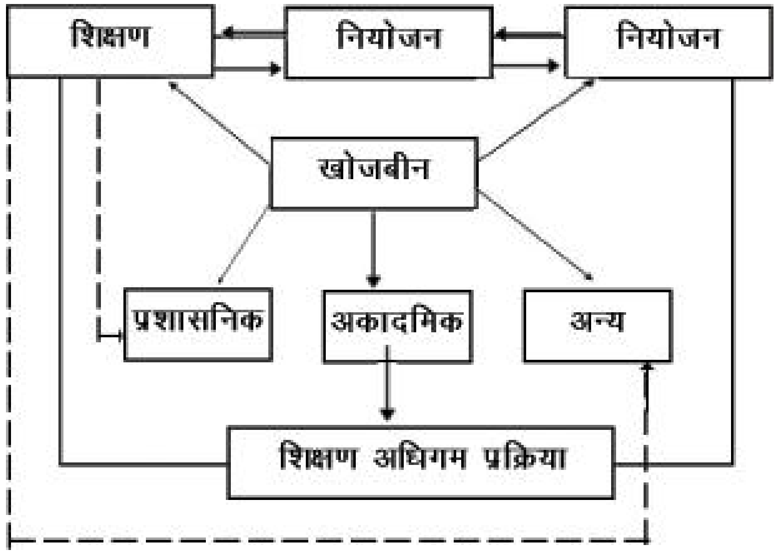

उपर्युक्त रेखाचित्र से स्पष्ट होता है कि शिक्षक को विद्यार्थियों को खोजबीन के अवसर उपलब्ध करवाने के साथ साथ स्वयं को भी खोजबीन कर्ता की भूमिका निभानी चाहिए। हालांकि प्रशासनिक और विद्यालय से जुड़ी अन्य जिम्मेदारियों के निर्वहन से जुड़ी समस्याओं, चुनौतियों और संभावनाओं के लिए भी शिक्षक खोजबीन करता है। लेकिन शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के संदर्भ में विद्यार्थी तथा शिक्षक दोनों की खोजबीन तथा अन्वेषण की भूमिका अतिमहत्वपूर्ण है। इस प्रकार शिक्षक, शिक्षण और विद्यार्थी के तिहरे संबंधमें खोजबीन से सीखने में नयी दिशा का रास्ता खुल जाता है।

कक्षा शिक्षण में खोजबीन से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया पर प्रभाव और महत्व को निम्नलिखित बिन्दुओं से समझा जा सकता है -

- विद्यार्थियों को व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान, खोजबीन से खोजा जा सकता है ताकि विद्यार्थी एकाग्रचित होकर सीखने, सीखाने की प्रक्रिया में शामिल हो सकते है।

- विद्यार्थियों की व्यक्तिगत और शिक्षण संबंधी समस्याओं के समाधान के लिए विद्यालयों में शिक्षकों द्वारा क्रियात्मक अनुसधान किया जाता है जो कि एक प्रकार से खोजबीन तथा समाधान का मिला जुला रूप ही है।
- खोजबीन के माध्यम से शिक्षण हेतु नवीन रणनीतियों, व्यूहरचनाओं और योजनाओं की पहचान की जा सकती है ताकि शिक्षण अधिगम की प्रभावी बनाया जा सके।
- बालकेन्द्रित, नवाचारी शिक्षा और निर्माणवादी उपागम से जुड़ी चुनौतियों और महत्व की सरलता से पहचान खोजबीन के माध्यम से की जा सकती है।
- बालकों में आलोचनात्मक चिंतन हेतु खोजबीन के अवसरों की उपलब्धता महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।
- शिक्षण और अधिगम का संबंध मूल्यांकन में भी होता है । मूल्यांकन में विद्यार्थियों की सहभागिता प्रत्युत्तर तथा शिक्षण से जुड़े उद्देश्यों के अनुसार मूल्यांकन के तरीके खोजने में भी खोजबीन की भूमिका स्पष्ट दिखाई देती है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि खोजबीन और खोजकर्ता के रूप में शिक्षक के प्रयास होने चाहिए साथ ही विद्यार्थियों को भी इस संदर्भ में अवसरों हेतु शिक्षक द्वारा सकारात्मक कदम उठाए जाने चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 2

1 भारत में भाग्य का निर्माण इस समय उसकी कक्षाओं में हो रहा है, क्या संबधित है -

(अ) राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 (ब) माध्यमिक शिक्षा आयोग 1952-53

(स) कोठारी आयोग 1964-66 (द) राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005

2 निम्नलिखित में से सही छांटिएं

(अ) शिक्षक को केवल स्वयं ही खोजबीनकर्ता बनना चाहिए।

(ब) शिक्षक को अपने साथ विद्यार्थियों को भी खोजबीन के अवसर देने चाहिए।

(स) खोजबीन में शिक्षक को बचना चाहिए।

(द) उपरोक्त में से कोई नहीं।

2.5 साझा करने या बांटने में शिक्षक का जुड़ाव

विचारों तथा अनुभवों को साझा करने या बांटने की अपनी उपयोगिता है। जब हम मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को पढ़ते है तो व्यक्तित्व के विभिन्न प्रकारों को बताते हुए जंग ने अन्तमुर्खी, बहिमुर्खी तथा उभयमुर्खी व्यक्तित्व को स्पष्ट किया है। उन्तमुर्खी अर्थात् अपने मे रहना और बहिर्मुखी अर्थात बातचीत द्वारा दूसरों से जुडना और उभयमुर्खी अर्थात दोनों का मिश्रण। हम सरलता से समझ सकते है कि हम शिक्षक और विद्यार्थी दोनों को बहिमुर्खी व्यक्तित्व से जोड़कर देखना चाहते हैं। हम यह भी जानते हैं कि

हमें कुछ विशेषताएं जन्म से मिलती है तो कुछ हम जन्म के बाद अपनी सोच से बनते हैं। इसलिए शिक्षक तथा विद्यार्थी की साझा करने और बांटने की प्रवृत्ति दोनों के विकास का रास्ता तैयार करती है।

शिक्षक योजनाएं बनाता है, यह खोजकर्ता भी कहलाता है, वह अपने आप को प्रतिबिंबित भी करता है। और इस दौरान विचारों को साझा भी करता है। हम आज वैश्विक शिक्षा की बात करते हैं। जहां सहयोग करना और साझा करना अनिवार्य है ताकि विश्व के परिदृश्य में अपनी जगह और प्रतिष्ठा बनायी जा सके ।

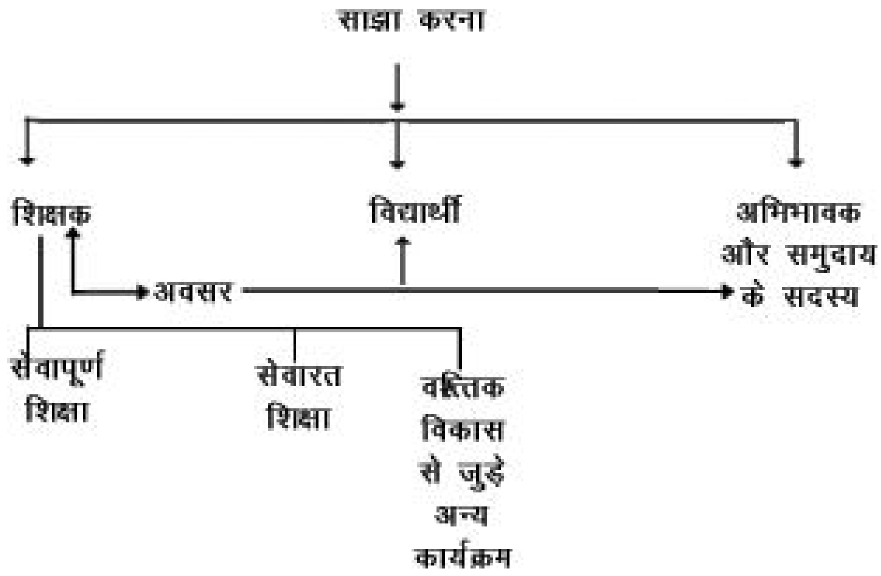

उपर्युक्त चित्र का प्रथम भाग शिक्षक के विचारों व अनुभवों को साझा करने से संबंधित है। अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में भी शिक्षक की तैयारी से साझा करने के अवसरों पर जोर दियाजाता है। इस प्रकार अध्यापक बनने से पूर्व भी शिक्षकों को कक्षा कक्ष में अधिगम प्रक्रिया के दौरान, सत्रीय कार्य में क्षेत्र अनुभवों को प्राप्त कर प्रस्तुतीकरण, विद्यालय विद्यालय अनुभव कर समूह में बातचीत शिक्षण अभ्यास के दौरान आदि के साथ साथ अन्य कई अवसरों द्वारा अनुभवों की साझा करने से जुड़ाव बनाने का प्रयास किया जाता है। इसके साथ ही सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भी शिक्षकें द्वारा अपने अनुभवों को बांटकर वास्तविक समसयाओं, समाधानों और अभ्यासों को प्रस्तुत कियाज जाता है। इसलिए सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रम में गहन बातचीत, विचार विमर्श, चर्चा संवाद, प्रस्तुतीकरण, समूह कार्य आदि के द्वारा शिक्षकों की सहभागिता को मजबूती प्रदान करने का प्रयास किया जाता है। इसके अतिरिक्त शिक्षकों द्वारा वृत्तिक विकास से जुड़े अन्य कार्यक्रम कार्यशालाओं , अभिमुखन कार्यक्रम आदि में भी साझेदारी दी जाती है। इस प्रकार शिक्षक की साझेदारी ही सशक्त समाज और सर्वांगीण विकास को बढ़ावा देती है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में नवाचार पर बातचीत करते हुए कहा गया है कि शिक्षक बहुत बार कक्षा में विद्यार्थियों को पाठ्यचर्या का ज्ञान कराने के लिए अध्यापन के नए नए तरीके अपनाते हें वे प्रयास व्यावसायिक होने के साथ साथ कई बार बढिया और रचनात्मक हो सकते है, लेकिन उनका

शिक्षण समुदाय और स्कूल का पता भी नहीं होता और शिक्षक स्वयं ही इसे कोई खास महत्व नहीं देते हैं। वे शिक्षण के अनुभव बांट सकते है और इस प्रकार शिक्षा के विविध अनुभवों को एक दूसरे से साझा कर सकते है। इससे स्कूल के भीतर ही एक शैक्षिक वार्तालाप के अवसर मिलेंगे और शिक्षक एक दूसरे से अन्त: क्रिया कर सकेंगे और सीख सकेंगे।

साथ ही शिक्षक शिक्षा में सुधार की बात करते हुए भी लिखा गया है कि ऐसे अध्यापक तैयार करने चाहिए जो कि इस रूप में अपनी भूमिका निभाए कि ज्ञान को व्यक्तिगत अनुभव के रूप में समझे जो सीखने सीखाने के साझे अनुभव के रूप में प्राप्त किया जाता है, न कि पाठ्यपुस्तकों के बाहरी यथार्थ के रूप में।

इस प्रकार उक्त विचार शिक्षक की साझा करने में सहभागिता की जरूरत को स्पष्ट करते है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचना से समझा जा सकता है कि शिक्षक के अनुभवों के साझा करने के कई फायदे हैं जैसे

- नवीन जानकारी और उसकी समझ बनना।
- सीखने की प्रक्रिया में मदद मिलना।
- सामूहिकता की भावना का विकास होना।
- विचार प्रस्तुतीकरण के उपयुक्त तरीके सीखना।
- अपनी सहभागिता दर्ज कराना।
- अकादमिक वातावरण का निर्माण होना
- सृजनात्मकता व रचनात्मकता को बढ़ाना।
- शिक्षण अधिगम सामग्री के साथ समझ का विकास होना।
- शैक्षिक तकनीकी को समझना।
- स्वतंत्रता व स्वायत्ता महसूस होना।

शिक्षक की विचारों तथा अनुभवों को साझा करने में विद्यार्थियों को भी इसके अवसर प्रदान करना महत्वपूर्ण है। अत: शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में शिक्षक, विद्यार्थी, विद्यार्थी और समूह के रूप में अनुभवों की साझेदारी से बालकेन्द्रित शिक्षा और निर्माणवादी उपागम जैसे अवधारणाओं को बल मिलता है। शिक्षक का योगदान सदैव इस ओर होना चाहिए जहां कक्षा विचारों को साझा करने का एक मंच बने और विद्यार्थी सदैव विचारों को बांटने के लिए अभिप्रेरित हो। यह समझना जरूरी है कि यदि विद्यार्थियों को खुलकर अपने स्थानीय अनुभवों को साझा करने के अवसर दिए जाए तो निश्चय ही शिक्षण को सूचनाओं की चारदिवारी से निकालकर सम्पूर्ण विकास में जोड़ना आसान हो जाएगा।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 तो अभिभावकों तथा समुदाय के सदस्यों को भी विद्यालय में आमंत्रित कर विभिन्न प्रकरणों से संबंधित अपने ज्ञान तथा अनुभवों की साझा करने के अवसर देने पर

जोर देती है तभी इसे संस्थागत अधिगम कहा जा सकता है। यह जिम्मेदारी भी शिक्षक की सहभागिता से ही निभायी जा सकती है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि शिक्षक की स्वयं की साझेदारी या विचारों को साझा करने की अभिवृत्ति के साथ साथ बालकों के अभिभावकों को अनुभवों को साझा करने के अवसर उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी भी निश्चित ही शिक्षक की है।

शिक्षक द्वारा शिक्षण के दौरान साझा करने के अवसरों को अधिकाधिक किया जाना चाहिए ताकि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में इस अन्त: क्रिया, बातचीत ओर चर्चा से सीखने के अवसरों की अधिकता आए। शिक्षक अपने शिक्षण में संबंधित योजना में भी इस बात पर जोर दे कि कहां व किस रूप में विचारों तथा अनुभवों को साझा करने का क्रम जारी रहे। इससे शिक्षण की सफलता और प्रभावशीलता को बढ़ाया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न 3

निम्नलिखित बिन्दुओं मे सही/गलत को छांटकर निशान लगाइए।

1- विद्यालय में अनुभवों को साझा करने की उपयोगिता नहीं है।
2- शिक्षक अझैर विद्यार्थी के रूप में विचारों को साझा करने से शिक्षक अधिगम पक्रिया को बल मिलता है।

14.6 शिक्षक के प्रतिबिंबन से जुड़ाव

अंग्रेजी के शब्द 'रिफेलक्शन' को विचार, मंथन, चिंतन, विवेचना, अध्ययन प्रतिबिंबन, परछाई, परावर्तन, पुनर्विचार, आदि कई रूपों से जाना पहचाना जाता है। सामान्य अर्थ में कांच में चेहरे का दिखाना प्रतिबिंबन है। किसी विद्यार्थी के परीक्षा परिणाम में अच्छे अंक उसके मेहनत, लगन, दृढ़ निश्चित का ही प्रतिबिंबन या परछाई है। हम प्रतिबिंब का नियम ही जानते हैं जोकि दिशा और कार्य में सबंध बनाता है। इसी अनुसार हम जिस दिशा में सोचते हे या विचार करते है, उसे उसी अनुसार बताने साझा करने, बात करने का अवसर मिलना प्रतिबिंबन ही है। यह हाव भाव, मौखिक और लिखित रूप में होता है। जैसे हम कह देते है कि अमूक पुस्तक में बच्चे के मनोविज्ञान का प्रतिबिंब दिखायी देता है। बोलकर और संवदेनाओं के माध्यम से भी हम प्रतिबिंबन देते है। इसी पकार से यहां शिक्षक और उनके प्रतिबिंबन को हम समझने का प्रयास करेंगे।

शिक्षक और विद्यार्थी दोनों ही समाज में रहते है, समाज में होने वाले बदलावों को देखते हैं, समझते हैं और इसका प्रतिबिंबन विद्यालय और कक्षा कक्ष में दिखाई देत है। जब वे बातचीत करते है, चर्चा करते हैं, संवाद करते हैं तो समाज की परछाई स्पष्ट दिखाई देती है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में प्रतिबिंबन महत्वपूर्ण है और यह जितना शिक्षक के लिए जरूरी है, उतना ही विद्यार्थी के लिए । शिक्षा के क्षेत्र में पिछले कई वर्षों में हुए बदलाव, जैसे पाठ्यपुस्तकों का नवीन रूप, पाठ्यक्रमों में बदलाव, विद्यालय और अध्यापक शिक्षा के नये उभरते संबंध यह बताते हैं कि प्रतिबिंबन के अवसर शिक्षक और विद्यार्थी दोनों से संबधित है। ताकि वास्तविक परिस्थिति को सरलता से समझा जा सकें।

शिक्षक की प्रतिबिंबन में सहभागिता, जुड़ाव और सम्बद्धता विद्यालयों में दिखायी देती है। यह प्रतिबिंबन शिक्षकों को अपने विचारों तथा अनुभवों में जुड़ा होता है। शिक्षक बनने की प्रक्रिया में सेवापूर्ण शिक्षा सेवा में आने के बाद सेवारत प्रशिक्षण में शिक्षक को प्रतिबिंबन का अवसर प्रदान किया जाता है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005), अध्यापक शिक्षा की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2009), अध्यापक शिक्षा से जुड़े आधार पत्र आदि सभी में प्रतिबिंबन को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। अध्यापक की प्रतिबिंबन की प्रवृत्ति विद्यार्थियों को भी अभिप्रेरित करती है। जिससे विद्यार्थी अपने अनुभवों का प्रतिबिंबन देते हैं।

हालांकि विद्यालय में अध्यापक लगातार प्रतिबिंबन करते हैं लेकिन यदि निम्नलिखित बिन्दुओं पर ओर भी ध्यान दिया जाए तो प्रतिबिंबन को ओर अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है -

- प्रतिबिंबन में समालोचनात्मक दृष्टिकोण महत्वपूर्ण होता है। सोच समझकर विचारपूर्वक तथा विद्यार्थियों पर पड़ने वाले असर को ध्यान में रखते हुए प्रतिबिंबन किया जाना चाहिए जिससे समाज या समुदाय की छाया दिखायी दे।
- शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के लिए बनायी गयी पाठयोजना में भी प्रतिबिंबन दिखायी देना चाहिए, विशेषत: विषयवस्तु का। शिक्षण में विषयवस्तु की गहरी समझ की दृष्टि और परावर्तन दिखायी देना चाहिए।
- शिक्षक के लेखन मे भी प्रतिबिंबन दिखायी देना चाहे वह पाठ योजना से अथवा अन्य लेखन कार्य। साथ ही विद्यार्थियों को भी यह अवसर दिया जाना चाहिए।
- भारत का भविष्य आज के बालक ही है अत: वे यदि वर्तमान में प्रति संवेदनशील बनाए जाए तो भविष्य में इसका प्रतिबिंब दिखायी देगा। अत: शिक्षक की इस दृष्टि से भी अह्म जिम्मेदारी है कि वे आज के बालकों को भविष्य में प्रतिबिंब करने के लिए तैयार करें और इसलिए अपने प्रतिबिंबन की सहभागिता भी बनाए रखें।
- शिक्षक एक अनुसंधानकर्ता, अन्वेषण या खोजबीनकर्ता की भूमिका भी निभाता है। वह विद्यार्थियों की समस्याओं चुनौतियों का पता लगाकर उचित समाधान प्रस्तुत करता है। शिक्षक द्वारा इसहेतु क्रियात्मक अनुसंधान की किए जाते हैं अत: शिक्षक के अनुसंधान में विद्यार्थियों से जुड़ी विविध आवश्यकताओं, समस्याओं तथा चुनौतियों का प्रतिबिंबन दिखायी देना चाहिए।
- अध्यापक को नवीन विचारों को भी कक्षा कक्ष में प्रतिबिंबन करना चाहिए ताकि वे विद्यार्थियों को भी नया सोचने के लिए तैयार कर सकें।
- सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रम की अध्यापकों की वृत्तिक वृद्ध का आधार तैयार करते है अत: शिक्षकों को इन कार्यक्रमों में स्वयं की प्रतिबिंबन करना चाहिए। सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रम भी शिक्षकों को प्रतिबिंबित होने का पूर्ण अवसर प्रदान करें।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि स्व-प्रतिवेदन अत्यंत आवश्यक है। यदि शिक्षक अपने अनुभवों को प्रतिबिंबित करता है तो इससे विद्यार्थियों की दृष्टि का निर्माण होता है और समय समय पर विद्यार्थी स्वयं को प्रतिबिंबित करने से जोड़ता है।

अभ्यास प्रश्न 4

1- प्रतिबिंबित करने का क्या अर्थ है?

2- प्रतिबिंबित करते समय अध्यापक का दृष्टिकोण कैसा होना चाहिए।

14.7 विश्लेषणात्मक लेखन

लेखन एक कला है। विचारों को प्रस्तुत करने तथा सम्प्रेषित करने का यह सशक्त माध्यम है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, लेखों, पत्रों, पुस्तकों आदि के माध्यम से अपने विचारों की लिखित रूप में अभिव्यक्ति की जाती है। लम्बे समय से लेखन एक परम्परा की भांति विचारों की प्रस्तुतीकरण का आधार तैयार करती रही है। हालांकि लेखन का परिप्रेक्ष्य अलग अलग होता है। संवाद, चर्चा, प्रश्नोत्तरी, व्याख्या, विचार प्रस्तुतीकरण, कहानी, कविता, अकादमिक लेखन और विश्लेषणात्मक लेखन आदि लेखन के विभिन्न प्रकार एवं स्वरूप है।

विश्लेषण को संश्लेषण का विपरीत कहा जाता है। विश्लेषण में किसी सिद्धान्त अथवा समस्या के तत्वों या भागों को एक एक करके खोलने अन्त: संबंधोंको बताने, निगमित करने तथा संगठनात्मक सिद्धान्तों के समझने पर जोर दिया जाता है। इसमें विभाजन, निष्कर्ष निकालना, तुलना करना, अन्तर करना, आलोचना करना, अलग करना तथा औचित्य बताना भी सम्मिलित है।

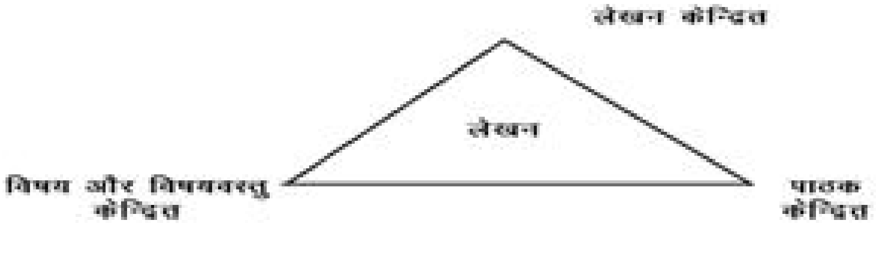

उपर्युक्त त्रिआयी व्याख्या लेखन के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों को स्पष्ट करती है। जब हम विश्लेषणात्मक लेखन की बात करते है तो यह भी समझना जरूरी है कि यह विषय और विषयवस्तु केन्द्रित होता है। एक शिक्षक का विश्लेषणात्मक लेखन उसे पृथक पहचान पदा करता है। अत: मिश्रण का लेखन के समय विश्लेषणात्मक दृष्टि का ध्यान रखना चाहिए।

14.7.1 विश्लेषणात्मक लेखन की विशेषताएं

शिक्षण की विश्लेषणात्मक लेखन में सहभागिता बातचीत में पूर्व इसकी विशेषताओं पर समक्ष बनाना आवश्यक है जो कि निम्नलिखित है -

- यह लेखन समझ से संबंधितहै।
- सबूत तथा आंकड़ों के अर्थपूर्ण प्रतिमान से संबंधितहै।
- तर्क पर केन्द्रित है।
- खोजबीनपूर्ण, लगभग सही और निष्पक्ष विचारों से जुड़ा है।
- विषय और मुद्दे पर आधारित होता है।
- विशेषत: क्या, क्यों व कैसे जैसे सवालों से जुड़ाव होता है।
- मौलिकता का भाव दिखायी देता है।
- आलोचनात्मक तथा विश्लेषणात्मक चिंतन से संबंधितहोता है।
- विचारों से संबंधितजो कि तर्कपूर्णता के साथ प्रभावी संप्रेषण से संबंधितहोता है।
- अमूर्त चिंतन पर ध्यान होता है।
- कारण - प्रभाव संबंधोंपर आधारित होती है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि विश्लेषणात्मक लेखन तर्क, प्रमाण, औचित्य, आलोचनात्मक व अमूर्त चिंतन से संबंधितहै।

14.7.2 विश्लेषणात्मक लेखन और शिक्षक सहभागिता

शिक्षक की विश्लेषणात्मक लेखन में भूमिका अतिमहत्वपूर्ण होती है। क्योंकि इसी आधार पर शिक्षक वास्तविकता का पर्याप्त प्रमाणों के साथसोच विचारपूर्वक प्रस्तुत करता है। शिक्षक के लेखन में सदैव यह भाव दिखायी देना चाहिए। किसी विषयवस्तु को औचित्य के साथ क्या, क्यों व कैसे के प्रश्नों से संबंधित करने से विषयवस्तु का प्रस्तुतीकरण उपयुक्त हो जाता है। हम पूर्व में भी चर्चा कर चुके है कि लेखन एक कला है और विश्लेषणात्मक लेखन एक प्रकसी और उपयोगी कला।

शिक्षक समाज का एक अभिन्न हिस्सा है। वह समाज निर्माण की प्रक्रिया से भी जुड़ा है और इसलिए बालकों के सर्वांगीण विकास से उसका ताना बाना रहता है। वह वास्तविकताओं को देखता है, समझता है, उनके प्रति संवेदनशीलता भी रखता है। अत: उसे कागज पर उकेरने में वास्तविकता स्पष्ट झलकती है और उसमें तर्क व प्रमाण भी दिखायी दे सकते हैं। अत:एक शिक्षक का लेखन सदैव विश्लेषणात्मक की बताने वाला होना चाहिए। शिक्षक विद्यालय की और शिक्षण से संबंधित चुनौतियों के समाधान हेतु क्रियात्मक अनुसंधान भी करता है जिसके प्रतिवेदन के निर्माण में विश्लेषणात्मक लेखन दिखायी दे सकता है। इसके साथ ही विभिन्न पत्र, पत्रिकाओं तथा पुस्तक लेखन में भी शिक्षक को विश्लेषणात्मक दृष्टि रखनी चाहिए।

14.7.3 विश्लेषणात्मक लेखन के दौरान ध्यान रखी जाने वाली बातें -

एक शिक्षक को विश्लेषणात्मक लेखन के समय निम्नलिखित बिन्दुओं का ध्यान रखना चाहिए -

- यह कल्पना या कहानी गढ़ना नही बल्कि वास्तविकता का समूह होना चाहिए।

- अपनी सोच के बारे में सोचने से संबंधितहोना चाहिए जोकि आत्मसंज्ञान से संबंधितहोगा।
- मैं और तुम के स्थान पर विषय तथा विषयवस्तु की तर्कपूर्ण रूप में व्याख्या की जाए।
- असामान्य शब्दावली जैसे सामान्यत: जैसाकि, बहुत अधिक, बहुत कुछ आदि को अपने लेखन से हटाया जाय और लेखन प्रमाण को वास्तविक बनाए।
- अत्यधिक दोहरान से बचा जाए। सटीक विचारों का प्रस्तुतीकरण हो।
- स्वयं से संबंधितभावनात्मक प्रतिक्रिया से बचा जाए बल्कि लेखन को प्रमाणिक बनाया जाना आवश्यक है।

14.7.4 शिक्षक में निहितार्थ

विश्लेषणात्मक लेखन से शिक्षक का गहरा संबंधबताया जा सकता है। शिक्षक अपने विभिन्न लेखन कार्य में इसका प्रयोग करे। विशेषत: शिक्षण के संदर्भ में वास्तविकता से अधिगमकर्ताओं को अवगत कराने में विश्लेषणात्मक लेखन महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। इस प्रकार के लेखन से कुछ जुड़ी बाह्यवस्तु तैयार की जा सकती है विशेषत: उन प्रकरणों को ध्यान में रखकर जिनमें आंकड़ों, तर्कों व प्रमाणों को ओर गहनता व नवीनता से प्रस्तुत किया जाना हो। अखबार, पत्र पत्रिकाओं, इन्टरनेट, व लेखों में आवश्यक सामग्री एकत्रित कर अपने लेखन को ओर अधिक प्रमाणिक बनाया जाना चाहिए और कक्षा कक्ष में उसका उपयोग किया जाना चाहिए। शिक्षक स्वयं की लेखों व पुस्तकों के लेखन में विश्लेषणात्मक दृष्टि रख सकते है, और शिक्षक में उसका प्रयोग कर सकते है। साथ ही विद्यार्थियों को भी शिक्षण के दौरान इस प्रकार के लेखन हेतु प्रेरित किया जा सकता है। सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि विश्लेषणात्मक लेखन शिक्षक करे, शिक्षण में इसका गहराई से प्रयोग करें तथा विद्यार्थी भी इसकी सहभागिता को सीखे तभी लेखन औचित्यपूर्ण है।

इस प्रकार एक शिक्षक को अपनी सहभागिता विश्लेषणात्मक लेखन में रखनी चाहिए ताकि विद्यालय, विद्यार्थी, समाज आदि के संबंधमें वास्तविक तथा प्रमाणिक विषयवस्तु को पढ़ने का एक आम व्यक्ति को अवसर मिले।

अभ्यास प्रश्न

1- विश्लेषण -------------के विपरीत है।
2- विश्लेषणात्मक लेखन कल्पना के स्थान ----------पर आधारित है।

14.8 अध्यापक दैनिन्दिनी के अध्ययन का तरीका

अध्यापक का बहुआयामी व्यक्तित्व जहां एक ओर उसे एक से अधिक उत्तरदायित्वों को निभाने का अवसर देता है तो वहीं दूसरी ओर उन जिम्मेदारियों के प्रति अपने विचारों के प्रस्तुतीकरण का भी। मौखिक तथा लिखित दोनों ही तरीकों से अध्यापकों द्वारा अपने विचारों के साथ साथ संस्थागत जिम्मेदारियों को साझा करने का अवसर मिलता है। दोनों ही तरीकों की अपनी पृथक पृथक महत्ता है।

लेखनी एक तरीके के साथ साथ एक ताकत के रूप में अध्यापक को अपने कर्तव्यों को प्रस्तुत करने का मौका देती है। लेखन के ही एक स्वरूप के रूप में अध्यापक अपनी लिखित अभिव्यक्ति के लिए दैनिन्दिनी मे लिखते और उसे भरते है।

अध्यापक दैनिन्दिनी अध्यापक की कार्ययोजना तैयारी और प्रस्तुतीकरण का एक सशक्त माध्यम है लेकिन कई बार इसका लेखन केवल औपचारिकता और भरपाई से जुड़ा हुआ दिखायी देता है और इसक विभिन्न हिस्सों को भरना या उनकी पूर्ति करना केवल इसीलिए आवश्यक माना जाता है क्योंकि यह निरीक्षक द्वारा देखी जा सकती है। अत: यह समझना भी अति आवश्यक हो जाता है कि अध्यापक दैनिन्दिनी शिक्षक को स्वमूल्यांकन का अवसर प्रदान करती है।

अध्यापक दैनिन्दिनी को पढ़ना कई तरीकों से हो सकता है। केवल उपरी तौर पर देखना और उसे गहराई में पढ़ना, अभिव्यक्ति और कार्ययोजना को गहनता से समझना भी अध्यापक दैनिन्दिनी के अध्ययन का तरीका हो सकता है। यहां हम इसी बात को समझने का प्रयास करेंगे कि अध्यापक दैनिन्दिनी को पढ़ने का क्या तरीका होना चाहिए और ऐसे कौन कौन से बिन्दुओं पर बातचीत की जानी चाहिए ताकि अध्यापक दैनिन्दिनी को पढ़ने के प्रभावी तरीके से संबंधितहो। उपर्युक्त विवरण में उल्लेखित किया जा चुका है कि अध्यापक दैनिन्दिनी को पढ़ने के कई तरीके हो सकते है लेकिन उसे गहराई में पढ़ना और समझरना ही उपयुक्त तरीका माना जाना चाहिए ताकि केवल उपरी तौर पर देखना या सरसरी निगाह डालना। जब हम अध्यापक दैनिन्दिनी को गहराई में पढ़ने के तरीकों की बात करते है तो हमें उन बिन्दुओं पर चर्चा करनी चाहिए जोकि गहराई या गहनता को प्रतिबिम्बित करे। इस प्रकार अगले शीर्षक के बिन्दुओं के माध्यम से अध्यापक दैनिन्दिनी को पढ़ने के गहन तरीके को जानने और समझने का प्रयास करेंगे।

14.8.1 अध्यापक दैनिन्दिनी का अध्ययन और इसका शिक्षण में उपयोग

1- **अध्यापक दैनिन्दिनी के उद्दश्यों की पूर्ति -** अध्यापक का दैनिन्दिनी में दैनिक विवरण लेखन विभिन्न उद्देश्यों से जुड़ा होता है। अत: अध्यापक दैनिन्दिनी को पढ़ने के तरीके में यह देखना भी आवश्यक है कि जिस उद्देश्य से दैनिन्दिनी के माध्यम से अध्यापक को अभिव्यक्ति और प्रतिबिंबितहोने का अवसर दिया जाता है क्या दैनिन्दिनी का लेखन उस उद्देश्य की पूर्ति कर रहा है। यदि उद्देश्यों की प्राप्ति या पूर्ति का ध्यान रख लिया जाए तो दैनिन्दिनी अपने आप गुणवत्तापूर्ण बन जाएगी।

   दैनिन्दिनी के उद्देश्यों में शिक्षक व उसकी योजना का निर्माण भी सम्मिलित है। अत: दैनिन्दिनी का शिक्षण की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण संबंधहै।

2- **शिक्षण योजना का विवरण -** अध्यापन के उत्तरदायित्व की पूर्ति में शिक्षण योजना की भी अह्म भूमिका है। अध्यापक दैनिन्दिनी में शिक्षण योजना का भी उल्लेख किया जाता है। यह योजना बालकेन्द्रित शिक्षा के रूप में कक्षा में विद्यार्थियों को सीखने के अवसरों से जुड़ी होनी चाहिए। शिक्षण योजना अध्यापक की प्रारंभिक तैयारी को प्रतिबिबिंत करते हुए दिखायी देनी चाहिए। इस प्रकार अध्यापक दैनिन्दिनी में पाठ योजना की रूपरेखा की स्पष्टता भी दैनिन्दिनी को पढ़ने के दौरान देखी जा सकती है।

3- **लगातार सुधार और समाधान से जुड़ाव -** अपने दिन प्रतिदिन के क्रियाकलापों में अध्यापक द्वारा कई प्रकार की चुनौतियों व समस्याओं को महसूस किया जाता है और इन चुनौतियों व समस्याओं से जुड़ सुधार व समाधान भी सोचे व किए जाते हैं लेकिन यह भी जानना आवश्यक हो जाता है कि अध्यापक इन सभी को अपनी दैनिन्दिनी में कैसे व कितनी जगह देता है या इनका विवरण कैसे लिखित रूप में प्रस्तुत करता है। यह विवरण अध्यापक की समस्याओं के प्रति समाधान की सकारात्मक सोच व योजना को प्रस्तुत करता है जो कि अध्यापक दैनिन्दिनी पढ़ते समय अवश्य देखा जाना चाहिए। साथ ही यह भी आवश्यक है कि शिक्षण के दौरान यह सुधार व समाधान प्रतिबिंबित होना चाहिए।

4- अभिभावकों के सुझावों और विद्यालय तथा समुदाय के बीच के मजबूत संबंध के बारे में कई बार अभिभावकों द्वारा भी बेहद उपयोगी सुझाव दिए जाते है। इन सुझावों से विद्यालय की प्रसासनिक, अकादमिक तथा अन्य समस्याओं का समाधान भी खोजा जा सकता है। अत: यह जरूरी हो जाता है कि अध्यापक दैनिन्दिनी मे उन सभी सुझावों उनके प्रयोग तथा प्रभावों को भी लिखा जाए ताकि दैनिन्दिनी को पुन: पढ़ते समय या किसी अन्य द्वारा अवलोकित करते समय अभिभावक के विद्यालय के साथ संबंधोंको भी समझा जा सके।

यह भी ध्यान रखा जाए कि शिक्षण के दौरान उक्त सुझावों का प्रयोग किया जाए ताकि अभिभावकों शिक्षण व विद्यार्थी के बीच एक महत्वपूर्ण तिहरा संबंधस्थापित किया जा सके।

अभ्यास प्रश्न 6

निम्नलिखित प्रश्नों मे सही /गलत का निशान लगाइए।

1- दैनिन्दिनी अध्यापक को स्वमूल्यांकन का अवसर देती है।

2- दैनिन्दिनी जिम्मेदारियों की पूर्ति में एक बाधा मात्र है।

5- **भविष्योन्मुखी दृष्टि -** यदि आज पाठ को पढ़ाने मे बच्चों को स्वयं सीखने के और अधिक अवसर देता या देती तो पाठ का प्रस्तुतीकरण और अधिक प्रभावी होता है | कल मैं ऐसा ही करूंगा या करूंगी या मुझे कल इस बात का ध्यान रखना चाहिए। यह केवल एक उदाहरण है। विद्यालय की विभिन्न क्रियाकलापों और जिम्मेदारियों से संबंधित ऐसी सोच अतीत और वर्तमान को जोड़ते हुए भविष्य की ओर संकेत करती है। इस विचार के माध्यम से अपनी कमियों को सुधारने की इच्छा और निश्चय भी स्मरण में आता है। यह भी अध्यापक दैनिन्दिनी का एक प्रमुख आयाम है जो कि उसे पढ़ते समय ध्यान से देखा जाना चाहिए।

6- **वृस्तिक वृद्धि और विकास का उल्लेख -** अध्यापक दैनिन्दिनी दिन प्रतिदिन की गतिविधियों में अध्यापक की सहभागिता को तो बताती है साथ ही उसमें अध्यापक वृतिक वृद्धि और विकास से जुड़े कार्यक्रमों में सहभागिता का उल्लेख भी होना चाहिए। अध्यापक दैनिन्दिनी को पढ़ते समय इसे भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। वृतिक वृद्धि से जुड़े कार्यक्रमों में सहभागिता से प्राप्त अनुभवों को दैनिन्दिनी में विवरण के साथ साथ शिक्षण के दौरान भी उपयोग में लिया जा सकता है। विषय वस्तु, पढ़ाने का तरीका तथा समसामयिक मुद्दों की जानकारी तथा समझ को शिक्षण से जोड़ने पर ही उक्त कार्यकमों की गुणवत्ता और सफलता सिद्ध होती है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से अध्यापक दैनिन्दिनी की पूर्ति करने के साथ साथ उसे पढ़ने के तरीके के दौरान ध्यान रखी जाने वाली बातों को सरलता से समझा जा सकता है। अध्यापक के लिए अध्यापक दैनिन्दिनी में अपनी सहभागिता महत्वपूर्ण है। यदि हम केवल शिक्षण के परिप्रेक्ष्य में विचार करे तो अध्यापक दैनिन्दिनी के निहितार्थ को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से समझ सकते हैं -

- शिक्षण में दिशा प्रदान करने में सहायक
- पूर्व तैयारी तथा उसके प्रस्तुतीकरण में तालमेल बनाने में सहायक
- लगातार सुधारात्मक दृष्टि प्रदान करने में सहायक
- चरणों में बदलाव की प्रकृति विकसित करने में सहायक
- कक्षागत वातावरण को समझने में सहायक।
- अन्य शिक्षकों को सुझाव देने में सहायक।
- स्वमूल्यांकन में सहायक।

इस प्रकार अध्यापक दैनिन्दिनी का शिक्षण में निहितार्थ की महत्वपूर्ण है। यह एक माध्यम है जिससे मिश्रण में गुणात्मकता लाकर उसे एक वृत्ति के रूप में पहचान दिलाने की पहल की जा सकती है।

14.9 निष्कर्ष

इस प्रकार स्पष्ट है कि शिक्षक विभिन्न प्रकार के उत्तरदायित्वों का निर्वहन करता है उनसे अपना गहरा संबंधभी स्थापित करता है। इन्हीं गहरे संबंधोंके कारण शिक्षक और अधिगम प्रक्रिया से जुड़े विभिन्न प्रयास विद्यार्थियों को सीखने के लिए सकारात्मक वातावरण का निर्माण करते है और कर भी सकते है। इसी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया से जुड़ी योजनाओं, प्रस्तुतीकरण अन्वेषण, साझेदारी, प्रतिबिंबन आदि को समझने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षक का इन सभी से जुड़ाव अतिमहत्वपूर्ण है। स्वयं शिक्षक और विद्यार्थी दोनों के विकास की दृष्टि से यह आवश्यक है।

14.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1 सुविधाप्रदाता

2 सतत एवं व्यापक मूल्यांकन

अभ्यास प्रश्न 2

1 कोठारी आयोग 1964-66 (ब)

अभ्यास प्रश्न 3

1 गलत 2 सही

अभ्यास प्रश्न 4

1 अपने विचारों, अनुभवों की दिशा में आगे बढ़ना और शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में अपना प्रतिरूप दिखना।

2 समालोचनात्मक दृष्टिकोण

अभ्यास प्रश्न 5

1 संश्लेषण 2 वास्तविकता

अभ्यास प्रश्न 6

1 सही 2 गलत

14.11 निबंधात्मक प्रश्न

1- शिक्षक की योजना बनाने में सहभागिता को स्पष्ट कीजिए।
2- शिक्षण एक खोजबीन कर्ता की भूमिका निभाता है? कैसे
3- शिक्षक विद्यार्थियों को साझा करने के अवसर कैसे उपलब्ध करा सकता है?समझाइये।
4- विश्लेषणात्मक लेखन का अभिप्राय और इससे संबंधित ध्यान रखी जाने वाली बातों की चर्चा कीजिए।
5- अध्यापक दैनिन्दिनी को पढ़ते समय किन किन पक्षों का ध्यान रखा जाना चाहिए? स्पष्ट कीजिए।
6- शिक्षक के प्रतिबिंबन से जुड़ाव को विस्तार से समझाइए।

14.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

- बधेका, जी (2006) ''दिवास्वप्न'' नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।
- भट्ट, एच., 'द डायरी ऑफ ए स्कूल टीचर'' आजीम प्रेमजी, विश्वविद्यालय प्रकाशन।
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005
- अध्यापक शिक्षा की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2009
- अध्यापक शिक्षा से संबंधितआधार पत्र 2007
- www.lightbulblearning.net

इकाई - 15

शिक्षण एक वृत्ति के रूप में

Teaching as a Profession

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 शिक्षण एक वृत्ति के रूप में

15.3.1 शिक्षण

15.3.2 वृत्ति

15.3.3 शिक्षण तथा वृत्ति में संबंध

15.4 शिक्षण पर विश्वासों तथा अभ्यासों का प्रभाव

15.5 संस्थागत व्यवस्था में एकाधिक उत्तदायित्व

15.6 वृत्तिक वृद्धि की आवश्यकता

15.7 वृत्तिक वृद्धि के अवसर

15.8 सांराश

15.9 शब्दावली

15.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

15.11 निबंधात्मक प्रश्न

15.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

15.1 प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा राष्ट्रीय प्रगति के एक मुख्य कारक के रूप में अपनी भूमिका अदा करती है। यह वर्तमान तथा भविष्य के निर्माण का अनुपम साधन है। समाज के निर्माण तथा उसे उचित दिशा प्रदान करने की योग्यता की शिक्षा में निहित है। शिक्षा की गुणात्मकता में शिक्षण की गुणात्मकता भी सम्मिलित है। शिक्षण और शिक्षक उत्तम नागरिकता के निर्माण के लिए एक मजबूत आधार स्तम्भ तैयार करते हैं। शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर शिक्षक एक कर्ता के रूप में अपने उत्तरदायित्वों को निभाता है। समय और परिस्थितियों में बदलाव से शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका चुनौतीपूर्ण बन गयी है।

देश की शिक्षा व्यवस्था में पिछले कुछ वर्षों से व्यापक बदलाव किए जाते रहे हैं। शिक्षा व्यवस्था में सुधार के लिए बनाए गए और बनाए जा रहे विभिन्न दस्तावेज, योजनाएं तथा पाठ्यचर्या की रूपरेखा में बालकेन्द्रित शिक्षा पर जोर दिया जा रहा है और यह माना जाने लगा है कि शिक्षण के दौरान बच्चों को अपने ज्ञान का निर्माण करने के पर्याप्त अवसर उपलब्ध करवाए जाने चाहिए जिसमें उनके अपने और स्थानीय अनुभवों को साझा करने का मौका दिया जाना चाहिए। ऐसे में शिक्षा की गुणात्मकता साफ तौर पर शिक्षण की गुणात्मकता प्रतिबद्धता और उत्साह पर निर्भर दिखायी देती है। अत: यह समझना जरूरी है कि शिक्षण को एक वृत्ति के रूप में देखते हुए बालक के सर्वांगीण विकास पर ध्यान दिया जाना चाहिए। यह भी स्पष्ट है कि शिक्षण वृत्ति ही अन्य वृत्तियों के लिए नींव तैयार करता है। अत: यह सम्मानीय वृत्ति को बनाए रखने के लिए गहन तैयारी अनिवार्य है और इसके लिए वृत्तिक वृद्धि और विकास पर ध्यान दिया जाना भी अनिवार्य है। इस प्रकार शिक्षण और वृत्तिक वृद्धि को एक दूसरे का पूरक कहा जा सकता है। हालांकि शिक्षण में शिक्षक के स्वयं के विश्वासों तथा व्यवहारों का प्रभाव पड़ता है। लेकिन बालकों के व्यक्तित्व विकास को ध्यान में रखते हुए शिक्षण की दृष्टि को सदैव सकारात्मक बनाया जाना चाहिए और महत्त्वपूर्ण तौर पर राष्ट्रीय लक्ष्यों को ध्यान में रखकर शिक्षण की उचित दिशा को तय किया जाना चाहिए। इस प्रकार शिक्षण और उसके वृत्तिक विकास पर चर्चा एक अहम विषय या मुद्दा है।

15.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- शिक्षण को एक वृत्ति के रूप में परिभाषित कर सकेंगे।
- शिक्षण तथा वृत्ति के मध्य संबंधको स्पष्ट कर सकेंगे।
- विश्वासों तथा अभ्यासों का शिक्षण पर प्रभाव बता सकेंगे।
- शिक्षा की संस्थागत व्यवस्था में एकाधिक जिम्मेदारियों को बता सकेंगे।
- शिक्षण हेतु वृत्तिक वृद्धि की आवश्यकता को स्पष्ट कर सकेंगे।
- शिक्षण की वृत्तिक वद्धि से जुड़े अवसरों को समझ सकेंगे।

15.3 शिक्षण एक वृत्ति के रूप में (Teaching as a profession)

प्रारम्भ से ही समाज और राष्ट्र निर्माण में शिक्षक और शिक्षण की भूमिका को महत्त्वपूर्ण माना जाता रहा है। बदलती परिस्थितियों में यह सोचा जाना और भी जरूरी हो जाता है कि शिक्षण को एक वृत्ति के रूप में देखा जाए या केवल मात्र रोजगार या नौकरी। यह कथन स्वागत योग्य है कि शिक्षण को वृत्ति की दृष्टि से देखा जाये लेकिन इसके साथ क्यों और कैसे पर भी विचार किया जाना आवश्यक हो जाता है। इसीलिए अग्रिम बिन्दुओं में शिक्षण हेतु वृत्तिक वृद्धि की आवश्यकता और अवसरों पर विस्तृत चर्चा की जाएगी। शिक्षण को एक वृत्ति के रूप में बातचीत से पहले शिक्षण तथा वृत्ति दोनों के अभिप्राय और प्रकृति को समझना जरूरी है।

15.3.1 शिक्षण (Teaching) - औपचारिक शिक्षा प्रणाली में शिक्षण को संकुचित अर्थ में निश्चित समय, स्थान और पूर्व नियोजित ढंग से संबंधितकिया जाता है। कक्षा शिक्षण की दृष्टि से उपर्युक्त अर्थ उचित प्रतीत होता है।

एडमस के अनुसार - ''शिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें एक व्यक्तित्व दूसरे पर एक दूसरे के विकास में परिवर्तन के लिए कार्य करता है। यह क्रिया चेतनायुक्त और सप्रयोजन होती है।''

क्लार्क के अनुसार - ''शिक्षण वह प्रक्रिया है जिसाके प्रारूप तथा संचालन की व्यवस्था इसलिए की जाती है जिससे शिक्षार्थियों के व्यवहार में परिवर्तन लाया जा सके।''

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि शिक्षण का संबंधसीखने सिखाने ज्ञान में वृद्धि करने, क्रियाओं को व्यवस्थित करने के साथ महत्त्वपूर्ण तौर पर व्यवहार में परिवर्तन लाने से है। शिक्षण को व्यवस्थित रूप प्रदान करने में स्मृति,शोध और चिन्तन स्तर से लेकर गुजरना इसे एक सतत् प्रक्रिया के रूप में इंगित करता है। कुल मिलाकर जीवन को एक उचित दिशा प्रदान करने में, शिक्षण का योगदान महत्त्वपूर्ण है।

15.3.2 वृत्ति (Profession) - वृत्ति के संबंधमें अनेक मत मतान्तर विद्यमान है। वृत्ति के अर्थ को सर्वप्रथम सामान्य रूप में समझना आवश्यक है।

ऑक्सफोर्ड शब्दकोष के अनुसार वृत्ति एक प्रकार का कार्य जिसमें विशिष्ट प्रशिक्षण और कौशल की आवश्यकता होती है। विशेषत उच्च स्तरीय शिक्षा की आवश्यकता उनमें से एक हो। जैसे मेडिकल, विधि एवं शिक्षण उदाहरण हैं।

वृत्ति की विशेषताएं समझकर ही हम एक वृत्ति की स्थिति का अनुमान लगा सकते हैं। विभिन्न विद्वानों तथा संगठनों द्वारा वृत्ति की विशेषताएं स्पष्ट की गयी हैं। जिनके सम्मिलित रूप को निम्नांकित विशेषताओं से स्पष्ट किया जा सकता है:-

- जिसमें बौद्धिक गतिविधियाँ सम्मिलित हो।
- जोकि विशेषीकृत ज्ञान पर आधारित हो।
- वृत्ति की तैयारी के अवसरों से संबंधितहो।
- जिसमें सतत् सेवारत वृद्धि की मांग हो।
- जिसमें स्थायी सदस्यता और जीवनभर के पेशे से संबंधहो।
- जिसके स्वयं के अपनी पहचान एवं प्रतिमान हो।
- जिसमें मजबूत वृत्तिक संगठनऔर उनसे संबंधहो।
- जिसमें सैद्धान्तिक के साथ साथ व्यवहारिक ज्ञान हो।
- जिसके सदस्यों के कार्य करने हेतु एक आचार संहिता हो।
- जिसमें जनता के साथ संबंधहो।
- उत्तदायित्व की भावना समाहित हो।

- अप टू डेट और नवीनता को स्वीकार करें।
- उत्कृष्टता की ओर अग्रेषित हो।

इस प्रकार उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर वृद्धि के अर्थ को समझा जा सकता है।

15.3.3 शिक्षण तथा वृत्ति में संबंध(Relation between Teaching & Profession) - शिक्षण तथा वृत्ति पर प्रथक प्रथक चर्चा के बाद हम शिक्षण को एक वृत्ति के रूप में सरलता से परिभाषित कर सकते हैं। प्रारंभ में शिक्षण को एक सेवा के रूप में देखा जाता था। इस प्रकार सामाजिक हित और उत्तरदायित्वों की पूर्ति में शिक्षण की भूमिका स्पष्ट थी। समय और परिस्थितियों में बदलाव के साथ शिक्षण में वृत्ति के गुणों और विशेषताओं का समावेश होता चला गया। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (NCTE) के द्वारा भी अध्यापन को आजीविका के रूप में मान लिया गया और इसके सतत् और गुणात्मक विकास पर बल दिया गया। अभी हॉल ही में अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम परिवर्तन में 'इन्टर्नशिप' पर विशेष ध्यान दिया गया है साथ ही क्षेत्र अनुभव को अतिमहत्त्वपूर्ण माना गया है। यह परिवर्तन स्पष्ट करता है कि शिक्षण की वृत्ति के रूप में तैयारी को और दृढ़ता प्रदान की जा रही है।

अध्यापक शिक्षा में बदलाव के लिए बने आधार पत्र (Position paper) में भी कहा गया है कि शिक्षक को अपने आपको ऐसे पेशेवर के रूप में देखने की आवश्यकता है, जिसमें उपयुक्त क्षमता, लगन, उत्साह, नए तरीके अपनाने की लगन और चिंतनशीलता है। उसमें संवेदनशीलता भी है न केवल विद्यार्थियों और संस्था के लिए बल्कि वृहत सामाजिक संदर्भ में जिसमें व्यक्ति कार्य करता है, की उभरती चिंताओं के प्रति।

उपर्युक्त विवेचन में एक महत्त्वपूर्ण पक्ष सामाजिक संदर्भ और समाज के प्रति संवेदनशीलता है। यह एक ऐसा आधार है जोकि कुछ वृत्तियों में नहीं दिखाई देता अत: इस कारण शिक्षक को एक वृत्ति के रूप में स्वीकार करने पर कभी कभी प्रश्न उठाये जाते हैं। हालांकि प्रत्येक वृत्ति की प्रतिबद्धता प्रथक प्रथक होती है अत: शिक्षण की वृत्ति के रूप में पहचान का आधार ही सामाजिक प्रतिबद्धता से संबंधितहै।

वृत्ति की विशेषताओं को ध्यान से देखने पर स्पष्ट होता है कि शिक्षण से उनका गहरा संबंधहै। शिक्षण हेतु भी विशेष कौशलों को समझने की आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम के माध्यम से होती है। वहीं लगातार नवीनता और बदलाव को स्वीकार करने की तैयारी के लिए सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। शिक्षण कौशलों को सीखना और शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में जोड़ना यकीनन एक विशेषीकृत और गंभीर प्रयास ही है। शिक्षण की उत्कृष्टता के लगातार प्रयास किए जाते रहे हैं। नवीनता, नवीन व्यूह रचनाओं का शिक्षण में प्रयोग किया जाता है तभी तो निर्माणवादी उपागम (Cunstructvist Approach) तथा बाल केन्द्रित शिक्षा (Child Centered Education) पर ध्यान दिया जाता है। शिक्षण वृत्ति की अपनी नैतिकता, मूल्य तथा वृत्तिक आचार संहिता है। शिक्षकों के संगठन विद्यमान है और शिक्षण वृत्ति अपने उत्तदायित्वों के निर्वहन को भी स्वीकारता है। इस प्रकार हम शिक्षण को एक वृत्ति के रूप में समझ सकते हैं। एक ओर महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि शिक्षण वृत्ति को समर्पण से परिपूर्ण माना जाना चाहिए।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में लिखा गया है कि बच्चा ज्ञान का सृजन करता है, इसका निहितार्थ है कि पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकें शिक्षक को इस बात के लिए सक्षम बनाए कि वे बच्चों के प्रति प्रकृति और वातावरण के अनुरूप कक्षायी अनुभव आयोजित करे ताकि सारे बच्चों को अवसर मिल पाए। शिक्षण का उद्देश्य बच्चे को सीखने की सहज इच्छा और युक्तियों को समृद्ध करना होना चाहिए। ज्ञान को सूचना से अलग करने की जरूरत है और शिक्षण को एक पेशेवर गतिविधि के रूप में पहचानने की जरूरत है न कि तथ्यों के रटने और प्रसार के प्रशिक्षण के रूप में। यह पंक्तियां शिक्षण को एक व्यवसाय अथवा वृत्ति के रूप में नये दृष्टिकोण से सोचने को तैयार करती है अर्थात् शिक्षण की वृत्तिक पहचान विद्यार्थियों को सीखने के अवसर उपलब्ध कराने से प्रत्यक्षत: जुड़ी है।

इस प्रकार जब शिक्षण को एक वृत्ति के रूप में माना जाता है तो शिक्षण और शिक्षकों के वृत्तिक विकास का चित्र भी स्पष्ट दिखायी देता है। नवाचारों के साथ शिक्षण की वृत्तिक वृद्धि के प्रयास लगातार किए जाते रहे हैं। शिक्षा, अध्यापक शिक्षा आदि से संबंधितयोजनाओं, दस्तावेजों में शिक्षक और शिक्षण को एक वृत्ति के रूप में स्पष्ट किया गया है। जिसकी विस्तृत व्याख्या वृत्तिक वृद्धि की आवश्यकता तथा अवसरों के साथ समझने का प्रयास करेंगे।

अभ्यास प्रश्न 1

1- बदलते संदर्भों में हमें शिक्षण को एक .... के रूप में देखना चाहिए।
2- अध्यापक शिक्षा और शिक्षण को वृत्ति के रूप में .... परिषद् द्वारा भी स्वीकार किया गया है।

15.4 शिक्षण पर विश्वासों तथा अभ्यासों का प्रभाव (Impact of Beliefs and Practices on Teaching)

शिक्षण की मजबूत आधारशिला के निर्माण में विश्वासों तथा व्यवहारों का योगदान भी स्पष्ट दिखायी देता है। सर्वप्रथम दोनों शब्दों के अर्थ को जानना आवश्यक है।

विश्वास के संदर्भ में समाजशास्त्र शब्दकोष में कहा गया है कि किसी प्रस्ताव अथवा विचार को सत्य मानना विश्वास का द्योतक है। सामान्यत: यह स्वीकृति बौद्धिक होती है किन्तु कभी कभी यह उद्वेगों द्वारा प्रेरित भी हो सकती है। विश्वास व्यक्ति मे एक ऐसी मानसिक दशा का निर्माण करते हैं जो उसके स्वैच्छिक क्रिया के जनक का काम करती है। विश्वास कई प्रकार के हो सकते हैं यथा वैज्ञानिक विश्वास, सनकपन पर आधारित और अंधविश्वास।

व्यवहार या अभ्यास के संदर्भ में ऑक्सफोर्ड शब्दकोष में स्पष्ट किया गया है कि यह विचारों के स्थान पर क्रिया से संबंधितअर्थात् व्यवहारिक या प्रायोगिक रूप से लागू करना है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि विश्वास तथा अभ्यास को स्वीकार करना तथा लागू करना के रूप में समझा जा सकता है। इसे हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं -

विश्वास	**अभ्यास**
व्यक्तिगत केन्द्रित या उन्मुख विश्वास तथा अभ्यास	समुदाय और राष्ट्र केन्द्रित या उन्मुख विश्वास तथा अभ्यास

कभी कभी निश्चित परम्पराओं मान्यताओं तथा विश्वासों में बंधकर शिक्षण किया जाता है। हमारे विश्वास तथा अभ्यास की दृष्टि भी संकुचितता बालकों के सर्वांगीण विकास को प्रभावित करती है। अत: इसे व्यक्तिगत केन्द्रित या उन्मुख कहा जा सकता है। शिक्षक की संकुचित विचार और विचारधारा शिक्षण पर भी संकुचित और नकारात्मक प्रभाव के लिए जिम्मेदार बन जाती है। अत: आवश्यकता होती है व्यापक दृष्टि बनाए रखने की, जो शिक्षक के साथ साथ विद्यार्थियों में भी उर्जा का संचार करती है।

भारतीय समाज बहुलवादी (Pluralistic) धर्मनिर्पेक्ष (Secular) तथा समतावादी (Egaliterian) समाज के रूप में जाना पहचाना जाता है। यहाँ शिक्षण में समानता, स्वतंत्रता, न्याय और भ्रातत्व के लक्षण दिखाई देते हैं। विश्वास तथा अभ्यास को यदि राष्ट्र या समुदाय की दृष्टि से देखा जाए तो उसे समुदाय और राष्ट्र केन्द्रित या उन्मुख कहा जा सकता है। यदि शिक्षक के विश्वास तथा अभ्यास का परिप्रेक्ष्य समाज तथा समुदाय के प्रति होता है तो सामाजिक संगठन को ओर अधिक मजबूती मिलती है।

पारंपरिक विश्वास, मान्यताएं और कई बार अंधविश्वास शिक्षण को प्रभावित करते हैं। इन्हीं के अनुरूप अभ्यास भी किए जाते हैं जोकि पूर्वाग्रहों की एक दीवार का निर्माण करते हैं और सामाजिक असमानता को बढ़ावा देती है दूसरी ओर परम्पराओं, मान्यताओं व विश्वासों में सकारात्मक पक्ष भी विद्यमान होते हैं। यह प्रत्येक समाज और उसकी संस्कृति पर निर्भर करते हैं अत: सभी समाजों में इनमें अन्तर दिखायी देता है। इस प्रकार यह नहीं कहाजा सकता कि परमपराएं, विश्वास तथा उनके अनुरूप अभ्यास विविधता लाने के लिए सदैव जिम्मेदार होते हैं बल्कि यह विविधता में एकता का मार्ग भी बनाते हैं। दोनों ही स्थिति में शिक्षण प्रभावित होता है। एक ओर असमानताओं को बढ़ावा मिलना तो दूसरी ओर समानता की ओर बढ़ना।

उदाहरण स्वरूप लैंगिक असमानता और भेदभाव की शुरूआत तो परिवार से समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से होती है और यह भी दृढ़ विश्वास बना हुआ दिखाई देता है कि पुरूष प्रधान समाज ओर पितृसत्तात्मक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए यह विश्वास पूर्वाग्रह या मान्यता सभी ओर समानता को सशक्त नहीं बनने देती और इसका सीधा संबंध अभ्यास के साथ मिश्रण के दौरान दिखायी देता है। यहाँ पर राष्ट्रीय एवं सामुदायिक विकास की दृष्टि दिखायी देनी चाहिए ताकि विश्वास को लैंगिक संवेदनशीलता से जोड़ा जाए और कक्षा शिक्षण और शिक्षण में इसका प्रभाव दिखायी दे।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) में शिक्षा का सामाजिक संदर्भ 'शीर्षक' में कहा गया है कि शिक्षा व्यवस्था उस समाज से अलग थलग होकर काम नहीं करती जिसका वह एक भाग है। जातिगत, आर्थिक तथा स्त्री-पुरूष संबंधों का पदानुक्रम, सांस्कृतिक विविधता और असमान विकास से जो भारतीय समाज की विशेषताएं हैं, शिक्षा की प्राप्ति और स्कूलों में बच्चों की सहभागिता प्रभावित होती है। इस प्रकार उक्त पंक्तियां भारतीय सामाजिक व्यवस्था, विश्वास और अभ्यास को बताती है।

शिक्षक के विश्वास और अभ्यास से शिक्षण के लक्ष्य और उद्देश्य, कक्षा में अन्त: क्रिया, भूमिका और सम्पूर्ण विद्यालय पर प्रभाव पड़ता है। यदि विश्वास तथा अभ्यास सभी को साथ लेकर चलने, अवसरों की समानता, विद्यार्थियों को समूह में रहना और कार्य करने के प्रोत्साहन देना, एक सुविधा प्रदाता (facilitator) के रूप में भूमिका निभाना, शिक्षक को एक वृत्ति मानना और उसी अनुसार अपनी जिम्मेदारियों को निभाना आदि से संबंधित हो तो निश्चय ही शिक्षण पर इनके प्रभावों की प्रशंसा की जाएगी। विश्वास तथा अभ्यास का एक स्वरूप इस प्रकार का हो, जहाँ शिक्षक निम्नलिखित विचारों पर अपनी सहमति प्रकट करे -

- कक्षा का प्रत्येक विद्यार्थी मुझे कुछ न कुछ सीखना है।
- सभी को सीखने के पर्याप्त अवसर उपलब्ध करवाए जाएं।
- विद्यालय तथा कक्षा का वातावरण भेदभाव मुक्त हो।
- विद्यार्थियों में जीवन पर्यंत सीखने की ऊर्जा का संचार किया जाए।
- बाल केन्द्रित तरीका शिक्षण से सदैव जुड़ा रहे।
- शिक्षण में संवैधानिक मूल्यों को सदैव ध्यान में रखा जाए।
- विद्यार्थियों को अपनी संस्कृति को बनाए रखने के अवसर दिए जाए।
- सभी को अपने विचार प्रस्तुत करने के अवसर उपलब्ध हो।
- कक्षा में प्रत्येक विद्यार्थी सफल हो सकता है।
- विद्यार्थियों की मदद के लिए तत्परता बनी रहे।
- कक्षाकक्ष में समाज और राष्ट्र का एक आदर्श नागरिक तैयार किया जाता रहे।

उपर्युक्त बिन्दुओं के प्रति सकारात्मक दृष्टि से जुड़े विश्वास तथा अभ्यास शिक्षण को प्रभावी बनाने के साथ साथ राष्ट्रीय विकास की नींव भी मजबूत करने में योगदान देता है जोकि शिक्षा आयोग 1964’66 की रिपोर्ट में स्पष्ट किया गया है। यह शिक्षा में समावेशन (Inclusiveness) के लिए भी जरूरी है।

अभ्यास प्रश्न : 2

1- किसी प्रभाव को .... मानना विश्वास का द्योतक है।
2- सभी को अपनी पहचान बनाए रखने से जुड़ी समाज की प्रकृति .... को कहते हैं।

15.5 संस्थागत व्यवस्था में एकाधिक उत्तदायित्व (Multiple responsibilities located in an institutionalized setting)

आज के समय बहुआयामी व्यक्तित्व की अपनी प्रथक छवि होती है। विशेष तौर से शिक्षक, शिक्षण और शिक्षक शिक्षा में बहुआयामी भूमिकाओं को निभाने के अवसर उपलब्ध होते हैं। जब हम मनोविज्ञान तथा शिक्षा मनोविज्ञान को पढ़ते हैं तो समझ में आता है कि अलग अलग प्रकार की बुद्धि और व्यक्तित्व से जुड़े व्यक्ति होते हैं और व्यक्तित्व की दृष्टि से देखें तो समायोजन भी अनेक प्रकार का दिखाई देता है।

मनोवैज्ञानिक गार्डनर ने तो बहुबुद्धि का सिद्धान्त (Gardner's Theory of Multiple Intelligence) भी प्रस्तुत कर व्यक्ति की विभिन्न प्रकार की कार्य करने की क्षमताओं का उल्लेख किया। इस प्रकार बहुआयामी व्यक्तित्व और एकाधिक जिम्मेदारियाँ एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

दिन प्रति दिन के जीवन में प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रकार के उत्तरदायित्वों का वहन करता है। चाहे वे पारिवारिक जीवन से संबंधितहो अथवा वृत्ति से। यह अवश्य होता है कि उत्तरदायित्वों में सबसे जरूरी को पहले करने का प्रयास किया जाता है। कभी कभी उत्तरदायित्वों के प्रति गंभीरता व गोपनीयता भी रखी जाती है तो कभी उन्हें सरलता और सहजता से पूर्ण किया जा सकता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि प्रत्येक उत्तरदायित्व की अपनी विविधता होती है। कुछ उत्तरदायित्वों का स्वरूप इस प्रकार का होता है कि एक पूर्ण होने पर ही दूसरा किया जा सकता है और कुछ उत्तरदायित्व समानान्तर रूप में पूर्ण किए जा सकतें हैं। उत्तदायित्वों को तय समय पर निपटाना कई कारकों से प्रभावित होता है और जो हमारी प्रशंसा एवं प्रगति के रास्ते भी तैयार करता है।

एक शिक्षक को संस्थान में विभिन्न प्रकार की जिम्मेदारियों का निर्वहन करना होता है जिन्हें हम मूलत: तीन भागों में विभाजित कर समझ सकते हैं -

प्रशासनिक उत्तरदायित्व	**अकादमिक उत्तरदायित्व**	**अन्य उत्तरदायित्व**
प्रवेश प्रक्रिया	शिक्षण	समुदाय के प्रति
विद्यालय प्रबंध समिति (SMC), अभिभावक शिक्षक संगठन (PTA)	निदानात्मक परीक्षण एवं उपचारात्मक शिक्षण	अन्य उत्तरदायित्व यथा आंकड़े जुटाना, स्वास्थ्य संबंधी अनुसंधान आदि
योजनाओं के प्रशासन के प्रति	मूल्यांकन	
भौतिक संसाधनों के प्रति	सहशैक्षिक गतिविधियों के आयोजन के प्रति	
संस्थागत नियोजन के प्रति		

उपर्युक्त विभाजन से स्पष्ट होता है कि शिक्षक को विभिन्न प्रकार के उत्तरदायित्वों का निर्वहन करना होता है। इसके अतिरिक्त चुनाव, जनगणना और अन्य सर्वेक्षण कार्यों के भी उत्तरदायित्व शिक्षक निभाता है। एक बहुआयामी व्यक्तित्व के तौर पर विभिन्न उत्तरदायित्वों के प्रति कुशल होना अध्यापक की विभिन्न कार्यों में भूमिका को भी स्पष्ट करता है।

प्रशासनिक उत्तरदायित्व विद्यालय अथवा संस्था के प्रशासन व प्रबंधन से संबंधितहै। जिसमें विद्यार्थियों की प्रवेश क्रिया की पूर्णता प्रवेशोत्सव आयोजन के साथ साथ विभिन्न संगठन व समितियों की सदस्यता भी सम्मिलित है। केन्द्र व राज्य से संबंधित योजनाओं का प्रशासान भी संस्थागत स्तर पर शिक्षक के

उत्तरदायित्वों में प्रमुखतया सम्मिलित है। साथ ही विद्यालय की वार्षिक संस्थागत योजना के निर्माण में स्वयं की सहभागिता, सहयोग संस्था के विकास में शिक्षक के उत्तरदायित्वों को स्पष्टता प्रदान करता है।

शिक्षक की शैक्षिक जिम्मेदारियों का प्रत्यक्ष संबंधशिक्षण अधिगम प्रक्रिया से है। कक्षाकक्ष में शिक्षक और सीखने सिखाने के अवसरों की उपलब्धता इससे जुड़ी है। व्यक्तिगत विभिन्नता के कारण विद्यार्थियों का निदानात्मक परीक्षण व उपचारात्मक शिक्षण भी किया जाना आवश्यक होता है। पाठ्यचर्या की अभिन्नता के रूप में सहशैक्षिक गतिविधियों, विभिन्न जयन्तियों व उत्सवों का आयोजन भी विद्यालय में शिक्षक के उत्तरदायित्वों में सम्मिलित है। मूल्यांकन की नवीन व्यवस्था सतत् और व्यापक मूल्यांकन (CCE) के अनुसार विद्यार्थियों की उपलब्धी को देखना भी शिक्षण के साथ मूल्यांकन के गहरे संबंधको स्पष्ट करता है।

समुदाय के प्रति जिम्मेदारियों के निर्वहन में भी शिक्षक की अहम भूमिका है। साथ ही समय समय पर विभिन्न आंकड़ों को एकत्रित करना और विद्यार्थियों की स्वास्थ्य देखभाल को भी उत्तरदायित्वों में सम्मिलित किया जा सकता है। विद्यालयों में क्रियात्मक अनुसंधान के द्वारा शिक्षण व प्रशासन से जुड़ी चुनौतियों के समाधान में भी शिक्षक की जवाबदेही सम्मिलित है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि एकाधिक उत्तरदायित्वों के निर्वहन में शिक्षक बहुआयामी भूमिका निभाता है।

अभ्यास प्रश्न : 3

1- मूल्यांकन की नवीन व्यवस्था .... है।
2- शिक्षक .... व्यक्तित्व है।
3- संस्थागत नियोजन .... उत्तरदायित्व है।

15.6 वृत्तिक वृद्धि की आवश्यकता (Need for Professional Growth)

परिवर्तन प्रकति का सार्वभौमिक नियम है। परिवर्तन के इस दौर में प्रभावी शिक्षण के लिए वृत्तिक वृद्धि (Professional Growth) की आवश्यकता भी स्पष्ट दिखायी देती है। आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण, सुस्थिर विकास (Sustainable Development) शान्ति शिक्षा (Peace Education) भविष्योन्मुखी शिक्षा (Futuristic Education) आदि अवधारणाओं का शिक्षण पर प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। देश की 12वीं पंचवर्षीय योजना भी अध्यापक शिक्षा की दृष्टि और साक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए दिशा प्रदान करती है, जोकि वृत्तिक वृद्धि के लिए आवश्यक है। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोजन (1948-49) में भी स्पष्ट किया गया है कि शिक्षा को एक वृत्ति के रूप में देखते हुए इसमें अन्य वृत्तियों से अधिक गहन तैयारी की जरूरत है। शिक्षा और शिक्षण को एक वृत्ति के रूप में इस विचार को सरलता से समझा जा सकता है।

शिक्षा आयोग (1964-66) में भी अध्यापकों का वृत्तिक शिक्षा का सातत्य (Countingwing Professional Education of Teachers) शीर्षक में कहा गया है कि सभी प्रकार के व्यवसायों के लिए यह आवश्यक है कि एक बार वृत्ति विशेष से परिचित करवाने के बाद सतत् प्रशिक्षण भी चालू रहे और उसके लिए और अधिक प्रशिक्षण तथा विशेष पाठ्यक्रमों की व्यवस्था रहे। शिक्षण वृत्ति के विषय

में इस प्रकार के सातत्य की ओर भी अधिक आवश्यकता है क्योंकि ज्ञान के सभी क्षेत्रों में त्वरित विकास हो रहा है और शिक्षाशास्त्रीय सिद्धान्तों और व्यवहारों में भी सतत् विकास हो रहा है। इस कार्यक्रम को अनेक अभिकरणों की सहायता से विकसित करना होगा। दस्तावेज में विद्यालय तथा सेवारत शिक्षा की अध्यापकों के वृत्तिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित किया गया है जिससे अध्यापकों की वृत्तिक विकास की सतत्ता की आवश्यकता को समझा जा सकता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में भी कहा गया है कि अध्यापकों की शिक्षा एक सतत् प्रक्रिया है और इसके सेवापूर्ण और सेवाकालीन (I) अंशों को अलग नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार विद्यालयों की पाठ्यचर्या में बदलाव के लिए बने राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (NCF,2005) में भी शिक्षकों की व्यवसायिक स्वतंत्रता के साथ सेवारत प्रशिक्षण पर विचार प्रस्तुत किए गए हैं।

अध्यापक शिक्षा की पाठ्यचर्या में भी व्यापक बदलाव के लिए बने राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2009 (NCFTE, 2009) में भी शिक्षक और शिक्षण पर विचार प्रस्तुत किए गए हैं। इससे बताया गया है कि शिक्षण एक वृत्ति और अध्यापक शिक्षा, अध्यापकों की वृत्तिक तैयारी की प्रक्रिया है। साथ ही अध्यापकों के सतत् वृत्तिक विकास (Counting Professional Development) के लक्ष्यों को भी बताया गया है। जिसमें अध्यापकों को स्वयं के व्यवहारों को बढ़ाना, अधिगमकर्ता की शिक्षा से जुड़े अनुसंधान, शैक्षिक और सामाजिक मुद्दों पर समझ बनाने, बौद्धिक प्रथक्करण (Intellectual isolation) को खत्म करने और अपने अनुभवों को साझा करने आदि को स्पष्ट किया गया है।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि देश की शिक्षा व्यवस्था से जुड़े दस्तावेज शिक्षण को वृत्ति के रूप में बताने के साथ साथ इसके वृत्तिक विकास की आवश्यकता को भी रेखांकित कर रहे हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि शिक्षक को वृत्ति के साथ साथ वृत्तिक विकास की आवश्यकता को भी समझना आवश्यक है। बदलाव के इस दौर में शिक्षण में नवीन आयामों, विधाओं, व्यूहरचनाओं, प्रवृत्तियों और कुल मिलाकर नवाचारों को अपनाया जा रहा है लेकिन यह भी समझना जरूरी है कि वृत्तिक वृद्धि के प्रयासों के अभाव में शिक्षण को वृत्ति के रूप में बनाए रखना केवल कल्पना ही कहा जा सकता है।

शिक्षण और शिक्षण में वृत्तिक वृद्धि एक गंभीर विषय है क्योंकि शिक्षण की प्रभावशीलता का वास्तविक धरातल का निर्माण वृत्तिक वृद्धि और विकास से ही पूर्ण हो सकता है। उपर्युक्त विवेचना से शिक्षण और वृत्तिक वृद्धि के सहसंबंध को सरलता से समझा जा सकता है। लेकिन इसे और व्यवस्थित तौर पर निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है अथवा शिक्षण हेतु वृत्तिक वृद्धि की आवश्यकता को समझा जा सकता है :-

1- वृत्ति एवं वृत्तिक वृद्धि को एक ही सिक्के के दो पहलू समझने के लिए - यह बात आसानी से समझी जा सकती है कि शिक्षण को एक वृत्ति के रूप में मानने के साथ साथ यह भी माना जाना जाए कि बिना वृत्तिक विकास और वृद्धि के शिक्षण को प्रभावी बनाना और उसे एक वृत्ति के रूप में स्थापित करना असंभव सा लगता है। अत: शिक्षण एक वृत्ति और इसकी वृत्तिक विकास से गहरे संबंधको समझने के लिए वृत्तिक वृद्धि और विकास की आवश्यकता दिखायी देती है।

2- गतिशील परिवर्तन और सतत् विकास (Countinues Development) की धारा से जोड़ने के लिए - बदलते समय के साथ अधिगम प्रक्रिया में विद्यार्थी को एक अधिगमकर्ता (Learner) के रूप में परिभाषित किया जा रहा है। ज्ञान को स्कूल के बाहर के जीवन से जोड़ना रटत पढ़ाई से मुक्ति, पाठ्यचर्या (Curriculum) से बालक का चहुँमुखी विकास हो, परीक्षा व्यवस्था को लचीला बनाना और कक्षा में गतिविधियों से सीखने के अवसर बनाना जैसे अनेक बदलावों को शिक्षण के साथ जोड़कर समझने के लिए वृत्तिक वृद्धि एक उपयुक्त माध्यम बन सकता है।

3- विद्यालयी पाठ्यक्रमों के विकास और परिवर्तित रूपरेखा की समझ के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (NCF,2005) के बाद विद्यालयी पाठ्यक्रमों में एक नयी दशा स्पष्ट दिखायी देती है। पाठ्यपुस्तकों में समझ, ज्ञानोपयोगी तथा कौशल विकास पर जोर दिया गया है। साथ ही गतिविधि, अनुभवों और करके सीखने की पहल की गयी है। शिक्षक और शिक्षण की दृष्टि से इस नवीनता को गहराई से समझने में वृत्तिक वृद्धि और विकास अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है।

4- सामान्य और शिक्षा संबंधीसमकालीन मुद्दों व चुनौतियों की व्यवस्थित जानकारी के लिए - वृत्तिक वृद्धि और विकास के माध्यम से शिक्षक सामान्य समकालीन मुद्दों व चुनौतियों के साथ साथ शिक्षा व्यवस्था से जुड़े वर्तमान परिप्रेक्ष्य और उनकी भविष्योन्मुखी दृष्टि (Futuristic Vision) से भी सरलता से अवगत हो सकते हैं।

5- विषय पर गहरी समझ और उससे संबंधितकठिनाइयों के निवारण के लिए - शिक्षण की एक आवश्यक शर्त विषयवस्तु की गहरी समझ और मजबूत होती है। ऐसी भी कहा जा सकता है कि विषय और विषय वस्तु की मजबूती शिक्षण के लिए एक महत्त्वपूर्ण आधार तैयार करती है। साथ ही विषय वस्तु से संबंधितनवीन और संदर्भ पुस्तकों, साहित्यों और पत्र पत्रिकाओं की जानकारी भी शिक्षण को प्रभावी बनाती है। वृत्तिक वृद्धि के माध्यम से विषय की गहन समझ के साथ साथ इससे संबंधितकठिनाइयों का निवारण भी किए जाने की सक्षमताएं और समाधान शामिल होते हैं।

6- शिक्षण में नवीन व्यूह रचनाओं के उपयोग के लिए - वृत्तिक वृद्धि से जुड़े विभिन्न कार्यक्रमों और प्रयासों के माध्यम से शिक्षण से जुड़ी नवीन व्यूह रचनाओं की जानकारी शिक्षक को मिलती है ताकि समय की मांग के अनुसार उनका कक्षा शिक्षण में सफलतम प्रयोग किया जा सके और शिक्षण की वृत्ति से संबंधको मजबूत किया जा सके। इस प्रकार वृत्तिक वृद्धि में नवीन व्यूह रचनाओं की कक्षा शिक्षण में प्रयोग में शिक्षक को निपुणता प्राप्त हो सकती है।

7- निर्माणवादी उपागम (Constructivist Approach) की समझ के लिए - शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में विद्यार्थी को ही उसके ज्ञान के निर्माण के अवसरों को निर्माणवादी उपागम के रूप में देखा जाता है। शिक्षण में निर्माणवादी उपागम की दृष्टि बनाने और इससे संबंधितव्यूह रचनाओं के निर्माण में वृत्तिक वृद्धि से जुड़े कार्यक्रम तथा योजनाएं अत्यन्त उपयोगी कही जा सकती है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (NCF, 2005) भी ज्ञान के निर्माण में विद्यार्थी के ही प्रयासों को रेखांकितकरती है।

8- शिक्षण में आई.सी.टी. (Information and Communication Technology or ICT) के प्रयोग के लिए - कक्षा शिक्षण में शैक्षिक तकनीकी का प्रयोग भी वर्तमान समय में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का एक सशक्त माध्यम माना जाने लगा है। आज के समय ई-अधिगम (E-Learning) और उससे संबंधितव्यूह रचनाओं की शिक्षण में उपयोगिता पर जोर दिय जा रहा है। शिक्षण के दौरान इनके उपयोग सावधानियाँ और महत्त्व की विस्तृत समझ का विकास करने में वृत्तिक वृद्धि की आवश्यकता स्पष्ट दिखायी देती है। इस 21वीं सदी में आई.सी.टी. भी वृत्तिक विकास की एक आवश्यक शर्त कही जा सकती है।

9- शिक्षण और मूल्यांकन की नवीन व्यवस्था को स्थापित करने के लिए - मूल्यांकन और शिक्षण के संबंधोंपर सदैव चर्चा की जाती रही है। मूल्यांकन के ही एक नवीन तरीके सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन (Continues and comprehensive Evaluations) या सीसीई आजकल जाना पहचाना नाम है। मूल्यांकन की इस नवीनता के आधार पर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में परिवर्तन की समझ बनाने में वृत्तिक वृद्धि अत्यावश्यक लगती है। एक शिक्षक के वृत्तिक वृद्धि और विकास को वास्तविक धरातल विद्यार्थियों की उपलब्धि से भी मिलता है अत: मूल्यांकन की उचित समझ के निर्माण को भी वृत्तिक वृद्धि का आवश्यक अंग माना जाना चाहिए।

10- शिक्षक को जीवनपर्यन्त सीखने के लिए तैयार करने हेतु - इस कथन को भी आसानी से समझा जा सकता है कि सीखना जीवन पर्यन्त चलता रहता है। इसीलिए कहा जाता है कि कक्षा में शिक्षक ओर विद्यार्थी दोनों के लिए सीखने के रास्ते खुले रहने चाहिए। कक्षा शिक्षण और शिक्षण को जीवन पर्यन्त प्रक्रिया बनाए रखने में वृत्तिक विकास का समर्थन प्राप्त होता है। इस प्रकार अभिवृत्ति (Attitudes) और व्यवहार (Behaviour) में सीखना आवश्यक मानने की मशाल जगाने में वृत्तिक वृद्धि प्रशंसनीय योगदान देता है।

11- शिक्षा से जुड़े अनुसंधान विशेषत: क्रियात्मक अनुसंधान करने के लिए विद्यालय और शिक्षण से जुड़ी चुनौतियों के समाधान में अनुसंधान का योगदान भी महत्त्वपूर्ण है। अनुसंधान समस्याओं और चुनौतियों के उचित समाधान के साथ साथ शिक्षक की दिशा निर्धारण में भी अपनी भूमिका निभाता है। विशेषत: विद्यालयों में क्रियात्मक अनुसंधान शिक्षण में मार्गदर्शक बन सकता है। अत: अनुसंधान के माध्यम से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की यथास्थिति, सुधार बदलाव और समाधान संभव है। शिक्षण और अनुसंधान के मध्य इस संबंध को गहन, व्यवस्थित और औचित्यपूर्ण बनाने और बनाए रखने के लिए लगातार चर्चा, संवाद और विचार विमर्श किया जाना चाहिए जोकि वृत्तिक वृद्धि से जुड़े कार्यक्रमों के माध्यम से संभव है। इस प्रकार शिक्षण को एक वृत्ति के रूप में स्थापित करने हेतु अनुसंधान की गहरी समझ को वृत्तिक वृद्धि के कार्यक्रमों के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

इस प्रकार शिक्षण को व्यवस्थित दिशा प्रदान करने के लिए वृत्तिक वृद्धि और विकास अति आवश्यक है। शिक्षक को नवीन परिस्थितियों के साथ समायोजित करने, स्वयं को पेशेवर के रूप में स्थापित करने, शिक्षण में गुणात्मकता लाने, शिक्षण के क्षेत्र से जुड़े विषय विशेषज्ञों से सम्पर्क स्थापित करने, अप टू डेट बने रहने और महत्त्वपूर्ण रूप में स्वयं को शिक्षण वृत्ति के साथ गौरवान्वित महसूस करने में वृत्तिक

विकास की आवश्यकता स्पष्ट दिखायी देती है। वृत्तिक विकास के माध्यम से शिक्षण में सकारात्मक ऊर्जा का संचार होता है जोकि विद्यालय प्रबंधन की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है।

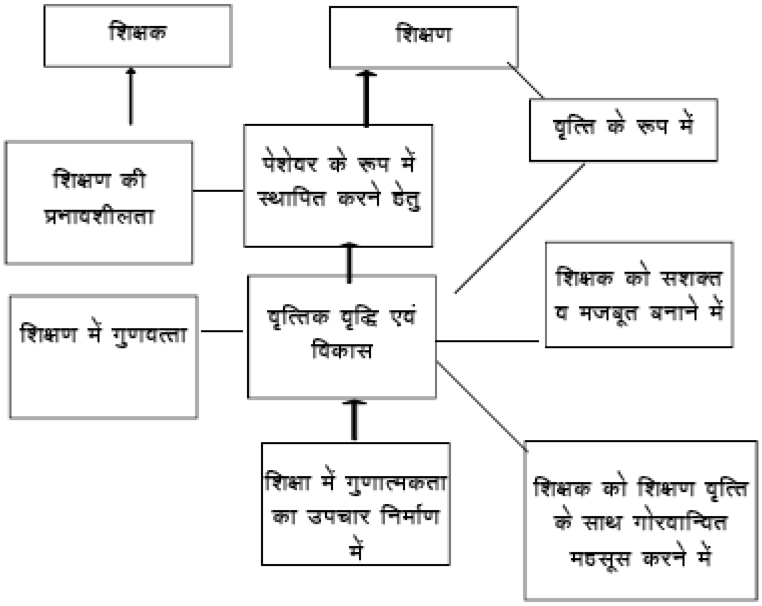

अभ्यास प्रश्न 4

1- शिक्षा आयोग .... वर्ष से संबंधितहै।
2- विद्यार्थी को स्वयं ज्ञान के निर्माण करने के अवसरों से जुड़ा उपागम ...... कहलाता है।
3- शिक्षा, विद्यालय और शिक्षण से जुड़ी चुनौतियों के समाधान हेतु शिक्षक द्वारा .... अनुसंधान किया जाता है।

15.7 वृत्तिक वृद्धि के अवसर (Opportunities for Professional Growth)

वृत्तिक वृद्धि की आवश्यकता पर चर्चा से शिक्षण और वृत्ति के मध्य सहसंबंध को सरलता से समझा जा सकता है। पूर्व में भी स्पष्ट किया जा चुका है कि शिक्षण को वृत्ति मानते हुए इसकी वृद्धि और विकास पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है लेकिन इसके साथ ही यह भी समझना जरूरी है कि वे कौनसे अवसर कार्यक्रम और योजनाएं हैं जोकि शिक्षण वृत्ति को उचित दिशा प्रदान करती है। इस प्रकार शिक्षक और शिक्षण के वृत्तिक वृद्धि से जुड़े अवसरों को निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है -

1- **सेवापूर्व शिक्षा (Pre-service Education) -** हालांकि यह अवसर शिक्षण वृत्ति में सम्मिलित होने के लिए प्रदान किये जाते हैं अत: शिक्षक बनने के बाद वृत्तिक वृद्धि से इसका अप्रत्यक्ष संबंधअवश्य दिखायी देता है। शिक्षक कौशलों से सुसज्जित करने के अवसर के रूप में सेवापूर्व शिक्षा और प्रशिक्षण को जाना जा सकता है। शिक्षण व्यवसाय के प्रति प्रारम्भ से ही

प्रशिक्षण के माध्यम से भविष्य के एक प्रभावी शिक्षक के निर्माण का प्रयास किया जाता है। अत: शिक्षक के वृत्तिक विकास में सेवापूर्व शिक्षा भी महत्त्वपूर्ण अवसर का कार्य करती है। वर्तमान में शिक्षक शिक्षा में परिवर्तन के रूप में सम्मुख या आमने सामने (face-to-face) से संबंधित पाठ्यक्रमों यथा बी.एड. एम.एड आदि को द्विवर्षीय कार्यक्रम बनाया गया है ताकि शिक्षण वृत्ति को वृत्तिक विकास के संबंध में ओर अधिक प्रभावी और सशक्त बनाया जा सके।

2- **विद्यालय (School) -** विद्यालय की शिक्षक व शिक्षण की वृत्तिक वृद्धि और विकास के प्रभावी अवसर उपलब्ध कराता है। शिक्षा आयोग 1964-66 में कहा गया है कि अध्यापकों के वृत्तिक विकास में अनेक अभिकरणों की सहायता लेगी होगी। पहला अभिकरण में विद्यालय ही है जहाँ अध्यापक को अपने अनुभव से नई नई बातें सीखने के अवसर मिलते हैं और साथ ही विद्यालय के अन्य अनुभवी अध्यापकों से राय लेने और चर्चा करने की सुविधा प्राप्त होती हैं इस प्रकार स्पष्ट होता है कि शिक्षण दक्षता, नैतिकता और योग्यता के विकास में विद्यालय में प्राप्त अवसर एक सशक्त माध्यम बनते हैं, जोकि वृत्तिक वृद्धि के मार्ग को सफलता की ओर अग्रेसित करते हैं।

3- **सेवारत शिक्षा (Inservice Education) -** शिक्षक और शिक्षण की वृत्तिक वृद्धि के अवसरों में सेवारत शिक्षा व प्रशिक्षण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के सुझावानुसार और अनुशंसानुसार देशभर में शिक्षकों के सेवारत प्रशिक्षण हेतु आईएएसई, सीटीई और डाईट संस्थानों की स्थापना की गयी जहाँ विभिन्न स्तरों के अनुसार शिक्षक सेवारत प्रशिक्षण में अपनी सहभागिता देते हैं। इस प्रकार केन्द्र प्रवर्तित योजनान्तर्गत (Under Centrally sponsored Scheme) सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रम की गुणवत्तपूर्ण व्यवस्था हेतु प्रयास किए जाते रहे हैं। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय स्तर पर नीपा (NUEPA) तथा एनसीईआरटी (NCERT) तथा राज्य व स्थानीय स्तर पर सर्व शिक्षा अभियान (SSA) राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (RMSA), बीआरसी (BRC) सीआरसी (CRC) तथा संसाधन संगठन (Resource Organization) सेवारत प्रशिक्षण में अपना उत्तरदायित्व वहन करती है। सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रम के माध्यम से अध्यापकों से विषय शिक्षण के अतिरिक्त शैक्षिक मुद्दों से संबंधित विषयों अथवा थीम पर भी कार्यक्रम आयोजित कर वृत्तिक वृद्धि के अवसर उपलब्ध करवाए जाते हैं। इस प्रकार शिक्षक और शिक्षण की वृत्तिक वृद्धि और विकास के अवसरों मे सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रम की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

4- **अकादमिक लेखन का अवसर (Opportunity of Academic writing) -** शिक्षकों की वृत्तिक वृद्धि की पूर्ति में लेखन कार्य की भी अपनी महत्ता है। पाठ्यक्रमों में व्यापक बदलाव के पश्चात् पाठ्यपुस्तकों के लेखन कार्य की भी अपनी महत्ता है। पाठ्यक्रमों में व्यापक बदलाव के पश्चात् पाठ्यपुस्तकों के लेखन का प्रयास राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय अभिकरणों द्वारा किया जाता है। पुस्तकों में लेखन के अवसरों को भी वृत्तिक वृद्धि का एक अभिन्न अंग और अवसर माना जाना चाहिए क्योंकि शिक्षण से संबंधित वास्तविक समस्याओं की जानकारी के साथ साथ उसके समाधानों की भी सरलता से खोजने में शिक्षक की भूमिका होनी चाहिए। साथ ही इस अवसर पर विषय विशेषज्ञों से संपर्क का अवसर भी शिक्षण की प्रभावशीलता और वृत्तिक

वृद्धि में योगदान दे सकता है। इसी के साथ विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में भी लेखन के अवसर की उपलब्धता भी विद्यमान है।

5- **सेमीनार, कार्यशालाओं तथा अनुवर्तन कार्यक्रमों में सहभागिता (Participations in seminars, workshops & orientation programmes) -** समय समय पर विभिन्न शैक्षिक स्तरों पर शिक्षा, विषयवस्तु तथा शैक्षिक मुद्दों पर सेमीनार, कार्यशालाओं तथा अनुवर्तन कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। यह कार्यक्रम शिक्षण की वृत्तिक वृद्धि से संबंधित अवसरों के रूप में ही होते हैं। इनमें सहभागिता के माध्यम से शिक्षा क्षेत्र में नवीन और परिवर्तित आयामों की जानकारी मिलती है ताकि शिक्षण में उसी अनुरूप आवश्यक बदलाव किए जा सकें।
6- **शिक्षक संगठन (Teacher's Association or Organization) -** व्यवसायिक या वृत्तिक वृद्धि का प्रत्यक्ष संबंध शिक्षक संगठनों से भी है। शिक्षक संगठनों द्वारा अपने क्षेत्र से संबंधितचुनौतियों तथा बदलावों पर गोष्ठियों का आयोजन किया जाता है ताकि शिक्षण् से जुड़े उचित समाधान खोजे जा सके। इस प्रकार वृत्तिक वृद्धि की दृष्टि से शिक्षक संगठनों की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण है।
7- **संकाय आदान प्रदान योजना (Faculty Exchange Programme) -** विभिन्न शैक्षिक योजनाओं और छात्रवृत्तियों के माध्यम से शिक्षकों की अन्य संस्थाओं में आदान प्रदान के अवसर उपलब्ध करवाए जाते हैं। इससे संस्थाओं की कार्यप्रणाली को समझने का असवर मिलता है ताकि स्वयं की संस्था में पुन: जाकर आवश्यक बदलाव किए जा सके। देश के भीतर तथा बाहर जाने से संबंधित कई प्रकार के आदान प्रदान कार्यक्रम शिक्षकों हेतु चलाए या संचालित किए जाते हैं।
8- **उच्च अध्ययन अवसर (Higher Study Opportunities) -** वृत्तिक वृद्धि हेतु शिक्षकों को उच्च अध्ययन के अवसर भी सरलता से उपलब्ध हो जाते हैं। यह अवसर वृत्तिक अध्ययन के साथ साथ अकादमिक अध्ययन हेतु भी उपलब्ध होते हैं जोकि वृत्तिक वृद्धि के साथ अकादमिक वृद्धि के अवसरों से भी संबंधितहोते हैं।

इस प्रकार उपुर्यक्त कदम शिक्षण की वृत्तिक वृद्धि के अवसरों को रेखांकित करते हैं।

अभ्यास प्रश्न 5

1- सेवारत शिक्षा .... योजनान्तर्गत से जुड़ी है।
2- वर्ष 1986 में .... लागू की गयी।

15.8 सांराश (Conclusion)

उपर्युक्त विवेचना स्पष्ट करती है कि शिक्षक एवं शिक्षण को वृत्ति के रूप में समझना आज के बदलते माहौल में अति आवश्यक है। शिक्षक के गुणो, वृत्ति नैतिकता और आचार संहिता, जवाबदेही प्रतिबद्धता आदि शिक्षण को एक वृत्ति के रूप में परिभाषित करती है। यहाँ इस बात को भी समझना आवश्यक है कि समाज के प्रति संवेदनशीलता स्थापित करना और समाज के प्रति अपने उत्तदायित्वों

को निभाने में भी शिक्षक की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। मूल्यों के ह्रास होते समाज में मूल्यों का बचाना और हस्तांतरित करना भी शिक्षक और शिक्षण से संबंधित है। इस प्रकार शिक्षण को व्यक्तिगत से कही अधिक सामाजिक रूप में समझना जरूरी है और इसी संदर्भ में इसे एक वृत्ति मानकर उससे जुड़ी संहिताओं को स्वीकारना ही शिक्षण और समाज के संबंधों को स्पष्ट करता है।

15.9 शब्दावली (Glossary)

- **शांति शिक्षा (Peace Education) :** शांति स्थापित करने के लिए शिक्षा को एक माध्यम के रूप में समझना
- **सुस्थिर विकास (Sustainable Development) :** भविष्य की पीढ़ी की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति सतत्, टिकाऊ, संयोजित और सुस्थिर विकास का मूल मंत्र है।
- **भविष्योन्मुखी शिक्षा (Futuristic Education) :** वर्तमान में भविष्य से जुड़ी आवश्यकताओं, समस्याओं तथा संभावनाओं को समझने व कल्पना करने से जुड़ी अवधारणा।
- **निर्माणवादी उपागम (Cunstructvist Approach) :** विद्यार्थियों को स्वयं ज्ञान के निर्माण के अवसर उपलब्ध करवाने से जुड़ी अवधारणा।
- **बहुलवाद (Pluralistic) :** विविधता में एकता और सभी को अपनी पहचान बनाए रखने स्वतंत्रता और स्वायत्तता प्रदान करना।
- **धर्मनिरपेक्ष (Secular) :** सभी धर्मों की समानता से जुड़ी अवधारणा।
- **समतावादी (Egaliterian) :** सभी को समानता व समान अवसरों को प्रदान करने से जुड़ी भारतीय समाज की प्रवृत्ति।

15.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न - 1

1 वृत्ति 2 राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा

अभ्यास प्रश्न - 2

1 सत्य 2 बहुलवाद

अभ्यास प्रश्न - 3

1 सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन 2 बहुआयामी

3 प्रशासनिक

अभ्यास प्रश्न - 4

1 1964-66 2 निर्माणवादी

3 क्रियात्मक

अभ्यास प्रश्न - 5

1 केन्द्र प्रवत्तित 2 राष्ट्रीय शिक्षा नीति

15.11 निबंधात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

1- शिक्षण और वृत्ति की अवधारणा देते हुए शिक्षण को एक वृत्ति के रूप में समझाइये।
2- शिक्षण पर विश्वासों तथा अभ्यासों के प्रभावों को स्पष्ट कीजिए।
3- एक शिक्षक विभिन्न प्रकार के उत्तरदायित्वों का निर्वहन करता है। व्याख्या कजिए।
4- शिक्षण की वृत्तिक वृद्धि की आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।
5- शिक्षण की वृत्तिक वृद्धि से जुड़े अवसरों को आप कैसे समझा सकते हैं?

15.12 संदर्भ ग्रंथ सूची (References)

- मित्तल, संतोष (2006) ''शैक्षिक तकनीकी एवं कक्षा कक्ष प्रबंध''
- राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- सिन्धु, आई.एस. (2008) ''एजूकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड मेनेजमेंट'' एन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस,मेरठ।
- भट्टाचार्य, जे.सी. (2008) ''अध्यापक शिक्षा'' अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
- मेहन, राधा (2011) ''टीचर एजूकेशन'' पीएचआई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
- दयाल, ब्रिजकिशोर (2013) ''एजूकेशनल प्लानिंग एण्ड डवलेपमेंट'' विजडम प्रेस, नई दिल्ली।
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005)
- शिक्षा आयोग रिपोर्ट (1964-66)
- अध्यापक शिक्षा की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2009)
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986)

इकाई - 16

एकीकृत तकनीकी और वैयक्तिक अधिगम

Organized technology& Individual Learning

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 एकीकृत तकनीकी का सम्प्रत्यय

16.3.1 एकीकृत तकनीकी का अर्थ

16.3.2 एकीकृत तकनीकी के शिक्षण में प्रयोग की आवश्यकता

16.4 वैयक्तिक अधिगम हेतु तकनीकी का प्रयोग

16.4.1 वैयक्तिक अधिगम की आवश्यकता

16.4.2 तकनीकी का वैयक्तिक अधिगम हेतु प्रयोग

16.4.3 तकनीकी के प्रयोग में वैयक्तिक अधिगम के लाभ

16.5 कम्प्यूटर सहायक अनुदेशन

16.5.1 सी.ए.एल. की विशेषताएं

16.5.2 सी.ए.एल. के विभिन्न रूप

16.5.3 सी.ए.एल. की सीमाएं

16.6 स्वअधिगम सामग्री निर्माण में शिक्षक की भूमिका

16.6.1 स्वअधिगम सामग्री का सम्प्रत्यय

16.6.2 एम.एल.एम. के विशेष लक्षण

16.6.3 एम.एल.एम. के विशेषताएं

16.6.4 एम.एल.एम. के प्रकार

16.6.5 स्वअधिगम सामग्री निर्माण एवं शिक्षक

16.7 निष्कर्ष

16.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

16.09 निबंधात्मक प्रश्न

16.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

16.1 प्रस्तावना

शिक्षक तकनीकी शिक्षक की प्रभावशीलता है। वृद्धि करके शिक्षण प्रक्रिया का अधिक सहायक व सार्थक बनाती है। जिससे विद्यार्थी के ज्ञानात्मक, भावात्मक व क्रियात्मक पक्षों के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है जिससे शिक्षण में नियोजन, मार्गदर्शन, नियंत्रण व क्रमबद्ध व्यवस्था में तारतम्यता स्थातिप हो पाती है प्रस्तुत इकाई से शिक्षण में तकनीकी महत्व, प्रयोग एवं ऐसी अधिगम सामग्री के बारे में विस्तृत चर्चा होगी जो कि विद्यार्थियों को शिक्षा व शिक्षण तकनीकी के संप्रत्यय को स्पष्ट करवाने में सहायक होगी।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- एकीकृत तकनीकी का अर्थ बता सकेंगे।
- अधिगम को प्रभावी बनाने में एकीकृत तकनीकी की भूमिका बता सकेंगें|
- तकनीकी समप्रयय बता सकेंगे।
- कम्प्यूटर सहायक अनुदेशन की विशेषताओं को बता सकेंगे|
- कम्प्यूट सहायक अनुदेश के विभिन्न रूपों को बता सकेंगे|
- स्व अधिगम सामग्री के लक्षण (विशेष) बता सकेंगे।
- स्व अधिगम सामग्री का निर्माण में शिक्षक की भूमिका स्पष्ट कर सकेंगे।

16.3 एकीकृत तकनीकी का संप्रत्यय

शिक्षा का उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना होता है किन्तु शिक्षा शास्त्र का कोई भी अंग इसे अलग से एवं अकेले पूर्ण नहीं कर सकता। ये कार्य मनोविज्ञान, दर्शन एवं विज्ञान के सम्मिलित सहयोग से पूर्ण किये जाते है। वर्तमान में बालकेन्द्रित शिक्षा पर जोर है विद्यार्थी ज्ञान का सृजन करे और शिक्षक का कार्य उसे मात्र दिशा निर्देश देना हो। इस दिशा में तकनीकी के प्रयोग ने शिक्षा के सहज प्राप्ति के संदर्भों में परिवर्तन ला दिया है।

आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण से प्रभावित 21 वीं सदी की शिक्षा व्यवस्था कई नवीन बदलावों के साथ दिखाई देती है। इसका प्रयोग शिक्षा व्यवस्था से जुड़े नये बदलावों, दस्तावेजों, योजनाओं ओर प्रतिवदों से स्पष्ट होता है। ऐसे समय में शिक्षा और तकनीकी को एक ही सिक्के के दो पहलू कह दिया जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

इसलिए शैक्षिक तकनीकी (E.T.) एवं सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी और नवाचार (I.E.T.) जैसी अवधारणाओं का प्रयोग लगातार किया जा रहा है। इस परिवर्तन ने एक ओर जहां तकनीकी को अनदेखा नहीं किया जा सकता है वहीं दूसरी और वैश्विक परिदृश्य में समायोजन और प्रतिष्ठा भी तकनीकी से जुड़ी हुई दिखाई देती है।

16.3.1 समन्वित तकनीकी का अर्थ

समन्वित तकनीकी से अभिप्राय तकनीकी के विभिन्न स्रोतों जैसे श्रृव्य एवं दृश्य सामग्री जैसे रेडियो, टेप, सीडी, टेलीफोन, फिल्म, थियेटर, डोक्युमेन्ट्री, विडियो केमरा आदि का कक्षा कक्ष शिक्षण को बेहतर बनाने के लिए किये जाने वाले समन्वित प्रयोग से है। इसमें शिक्षण हेतु अनेक तकनीकी सामग्री का उपयोग छात्रों की अधिगम क्षमता का प्रभावी बनाने हेतु किया जाता है।

16.3.2 एकीकृत तकनीकी के शिक्षण में प्रयोग की आवश्यकता

अनेक शिक्षाविद् यह जान चुके है कि तकनीकी के प्रयोग को सीखना विद्यार्थी के लिए बेहद जरूरी है क्योंकि किसी एक स्त्रोत का प्रयोग कर, विषय को समृद्ध नहीं बनाया जा सकता है हर विषय को उपयोगी व सरल बनाने के लिए तकनीकी का प्रयोग आवश्यक हो गया है। जरूरी है कि आज विद्यार्थी तकनीकी का प्रयोग से इतने अभ्यस्त हो जाए कि उन्हें जीवन के एक आवश्यक पहलू के रूप में अपनाए। क्योंकि कक्षा शिक्षण प्रयोग में लायी जाने वाली तकनीकी का प्रयोग विद्यार्थी में अनेक कौशलों का विकास करता है। तकनीकी विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करने का कार्य करती है अधिगमकर्ता को सूचनाओं और शैक्षिक स्त्रोतों व संसाधनों से जोड़ने का कार्य करती है, समस्या और उनके हल को ढूंढने का दृष्टिकोण विकसित करती है। विद्यार्थी को अपनी प्रगति को जानने में मदद मिलती है और वह विद्यार्थी क्रियात्मक कार्यों को स्वं को संलग्न पाता है जो उसमें अनूठी क्षमताओं को विकास करने में मदद करती है।

तकनीकी का प्रयोग विद्यार्थियों में सहकारी अधिगम, समस्या समाधान करने की क्षमता और विचारों को साझा करने की योग्यता विकसित करती है। साथ ही शिक्षकों में कुशलता बढ़ाती है। विद्यार्थी - शिक्षक संबंधोंमें प्रगाढ़ता आती है। बेहद ही सटीक सूचनाओं को शीघ्र ही प्राप्त होती है।

विद्यार्थियों के क्रिया कलाप, प्रगति व मूल्यांकन का सरलता से रिकॉर्ड रखा जा सकता है। अनेक बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है कि तकनीकी के शिक्षण ने प्रयोग से अधिगम को सुगम व सुविधापूर्ण तो बनाया ही जा सकता है साथ ही शिक्षण - शिक्षार्थी अपनी कमियों व समस्याओं को बिना संकोच साझा कर उसके हल तक पहुंच सकते है। इसे एक रेखाचित्र के माध्यम से अधिक अच्छे तरीके से समझा जा सकता है।

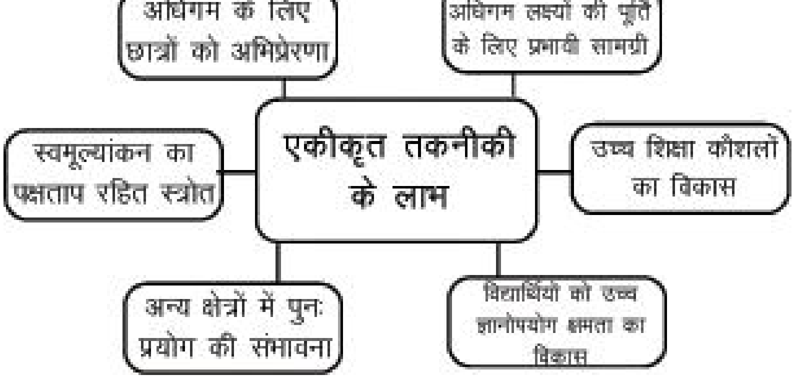

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में भी शैक्षिक तकनीकी पर विशेष जोर रहा है और विद्यालय की पाठ्यचर्या के लिए बनी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में भी नवाचार और तकनीकी पर जोर दिया गया है। तकनीकी एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का गहरा संबंधहै। इसलिए शिक्षण अधिगम प्रक्रिया तकनकी का समावेश बढ़ता ही जा रहा है। यह समावेशन शैक्षिक व शैक्षणिक परिणामों को सकारात्मक रूप से प्रभावी कर रहा है। तकनीकी व शिक्षण एक दूसरे से अत्तप्रभावित है इसके सटीक उपयोग से शैक्षिक उच्चता व क्षमता के उच्च आयाम विकसित किए जा सकते है।

16.4 वैयक्तिक अधिगम हेतु तकनीकी का प्रयोग

मनोवैज्ञानिक और शिक्षा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से बालकों की व्यक्तिगत विभिन्नाओं को देखते हु यह स्वीकार किया जाता है कि सभी को अपनी गति के अनुसार सीखने के अवसर सुलभ होने चाहिए और इसलिए तकनीकी व्यक्तिगत अनुदेशन और अधिगम की दिशा में भी अपनी पहचान बनाये हुए है जिसमें बालक अपनी व्यक्तिगत क्षमता के अनुसार सीखने सीखाने की प्रक्रिया में सम्मिलित होता है और बिना भय और उत्साह के अपनी गति के अनुसार सिखता चला जाता है। शिक्षक अधिगम प्रक्रिया में छात्रों द्वारा त्वरित और प्रभावी अधिगम हो, इस हेतु नवीन विचारों, विधियों, व्यूह रचनाओं, तथा प्रविधियों की खोज की जा रही है। बालकों की शिक्षण समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से समाधान करने तथा शिक्षण को प्रभावशाली बनाने हेतु तकनीकी अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रही है।

इस अध्याय की मदद से तकनीकी के संप्रत्यय के साथ ही तकनीकी वैयक्तिक अधिगम को किस प्रकार प्रभावी बनाने में सहायक होती है समझने का प्रयास करेंगे।

तकनीकी व शिक्षा तकनीकी को कई बार एक ही आधार पर समझने का प्रयास किया जाता है किन्तु यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक हे कि तकनीकी जो कि ग्रीक भाषा के (Technikos) से बना है अर्थ होता है ‘एक कक्षा’ जिसका संबंधकौशल, दक्षता या प्रवीणता से है।

प्रो. गॉलब्रेथ ने तकनीकी की दो विशेषताएं बताई है -

1 वैज्ञानिक ज्ञान का व्यावहारिक कार्यों के क्रमबद्ध प्रयोग व्यावहारिक कार्यों का कई खण्डों में विभाजन करना।

स्पष्ट होता हे कि विज्ञान के नियमों, सिद्धान्तों को जब व्यवहार के किसी कार्य में प्रयोग किया जाता है तो उसे तकनीकी कहते है। एवं शिक्षा तकनीकी अधिगम परिस्थितियों का समुचित व्यवस्था के प्रस्तुत करने से संबंधितहै जो शिक्षण एवं प्रशिक्षण के लक्ष्यों को ध्यान में रखकर अनुदेशन को सीखने का उत्तम साधन बनाती है इसमें मनोविज्ञान पर आधारित व्यवस्था क्रम में ज्ञान को प्रदान करने की प्रधानता दी जाती है।

16.4.1 वैयक्तिक अधिगम की आवश्यकता

आमतौर पर हम हमारे शिक्षण संस्थाओंपर गौर डाले तो यह पाते है कि सभी बालकों को एक साथ एक तरीके से पढ़ाया जा रहा है यह जानते हुए भी कि सभी बालक व्यक्तित्व, रूचि, बुद्धि, आदि

मनोवैज्ञानिक आयामों की बात करें तो भिन्न भिन्न होते है। यदि सभी को एक ही तरीके से शिक्षण आव्यूहों से शिक्षण करवाया जाता है तो परिणाम उतने प्रभावी प्राप्त नहीं होगे जितना कि एक शिक्षण इस आकांक्षा से कि उसके द्वारा तो बेहतरीन प्रयास किये गये है, प्राप्त करना चाहते है।

सभी बालक एक प्रकृति के नहीं होते है अत: आवश्यकता इस बात की होती है कि ऐसे तरीके का प्रयोग किया जाए जिससे सभी बालक अपनी क्षमता के अनुसार ज्ञान अर्जन कर पाए।

16.4.2 तकनीकी का वैयक्तिक अधिगम हेतु प्रयोग

वर्तमाण समय तकनीकी का युग कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी आज बालक के सर्वांगीण विकास की बात हमेशा कही जाती है ऐसे में शिक्षा में तकनीकी का प्रयोग करके इसे सत्य सिद्ध किया जा रहा है। शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावी बनाने हेतु विभिन्न विधियों, प्रतिमान, व्यूहरचनाओं को विकसित कर शिक्षण अधिगम हेतु प्रभावशाली वातावरण तैयार करने का प्रयास किया जा रहा है। वैयक्तिक विभिन्नताओं का पता कर उनके क्षमतानुसार प्रयोग व नवाचार किया जा रहा है जिससे मूल्यांकन व शिक्षार्थी की प्रगति का पता लगा कर उसके किए उपचारात्मक विधियों का प्रयोग करना आसान हुआ है।

वैयक्तिक अधिगम के मुख्य प्रकार

1 दुरस्थ अधिगम

2 संसाधन आधारित अधिगम

3 कप्यूटर सहायक अधिगम

4 डायरेक्ट प्राइवेट अध्ययन

16.4.3 तकनीकी के प्रयोग में वैयक्तिक अधिगम के लाभ

1- अनेक प्रकर के ऐसे विषयवस्तु आधारित सोफ्टवेयर बनाये जा चुके है जिससे बालक अपनी गति के अनुसार सीखता है जिससे वह किसी प्रकार के दबाव में नहीं आता है कि उसे सभी के साथ शीघ्रता से कार्यपूर्ण करना है बालक मस्तिष्क से स्वतंत्र अनुभव करता है।

2- कई बार बालक इन शंका से कि मैं अपनी कमजोरी प्रदर्शित करूंगा तो हास्यास्पद परिस्थिति निर्मित हो सकती है अपनी जिज्ञासा को शांत नहीं करता है। ऐसी परिस्थिति में तकनीकी बालक की सहायता करती है विषयवस्तु आधारित सूक्ष्म से सूक्ष्म सूचना निहित होने के कारण वह आसानी से बिना शंका के अपनी जिज्ञासा व परेशानी का हल निकाल सकता है।
साथ ही वैयक्तिक अध्ययन में तकनीकी अनवरत प्रगति और बालक के मूल्यांकन का मार्ग भी बताती है जिससे शिक्षार्थी अपनी प्रगति के बारे में तुरंत जानकारी प्राप्त कर निर्णय लेने में सक्षम हो जाता है कि उसे अब कितना अधिक श्रम करना है।

3- साथ ही बालक जब एक निर्देशन का कार्य करता है तो बालक शिक्षक के संबंधभी प्रगाढ होने लगते है क्योंकि इससे शिक्षक को अपनी वैयक्तिक दृष्टिकोण प्रयोग नहीं करना पड़ता।

यह उन पिछड़े व धीमी गति से सीखने के लिए वरदान साबित होता है जो कि सामान्य विद्यार्थियों के जैसी कार्यक्षमता प्रयोग में नही आ पाते है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता वैयक्तिक अध्ययन की अपनी सीमाएं है किन्तु तकनीकी के प्रयोग से वैयक्तिक भिन्नताओं को प्राथमिक क्रम में रखकर प्रयोग व कार्यों के माध्यम से इसे सामान्य विद्यार्थियों ज्ञान प्राप्ति के मार्ग में बराबर बनाने का एक सफल प्रयास किया है।

16.5 कम्प्यूटर सहायक अनुदेशन

मल्टीमिडिया के प्रयोग से पूर्व ही कम्प्यूटर व्यक्तिगत अध्ययन हेतु सामग्री की व्यवस्था करके प्रयोग में लाया जाने लगा था। इसके प्रयोग से शिक्षक को कम्प्यूटर द्वारा प्रतिस्थापित किया जाने लगा था। यह एक तरह से ठीक बात इसलिए कहां जा सकती है क्योंकि अकेला शिक्षक सैकडो विद्यार्थियों की समस्याओं का सटीक निराकरण करने में असमर्थ होता है। कम्प्यूटर द्वारा शिक्षक इसका बेहतर विकल्प बनकर सामने आया है। इसी के चलते स्मार्ट स्कूलिंग का प्रत्यय सामने आया है। कम्प्यूटर ही शिक्षण कराएगा, गृहकार्य जांचेगा एवं परीक्षा लेकर परिणाम की घोषण करेगा।

वर्तमान में विद्यालयों में कम्प्यूटर शिक्षा का प्रारंभ करने का प्रमुख उद्देश्य प्रभावी अधिगम को बढ़ावा देना है। कम्प्यूटर सहायक अनुदेश विभिन्न प्रकार के विषय पाठ्यक्रमों को आधार बनाकर उसका सरलीकरण कर कॉम्पेक्ट डिस्क के माध्यम से शिक्षार्थियों तक पहुंचाने का कार्य करता है। इसमें कम्प्यूटर शिक्षार्थियों के पूर्व व्यवहारों को जांचकर उचित सामग्री तैयार कर विद्यार्थियों के समक्ष अधिगम हेतु प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार बोधगम्य व विश्वसनीय विषयवस्तु को सुगमता से ग्रहण कर सीखने की प्रक्रिया में गति लायी जाती है। इस प्रकार कम्प्यूटर द्वारा शिक्षार्थियों के ज्ञानात्मक पक्ष को प्रबल करने का कार्य किया जाता है। इससे शिक्षार्थी नवीन सूचनाओं का ज्ञान प्राप्त करते है, बोध करते है और उन्हें प्रयोग में लाना सीखते है।

16.5.1 कम्प्यूटर सहायक अनुदेशन की विशेषताएं

शिक्षा जगत में कम्प्यूटर सहायक अनुदेशन की भावी संभवनाओं में लगातार वृद्धि हो रही है। यह अनेक महत्वपूर्ण व ठोस शैक्षिक धारणाओं को ग्रहण किये हुए है। निम्नलिखित विशेषताएं है -

1- **स्वयं की गति के अनुसार शिक्षण -** प्रत्येक विद्यार्थी की सीखने की गति भिन्न भिन्न होती है। कम्प्यूटर सहायक अधिगम में व्यक्तिगत रूप से सीखने की सुविधा होने के कारण किसी अन्य विद्यार्थी के द्वारा व्यवधान न तो उत्पन्न होता है और न ही किया जाता है। विद्यार्थी पूर्णरूपेण प्रयासरत होकर के शिक्षा के महत्वपूर्ण बिन्दुओं को समझ सकता है।

2- **व्यक्तिगत अधिगम -** कभी कभी ऐसा प्रतीत होता है कि बड़ी बड़ी कक्षाओं में सभी विद्यार्थियों पर ध्यान केन्द्रित कर अधिगम बड़ी कक्षाओं में सभी विद्यार्थियों पर ध्या केन्द्रित कर अधिगम करवाना असंभव सा होता है। ऐसेमें शिक्षार्थी अपनी योग्यता व क्षमता के अनुसार व्यक्तिगत अधिगम से लाभ पाते है।

3- **सरल अध्ययन -** कम्प्यूटर सहायक अधिगम हेतु सामग्री को सरलतम रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसमें चित्र आदि का प्रयोग कर एवं बहुवैकल्पिक व्यवस्था करके शिक्षार्थियों को उनके सरल ढंग से सीखने की व्यवस्था करके प्रयोग करने हेतु प्रदान किया जाता है।

4- **पिछड़े शिक्षार्थियों के लिए वरदान -** वर्तमान समय में शिक्षा के क्षेत्र में अनेक समस्याएं दिखाई देती है। जिसमें धीमी गति से सीखने वाले व पिछड़े विद्यार्थियों की समस्या शिक्षकों के लिए चुनौतिपूर्ण बनी है। विद्यार्थी अन्य सफल विद्यार्थियों को देखकर नकारात्मक रवैया अपना लेते है व बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते है। ऐसे में कम्प्यूटर सहायक अधिगम उनके लिए उपयुक्त साधन बना है जहां विद्यार्थी स्वयं की गति से सीखता है जिससे किसी प्रकार की होड़ , जल्दबाजी व हीनभावना की संभावना नहीं होती।

5- **स्वमूल्यांकन -** किसी अन्य के द्वारा किये गये मूल्यांकन से विद्यार्थी पूर्णतया संतुष्ट नहीं होता है। कम्प्यूटर सहायक अधिगम स्वयं द्वारा मूल्यांकन के अवसर उपलब्ध करवाता है। जिससे किसी प्रकार के पक्षपात की संभावना नहीं होती और विद्यार्थी बिना संकोच के स्वयं में सुधार लाने का प्रयास करता है।

6- **सूचनाओं की प्रभावपूर्ण प्राप्ति -** कम्प्यूटर सहायक ने नवीन जानकारी सीधे ही शीघ्रता से इंटरनेट द्वारा प्राप्त कर ली जाती है। ये सूचनाएं नवीन अनुसंधानों पर आधारित होती है। ये सूचनाएं विद्यार्थियों के लिए बेहद लाभदायक होती है।

7- **असंख्य शिक्षार्थियों पर एक साथ उपयोग -** जब हम एक साथ विद्यार्थियों पर शिक्षकों के ध्यान केन्द्रित नहीं किये जाने की बात करते है वहीं दूसरी और कम्प्यूटर सहायक अधिगम संकड़ों विद्यार्थियों के एक साथ उपयोग में आ जाता है। जिससे एक और व्यक्तिगतता बनी रहती है। वही दूसरी और अनेक विद्यार्थी एक साथ लाभान्वित होते है।

8- **औपचारिक संबंधों में सदृढ़ता -** स्वयं सीखते हुए विद्यार्थी कम्प्यूटर सहायक अधिगम सामग्री के बारे में बातचीत करते हुए शिक्षकों से अपने अनौपचारिक संबंधों में वृद्धि करते है। जिससे भविष्य में भी शिक्षार्थी अपनी जिज्ञासाओं को आसानी से शिक्षकों के माध्यम से संतुष्ट कर लेते है।

9- **विद्वान शिक्षकों का सहयोग -** कम्प्यूटर सहायक अनुदेशन में विद्वान शिक्षकों के सहयोग से कार्यक्रम का निर्माण उन सभी पक्षों को ध्यान में रखकर किया जाता है। जहां विद्यार्थी स्वयं को कठिनाई में पाते है।

10- **समय व धन की बचत -** कम्प्यूटर सहायक अधिगम के प्रयोग से समय व धन दोनों की बचत होती है। एक साथ निर्मित सामग्री असीमित विद्यार्थियों के द्वारा एक साथ काम में लायी जा सकने के कारण न केवल समय की बचत होती है बल्कि अधिक मात्रा में अधिगम सामग्री का निर्माण नहीं करने के कारण धन की भी बचत होती है।

16.5.2 कम्प्यूटर सहायक अनुदेशन के विभिन्न रूप

कम्प्यूटर सहायक अनुदेशन उद्देश्य परिस्थितियों व प्रयोजन के अनुरूप अनेक प्रकार से कार्य करता है। इसके प्रमुख प्रकारों की चर्चा निम्नानुसार की जा रही है।

1- **सूचनात्मक कम्प्यूटर सहायक अनुदेशन -** इस प्रकार के कम्प्यूटर सहायक अनुदेशन में कम्प्यूटर विद्यार्थी को वांछित सूचनाएं प्रदान करने में मदद करता है। वे सूचनाएं जो संग्रहित होती है उपलब्ध करवाकर अधिगम अर्जन में पर्याप्त आत्मनिर्भरता का विकास करता है।

2- **डिल तथा अभ्यास कार्यकमों से संबंधित अनुदेशन -** इस प्रकार के अनुदेशन कार्यक्रम में विद्यार्थी अपने पूर्व में प्राप्त अनुभवों को स्थायी बनाने के व्यवहार में लाने हेतु अभ्यास अथवा ड्रिल संबंधी अवसर प्रदान किये जाते है। इस प्रकार का अनुदेशन विशेष कौशलों के अर्जन में सहायक होता है।

3- **ट्यूटोरियल प्रकार का कम्प्यूटर सहायक अनुदेशन -** जिसप्रकार एक ट्यूटर विद्यार्थियों से संवाद स्थापित करते हुए अंतक्रिया आधारित शिक्षण अधिगम के उद्देश्यों की प्राप्ति में पूरा योगदान देता है। उसी प्रकार इस प्रकार के अनुदेशन में कम्प्यूटर पर विभिन्न विषयों से संबंधित इकाइयों तथा प्रकरणों पर ट्यूटोरियल प्रणाली पर आधारित कई कार्यक्रम उपलब्ध है जिससे विद्यार्थियों के द्वारा अपनी गति से सीखा जाता है। और असफल होने पर तुरन्त ही उपचारात्मक अनुदेशन प्राप्त होता है।

4- **शैक्षिक गेम्स के रूप में उपलब्ध -** इस प्रकार के अनुदेशन में कम्प्यूटर सहायक अनुदेशन में विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार के शैक्षिक खेल खेलने के अवसर दिया जाता है जिसमें अधिगम के दौरान कुछ अलिखित अभिप्रेरणा प्रोत्साहन तथा पूनर्बलन प्रदान करने से अधिगम रूचिपूर्ण बनता है।

5- **अनुरूपित प्रकार का अनुदेशन -** इस प्रकार का अनुदेशन विद्यार्थियों की समस्याओ ंसे जुझने हेतु सोफ्टवेयार कार्यक्रम की मदद से चुनौतिपूर्ण परिस्थितियां प्रदान की जाती है। जिससे विद्यार्थियों को मिलती है। अनुरूपित प्रकार का अनुदेशन विद्यार्थियों के लिए विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण द्वारा अनुभव प्राप्त करने का बहुमूल्य साधन है। जहां कम व्यय व साधन में बालक अनुभवों को प्राप्त कर सकता है।

6- **समस्या समाधान प्रकार का अनुदेशन -** इस प्रकार के कम्प्यूटर सहायक अनुदेशन में कम्प्यूटर स्वयं किसी समस्या का समाधान प्रस्तुत नहीं करते बल्कि विद्यार्थी को समस्या समाधान करने के प्रयत्नों का प्रयोग करने के अवसर दिये जाते है। जिसमें विद्यार्थी को समस्या समाधान के आवश्यक सोपानों से गुजरकर चिन्तन मनन, विश्लेषण, व्यवस्थापन, सामान्यीकरण का प्रयोग कर समस्या के हल तक पहुंचता है।

7- **क्रियात्मक कार्यों के संपादन से संबंधित अनुदेशन -** इस प्रकार के अनुदेशन में कम्प्यूटर द्वारा ऐसे सॉफ्टवेयर प्रोग्रामों की मदद ली जाती है जिसमें प्रयोगशाला व कार्यशाला संबंधी परीक्षणों, प्रयोगों तथा क्रियात्मक कार्यों के संपादन संबंधी अनुभव देखने को मिलते है। जिससे विद्यार्थी इन अनुभवों का प्रयोग वास्तविक कार्यो को करते वक्त प्रयोग में लाता है।

8- **अधिगम से जुड़ी विभिन्न बातों का प्रबंधन संबंधी अनुदेशन -** इस प्रकार के कम्प्यूटर सहायक अनुदेशन सोफ्टवेयर प्रोग्राम विद्यार्थियों द्वारा दी जाने वाली विविध अधिगम क्रियाओं के समुचित प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विद्यार्थी अपनी क्षमता के अनुसार अधिगम

करता है। कठिनाई आने अथवा असफल होने पर कम्प्यूटर उसकी सहायता करता है। विद्यार्थी स्वमूल्यांकन करता है और उपचारात्मक अनुदेशन प्रयोग में लाता है।

16.5.3 कम्प्यूटर सहायक अनुदेशन की सीमाएं -

अनेक गुणों के होने के बावजूद सी.ए.एल. की अनेक सीमाएं है।

- कम्प्यूटर अनुदेशन से भाषा संबंधीसुधार संभव नहीं है।
- इससे भावनात्मक व क्रियात्मक पक्ष की अवहेलना होती है।
- शिक्षक - शिक्षार्थी अन्त:क्रिया का अभाव रहता है।
- इस प्रकार का अनुदेशन शिक्षार्थी केन्द्रित न होकर पाठ्यवस्तु केन्द्रित होता है।
- यह अत्यधिक व्ययपूर्ण है।
- इससे विद्यार्थियों की मनोवैज्ञानिक समस्याओं का हल संभव नहीं
- इससे सामाजिकता की भावना का विकास संभव नहीं है।

उपरोक्त वर्णित सूचनाएं कम्प्यूटर सहायक अधिगम के गुण व दोषों को बताते हुए उसकी महत्ता को भी सिद्ध करती है जो विद्यार्थी के अधिगम को प्रभावी बनाती है।

अभ्यास प्रश्न 1

सही एवं गलत का लगाइए |

1 कम्प्यूटर सहायक अनुदेशन से भाषा संबंधीसुधार संभव नहीं है। (   )

2 कम्प्यूटर सहायक अनुदेशन पाठ्यवस्तु केन्द्रित होता है।(   )

3 किस प्रकार के अनुदेशन में विद्यार्थी को समस्या समाधान के अवसर दिये जाते है? (   )

16.6 स्वअधिगम सामग्री निर्माण में शिक्षक की भूमिका

प्रस्तावना - पत्राचार पाठ्यक्रमों एवं दूरस्थ शिक्षा के लिए अनेक प्रकार की अधिगम सामग्री का प्रयोग किया जाता है। जो लिखित, दृश्य श्रव्य आदि तरीक की होती है। जिसे शिक्षार्थी अपनी गति और समय के हिसाब से सीखता है। इस प्रकार की सामग्री अध्यापक के द्वारा शिक्षार्थी को सुविधा देने हेतु निर्मित की जाती है। इस प्रकार की सामग्री स्व अधिगम सामग्री के अन्तर्गत आती है। यदि स्व अधिगम सामग्री की पाठ्यपुस्तक से तुलना करे तो यह पाएगे कि इस प्रकार की सामग्री उद्देश्य पूर्ण होती है। और शिक्षार्थी यह तय कर पाते है कि निर्धारित समय मे वह कितना ज्ञानअर्जित कर पाएगें। इसमें स्वमूल्यांकन के लिए अवसर दिये जाते है जो रूचिपूर्ण तो होते ही है साथ ही अभिप्रेरणा के लिए भी स्थान होता है।

16.6.1 स्व अधिगम सामग्री का सम्प्रत्यय

स्व अधिगम सामग्री वास्तव में विद्यार्थी केन्द्रित सामग्री है जो प्राय: खुले विद्यालय , दूरस्थ शिक्षा के विद्यार्थियों के लिए निर्मित किया जाता है जिसमें किसी प्रकार की बाध्यता से मुक्त विद्यार्थी अपने समय और गति के अनुसार रूचि से सीखता है।

यह सामग्री अनेक रूपों में उपलब्ध होती है जिसे निम्न रेखाचित्र के माध्यम से समझा जा सकता है।

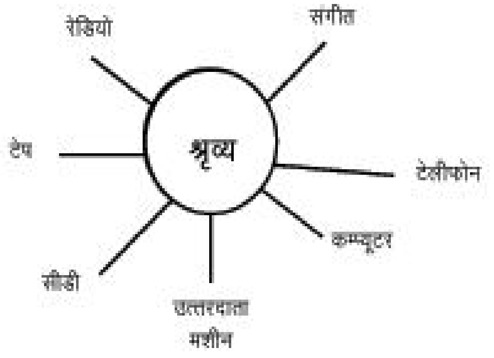

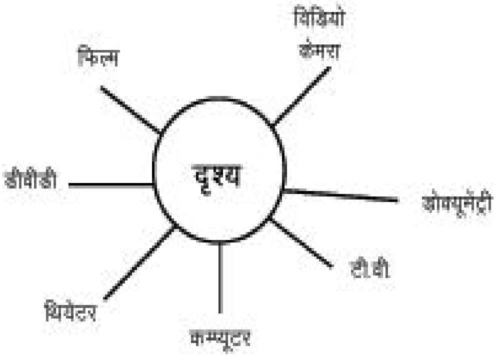

स्वअधिगम सामग्री उच्च अधिगम सामग्रियों से भिन्न है क्योंकि यह सामग्री ‘‘सोचना’’, ‘‘लिखना’’ और ‘करना’ को बेहतर तरीके से सीखने में मदद गार है जैसे

- सामग्री निहित प्रश्न अधिगमकर्ता को सोचने के अवसर देते है
- लेखन संबंधी अभ्यास से अधिगमकर्ता बिन्दुओं को लिखने व समझने में सक्रिय बनाये रखता है।
  एवं कार्य करने संबंधीअभ्यास कौशलों का विकास करने में मददगार होते है।

  इस प्रकार स्पष्ट है कि स्व अधिगम सामग्री बालक के व्यक्तित्व में संपूर्णतया आती है व जिज्ञासापूर्ण परिस्थितियों का संतोषजनक उत्तर उपलब्ध करवाती है।

16.6.2 स्व अधिगम सामग्री के विशेष लक्षण

1- इस प्रकार की सामग्री में उद्देश्य बहुत ही स्पष्ट दिये होते है।
2- सामग्री का अध्ययन किस प्रकार किया जाता है, बहुत ही स्पष्ट तरीके बताया जाता है।
3- कई प्रकार के उदाहरण प्रचूर मात्रा में उपलब्ध होते है।
4- विषयवस्तु का विद्यार्थी के स्तर के अनुसार निर्माण किया जाता है।
5- इसमें अन्य संदर्भों से सहायता प्राप्त करने के आयामों को भी उल्लेखित किया जाता है।
6- जहां पर बिन्दुओं को उल्लेखित करने की आवश्यकता होती है वहां पर्याप्त रूप से वर्णन भी किया जाता है।
7- विद्यार्थी अपनी प्रगति का स्वयं मूल्यांकन कर सकते है।
8- विद्याथियों को अध्यापन सामग्री के प्रयोग के लिए उपयुक्त निर्देश दिये होते है।
9- प्रत्येक इकाई के अंत में शब्दावली, अभ्यास प्रश्न व उत्तर दिये होते है।

इन लक्षणों के आधार पर हम स्पष्ट है कि स्व अधिगम सामग्री शिक्षार्थियों के लिए उचित निर्देशन होती है। शिक्षार्थी अपनी गति, समय व रूचि के साथ सीखता है।

16.6.3 स्वअधिगम सामग्री के विशेषताएं

स्व अधिगम सामग्री विशेषतएं अधिगम सिद्धान्तों के स्थान में रखकर निर्मित की जाती है तो मुख्यतया व्यवहारवादी, संज्ञानात्मक और निर्माणवादी सिद्धान्तों पर आधारित होती है।

1 **स्वव्याख्यान -** स्व अधिगम सामग्री को लिखने का तरीका इस प्रकार का होता है कि वह स्वयं इसकी व्याख्या कर सकता है यह विषयवस्तु सरल भाषा में लिखी होती है। विद्यार्थी निर्देशों के अनुसार पढ़कर व कार्य करके आसानी से विषयवस्तु को समझ जाता है।

2 **Self continual** स्व अधिगम सामग्री का निर्माण इस प्रकार किया जाता है कि विद्यार्थी को अतिरिक्त सामग्री जुटाने की आवश्यकता नहीं होती क्योकि दूरस्थ व स्वशिक्षा से जुड़े विद्यार्थियों को पुस्तकालय एवं अधिगम स्त्रोतों संबंधित सुविधाएं नही मिल पाती।

3 **स्व निर्देशन -** दूरस्थ शिक्षा से जुड़े लोगों को अकेले रहकर अध्ययन करना होता है। इसलिए इस प्रकार की सामग्री में निर्देश इतने स्पष्ट दिये होते है कि जिसे पाठ्यसामग्री में बातचीत के माध्यम से निर्देशित किया जा रहा हो, अत: अधिगमकर्ता को किसी प्रकार की समस्या नहीं होती।

4 **स्व प्रेरित -** शिक्षक शिक्षार्थी का साथ रहकर सहभागिता के माध्यम से कार्य करवाना बालक को अभिप्रेरित करता है। ऐसे ही दृष्टिकोण को रखकर स्व अधिगम सामग्री का निर्माण किया जाता है जिससे विद्यार्थी में जिज्ञासा, रूचि, समालोचनात्मक चिंतन व गहराई से अध्ययन करने की आदत का विकास होता है और अधिगम प्रगति की जानकारी मूल्यांकन व आगे बढ़ने की प्रेरणा विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करती है।

5 **स्वमूल्यांकन -** इस प्रकार की अधिगम सामग्री का निर्माण इस प्रकार किया जाता है कि विद्यार्थी यह जान पाते है कि उनके सीखने की गति कितनी है। यह स्वमूल्यांकन प्रक्रिया प्रश्नों, अभ्यास प्रश्न, प्रतिपुष्टि अभ्यास आदि के माध्यम से दी होती है। विद्यार्थी अपनी कमजोरी, प्रगति एवं सुधार को जान पाते है। जो विद्यार्थियों के विषयवस्तु संबंधी ज्ञान को जुड़ने में सहायक होता है।

16.6.4 स्व अधिगम सामग्री के प्रकार

पांच आधारभूत विशेषताओं को देखते हुए स्वअधिगम सामग्री के मुख्यतया तीन प्रकार होते है।

1 **मुद्रण माध्यम से शिक्षण आधारित -** इस प्रकार के अधिगम सामग्री के प्रकार ने एक शिक्षक लिखित सामग्री के माध्यम से विद्यार्थी को शिक्षित करता है। यह लिखित सामग्री ही विद्यार्थी को विषयवस्तु से संबंधित, अभ्यास से संबंधितएवं मूल्यांकन से संबंधितसामग्री प्रदान करती है।

2 **परावर्तन क्रिया निर्देशन आधारित -** इस प्रकार के प्रकार ने मुख्य रूप से ऐसी क्रियाएं छात्रों को करने के अवसर दिये जाते है जिसमें वे ज्ञान का निर्माण करना सीख सके। यह व्यूह रचनाएं इस प्रकार की होती है। जिसमें विद्यार्थी ज्ञान का प्रयोग अपने जीवन में करना सीखता है। व इसका प्रतिबिम्बक देखता है।

3 **वार्तालाप (संवाद) आधारित -** इस प्रकार की स्व अधिगम सामग्री शिक्षक शिक्षार्थी संवाद माध्यम आधारित होती है। इसमें शिक्षण सामग्री का प्रस्तुतीकरण इस प्रकार किया जाता है कि जैसा वास्तविक रूप में चर्चा हो रही हो। जो कि क्यों व कैसे प्रकार के प्रश्नों पर आधारित होते है जो विद्यार्थी व शिक्षक दोनों के विशेष भूमिका को स्पष्ट करते है। विद्यार्थी अपनी क्रिया कलापों के माध्यम से वास्तविक तथ्य का ज्ञान प्राप्त करता है।

16.6.5 स्व अधिगम सामग्री का निर्माण एवं शिक्षक

स्व अधिगम सामग्री का निर्माण में शिक्षकों द्वारा निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखा जाता है।

1- सामग्री का निर्माण जिन उद्देश्यों को लेकर किया जा रहा है। वे पूर्णतया स्पष्ट रूप से लिखे जाते है।

2- अधिगम संबंधीमुद्दों को किन स्त्रोतों से प्राप्त किया गया है उसका स्पष्ट विश्लेषण किया जाना चाहिए।

3- एक उचित माध्यम जिसका प्रयोग शिक्षार्थी सरल एवं सुबोध तरीके से कर पाए का चुनाव शिक्षक के द्वारा अधिगम सामग्री निर्मित करने के लिए करना चाहिए।

4- शिक्षक अधिगम सामग्री का निर्माण करते समय उचित मूल्यांकन के तरीकों को प्रयोग में लाए जिससे विद्यार्थी अपनी प्रगति का अनुमान लगा पाए।

5- अध्ययन संबंधीपाठ इस प्रकार व्यवस्थित किये जाने चाहिए जो एक दूसरे से संबंधितको कहीं ऐसा प्रतीत न हो कि इनको बिना किसी ओचित्य के सम्मिलित किया है।

6- पाठ्य सामग्री को इस प्रकारी लिखा जाना चाहिए जैसे एक शिक्षक कक्षा में उपयुक्त तरीके से छात्रों को निर्देशित करता है, समस्या निवारण करता है, जिज्ञासा शांत करता है। व स्वमूल्यांकन क अवसर देता है। दूरस्थ अध्ययनरत विद्यार्थी ऐसा ही महसूस करे।

7- अधिगम सामग्री का मुद्रण स्पष्ट हो, चित्र, मानचित्र, घटनाएं व अघतन सामग्री का समावेश शिक्षक करे ताकि छात्र इसका ज्ञान प्राप्त कर अन्य स्त्रोतां से सामग्री जुटाकर पढ़ने का श्रम से बच पाए क्योंकि ऐसे विद्यार्थियों के पास पुस्तकालय अथवा संदर्भ सामग्री का अभाव होता है।

निष्कर्षत: - कहा जा सकता है कि स्वअधिगम सामग्री विद्यार्थियों को चिंतन शक्ति बढ़ाने का अवसर देती है अपने कार्यों को प्रतिबिंबित करने का अवसर देती है एवं क्षमतानुसार आगे बढ़ने व ज्ञान के अवसर सुगम कराती है।

अभ्यास प्रश्न 2

1 स्वअधिगम सामग्री की कोई दो विशेषताएं बताइए।

2 स्व अधिगम सामग्री का अभिप्राय बताइए।

16.7 निष्कर्ष

अधिगम को प्रभावी सशक्त व जीवनोपयोगी बनाने के अनेक स्त्रोतों में तकनीकी ने अपना अभूतपूर्व योगदान दिया है। वेयक्तिक अधिगम व स्वअधिगम सामग्री दोनों के पक्षों को तकनीकी अपने उपयोगी भूमिका निभायी है जो शिक्षण, प्रशिक्षण व कौशलों के प्रयोग में दृष्टिगत होती है एवं व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाने में सफल हुई है। आधुनिकीकरण और परितर्वन के इस दौर में तकनीकी शिक्षण अधिगम का महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुकी है तो दूसरी और इसके प्रयोग को नजर अंदाज भी नहीं किया जा सकता है विशेषत: विद्यार्थियों को अपनी गति के अनुसार सीखने के अवसर उपलब्ध कराने की दृष्टि से भी स्वअधिगम और उसकी प्रकिया महत्वपूर्ण है।

16.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1 सही

2 गलत

प्र.2 का उत्तर समस्या समाधान प्रकार का अनुदेशन

अभ्यास प्रश्न 2

1 स्वव्याख्यात्मक, स्व निर्देशन

2 स्व अधिम सामग्री विद्यार्थी केन्द्रित सामग्री है जिसमें विद्यार्थी अपने समय व गति अनुसार रूचि को सीखता है।

16.9 निबंधात्मक प्रश्न

1 एकीकृत तकनीकी का अर्थ बताते हुए उसकी आवश्यकता व महत्व को स्पष्ट कीजिए?

2 वैयक्तिक अध्ययन में तकनीकी के प्रयोग की महत्ता स्पष्ट कीजिए?

3 कम्प्यूटर सहायक अधिगम की विशेषाओं को बताते हुए इसकी सीमाओं का उल्लेख कीजिए।

4 कम्प्यूटर सहायक अधिगम के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।

5 स्व अधिगम सामग्री का सम्प्रत्यय स्पष्ट करते हुए इसकी विशेषताओ का वर्णन कीजिए।

16.10 संदर्भ ग्रंथ

- मोहन्ती जगन्नाथ (2003) ''मॉर्डन ट्रेण्डस इन एज्युकेशनल टेक्नोलॉजी |
- शर्मा, संदीप, पारीक अल्फा (2006) ''शैक्षिक तकनीकी एवं कक्षा कक्ष प्रबंधन, जयपुर |
- मितल संतोष (2006) ''शैक्षिक तकनीकी एवं कक्षा कक्ष प्रबंधन, जयपुर |
- झा, कमलेश, सरूपरिया सीमा (2011) ''आधुनिक शैक्षिक तकनीकी, उदयपुर |
- व्यास, भगवती लाल (2006) 'शैक्षिक तकनीकी की आवश्यकताएं और कक्षा प्रबंधन|
- सुंदर आई 'टीचिंग एंड लर्निंग थ्रु इनफोरमेशन एवं कम्पूनिकेशन टेक्नोलॉजी |

इकाई – 17

समूह शिक्षण मे तकनीकी का प्रयोग
Use of Technology in group Teaching

इकाई रूपरेखा

17.1 प्रस्तावना

17.2 उद्देश्य

17.3 तकनीकी अथवा प्रौद्योगिकी का अर्थ

17.3.1 तकनीकी एवं शिक्षण अधिगम एकीकरण की मान्यताऐं

17.4 लघु समूह शिक्षण में तकनीकी का प्रयोग

17.6 सह छात्र शिक्षण में तकनीकी का प्रयोग

17.7 सहयोगपूर्ण शिक्षण में तकनीकी का प्रयोग

17.8 समूह चर्चा में तकनीकी का प्रयोग

17.9 सामूहिक प्रोजेक्ट में तकनीकी का प्रयोग

17.10 छद्म एवं खेल आधारित शिक्षण में तकनीकी का प्रयोग

17.11 सारांश

17.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

17.13 निबंधात्मक प्रश्न

17.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

17.1 प्रस्तावना

वर्तमान युग तकनीकी अथवा प्रौद्योगिकी का युग है। आज की पीढ़ी यातायात, दूरसंचार एवं मनोरंजन आदि के आधुनिक संसाधनों को पसंद करने वाली एवं उन्हीं पर निर्भर रहने वाली है। कोई भी प्राचीन एवं अनद्यतन प्रौद्योगिकी की वस्तु वर्तमान पीढ़ी को अगर उन्हीं के शब्दों में कहा जाये तो "Odd boring" एवं "Out of Time" प्रतीत होती है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया भी इससे अछूती नहीं रही है। सामान्य श्यामपट्ट एवं शिक्षक निर्देशित कक्षा कक्ष भी अब पुराने जमाने की बातें हो गई हैं। ऐसे विद्यालय बालकों को तो पसंद है ही नहीं वरन उनके अभिभावक भी अपने बच्चों को उन विद्यालयों में प्रवेश दिलाना चाहते है जो आधुनिक प्रौद्यौगिकी ये युक्त हो। इस इकाई में हम कुछ ऐसी ही प्रौद्योगिकी की चर्चा करेंगे,

जिसके प्रयोग के द्वारा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को न केवल अद्यतन, सरल, एवं सुगम बनाया जा सकता है बल्कि उसे रोचक एवं मनोरंजक भी बनाया जा सकता है।

17.2 उद्देश्य

इस इकाई को सम्पन्न करने तथा अध्ययन करने के पश्चात आप को इस योग्य होना चाहिये कि आप -

- तकनीकी अथवा प्रौद्योगिकी को विभिन्न शिक्षण अधिगम परिस्थितियों में प्रयोग से संबंधी समीक्षा कर सकें।
- लघु समूह शिक्षण में तकनीकी के प्रयोग के स्वरूप को समझ सकें ।
- सह छात्र शिक्षण प्रक्रिया में तकनीकी के प्रयोग से विस्तृत रूप में परिचित हो सकें।
- सहयोगपूर्ण शिक्षण में विभिन्न तकनीकी यथा दृश्य श्रव्य उपकरण, कम्प्यूटर आधारित अधिगम, मोबाइल, टैबलेट, इलैक्ट्रानिक बोर्ड आदि की उपयोगिता को समझ सकने में समर्थ हो सकें।
- समूह चर्चा विधि के लिये तकनीकी का प्रयोग कर उसे और अधिक प्रभावी बनानेकी उपयोगिता एवं महत्व को पहचान सकें।
- इस इकाई की विषय सामग्री का भली - भांति विवेचन तथा विश्लेषण कर सकें तथा पूछे गये प्रश्नों का तर्क एवं औचित्यपूर्ण उत्तर दे सकें।

17.3 तकनीकी अथवा प्रौद्योगिकी का अर्थ

प्रौद्योगिकी हर उस वस्तु को कहा जा सकता है जो हमारे जीवन को सहज बनाती है। हर वो वस्तु जो हमें हमारे दैनिक जीवन के किसी भी कार्य को करने में सहजता एवं सुगमता प्रदान करती है तथा जिसकी सहायता से हम अपने किसी कार्य को अपेक्षाकृत आसानी से कर पाते है, प्रौद्योगिकी कहलाती है। इस प्रकार हम कह सकते है कि प्रौद्योगिकी एक प्रत्यय है, जिसका सम्बन्ध प्रत्येक उस यंत्र से है जो किसी भी कार्य को सरल एवं सहज बनाते हुए अपेक्षाकृत कम समय एवं कम परिश्रम में ही पूर्ण करने में सक्षम हो अथवा हमें सक्षम बनाता हो।

शिक्षा में प्रौद्योगिकी का प्रयोग भी इसी का उदाहरण है। वे यंत्र अथवा प्रणाली जो शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सहज, रोचक एवं मनोरंजक बनाती हैं, तथा जिनके प्रयोग के द्वारा अधिगम आसान तथा दीर्घ काल तक स्मरण रहता है, शिक्षा प्रौद्योगिकी कहलाती है।

17.3.1 तकनीकी एवं शिक्षण अधिगम एकीकरण की मान्यताऐं

तकनीकी अथवा प्रौद्योगिकी के विभिन्न शिक्षण अधिगम परिस्थितियों में प्रयोग से पूर्व तकनीकी के प्रयोग संबंधीकुछ सामान्य बातों को जानना आवश्यक है। इन बातों का विवरण अग्रांकित बिन्दुओं द्वारा किया जा सकता है -

1. तकनीकी के प्रयोग से विषय वस्तु को व्यापक बनाया जा सकता है।

2. तकनीकी की विधियों एवं प्रविधयों की सहायता से अधिगम के पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है।
3. तकनीकी के प्रयोग से छात्रों को अपनी व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुसार सीखने का अवसर दिया जा सकता है।
4. तकनीकी के प्रयोग से स्वतः अध्ययन को अभिप्रेरित किया जा सकता है।
5. तकनीकी के प्रयोग से छात्र अध्यापक की अनुपस्थिति में भी स्वतः क्रिया द्वारा सीख सकता है।
6. तकनीकी के प्रयोग से समुचित अधिगम परिस्थितियों का निर्माण किया जा सकता है।
7. तकनीकी के प्रयोग से छात्रों को समुचित पुनर्बलन प्रदान किया जा सकता है।
8. तकनीकी के प्रयोग से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को रोचक एवं मनोरंजक बनाया जा सकता है।
9. तकनीकी के प्रयोग से अधिगम में अधिकाधिक इन्द्रियों के प्रयोग को संभव बनाया जा सकता है।

वर्तमान में कक्षा कक्ष वातावरण को सक्रिय एवं संवेदात्मक बनाने व प्रभावी अधिगम के लिये तकनीकी को विभिन्न स्तरों एवं प्रकारों से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में एकीकृत किया जाता है। प्रस्तुत इकाई में हम लघु समूह शिक्षण में तकनीकी के प्रयोग का अध्ययन करेंगे।

अभ्यास प्रश्न 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. तकनीकी के प्रयोग से विषय वस्तु को __________ बनाया जा सकता है।
2. तकनीकी के प्रयोग से छात्रों को अपनी ________________ के अनुसार सीखने का अवसर दिया जा सकता है।
3. तकनीकी के प्रयोग से __________ को अभिप्रेरित किया जा सकता है।
4. तकनीकी के प्रयोग से छात्रों को समुचित __________ प्रदान किया जा सकता है।

17.4 लघु समूह शिक्षण में तकनीकी का प्रयोग

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है लघु समूह शिक्षण वह शिक्षण होता है जिसमें छात्रों की संख्या का आकार लघु होता है। इसमें छात्रों की संख्या सीमित होती है। लघु समूह शिक्षण में छात्रों की संख्या 2 - 30 तक होती है।

लघु समूह शिक्षण में तकनीकी के प्रयोग हेतु निम्न बातों पर ध्यान दिया जाता है -

1. शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की सम्पूर्ण प्रक्रिया की रूपरेखा पूर्व में ही तैयार की जाती है।
2. विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के अनुसार उपयुक्त तकनीक का चुनाव कर सम्पूर्ण क्रिया को क्रमबद्ध रूप में संचालित किया जाता है।

3. शिक्षक की अनुपस्थिति में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को किस तकनीकी के प्रयोग द्वारा किस प्रकार संचालित किया जायेगा, इसका निर्धारण भी पूर्व में किया जाता है एवं एक रूपरेखा का निर्माण किया जाता है।

छात्रों की संख्या को ध्यान में रखते हुए निम्न तकनीकी को शिक्षण में एकीकृत करके अधिगम को और अधिक प्रभावी वनाया जा सकता है -

1. **मोबाईल (स्मार्ट फोन)** - आज कल मोबाईल फोन भी शिक्षण सहायक सामग्री के रूप में प्रयोग में लाये जाते हैं। स्मार्ट फोन पर छात्र इंटरनेट से किसी समस्या से सम्बन्धित साहित्य को खोज कर मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हैं, किसी कार्य की क्रिया विधि को समझ सकते हैं, अपने अधिगम के लिये दृष्टान्त ले सकते हैं। इस प्रकार लघु समूह शिक्षण में छात्र मोबाइल का उपयोग कर सकते हैं। चूंकि लघु समूह शिक्षण में छात्रों की संख्या सीमित होती है, अध्यापक भी छात्रों की गतिविधियों पर आसानी से निगरानी रख सकता है।
2. **प्रोजेक्टर** - प्रोजेक्टर का प्रयोग भी लघु समूह शिक्षण में प्रभावी ढंग से किया जा सकता है। किसी विषय वस्तु से सम्बन्धित विभिन्न चित्र, ग्राफ, वीडियो आदि को प्रोजेक्टर की सहायता से समूह में प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रोजैक्टर के द्वारा छात्र भी अपने कार्यो की रिपोर्ट आदि को प्रस्तुत कर सकते हैं।
3. **इलैक्ट्रानिक बोर्ड** - आज कल विद्यालयों में पारंपरिक श्यामपटट के स्थान पर इलैक्ट्रानिक बोर्ड एवं स्मार्ट कक्षा काफी प्रचलित हो रही है। इसके द्वारा अध्ययन सामग्री को चित्रों के द्वारा दृश्य एवं श्रव्य दोनों रूपों में प्रस्तुत किया जाता है।
4. **कम्प्यूटर व इन्टरनेट** - कम्प्यूटर द्वारा मनुष्य के कार्य को बहुत सहज बना दिया गया है। इसके द्वारा बहुत अधिक विस्तृत कार्यो को भी बहुत कम समय में पूर्ण कर दिया जाता है। इसके द्वारा न केवल कार्यों को सम्पादित किया जाता है बल्कि सूचनाओं को संग्रहित भी किया जाता है।

   वहीं इन्टरनेट अथाह सूचनाओं का भण्डार है। किसी भी विषय अथवा प्रकरण से सम्बन्धित सूचना एवं विशेषज्ञों के विचारों को एक पल में ही प्राप्त किया जा सकता है। इन्टरनेट द्वारा ग्लोबल लर्निंग के प्रत्यय को सम्भव बना दिया गया है। विश्व के किसी भी कोने में घटित किसी घटना अथवा नवीन आविष्कार से सम्बन्धित जानकारी को अगले ही पल कहीं भी उपलब्ध करा दिया जाता है।
5. **वीडियो कान्फ्रेंसिंग एवं टेली कान्फ्रेंसिंग** - इसके द्वारा किसी भी विषय पर विश्व के किसी दूसरे कोने में स्थित विशेषज्ञ की राय को कक्षा कक्ष में ही एक दृश्य अथवा श्रव्य उपकरण के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। एक अधिगम समूह अपने अधिगम अनुभवों को दूसरे समूह से बांटने के लिये भी इसका प्रयोग कर सकता है।
6. **दूरदर्शन अथवा रेडियो** - दूरदर्शन अथवा रेडियो द्वारा भी शिक्षण सम्बन्धी कार्यक्रमों का प्रसारण अपने विभिन्न प्रसारण केन्द्रों द्वारा किया जाता है। इन कार्यकमों के द्वारा भी शिक्षण

अधिगम की प्रक्रिया में ज्ञानेद्रियों को सम्मिलित कर अधिगम को प्रभावी एवं रोचक बनाया जाता है।

7. **टेप रिकार्डर** - टेप रिकार्डर द्वारा आवश्यक सूचनाओं एवं विषय विशेषज्ञों की रायों आदि को श्रव्य रूप में संकलित किया जा सकता है तथा आवश्यकता पड़ने पर पुनः प्रसारित कर प्रस्तुत किया जा सकता है।
8. **अभिक्रमित अनुदेशन** - यह अनुदेशन प्रक्रिया की बी. एफ. स्किनर द्वारा सुझायी गई एक नवीन तकनीक है। यह रेखीय एवं शाखीय दो प्रकार का होता है। इसके द्वारा विषय वस्तु को सूक्ष्म रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि छात्र अध्यापक की अनुपस्थिति में भी अधिगम को प्राप्त कर सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. लघु समूह शिक्षण _______________ की प्राप्ति के अनुसार उपयुक्त तकनीक का चुनाव कर सम्पूर्ण क्रिया को क्रमबद्ध रूप में संचालित किया जाता है।
2. _____________ बोर्ड द्वारा अध्ययन सामग्री को चित्रों के द्वारा दृश्य एवं श्रव्य दोनों रूपों में प्रस्तुत किया जाता है।
3. अभिक्रमित अनुदेशन _______________दो प्रकार का होता है।

17.6 सह छात्र शिक्षण में तकनीकी का प्रयोग

सह छात्र शिक्षण विधि में छात्र समूह में से ही किसी एक छात्र के द्वारा समूह के अन्य छात्रों को शिक्षण कराया जाता है। इस प्रकार की शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में निम्न तकनीक को शामिल किया जा सकता है -

1. **दृश्य व श्रव्य तकनीकी** - विषय वस्तु को रोमांचक बनाने एवं छात्रों को विषय वस्तु से संबंधितदृष्टांतदेने हेतु दृश्य सामग्री के अन्तर्गत वीडियो, डी. वी. डी, यू - ट्यूब एवं वैब कैम आदि का प्रयोग किया जा सकता है। श्रव्य सामग्री के अन्तर्गत रेडियो एवं टेपरिकार्डर आदि को कक्षा कक्ष में सहछात्र शिक्षक के द्वारा प्रयोग किया जा सकता है।
2. **कम्प्यूटर, मोबाइल, टैबलेट आदि उपकरणों का प्रयोग** - सह छात्र शिक्षण एक लघु समूह शिक्षण का ही रूप है। इसमें भी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया लघु समूह में ही होती है। अतः इसमें विषय वस्तु को और गहनता से समझने के लिये कम्प्यूटर, मोबाइल, टैबलेट आदि उपकरणों का प्रयोग भी किया जा सकता है।
3. आनलाइन रूप में भी छात्र अपने सह छात्रों से दूरस्थ माध्यम से भी अधिगम प्राप्त करने के अवसर प्राप्त करते हैं।

4. कई सारे साफ्टवेयर भी सह छात्र शिक्षण के प्रबंधन हेतु उपलब्ध हैं, जिन्हें सह छात्र शिक्षक द्वारा अपनी शिक्षण प्रक्रिया को सुगम बनाने के लिये प्रयोग किया जा सकता है।
5. कम्प्यूटर आधारित मूल्यांकन को सह छात्र शिक्षण से जोड़कर सहायता करने और लेने वाले को नियमित रूप में बार - बार प्रतिक्रिया प्राप्त होती है तथा प्रभावशाली तरीके से सीखने में मदद मिलती है।

सह छात्र शिक्षण प्रक्रिया में तकनीकी के प्रयोग से पूर्व कुछ बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। जिन्हें निम्न बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है -

1. जिस स्थान पर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया होनी है, वहां किस तकनीकी की उपलब्धता है। यह जानना आवश्यक है।
2. उपलब्ध तकनीकों में से सह छात्र शिक्षक किस तकनीक के प्रयोग में दक्ष है। अगर उसे तकनीक का प्रयोग करना नहीं आता है तो यह आवश्यक है कि उसे इसके लिये प्रशिक्षण प्रदान किया जाये।
3. तकनीकी का चयन एवं प्रयोग विषय वस्तु के अनुरूप होना चाहिये।
4. तकनीकी का प्रयोग शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के किस चरण में किया जायेगा, इसके बारे में भी सह छात्र शिक्षक को प्रशिक्षित किया जाना चाहिये।

सह छात्र शिक्षण में तकनीकी को निम्न संगठनात्मक आयामों में सम्मिलित करके प्रयोग किया जा सकता है -

1. **पाठ्यक्रम सामग्री** - सहछात्र शिक्षण का क्षेत्र बहुत व्यापक होता है। अतः कौन सी पाठ्य सामग्री ऐसी है जिस पर छात्र शिक्षक तकनीकी की सहायता से विषय वस्तु का नियोजन कर कक्षा में अध्यापन करा सकता है, इसका नियोजन शिक्षक द्वारा किया जाना चाहिये।
2. **अन्तः क्रिया** - तकनीकी आधारित गतिविधि में छात्रों को किस प्रकार गतिविधि के अवसर प्रदान किये जायेंगे। वह प्रस्तुतीकरण से पूर्व, मध्य में अथवा बाद में अन्तःक्रिया करेंगे, यह योजना भी छात्र शिक्षक द्वारा शिक्षक के साथ मिलकर बनानी चाहिये।
3. यह शिक्षण एक संस्था में होना है अथवा अन्य संस्थाओं को भी इससे जोड़ा जाना है एवं इसके लिये आवश्यक वीडियो अथवा टेलीकान्फ्रेंसिंग आदि की व्यवस्था भी पूर्व में ही की जानी चाहिये।

अभ्यास प्रश्न 3

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. सह छात्र शिक्षण विधि में छात्र समूह में से ही किसी एक छात्र के द्वारा समूह के अन्य छात्रों को __________ कराया जाता है।

2. आनलाइन रूप में भी छात्र अपने सह छात्रों से __________ से भी अधिगम प्राप्त करने के अवसर प्राप्त करते हैं।
3. तकनीकी का चयन एवं प्रयोग __________ के अनुरूप होना चाहिये।

17.7 सहयोगपूर्ण शिक्षण में तकनीकी का प्रयोग

सहयोगपूर्ण शिक्षण परिस्थिति में छात्र छोटे - छोटे समूह बनाकर विषय वस्तु के साथ अन्तःक्रिया कर ज्ञान निर्माण करते हैं। अपने सहछात्रों के साथ अन्तःक्रिया करते हुए छात्रों में जो अभिवृत्ति एवं कौशल विकसित होते हैं, वह उनके भावी जीवन के लिये भी लाभप्रद होते हैं। सहयोगपूर्ण शिक्षण में विभिन्न तकनीकी यथा दृश्य श्रव्य उपकरण, कम्प्यूटर आधारित अधिगम, मोबाइल, टैबलेट, इलैक्ट्रानिक बोर्ड आदि को निम्न रूप में प्रयोग किया जा सकता है -

1. सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम के लिये शिक्षक जब छात्र समूहों का निर्माण करें तो यह सुनिश्चित किया जाना चाहिये कि प्रत्येक समूह में जिन छात्रों को सम्मिलित किया जाये उनमें से कुछ छात्र प्रयोग की जाने वाली तकनीकी के बारे में ज्ञान रखते हों तो कुछ छात्र ऐसे भी होने चाहिये जिनके पास प्रयोग की जाने वाली तकनीकी का ज्ञान न हो। इस प्रकार वह पाठ्यक्रम को तकनीक से जोड़कर अधिगम कैसे प्राप्त कर सकते हैं, यह सीख पायेंगे।
2. छात्रों को सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम कराने हेतु विभिन्न सहकारी कौशलों जैसे - मदद मांगना, सुझाव व प्रतिपुष्टि देना, सुझावों को सकारात्मक रूप में अपनाना, विनम्रता एवं मतभेदों को देर करना आदि के बारे में प्रशिक्षण दिया जाये। छात्र जब तकनीकी आधारित वातावरण में इन कौशलों का प्रयोग करते हैं तो अधिगम में अधिक आनंद लेते हैं।
3. समूह के छात्रों को किसी समस्या पर पहले अपने समूह के सदस्यों से मदद मांगने को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। अगर समूह के सदस्यों द्वारा भी समस्या का हल न हो तो अन्य समूह के सदस्यों से इस विषय में मदद मांगनी चाहिये। शिक्षक के द्वारा सहायता सबसे अंत में दी जानी चाहिये ताकि प्रयुक्त तकनीक के प्रयोग में समूह के सभी सदस्यों द्वारा स्वायत्ता को हासिल किया जा सके।
4. सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम में तकनीकी आधारित गतिविधियों के दौरान छात्रों के मध्य परस्पर अन्तःक्रिया को निरंतर प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। जब छात्र किसी आनलाइन व्याख्यान को सुन रहे हों अथवा किसी विषय सामग्री को पढ़ रहे हों तो उस पर चर्चा के लिये अलग से थोड़ा समय निर्धारित किया जाना चाहिये।
5. सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम में शिक्षक द्वारा यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिये कि जो भी तकनीक प्रयोग में लाई जा रही है उसके प्रयोग में समूह के सभी सदस्यों को समान अवसर मिलने चाहिये।

6. छात्रों को कम्प्यूटर आदि के द्वारा ही अपनी रिपोर्ट बनाने एवं प्रस्तुत करने को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न 4

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम में तकनीकी आधारित गतिविधियों के दौरान छात्रों के मध्य ______________ को निरंतर प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।
2. जब छात्र किसी आनलाइन व्याख्यान को सुन रहे हों अथवा किसी विषय सामग्री को पढ़ रहे हों तो उस पर चर्चा के लिये अलग से थोड़ा ___________ किया जाना चाहिये।
3. सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम में शिक्षक द्वारा यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिये कि जो भी तकनीक प्रयोग में लाई जा रही है उसके प्रयोग में समूह के सभी सदस्यों को __________ मिलने चाहिये।

17.8 समूह चर्चा में तकनीकी का प्रयोग -

समूह चर्चा सक्रिय अधिगम का एक सशक्त माध्यम है। इसमें एक संगठित एवं सुनियोजित समूह चर्चा द्वारा प्रतिभागियों को नवीन विचारों की खोज करने के अवसर मिलते हैं व अन्य प्रतिभागियों के विचारों का मूल्यांकन किया जाता है। समूह चर्चा विधि द्वारा छात्रों के बोध का विकास होता है व उनके विषय वस्तु सम्बन्धी ज्ञान में भी वृद्धि होती है। समूह चर्चा विधि छात्रों के आत्म विश्वास में वृद्धि करने में भी सहायक होती है।

समूह चर्चा विधि के लिये निम्नांकित तकनीकी का प्रयोग कर उसे और अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है -

1. **इलैक्ट्रानिक चर्चा बोर्ड** - ठीक प्रकार से निर्देशित इलैक्ट्रानिक चर्चा बोर्ड कक्षा में छात्रों को समृद्ध संपर्क बनाने के अवसर प्रदान करते हैं। इलैक्ट्रानिक चर्चा बोर्ड पर शिक्षक द्वारा एक प्रश्न लिखा जाता है और बाकी के छात्रों द्वारा इलैक्ट्रानिक चर्चा बोर्ड पर उस प्रश्न से सम्बन्धित अपने विचारों को लिखा जाता है।
2. **मोबाइल उपकरण** - मोबाइल उपकरण जैसे स्मार्ट फोन, टैबलेट, नोट बुक और कम्प्यूटर समूह चर्चा में छात्रों को प्रतिभाग करने के अवसर प्रदान करते हैं। समूह में कुछ छात्र जो समूह में विचार व्यक्त करने में संकोच का अनुभव करते हैं वह भी इन उपकरणों की सहायता से खुल कर अपने विचार अभिव्यक्त करने में सक्षम होते हैं।
3. **माइक्रोफोन** - समूह चर्चा में माइक्रोफोन का भी प्रयोग किया जा सकता है। जिससे एक व्यक्ति के विचार स्पष्ट रूप में सब तक पहुच सकें। इसमें जिस भी प्रतिभागी को माइक्रोफोन प्रदान किया जाता है, उसे ही अपने विचार व्यक्त करने का अवसर मिलता है। इस प्रकार से समूह चर्चा विधि में भाग लेने वाले सभी प्रतिभागियों को सक्रिय रूप से चिन्तन करने के लिये प्रोत्साहित किया जा सकता है।

17.9 सामूहिक प्रोजेक्ट में तकनीकी का प्रयोग

सामूहिक प्रोजेक्ट आधारित शिक्षण अधिगम एक गतिशील कक्षा कक्ष परिपेक्ष्य है। जिसमें छात्र किसी समस्या का हल सक्रिय रूप से खोजते हैं। वे प्रोजेक्ट की चुनौतियों से जूझते हुए विषय वस्तु सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करते हैं। यह सीखने के अनुभवात्मक पक्ष पर बल देता है। छात्र जिस चीज का स्वयं अनुभव करते हैं, उसे बेहतर तौर पर सीखते हैं। प्रोजेक्ट आधारित शिक्षण अधिगम में निम्न तत्वों का होना आवश्यक है -

1) छात्रों को वास्तविक समस्या का ज्ञान।
2) छात्रों का अपने अधिगम पर नियंत्रण।
3) शिक्षक द्वारा सुगमकर्ता व चिन्तन और खोज में मध्यस्थ की भूमिका।
4) छात्रों के कार्य करने हेतु छोटे - छोटे समूह।
5) छात्रों को कार्य करने की स्वतंत्रता।
6) प्रोजेक्ट की समाप्ति पर रिपोर्ट का लेखन।

सामूहिक प्रोजेक्ट शिक्षण अधिगम में प्रोजेक्ट को पूर्ण करते समय छात्रों द्वारा निम्न तकनीकों का प्रयोग किया जा सकता है -

1) छात्रों के द्वारा किसी समस्या का हल खोजने के लिये कम्प्यूटर व इन्टरनेट का प्रयोग किया जा सकता है। इन्टरनेट के माध्यम से वे किसी भी विषय से सम्बन्धित जानकारी को प्राप्त कर सकते हैं। कम्प्यूटर के प्रयोग द्वारा न केवल तथ्यों की प्राप्ति की जा सकती है वरन् उनका संकलन भी किया जा सकता है और प्रोजेक्ट की समाप्ति पर छात्रों द्वारा अपना प्रतिवेदन भी तैयार किया जा सकता है।
2) मोबाइल, टेबलेट आदि का प्रयोग भी छात्रों के द्वारा किसी समस्या का हल खोजने के लिये किया जा सकता है।
3) ध्वनि एवं चित्रात्मक तथ्यों के संकलन के लिये डी.वी.डी. एवं टेप रिकार्डर का प्रयोग किया जा सकता है।
4) प्रतिवेदन आदि को समूह में प्रस्तुत करने के लिये भी कम्प्यूटर अथवा प्रोजेक्टर आदि का प्रयोग किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर छात्र अथवा शिक्षक आवश्यकतानुसार अन्य तकनीकों का प्रयोग भी कर सकते हैं।

17.10 छद्म एवं खेल आधारित शिक्षण में तकनीकी का प्रयोग

छद्म एवं खेल आधारित शिक्षण में खेल द्वारा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को मनोरंजक बनाकर शिक्षण कराया जाता है। छद्म एवं खेल आधारित परिस्थिति में शिक्षण अधिगम के लिये एक ऐसा आभासी वातावरण तैयार किया जाता है जो छात्रों को प्रासंगिक लगे। छद्म एवं खेल आधारित शिक्षण इसलिये भी प्रेरणादायी है कि छात्र अधिगम के अनुभव और वास्तविक जीवन के बीच सम्बन्धों को समझ सकते हैं। इस प्रकार के शिक्षण अधिगम में प्रभावी संवेदात्मक अनुभवों की आवश्यकता होती है जिसके लिये कई

प्रकार के खेल विकसित किये गये हैं। जिनका एक शिक्षक अपनी कक्षा कक्ष में प्रयोग कर कक्षा कक्ष को वास्तविक जीवन की बनावट में ढाल कर खेल द्वारा छात्रों में ज्ञान निर्माण कर सकता है।

छद्म एवं खेल आधारित शिक्षण में कम्प्यूटर एवं वीडियो गेम्स आदि तकनीकी का प्रयोग किया जाता है। इन कम्प्यूटर आधारित गेम्स के द्वारा छात्रों के अधिगम को निम्न रूप से प्रभावित एवं लाभान्वित किया जाता है -

1) छद्म एवं खेल आधारित शिक्षण द्वारा छात्रों को अधिगम के लिये अभिप्रेरणा प्रदान की जाती है। इन खेलों में छात्रों के समक्ष विषय वस्तु को एक चुनौती के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जिससे छात्र आन्तरिक रूप से अभिप्रेरित होकर इन खेलों को अधिक रूचि के साथ खेलते हैं।
2) कम्प्यूटर आधारित गेम्स के द्वारा छात्रों में खोज की प्रवृति को प्रोत्साहन दिया जाता है।
3) कम्प्यूटर आधारित गेम्स के द्वारा छात्रों के लिये वास्तविक अधिगम में उपस्थित खतरों को कम कर दिया जाता है। उदाहरणार्थ रसायन विज्ञान पढ़ाते समय गलत रसायनों के प्रयोग के खतरे को इन कम्प्यूटर आधारित गेम्स के द्वारा होने वाले अधिगम में समाप्त कर दिया जाता है।
4) कम्प्यूटर आधारित गेम्स के द्वारा छात्रों को जीवन की वास्तविक परिस्थितियों का पूर्व में ही अनुभव प्रदान कर दिया जाता है। जिससे छात्र वास्तविक जीवन की समस्याओं को एक अनुभवी व्यक्ति की तरह हल कर पाने में सक्षम होते हैं।
5) कम्प्यूटर आधारित गेम्स के द्वारा अधिगम के किसी विशेष तथ्य पर बल दिया जाना भी संभव होता है। जिस तथ्य पर बल दिया जाना होता है उस तथ्य को कम्प्यूटर आधारित गेम्स में अनिवार्य बना दिया जाता है। उस पर अपनी प्रतिक्रिया दिये बिना कोई भी छात्र उस खेल में आगे नहीं बढ़ सकता है।
6) कम्प्यूटर आधारित गेम्स के द्वारा छात्रों को स्व अधिगम का प्रशिक्षण प्राप्त होता है। इसमें अध्यायपक के बिना भी अधिगम संभव है। छात्रों को आवश्यक निर्देश एक ऐनीमेशन, लिखित अथवा मौखिक रूप में दिये जा सकते हैं।
7) कम्प्यूटर आधारित गेम्स के द्वारा छात्रों को चुनौतीपूर्ण अधिगम प्रदान किया जाता है जिससे उनके आत्मविश्वास के स्तर में वृद्धि होती है तथा वे वास्तविक जीवन की चुनौतियों को भी हल कर पाने में समर्थ हो पाते हैं।
8) कम्प्यूटर आधारित गेम्स के द्वारा छात्रों को चिन्तन के अवसर भी प्रदान किये जाते हैं।
9) कम्प्यूटर आधारित गेम्स के द्वारा छात्रों को उपलब्ध कई विकल्पों में से एक श्रेष्ठ विकल्प का चयन करना होता है। अतः कम्प्यूटर आधारित गेम्स के द्वारा छात्रों में चयनात्मक क्षमताओं का भी विकास किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न 5

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. ठीक प्रकार से निर्देशित ____________________ बोर्ड कक्षा में छात्रों को समृद्ध संपर्क बनाने के अवसर प्रदान करते हैं।
2. समूह में कुछ छात्र जो समूह में विचार व्यक्त करने में संकोच का अनुभव करते हैं वह भी __________ उपकरणों की सहायता से खुल कर अपने विचार अभिव्यक्त करने में सक्षम होते हैं।
3. छद्म एवं खेल आधारित परिस्थिति में शिक्षण अधिगम के लिये एक ऐसा ____________ वातावरण तैयार किया जाता है जो छात्रों को प्रासंगिक लगे।
4. छद्म एवं खेल आधारित शिक्षण में __________________- आदि तकनीकी का प्रयोग किया जाता है।

17.11 सारांश

वर्तमान युग तकनीकी अथवा प्रौद्योगिकी का युग है। आज की पीढ़ी यातायात, दूरसंचार एवं मनोरंजन आदि के आधुनिक संसाधनों को पसंद करने वाली एवं उन्हीं पर निर्भर रहने वाली है। सामान्य श्यामपट्ट एवं शिक्षक निर्देशित कक्षा कक्ष भी अब पुराने जमाने की बातें हो गई हैं। ऐसे विद्यालय बालकों को तो पसंद है ही नहीं वरन उनके अभिभावक भी अपने बच्चों को उन विद्यालयों में प्रवेश दिलाना चाहते है जो आधुनिक प्रौद्यौगिकी ये युक्त हो।

प्रौद्योगिकी हर उस वस्तु को कहा जा सकता है जो हमारे जीवन को सहज बनाती है। हर वो वस्तु जो हमें हमारे दैनिक जीवन के किसी भी कार्य को करने में सहजता एवं सुगमता प्रदान करती है तथा जिसकी सहायता से हम अपने किसी कार्य को अपेक्षाकृत आसानी से कर पाते है, प्रौद्योगिकी कहलाती है। शिक्षा में प्रौद्योगिकी का प्रयोग भी इसी का उदाहरण है। वे यंत्र अथवा प्रणाली जो शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सहज, रोचक एवं मनोरंजक बनाती हैं, तथा जिनके प्रयोग के द्वारा अधिगम आसान तथा दीर्घ काल तक स्मरण रहता है, शिक्षा प्रौद्योगिकी कहलाती है।

लघु समूह शिक्षण वह शिक्षण होता है जिसमें छात्रों की संख्या का आकार लघु होता है। इसमें छात्रों की संख्या सीमित होती है। लघु समूह शिक्षण में छात्रों की संख्या 2 - 30 तक होती है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की सम्पूर्ण प्रक्रिया की रूपरेखा पूर्व में ही तैयार की जाती है। विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के अनुसार उपयुक्त तकनीक का चुनाव कर सम्पूर्ण क्रिया को क्रमबद्ध रूप में संचालित किया जाता है। शिक्षक की अनुपस्थिति में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को किस तकनीकी के प्रयोग द्वारा किस प्रकार संचालित किया जायेगा, इसका निर्धारण भी पूर्व में किया जाता है एवं एक रूपरेखा का निर्माण किया जाता है।

सह छात्र शिक्षण विधि में छात्र समूह में से ही किसी एक छात्र के द्वारा समूह के अन्य छात्रों को शिक्षण कराया जाता है। इस प्रकार की शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में निम्न तकनीक को शामिल किया जाता है - दृश्य व श्रव्य तकनीकी, कम्प्यूटर, मोबाइल, टैबलेट आदि उपकरणों का प्रयोग, आनलाइन रूप में भी

छात्र अपने सह छात्रों से दूरस्थ माध्यम से भी अधिगम प्राप्त करने के अवसर प्राप्त करते हैं। कई सारे साफ्टवेयर भी सह छात्र शिक्षण के प्रबंधन हेतु उपलब्ध हैं, जिन्हें सह छात्र शिक्षक द्वारा अपनी शिक्षण प्रक्रिया को सुगम बनाने के लिये प्रयोग किया जा सकता है।

सहयोगपूर्ण शिक्षण परिस्थिति में छात्र छोटे - छोटे समूह बनाकर विषय वस्तु के साथ अन्तःक्रिया कर ज्ञान निर्माण करते हैं। सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम के लिये शिक्षक जब छात्र समूहों का निर्माण करें तो यह सुनिश्चित किया जाना चाहिये कि प्रत्येक समूह में जिन छात्रों को सम्मिलित किया जाये उनमें से कुछ छात्र प्रयोग की जाने वाली तकनीकी के बारे में ज्ञान रखते हों तो कुछ छात्र ऐसे भी होने चाहिये जिनके पास प्रयोग की जाने वाली तकनीकी का ज्ञान न हो। सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम में शिक्षक द्वारा यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिये कि जो भी तकनीक प्रयोग में लाई जा रही है उसके प्रयोग में समूह के सभी सदस्यों को समान अवसर मिलने चाहिये।

समूह चर्चा सक्रिय अधिगम का एक सशक्त माध्यम है। इसमें एक संगठित एवं सुनियोजित समूह चर्चा द्वारा प्रतिभागियों को नवीन विचारों की खोज करने के अवसर मिलते हैं व अन्य प्रतिभागियों के विचारों का मूल्यांकन किया जाता है। समूह चर्चा विधि द्वारा छात्रों के बोध का विकास होता है व उनके विषय वस्तु सम्बन्धी ज्ञान में भी वृद्धि होती है। समूह चर्चा विधि छात्रों के आत्म विश्वास में वृद्धि करने में भी सहायक होती है। इलैक्ट्रानिक चर्चा बोर्ड, मोबाइल उपकरण, माइक्रोफोनसमूह चर्चा विधि को प्रभावी बनाया जा सकता है।

सामूहिक प्रोजेक्ट आधारित शिक्षण अधिगम एक गतिशील कक्षा कक्ष परिपेक्ष्य है। जिसमें छात्र किसी समस्या का हल सक्रिय रूप से खोजते हैं। वे प्रोजेक्ट की चुनौतियों से जूझते हुए विषय वस्तु सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करते हैं। यह सीखने के अनुभवात्मक पक्ष पर बल देता है। छात्र जिस चीज का स्वयं अनुभव करते हैं, उसे बेहतर तौर पर सीखते हैं।

छद्म एवं खेल आधारित शिक्षण में खेल द्वारा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को मनोरंजक बनाकर शिक्षण कराया जाता है। छद्म एवं खेल आधारित परिस्थिति में शिक्षण अधिगम के लिये एक ऐसा आभासी वातावरण तैयार किया जाता है जो छात्रों को प्रासंगिक लगे। छद्म एवं खेल आधारित शिक्षण इसलिये भी प्रेरणादायी है कि छात्र अधिगम के अनुभव और वास्तविक जीवन के बीच सम्बन्धों को समझ सकते हैं। इस प्रकार के शिक्षण अधिगम में प्रभावी संवेदात्मक अनुभवों की आवश्यकता होती है जिसके लिये कई प्रकार के खेल विकसित किये गये हैं। जिनका एक शिक्षक अपनी कक्षा कक्ष में प्रयोग कर कक्षा कक्ष को वास्तविक जीवन की बनावट में ढाल कर खेल द्वारा छात्रों में ज्ञान निर्माण कर सकता है। छद्म एवं खेल आधारित शिक्षण में कम्प्यूटर एवं वीडियो गेम्स आदि तकनीकी का प्रयोग किया जाता है।

17.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. व्यापक 2. व्यक्तिगत विभिन्नताओं 3. स्वतः अध्ययन

4. पुनर्बलन

अभ्यास प्रश्न 2

1. विशिष्ट उद्देश्यों 2. इलैक्ट्रानिक 3. रेखीय एवं शाखीय

अभ्यास प्रश्न 3

1. शिक्षण 2. दूरस्थ माध्यम 3. विषय वस्तु

अभ्यास प्रश्न 4

1. परस्पर अन्तःक्रिया 2. समय निर्धारित 3. समान अवसर

अभ्यास प्रश्न 5

1. इलैक्ट्रानिक चर्चा 2. मोबाइल 3. आभासी

4. कम्प्यूटर एवं वीडियो गेम्स

17.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. तकनीकी के प्रयोग की उपयोगिता को समझाइये?
2. लघु समूह शिक्षण के अनुसार उपयुक्त तकनीक के चुनाव स्पष्ट कीजिये?
3. सह छात्र शिक्षण विधि में तकनीकी के प्रयोग के महत्व को बताइये?
4. इलैक्ट्रानिक चर्चा बोर्ड, मोबाइल उपकरण, माइक्रोफोन के प्रयोग से समूह चर्चा विधि को किस प्रकार प्रभावी बनाया जा सकता है?
5. छद्म एवं खेल आधारित शिक्षण में कम्प्यूटर एवं वीडियो गेम्स आदि तकनीकी का प्रयोग कैसे किया जाता है?

17.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

- सारस्वत, डा. मालती.(1999),शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, लखनऊः आलोक प्रकाशन।
- पाठक,पी.डी.(2006),शिक्षा मनोविज्ञान, आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।
- माथुर, डा. एस.एस. (1999), शिक्षा मनोविज्ञान, आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।
- सिंह, अरूण कुमार. (1998), मनोविज्ञान के सम्प्रदाय एवं इतिहास, मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली।
- पाठक, डा. आर.पी.(2007), उच्च शिक्षा मनोविज्ञान,नई दिल्लीः राधा पब्लिकेशन्स।

इकाई - 18

वृहद समूह शिक्षण में तकनीकी का प्रयोग
Use of Technology in Large Group Teaching

इकाई रूपरेखा

18.1 प्रस्तावना

18.2 उद्देश्य

18.3 वृहद समूह का अर्थ

18.4 वृहद समूह शिक्षण में तकनीकी के प्रयोग की मान्यताऐं

18.5 वृहद समूह में तकनीकी आधारित शिक्षण अधिगम का प्रबंधन

18.6 वृहद समूह में प्रयोग की जा सकने वाली प्रमुख तकनीकें

18.7 दल शिक्षण में तकनीकी का प्रयोग

18.7.1 दल शिक्षण के दौरान ध्यातव्य बिन्दु

18.7.2 दल शिक्षण के उद्देश्य

18.7.3 दल शिक्षण में तकनीकी का प्रयोग

18.8 सहयोगपूर्ण शिक्षण में तकनीकी का प्रयोग

18.8.1 सहयोगपूर्ण शिक्षण में तकनीकी के प्रयोग में ध्यातव्य बिन्दु

18.9 पूछताछ में तकनीकी का प्रयोग

18.9.1 प्रश्नोत्तर प्रविधि में तकनीक का प्रयोग

18.10 प्रदर्शन में तकनीकी का प्रयोग

18.10.1 प्रदर्शन विधि में तकनीक के प्रयोग में ध्यातव्य बिन्दु

18.10.2 तकनीकी के प्रयोग की योजना में ध्यातव्य बिन्दु

18.11 प्रदर्शनी में तकनीकी का प्रयोग

18.11.1 प्रदर्शनी विधि में प्रयुक्त प्रमुख तकनीकें

18.11.2 प्रदर्शनी के स्वरूप

18.12 सारांश

18.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

18.14 निबंधात्मक प्रश्न

18.15 संदर्भ ग्रंथ सूची

18.1 प्रस्तावना

जैसा कि हमने पूर्व में अध्ययन किया है, बदले परिवेश में शिक्षण के उद्देश्यों, शिक्षण की आवश्यकताओं, शिक्षण की विधियों, आदि शिक्षण के सभी पक्षों में बदलाव की आवश्यकता हुई है। आज शिक्षण का केन्द्र अध्यापक न होकर छात्र हो गया है। ऐसी परिस्थितियों में यह आवश्यक हो गया है कि शिक्षण के सभी पक्ष एवं पहलु भी अध्यापक को केन्द्र में न रखकर बालक को केन्द्र में रखकर निर्धारित किये जायें। कक्षा में बालकों की सामाजिक आर्थिक स्तर, बालकों की आवश्यकताऐं, बालकों की रूचि आदि कें अतिरिक्त कक्षा कक्ष की आवश्यकताओं को भी आज शिक्षण के प्रारूप के निर्धारण में प्रमुख तत्व माना जाता है। कक्षा कक्ष का आकार भी एक ऐसा ही प्रमुख तत्व है जिसके आधार पर विषय वस्तु, शिक्षण विधि, एवं उपयुक्त तकनीकी आदि का चयन किया जाता है।

प्रस्तुत इकाई के द्वारा हम यह जानने का प्रयत्न करेंगे कि एक बड़े आकार की कक्षा अथवा वृहद समूह में शिक्षण कराये जाने के दौरान किन तकनीकों का प्रयोग उपयुक्त होता है? तथा ये तकनीके किस प्रकार वृहद समूह में शिक्षण को लाभान्वित करती हैं?

18.2 उद्देश्य

इस इकाई को सम्पन्न करने तथा अध्ययन करने के पश्चात आप को इस योग्य होना चाहिये कि आप -

- वृहद समूह एवं तकनीकी का अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे।
- वृहद समूह शिक्षण में तकनीकी के प्रयोग की मान्यताऐं एवं उनके प्रबंधन को समझ सकें एवं वृहद समूह में प्रयोग की जा सकने वाली प्रमुख तकनीकें को जान सकेंगे।
- दल शिक्षण के दौरान ध्यातव्य बिन्दु, उद्देश्य एवं दल शिक्षण में तकनीकी का प्रयोग से अवगत हो सकेंगे।
- सहयोगपूर्ण शिक्षण में तकनीकी का प्रयोग एवं ध्यान देने योग्य बातों से परिचित हो सकें।
- पूछताछ में तकनीकी का प्रयोग को समझ सकेंगे।
- प्रदर्शन में तकनीकी का प्रयोग को समझ सकेंगे।
- प्रदर्शनी में तकनीकी का प्रयोग, उसकी प्रमुख तकनीकें एवं प्रदर्शनी के स्वरूप को समझ सकेंगे।

18.3 वृहद समूह का अर्थ

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है वृहद समूह का तात्पर्य किसी कक्षा कक्ष में उपस्थित छात्रों के ऐसे समूह से है जो आकार में अपेक्षाकृत बड़ा हो। वृहद समूह में छात्रों की संख्या 30 से अधिक हो सकती है। यह लघु समूह से आकार में बड़ा होता है।

अधिगम को आसान तथा अधिक लम्बे समय तक स्मरण रहता है, शिक्षा प्रौद्योगिकी कहलाती है।

18.4 वृहद समूह शिक्षण में तकनीकी के प्रयोग की मान्यताऐं

तकनीकी अथवा प्रौद्योगिकी के विभिन्न शिक्षण अधिगम परिस्थितियों में प्रयोग से पूर्व तकनीकी के प्रयोग संबंधी कुछ सामान्य बातों को जानना आवश्यक है। इन बातों का विवरण निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है -

1. छात्रों में अर्थ पूर्ण अधिगम तब होता है जब वह किसी मूर्त वस्तु या उपकरण आदि के साथ प्रत्यक्ष और प्राथमिक अनुभव करते हैं।
2. वर्तमान की कम्प्यूटर आधारित तकनीकी कक्षा में छात्रों को पाठ्यक्रम सम्बन्धी प्रत्यक्ष अनुभव करने हेतु नवीन एवं शक्तिशाली मार्ग प्रस्तुत करती है।
3. शिक्षण अधिगम के इलैक्ट्रानिक उपकरण इस अनुभव को और अधिक विस्तार देकर समय व स्थान से परे ले जा सकते हैं।
4. तकनीकी के प्रयोग से विषय वस्तु को व्यापक बनाया जा सकता है।
5. इससे विषय वस्तु को रोचक एवं मनोरंजनपूर्ण बनाया जा सकता है।
6. तकनीकी की विधियों एवं प्रविधयों की सहायता से अधिगम के पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है।
7. तकनीकी के प्रयोग से छात्रों को अपनी व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुसार सीखने का अवसर दिया जा सकता है।
8. इससे स्वतः अध्ययन को अभिप्रेरित किया जा सकता है।
9. तकनीकी के प्रयोग द्वारा छात्र अध्यापक की अनुपस्थिति में भी स्वतः क्रिया द्वारा सीख सकता है।
10. तकनीकी के प्रयोग से समुचित अधिगम परिस्थितियों का निर्माण किया जा सकता है।
11. इसके द्वारा छात्रों को समुचित पुनर्बलन प्रदान किया जा सकता है।
12. तकनीकी के प्रयोग से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को रोचक एवं मनोरंजक बनाया जा सकता है।
13. इससे अधिगम में अधिकाधिक इन्द्रियों के प्रयोग को संभव बनाया जा सकता है।
14. तकनीकी के प्रयोग द्वारा मूल्यांकन को अधिक वस्तुनिष्ठ एवं विश्वसनीय बनाया जा सकता है।

वर्तमान में कक्षा कक्ष वातावरण को अधिक उत्साहपूर्ण एवं रोचक बनाने व छात्रों में सीखने की प्रक्रिया को अधिक प्रभावी बनाने के लिये तकनीकी को विभिन्न स्तरों एवं प्रकारों से कक्षा कक्ष में संगठित किया जाता है। प्रस्तुत इकाई में हम वृहद समूह शिक्षण में तकनीकी का प्रबंधन किस प्रकार किया जा सकता है? का अध्ययन करेंगे।

अभ्यास प्रश्न 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो

1. वृहद समूह में छात्रों की संख्या .... हो सकती है।
2. छात्रों में अर्थ पूर्ण अधिगम तब होता है जब वह किसी मूर्त वस्तु या उपकरण आदि के साथ .... करते हैं।
3. तकनीकी के प्रयोग द्वारा छात्र अध्यापक की अनुपस्थिति में भी .... द्वारा सीख सकता है।

18.5 वृहद समूह में तकनीकी आधारित शिक्षण अधिगम का प्रबंधन

वृहद समूह शिक्षण में तकनीकी के प्रयोग हेतु निम्न बातों पर ध्यान दिया जाता है -

1. शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की सम्पूर्ण प्रक्रिया की रूपरेखा पूर्व में ही तैयार की जाती है।
2. विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के अनुसार उपयुक्त तकनीक का चुनाव कर सम्पूर्ण क्रिया को क्रमबद्ध रूप में संचालित किया जाता है।
3. शिक्षक की अनुपस्थिति में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को किस तकनीकी के प्रयोग द्वारा किस प्रकार संचालित किया जायेगा, इसका निर्धारण भी पूर्व में किया जाता है एवं एक रूपरेखा का निर्माण किया जाता है।
4. जब कक्षा में तकनीकी आधारित गतिविधियाँ प्रारम्भ की जायें, तो शिक्षक को सभी छात्रों की प्रतिभागिता को सुनिश्चित करना चाहिये। इसके लिये वह छात्रों के बीच में जाकर उन पर निगाह रख सकता है।
5. छात्रों के लिये तकनीकी आधारित गतिविधि को किये जाने के पश्चात उस पर चर्चा के लिये भी समय निर्धारित किया जाना चाहिये। इस प्रकार शिक्षक छात्रों के कार्य करने के समय और चर्चा करने के समय को अलग - अलग कर गतिविधि किये जाने के दौरान छात्रों के ध्यान को भटकने से रोक सकता है।
6. छात्रों को तकनीकी के बारे में विस्तृत जानकारी देते हुए उसके उपयोग सम्बन्धी निर्देश भी देने चाहिये। एक बार जब सभी छात्र गतिविधियों में व्यस्त हो जायें, तो सामूहिक निर्देशों को नहीं प्रदान करना चाहिये।
7. छात्रों में तकनीकी के प्रयोग एवं उस पर की जाने वाली चर्चा के दौरान शिक्षक को छात्रों के समूह में एक अवलोकनकर्ता के रूप में जुड़ना चाहिये। ताकि उनका समुचित रूप में प्रोत्साहन एवं मूल्यांकन किया जा सके।

18.6 वृहद समूह में प्रयोग की जा सकने वाली प्रमुख तकनीकें

छात्रों की संख्या को ध्यान में रखते हुए एक वृहदसमूह में निम्न तकनीकों को शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में एकीकृत करके अधिगम को और अधिक प्रभावी वनाया जा सकता है -

1. **ओवर हैड प्रोजेक्टर** - ओवर हैड प्रोजेक्टर का प्रयोग भी वृहद समूह शिक्षण में प्रभावी ढंग से किया जा सकता है। किसी विषय वस्तु से सम्बन्धित विभिन्न चित्र, ग्राफ, वीडियो आदि को प्रोजेक्टर की सहायता से समूह में प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रोजैक्टर के द्वारा छात्र भी अपने कार्यो की रिपोर्ट आदि को प्रस्तुत कर सकते हैं।
2. **इलैक्ट्रानिक डिस्प्ले बोर्ड** - आज कल विद्यालयों में पारंपरिक श्यामपटट के स्थान पर इलैक्ट्रानिक बोर्ड एवं स्मार्ट कक्षा का काफी प्रयोग हो रहा है। इसके द्वारा अध्ययन सामग्री को चित्रों के द्वारा दृश्य एवं श्रव्य दोनों रूपों में प्रस्तुत किया जाता है।
3. **कम्प्यूटर व इन्टरनेट** - कम्प्यूटर द्वारा मनुष्य के कार्य को बहुत सहज बना दिया गया है। इसके द्वारा बहुत अधिक विस्तृत कार्यो को भी बहुत कम समय में पूर्ण कर दिया जाता है। इसके द्वारा न केवल कार्यो को सम्पादित किया जाता है बल्कि सूचनाओं को संग्रहित भी किया जाता है।
   वहीं इन्टरनेट अथाह सूचनाओं का भण्डार है। किसी भी विषय अथवा प्रकरण से सम्बन्धित सूचना एवं विशेषज्ञों के विचारों को एक पल में ही प्राप्त किया जा सकता है। इन्टरनेट द्वारा ग्लोबल लर्निंग के प्रत्यय को सम्भव बना दिया गया है। विश्व के किसी भी कोने में घटित किसी घटना अथवा नवीन आविष्कार से सम्बन्धित जानकारी को अगले ही पल कहीं भी उपलब्ध करा दिया जाता है।
4. **वीडियो कान्फ्रेंसिंग एवं टेली कान्फ्रेंसिंग** - इसके द्वारा किसी भी विषय पर विश्व के किसी दूसरे कोने में स्थित विशेषज्ञ की राय को कक्षा कक्ष में ही एक दृश्य अथवा श्रव्य उकरण के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। एक अधिगम समूह अपने अधिगम अनुभवों को दूसरे समूह से बांटने के लिये भी इसका प्रयोग कर सकता है।
5. **दूरदर्शन अथवा रेडियो** - दूरदर्शन अथवा रेडियो द्वारा भी शिक्षण सम्बन्धी कार्यक्रमों का प्रसारण अपने विभिन्न प्रसारण केन्द्रों द्वारा किया जाता है। इन कार्यकमों के द्वारा भी शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में ज्ञानेद्रियों को सम्मिलित कर अधिगम को प्रभावी एवं रोचक बनाया जाता है।
6. **टेप रिकार्डर** - टेप रिकार्डर द्वारा आवश्यक सूचनाओं एवं विषय विशेषज्ञों की रायों आदि को श्रव्य रूप में संकलित किया जा सकता है तथा आवश्यकता पड़ने पर पुनः प्रसारित कर प्रस्तुत किया जा सकता है।
7. **अभिक्रमित अनुदेशन** - यह अनुदेशन प्रक्रिया की बी. एफ. स्किनर द्वारा सुझायी गई एक नवीन तकनीक है। यह रेखीय एवं शाखीय दो प्रकार का होता है। इसके द्वारा विषय वस्तु को सूक्ष्म रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि छात्र अध्यापक की अनुपस्थिति में भी अधिगम को प्राप्त कर सकते हैं।

8. **मोबाईल (स्मार्ट फोन)** - आज कल मोबाईल फोन भी शिक्षण सहायक सामग्री के रूप में प्रयोग में लाये जाते हैं। स्मार्ट फोन पर छात्र इंटरनेट से किसी समस्या से सम्बन्धित साहित्य को खोज कर मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हैं, किसी कार्य की क्रिया विधि को समझ सकते हैं, अपने अधिगम के लिये दृष्टान्त ले सकते हैं। वृहद समूह शिक्षण में छात्र व्यक्तिगत रूप से मोबाइल का उपयोग कर सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो

1. शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की सम्पूर्ण प्रक्रिया की रूपरेखा **..................** तैयार की जाती है।
2. आज कल विद्यालयों में **........................** के स्थान पर इलैक्ट्रानिक बोर्ड एवं स्मार्ट कक्षा का काफी प्रयोग हो रहा है।
3. इन्टरनेट अथाह **...................**का भण्डार है।

18.7 दल शिक्षण में तकनीकी का प्रयोग

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि दल शिक्षण एक दल के द्वारा कराया जाने वाला शिक्षण है। दल शिक्षण का उद्देश्य शिक्षार्थियों में अध्ययन बिन्दु का पूरी तरह स्पष्टीकरण कर उसके व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाना है। वर्तमान में किसी भी विषय को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। एक विषय के साथ उसके शिक्षक की सीमाऐं भी निहित होती हैं। इसीलिये परम्परागत शिक्षण प्रणाली में परिवर्तन करने तथा शिक्षण के स्तर में सकारात्मक परिवर्तन लाने हेतु इस नवाचार रूपी उपागम को प्रस्तुत किया गया। दल शिक्षण को समूह शिक्षण या टोली शिक्षण के नाम से भी जाना जाता है।

इस प्रकार दो या दो से अधिक समान अथवा भिन्न विषयों के अध्यापकों के द्वारा शिक्षार्थियों की आवश्यकतानुसार शिक्षण कार्य कराना ही दल शिक्षण कहलाता है।

दल शिक्षण की परिभाषाऐं -

कुछ प्रमुख विद्वानों द्वारा दल शिक्षण को निम्न प्रकार परिभाषित किया गया है -

कार्ला आल्सन के अनुसार दल शिक्षण एक अनुदेशनात्मक परिस्थिति है, जहां दो या दो से अधिक शिक्षक शिक्षण कौशलों से युक्त एक दूसरे के सहयोग से योजना बनाकर शिक्षार्थियों के एक ही समूह पर इनको लागू करते हैं और विशिष्ट प्रकार के अनुदेशन के लिये लचीली सामूहिक प्रविधि का प्रयोग करते हैं।

माइकल जे. आप्टर के अनुसार दल शिक्षण प्रणाली के अन्तर्गतदो या दो से अधिक कालांशोंमें शिक्षण का सामूहिक उत्तरदायित्व उन शिक्षकों पर होता है, जो मिल कर एक दल का निर्माण करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि दल शिक्षण दो या दो से अधिक समान अथवा भिन्न विषयों के अध्यापकों के द्वारा शिक्षार्थियों की आवश्यकतानुसार कराया गया शिक्षण कार्य है।

18.7.1 दल शिक्षण के दौरान ध्यातव्य बिन्दु

दल शिक्षण के दौरान मुख्यतः निम्न बिन्दुओं का ध्यान रखा जाना आवश्यक है -

1. दल शिक्षण में भाग ले रहे सभी शिक्षकों का अभ्यास में सहयोग लेना चाहिये।
2. दल शिक्षण में योजना को क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत किया जाये।
3. संस्था प्रधान का निर्देशन एवं सहयोग होना चाहिये।
4. अधिकाधिक सामग्री की उपलब्धता होनी चाहिये।
5. उपलब्ध संसाधनों के अनुसार ही वातावरण का निर्माण किया जाना चाहिये।
6. शिक्षार्थियों को दल शिक्षण के लिये मानसिक रूप से तैयार व प्रशिक्षित किया जाना चाहिये।
7. दल शिक्षण के दौरान यह ध्यान में रखा जाना चहिये कि प्रकरण विषय से न भटके।

18.7.2 दल शिक्षण के उद्देश्य

दल शिक्षण के प्रमुख उद्देश्यों को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है -

1. इसमें दो या दो से अधिक शिक्षक शिक्षण कार्य करते हैं। जिससे उनकी विशेषज्ञता एवं क्षमताओं का पूरा प्रयोग किया जाता है।
2. विभिन्न विषयों को एक क्रम में प्रस्तुत किया जाता है। तथा शिक्षण कार्य में अधिक गुणवत्ता प्राप्त की जाती है।
3. शिक्षार्थियों की रूचियों एवं आवश्यकतानुसार शिक्षण कार्य कराया जाता है।
4. दल शिक्षण सहयोग की भावनाओं में वृद्धि करता है।
5. इसमें सहायक सामग्री का अधिकाधिक प्रयोग होता है।
6. इसमें व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुसार शिक्षण कराया जाता है। एवं विभिन्न समस्याओं का निराकरण भी प्रस्तुत किया जाता है।

18.7.3 दल शिक्षण में तकनीकी का प्रयोग

दल शिक्षण निम्न प्रकार का हो सकता है तथा इनमें निम्नांकित विधियों से तकनीकी का प्रयोग किया जा सकता है -

1. **एक ही कालांश में दल शिक्षण** - इस प्रकार के दल शिक्षण में शिक्षकों का एक दल एक प्रकरण के विभिन्न आयामों पर एक कालांश में चर्चा करते हैं। प्रत्येक शिक्षक अपनी विशिष्टता एवं ज्ञान के क्षेत्र के अनुसार प्रकरण के आयाम का चुनाव करते हैं। इस प्रक्रिया में दृश्य श्रव्य तकनीकी यथा मल्टी मीडिया, प्रोजैक्टर, कम्प्यूटर आदि के द्वारा भी एक प्रकरण के विभिन्न आयामों को स्पष्ट रूप से दर्शा कर छात्रों में प्रत्यय निर्माण कराया जा सकता है।

2. **योग्यता आधारित दल शिक्षण** - इस प्रकार के शिक्षण में दल के सदस्य विषय आधारित इकाईयों का चयन नहीं करते बल्कि अपनी योग्यताओं एवं विशेषताओं यथा व्याख्यान, प्रदर्शन अथवा निर्देशात्मक चर्चा आदि के आधार पर इकाईयों का चयन करते हैं। इस प्रकार के शिक्षण में तकनीकी का प्रयोग उस शिक्षक द्वारा किया जा सकता है जो तकनीक के प्रयोग में दक्षता रखता हो तथा विषय वस्तु को उस शिक्षक द्वारा प्रस्तुत किया जाता है जो व्याख्यान या प्रदर्शन विधि में दक्षता रखता हो। इस प्रकार की शिक्षण अधिगम परिस्थिति में तकनीकी का सर्वोत्तम प्रयोग किया जा सकता है।

दल शिक्षण में तकनीकी का प्रयोग निम्न रूप में किया जा सकता है -

1. **छात्र व शिक्षक के मध्य संपर्क बढ़ाने में** - सम्प्रेषण तकनीक के प्रयोग द्वारा विभिन्न शिक्षक आपस में विषय सम्बन्धी सामग्री व किसी समस्या पर आधारित विचारों का आदान प्रदान कर शिक्षण को और अधिक प्रभावी बनाने में एक दूसरे का सहयोग कर सकते हैं। छात्र भी इन बेहतर सम्प्रेषण तकनीकी के द्वारा आपस में एवं शिक्षकों के साथ बेहतर संपर्क स्थापित करने में सक्षम हो सकते हैं।
2. **अधिगम की सक्रिय प्रविधि प्रदान करने में** - आज सक्रिय रूप से अधिगम कराने वाली तकनीकों की पूरी श्रंखला मौजूद है। जिसके द्वारा शिक्षक कक्षा कक्ष में छात्रों को सक्रिय अधिगम प्रक्रिया में व्यस्त रख सकता है।
3. **तात्कालिक पुष्टि देने में** - कम्प्यूटर के द्वारा छात्रों की प्रगति को रिकार्ड व विश्लेषण करके उस पर तात्कालिक प्रतिपुष्टि दिया जाना भी संभव है।
4. **उच्च आकांक्षाओं के सम्प्रेषण में** - नवीन तकनीके आकांक्षाओं का सम्प्रेषण प्रभावपूर्ण व स्पष्ट तरीके से करने में सक्षम हैं। तकनीकी द्वारा वास्तविक जीवन आधारित समस्या, चुनौती पूर्ण परिप्रेक्ष्य आदि के सम्बन्ध में छात्रों को न केवल सूचनाऐं प्राप्त करने में सक्षम बनाती हैं बल्कि उनकी संज्ञानात्मक क्षमताओं का विकास भी करती हैं।
5. **विविध प्रतिभा एवं अधिगम शैली का ध्यान रखकर** - अधिगम के कई मार्ग होते हैं। तकनीकी छात्रों को उन मार्गों से सीखने में सक्षम बनाती है जिसको वह अपने लिये प्रभावशाली मानते हैं। जो छात्र अधिक प्रतिभावान होते हैं वह किसी कार्य को जल्दी सीख कर अधिक जटिल कार्य की ओर बड़ जाते हैं, तथा जो छात्र कमजोर होते हैं वह कार्यों को सीखने में अधिक समय लेते है तथा अध्यापक की भी सहायता लेते हैं। इस प्रकार तकनीकी छात्रों को उनकी स्वयं की अधिगम गति से सीखने में भी सहयता करती है।

अभ्यास प्रश्न 3

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो

1. **………………..** को समूह शिक्षण या टोली शिक्षण के नाम से भी जाना जाता है।

2. दल शिक्षण में दो या दो से अधिक शिक्षक शिक्षण कार्य करते हैं। जिससे उनकी ……………………… का पूरा प्रयोग किया जाता है।
3. कम्प्यूटर के द्वारा छात्रों की प्रगति को रिकार्ड व विश्लेषण करके उस पर ……………………….. दिया जाना भी संभव है।

18.8 सहयोगपूर्ण शिक्षण में तकनीकी का प्रयोग

सहयोगपूर्ण शिक्षण इस विचार पर आधारित है कि ज्ञान एक सामाजिक प्रत्यय है तथा इसे सामाजिक सहयोग द्वारा बेहतर रूप में प्राप्त किया जा सकता है। सहयोगपूर्ण गतिविधियाँ अधिकतर निम्न चार सिद्धान्तों पर आधारित होती हैं -

1. छात्र निर्देशन प्रक्रिया के केन्द्र में होता है।
2. शिक्षण में अन्तःक्रिया एवं क्रिया प्रमुख होती है।
3. समूह में कार्य करना अधिगम का एक प्रमुख एवं सशक्त माध्यम है।
4. वास्तविक समस्याओं को हल करने की संगठित पद्धति को अधिगम में सम्मिलित किया जाना चाहिये।

सहयोगपूर्ण अधिगम का प्रयोग लघु समूह एवं वृहद समूह परिस्थितियों में कराया जा सकता है। सहयोगपूर्ण शिक्षण में तकनीकी को एकीकृत करके उसे अधिक सक्रिय, प्रासंगिक, सामाजिक एवं छात्र केन्द्रित बनाया जा सकता है। सहयोगपूर्ण शिक्षण में तकनीकी का प्रयोग निम्नलिखित रूप में उपयोगी सिद्ध हो सकता है -

1. अपेक्षाकृत इसके कि किसी एक गतिविधि पर पूरी कक्षा मिलकर कार्य करे, तकनीकी आधारित शिक्षण वातावरण छात्रों को स्वतंत्र रूप से अपनी अधिगम गति के अनुसार कार्य करने का अवसर प्रदान करते हैं।
2. कम्प्यूटर साफ्टवेर विषय वस्तु को चित्र, ध्वनि व गति के साथ मिलाकर छात्रों को सीखने के विविध अवसर प्रदान करता है।
3. तकनीकी के प्रयोग द्वारा छात्र अपनी समझ एवं मानसिक क्षमताओं को व्यक्तिगत गतिविधियों के प्रयोग से बढ़ा सकते हैं तथा अन्य अधिगम कर्ताओं के साथ अपने विभिन्न विषयों से सम्बन्धित अपने विचारों को सम्प्रेषण के विभिन्न माध्यमों द्वारा साझा करके विषय वस्तु पर गहनतापूर्वक विचार कर सकते हैं।
4. तकनीकी के प्रयोग द्वारा सक्रिय अनुभवों को भी सहायता मिलती है तथा चिन्तन प्रक्रिया भी परिष्कृत होती है। सम्प्रेषण तकनीकों के प्रयोग द्वारा छात्र अपने विचारों आदि से अन्य छात्रों को अवगत कराकर प्रतिपुष्टि प्राप्त करते हैं। इस प्रकार वे एक श्रेष्ठ अधिगम के मार्ग पर अग्रसर हो पाते हैं।
5. तकनीकी के द्वारा वास्तविक जीवन के उपकरणों, प्रासंगिक अनुभवों व अर्थपूर्ण तथ्यों द्वारा कक्षाकक्ष को एक उद्देश्यपूर्ण वातावरण की संज्ञा प्राप्त होती है।

18.8.1 सहयोगपूर्ण शिक्षण में तकनीकी के प्रयोग में ध्यातव्य बिन्दु

सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम वातावरण में तकनीकी के प्रयोग के लिये एक शिक्षक निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है -

1. **कक्षा के लिये छोटे लक्ष्य बनाये जायें** - तकनीकी एक शक्तिशाली उपकरण होते हुए भी सभी समस्याओं के लिये रामबाण नहीं है। जब कोई नवीन तकनीक कक्षा में प्रयोग करवाई जाती है तो छात्रों से छोटे - छोटे कार्य करवाये जाने चाहिये। जैसे - जैसे छात्र उस तकनीक से परिचित होते जाते हैं उनके लिये उच्च स्तर के कार्य निर्धारित किये जा सकते हैं।
2. **एक वैकल्पिक योजना तैयार रखनी चाहिये** - तकनीकी के प्रयोग के समय एक वैकल्पिक योजना शिक्षक के पास सदैव तैयार होनी चाहिये। यदि बिजली आदि की समस्या अथव सी0डी0 न चलने आदि समस्या के कारण कोई तकनीकी असफल होती है तो वैकल्पिक योजना के अनुरूप कार्य किया जा सकता है।
3. **सहायता की निःसंकोच मांग करना** - यह आवश्यक नहीं है कि कोई शिक्षक जो अपने विषय में पारंगत हो उसे तकनीकी के प्रयोग में भी दख हो। ऐसी परिस्थिति में शिक्षक को दूसरे शिक्षक अथवा छात्र, जो उस तकनीक का प्रयोग करने में सक्षम हो, का सहयोग मांगने में संकोच नहीं करना चाहिये।
4. **छात्रों से एवं उनके तकनीकी के प्रयोग से सीखना चाहिये** - कई छात्र तकनीकी के प्रयोग में काफी अग्रणी होते हैं। ऐसे में उनसे असहज महसूस न करते हुए उन्हें तकनीकी में शिक्षण सहायक के रूप में प्रयुक्त करना चाहिये तथा उनसे उस तकनीक के प्रयोग के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करनी चाहिये।

तकनीकी आधारित सहयोगात्मक शिक्षण शिक्षकों, प्रबन्धकों एवं छात्रों से काफी मात्रा में भौतिक एवं संगठनात्मक पुनर्निर्माण की मांग करता है। तकनीकी के प्रयोग के सम्बन्ध में यह आवश्यक है कि शिक्षक द्वारा तकनीकी के प्रयोग के लक्ष्य निर्धारित किये जायें तथा उस तकनीक को उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये प्रयुक्त किया जाये। सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम में शिक्षकों को छात्रों की आवश्यकता, विषय वस्तु, समय आदि के आदि के आधार पर तकनीकी समृद्ध वातावरण में लचीलापन लाना चाहिये ताकि प्रत्येक छात्र अपनी गति एवं सुविधानुसार अधिगम कर सके।

अभ्यास प्रश्न 4

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो

1. जब कोई नवीन तकनीक कक्षा में प्रयोग करवाई जाती है तो छात्रों से **………………..** कार्य करवाये जाने चाहिये।
2. तकनीकी आधारित शिक्षण वातावरण छात्रों को स्वतंत्र रूप से अपनी **…………………** के अनुसार कार्य करने का अवसर प्रदान करते हैं।
3. समूह में कार्य करना **…………………** का एक प्रमुख एवं सशक्त माध्यम है।

4. तकनीकी आधारित सहयोगात्मक शिक्षण शिक्षकों, प्रबन्धकों एवं छात्रों से काफी मात्रा में .... पुनर्निर्माण की मांग करता है।

18.9 पूछताछ में तकनीकी का प्रयोग

सूचनाओं को एकत्रित करना एक बुनियादी मानव गतिविधि है। इन प्राप्त सूचनाओं का प्रयोग उसके द्वारा समस्याओं को सुलझाने के लिये, निर्णय लेने की प्रक्रिया में, और एक दूसरे को समझने के लिये किया जाता है। पूछताछ इन सूचनाओं को प्राप्त करने का एक प्रमुख माध्यम है और इसके बिना पारस्परिक संचार विफल रहता है। शिक्षण में प्रश्नों का प्रयोग अथवा पूछताछ का प्रयोग निम्न कारणों के लिये किया जाता है -

1. **सूचनाओं को प्राप्त करने के लिये** - किसी भी प्रश्न का मौलिक उद्देश्य सूचना प्राप्त करना होता है। शिक्षक भी छात्रों से विभिन्न प्रकार की सूचना जैसे प्रकरण का पूर्व ज्ञान, उनकी रूचियां, आवश्यकताऐं, तथा कराये गये शिक्षण कार्य के मूल्यांकन आदि के सम्बन्ध में सूचना प्राप्त करने के लिये प्रश्न पूछता है।
2. **सम्प्रेषण प्रक्रिया को नियंत्रित करने के लिये** - अगर कक्षा में किसी विषय पर चर्चा हो रही है तो शिक्षक उसे प्रश्नों के द्वारा नियंत्रित करता है। शिक्षक द्वारा पूछे जाने वाले ये प्रश्न शिक्षण उद्देश्यों के अनुरूप होते हैं।
3. **किसी बिन्दु को स्पष्ट करने के लिये** - अगर शिक्षक द्वारा कक्षा में कुछ बताया गया है और वह यह सुनिश्चित करना चाहता है कि छात्रों द्वारा उसका अर्थ ग्रहण किया है अथवा नहीं तो वह इसके लिये प्रश्न पूछता है। इन प्रश्नों के प्राप्त उत्तरों के अनुरूप ही वह यह निश्चित करता है कि किसी शिक्षण बिन्दु को और अधिक स्पष्ट किया जाना है अथवा अगले शिक्षण बिन्दु का अध्यापन कराया जाना है।
4. **अधिगम में समस्या के कारण को जानने के लिये** - अगर छात्र शिक्षक की योजना के अनुरूप प्रगति नहीं कर पा रहे हैं तो शिक्षक इसकी मूल समस्या एवं उसके कारण को खोजने के लिये भी प्रश्न पूछता है।
5. **मूल्यांकन के लिये** - छात्रों द्वारा प्राप्त अधिगम व उसके परिणामों के मूल्यांकन हेतु भी शिक्षक द्वारा प्रश्नों का प्रयोग किया जाता है।
6. **विचारों को और अधिक प्रोत्साहन देने के लिये** - छात्रों में मस्तिष्क उद्वेलन तथा विचारों के निर्माण को प्रोत्साहित करने के लिये तथा सकारात्मक दिशा प्रदान करने के लिये भी शिक्षक द्वारा प्रश्नों का प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षक किसी भी अध्यापन कला को अपनाये उसके द्वारा प्रश्नों का पूछा जाना शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की एक महत्वपूर्ण प्रविधि होती है। तकनीकी आधारित वातावरण में शिक्षक द्वारा पूरी कक्षा से प्रत्यय प्रश्न पूछे जाने की बजाय छात्रों को इलैक्ट्रानिकली एक दूसरे से प्रश्न पूछे जाने को प्रोत्साहन दिया जाता है। शिक्षक द्वारा कक्षा में छात्रों की भूमिका निर्धारित की जाती है। कुछ छात्रों को इन्टरनेट पर विषय वस्तु पर आधारित प्रश्न सर्च करके उन प्रश्नों को पूछे जाने का कार्य सौपा

जाता है तो कुछ छात्र उन पूछे गये प्रश्नों का उत्तर स्वयं अथवा इन्टरनेट की सहायता से खोज कर देते हैं। इस प्रकार से ज्ञान निर्माण परिवेश में प्रश्नोत्तर प्रविधि को तकनीकी के आधार पर संचालित किया जा सकता है।

18.9.1 प्रश्नोत्तर प्रविधि में तकनीक का प्रयोग

प्रश्नोत्तर प्रविधि को एक शिक्षक के द्वारा तकनीक के रूप में निम्न प्रकार से प्रयोग में लाया जा सकता है -

1. छात्रों को विषय वस्तु के उद्देश्यों से परिचित कराया जाता है।
2. छात्रों से विषय वस्तु से सम्बन्धित प्रश्नों का संग्रहण इन्टरनेट पर खोज द्वारा करने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है।
3. बारी - बारी से सभी छात्रों को अपना प्रश्न पूछने के लिये कहा जाता है।
4. अन्य छात्र प्रश्न का उत्तर खोज कर बताते हैं।

इस प्रकार तकनीकी के प्रयोग द्वारा शिक्षक द्वारा प्रश्न पूछे जाने को एक वैकल्पिक और ज्ञान निर्माण करने की एक प्रभावी प्रविधि के रूप में विकसित किया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न 5

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो

1. पूछताछ .... को प्राप्त करने का एक प्रमुख माध्यम है
2. अगर कक्षा में किसी विषय पर चर्चा हो रही है तो शिक्षक उसे ....नियंत्रित करता है।
3. छात्रों में ....के निर्माण को प्रोत्साहित करने के लिये तथा सकारात्मक दिशा प्रदान करने के लिये भी शिक्षक द्वारा प्रश्नों का प्रयोग किया जाता है।

18.10 प्रदर्शन में तकनीकी का प्रयोग

शिक्षण में प्रदर्शन का प्रयोग व्याख्यान में द्रष्टांत देने तथा जांच आधारित शिक्षा के अवसर प्रदान करने के लिये किया जाता है। शिक्षक जब किसी पढ़ाये जाने वाले प्रकरण पर प्रदर्शन विधि का प्रयोग करता है तो वह उस प्रदर्शन द्वारा कार्य को छोटे - छोटे पदों में करके दिखाता है ताकि छात्र भी एस कार्य को दोहरा सकें। प्रदर्शन का अंतिम लक्ष्य सिर्फ कार्य को दोहराने तक सीमित नहीं होता है बल्कि समस्या समाधान के लिये अप्रत्याशित बाधा को कैसे पहचानें व कैसे दूर किया जाये, यह सिखाना होता है। प्रदर्शन किये जाने के पश्चात शिक्षक की भूमिका छात्रों को प्रदर्शन में सहायता एवं मार्गदर्शन करने की होती है।

प्रदर्शन द्वारा शिक्षण में तकनीकी के प्रयोग द्वारा छात्रों द्वारा प्रदर्शन करने के लिये एक आभासी वातावरण तैयार किया जा सकता है। इस आभासी वातावरण के द्वारा प्रदर्शन विधि की प्रभावशीलता को कई गुना बढ़ाया जा सकता है।

18.10.1 प्रदर्शन विधि में तकनीक के प्रयोग में ध्यातव्य बिन्दु

कक्षा कक्ष में प्रदर्शन विधि में विभिन्न तकनीकों का प्रयोग करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिये -

1. छात्रों को प्रदर्शन करके दिखाने से पूर्व प्रदर्शन का उद्देश्य, उसकी भूमिका आदि के बारे में विस्तार पूर्वक बताया जाना चाहिये।
2. प्रदर्शन में विषय सामग्री की उपयुक्त मात्रा प्रयोग में लानी चाहिये। यह न बहुत अधिक हो और न ही बहुत कम।
3. प्रदर्शन के लिये विभिन्न तकनीक यथा कम्प्यूटर, मल्टीमीडिया प्रोजैक्टर, आनलाइन पद्धति आदि का प्रयोग कर उसे प्रभावी बनाया जा सकता है।
4. प्रदर्शन के दौरान जो भी मुख्य बिन्दु हों उन्हें छात्रों को नोट करने के लिये प्रोत्साहित करें व स्वयं भी उन्हें श्यामपट्ट पर लिखें।
5. जिस भी तकनीक के प्रयोग द्वारा प्रदर्शन कराया जाना हो, शिक्षक को उसका एक बार अभ्यास जरूर कराया जाना चाहिये।
6. तकनीकी के प्रयोग द्वारा प्रदर्शन कराते समय छात्रों की अधिकाधिक इन्द्रियों के प्रयोग को सुनिश्चित किया जाना चाहिये।

18.10.2 तकनीकी के प्रयोग की योजना में ध्यातव्य बिन्दु

प्रदर्शन विधि में तकनीकी के प्रयोग की योजना को बनाते समय निम्न प्रमुख बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिये -

1. **श्रोताओं का आंकलन करना** - अच्छे प्रदर्शन के लिये आवश्यक है कि शिक्षक अपने श्रोताओं का आंकलन यथा उनकी रूचियां, आवश्यकताऐं, पूर्वज्ञान, अधिगम शैलियाँआदि करना चाहिये।
2. **उद्देश्यों का निर्धारण** - प्रदर्शन किन उद्देश्यों को लेकर किया जा रहा है, विषय वस्तु के कौन से मुख्य बिन्दुओं पर अधिक बल दिया जायेगा, आदि के सम्बन्ध में शिक्षक को योजना बनानी चाहिये।
3. **प्रदर्शन की तैयारी करना -** यदि प्रदर्शन कम्प्यूटर द्वारा बड़ी स्क्रीन द्वारा दिखाया जा रहा है तो उसके लिये पर्याप्त तैयारी की जानी चाहिये यथा उपकरण आदि की व्यवस्था, छात्रों के बैठने की व्यवस्था आदि के बारे में भी ध्यान देना आवश्यक है।
4. **प्रदर्शन का क्रियान्वयन** - प्रदर्शन कितनी देर तक चलेगा, उसमें कहां कहां ठहराव होंगे, कब व कितना प्रश्नोत्तर का अवसर दिया जायेगा आदि के बारे में भी शिक्षक को पूर्व में ही योजना बना लेनी चाहिये।
5. **तकनीकी प्रयोग में अभ्यस्त छात्रों को प्रदर्शन में शामिल किया जाना** - कक्षा में कुछ छात्र जो कम्प्यूटर अथ्वा प्रयोग की जाने वाली तकनीक के प्रयोग में अभ्यस्त हों, उन्हें प्रदर्शन में शामिल किया जाना चाहिये।

6. **लिखित सामग्री उपलब्ध कराना** - छात्रों को मुख्य बिन्दु सम्बन्धी सामग्री लिखित रूप में दिये जाने की व्यवस्था भी शिक्षक द्वारा सुनिश्चित की जानी चाहिये।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि तकनीकी आधारित प्रदर्शन प्रत्यय निर्माण एवं समस्या समाधान हेतु शिक्षण का एक प्रभावी माध्यम है। एक अच्छा प्रदर्शन छात्रों में ध्यान केन्द्रित करने, प्रभावी अधिगम एवं अच्छी प्रगति को बढ़ावा देता है।

अभ्यास प्रश्न 6

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो

1. शिक्षण में **…………………** का प्रयोग व्याख्यान में द्रष्टांत देने तथा जांच आधारित शिक्षा के अवसर प्रदान करने के लिये किया जाता है।
2. प्रदर्शन द्वारा शिक्षण में तकनीकी के प्रयोग द्वारा छात्रों द्वारा प्रदर्शन करने के लिये एक **………………..** तैयार किया जा सकता है।
3. तकनीकी के प्रयोग द्वारा प्रदर्शन कराते समय छात्रों की **……………………** के प्रयोग को सुनिश्चित किया जाना चाहिये।

18.11 प्रदर्शनी में तकनीकी का प्रयोग

शिक्षा के क्षेत्र में प्रदर्शनी से तात्पर्य उन प्रोजैक्ट, प्रदर्शन अथवा उत्पादों से है जिनके द्वारा छात्र यह प्रदर्शित करते हैं कि क्या सीखा है। एक अच्छी प्रदर्शनी अपने आप में अधिगम अनुभव व शैक्षिक मूल्यांकन का साधन दोनों होती है।

18.11.1 प्रदर्शनी विधि में प्रयुक्त प्रमुख तकनीकें

पारंपरिक कागज, परीक्षण एवं प्रश्नावली के अलावा एक प्रदर्शनी आधुनिक युग में निम्न विस्तृत विविधता लिये होती है -

1. मौखिक प्रस्तुतियां एवं भाषण आदि।
2. वीडियो, वृत्तचित्र, मल्टीमीडिया प्रस्तुतियां, आडियो रिकार्डिंग एवं पाडकास्ट आदि।
3. कला, चित्र, संगीत, नाटक, नाट्य या प्रदर्शनी का निर्माण।
4. वेबसाइट या ब्लाग सहित प्रिंट या आनलाइन प्रकाशन।
5. प्रिंट अथवा डिजिटल फोटोग्राफी की गैलरी।
6. भैतिक उत्पाद यथा माडल, मूर्तियां, संगीत, वाद्ययंत्र अथवा रोबोट आदि।

18.11.2 प्रदर्शनी के स्वरूप

आमतौर पर प्रदर्शनी के निम्न दो प्राथमिक स्वरूप होते हैं -

1. बहुमुखी दत्त कार्य - यह कार्य छात्रों को एक शैक्षिक कार्यक्रम के समापन पर शैक्षिक और बौद्धिक अनुभव की पराकाष्ठा प्रदान करते हैं।

2. प्रौजेक्ट, प्रदर्शन भौतिक उत्पाद आदि कार्य जिन्हें शिक्षक निर्माणात्मक मूल्यांकन के लिये प्रयोग करता है। ऐसे कार्यों द्वारा कोई शिक्षक एक निर्देशात्मक अवधि के समापन पर छात्रों द्वारा किस हद तक कौशल अधिग्रहण अथवा शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त की गई है, आदि के बारे में जानकारी प्राप्त कर पाता है।

प्रदर्शनी का आयोजन छात्रों में चिन्तन को बढ़ावा व चुनौतीपूर्ण समस्याओं को हल करने के लिये प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से किया जाता है। प्रदर्शनी के लिये छात्र तकनीकी की सहायता लेकर उसे और अधिक प्रभावी बना सकते हैं। जिसके द्वारा छात्रों में मौखिक सम्प्रेषण, आनलाइन साक्षरता, योजना बनाने, समूह कार्य करने, लक्ष्य निर्धारित करने आदि में सहायता मिलती है।

अभ्यास प्रश्न 7

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो

1. एक अच्छी .... अपने आप में अधिगम अनुभव व शैक्षिक मूल्यांकन का साधन दोनों होती है।
2. .... छात्रों को एक शैक्षिक कार्यक्रम के समापन पर शैक्षिक और बौद्धिक अनुभव की पराकाष्ठा प्रदान करते हैं।

18.12 सारांश

वृहद समूह का तात्पर्य किसी कक्षा कक्ष में उपस्थित छात्रों के ऐसे समूह से है जो आकार में अपेक्षाकृत बड़ा हो। वृहद समूह में छात्रों की संख्या 30 से अधिक हो सकती है। हर वो वस्तु जो हमें हमारे दैनिक जीवन के किसी भी कार्य को करने में सहजता एवं सुगमता प्रदान करती है तथा जिसकी सहायता से हम अपने किसी कार्य को अपेक्षाकृत अधिक आसानी व सहजता से कर पाते है, तकनीकी अथवा प्रौद्योगिकी कहलाती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रौद्योगिकी एक प्रत्यय है, जिसका सम्बन्ध प्रत्येक उस यंत्र अथवा यांत्रिक प्रणाली से है जो किसी भी कार्य को सरल एवं सहज बनाते हुए अपेक्षाकृत कम समय एवं कम परिश्रम में ही पूर्ण करने में सक्षम हो अथवा हमें सक्षम बनाता हो। शिक्षा में प्रौद्योगिकी का प्रयोग भी इससे पृथक नहीं है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में किसी भी प्रकार के ऐसे यंत्र अथवा प्रणाली का उपयोग जो शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सहज, रोचक एवं मनोरंजक बनाती हैं, तथा जिनके प्रयोग के द्वारा प्राप्त अधिगम को आसान तथा अधिक लम्बे समय तक स्मरण रहता है, शिक्षा प्रौद्योगिकी कहलाती है। वर्तमान में कक्षा कक्ष वातावरण को अधिक उत्साहपूर्ण एवं रोचक बनाने व छात्रों में सीखने की प्रक्रिया को अधिक प्रभावी बनाने के लिये तकनीकी को विभिन्न स्तरों एवं प्रकारों से कक्षा कक्ष में संगठित किया जाता है।

वृहद समूह शिक्षण में तकनीकी के प्रयोग हेतु शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की सम्पूर्ण प्रक्रिया की रूपरेखा पूर्व में ही तैयार की जाती है। विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के अनुसार उपयुक्त तकनीक का चुनाव कर सम्पूर्ण क्रिया को क्रमबद्ध रूप में संचालित किया जाता है। शिक्षक की अनुपस्थिति में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को किस तकनीकी के प्रयोग द्वारा किस प्रकार संचालित किया जायेगा, इसका निर्धारण भी पूर्व में किया

जाता है एवं एक रूपरेखा का निर्माण किया जाता है। छात्रों में तकनीकी के प्रयोग एवं उस पर की जाने वाली चर्चा के दौरान शिक्षक को छात्रों के समूह में एक अवलोकनकर्ता के रूप में जुड़ना चाहिये। ताकि उनका समुचित रूप में प्रोत्साहन एवं मूल्यांकन किया जा सके।

छात्रों की संख्या को ध्यान में रखते हुए एक वृहदसमूह में ओवर हैड प्रोजेक्टर, इलैक्ट्रानिक डिस्प्ले बोर्ड, कम्प्यूटर व इन्टरनेट, वीडियो कान्फ्रेंसिंग एवं टेली कान्फ्रेंसिंग, दूरदर्शन अथवा रेडियो, टेप रिकार्डर, अभिक्रमित अनुदेशन एवं मोबाईल (स्मार्ट फोन) आदि तकनीकों को शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में एकीकृत करके अधिगम को और अधिक प्रभावी वनाया जा सकता है -

दल शिक्षण को समूह शिक्षण या टोली शिक्षण के नाम से भी जाना जाता है। दो या दो से अधिक समान अथवा भिन्न विषयों के अध्यापकों के द्वारा शिक्षार्थियों की आवश्यकतानुसार शिक्षण कार्य कराना ही दल शिक्षण कहलाता है। दल शिक्षण में तकनीकी का प्रयोग छात्र व शिक्षक के मध्य संपर्क बढ़ाने में, अधिगम की सक्रिय प्रविधि प्रदान करने में, तात्कालिक पुष्टि देने में एवं उच्च आकांक्षाओं के सम्प्रेषण आदि रूप में किया जा सकता है।

सहयोगपूर्ण शिक्षण इस विचार पर आधारित है कि ज्ञान एक सामाजिक प्रत्यय है तथा इसे सामाजिक सहयोग द्वारा बेहतर रूप में प्राप्त किया जा सकता है। सहयोगपूर्ण अधिगम का प्रयोग लघु समूह एवं वृहद समूह परिस्थितियों में कराया जा सकता है। सहयोगपूर्ण शिक्षण में तकनीकी को एकीकृत करके उसे अधिक सक्रिय, प्रासंगिक, सामाजिक एवं छात्र केन्द्रित बनाया जा सकता है। तकनीकी आधारित सहयोगात्मक शिक्षण शिक्षकों, प्रबन्धकों एवं छात्रों से काफी मात्रा में भौतिक एवं संगठनात्मक पुनर्निर्माण की मांग करता है। तकनीकी के प्रयोग के सम्बन्ध में यह आवश्यक है कि शिक्षक द्वारा तकनीकी के प्रयोग के लक्ष्य निर्धारित किये जायें तथा उस तकनीक को उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये प्रयुक्त किया जाये। सहयोगपूर्ण शिक्षण अधिगम में शिक्षकों को छात्रों की आवश्यकता, विषय वस्तु, समय आदि के आदि के आधार पर तकनीकी समृद्ध वातावरण में लचीलापन लाना चाहिये ताकि प्रत्येक छात्र अपनी गति एवं सुविधानुसार अधिगम कर सके।

सूचनाओं को एकत्रित करना एक बुनियादी मानव गतिविधि है। इन प्राप्त सूचनाओं का प्रयोग उसके द्वारा समस्याओं को सुलझाने के लिये, निर्णय लेने की प्रक्रिया में, और एक दूसरे को समझने के लिये किया जाता है। पूछताछ इन सूचनाओं को प्राप्त करने का एक प्रमुख माध्यम है और इसके बिना पारस्परिक संचार विफल रहता है। शिक्षक किसी भी अध्यापन कला को अपनाये उसके द्वारा प्रश्नों का पूछा जाना शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की एक महत्वपूर्ण प्रविधि होती है। तकनीकी आधारित वातावरण में शिक्षक द्वारा पूरी कक्षा से प्रत्यय प्रश्न पूछे जाने की बजाय छात्रों को इलैक्ट्रानिकली एक दूसरे से प्रश्न पूछे जाने को प्रोत्साहन दिया जाता है। शिक्षक द्वारा कक्षा में छात्रों की भूमिका निर्धारित की जाती है। कुछ छात्रों को इन्टरनेट पर विषय वस्तु पर आधारित प्रश्न सर्च करके उन प्रश्नों को पूछे जाने का कार्य सौपा जाता है तो कुछ छात्र उन पूछे गये प्रश्नों का उत्तर स्वयं अथवा इन्टरनेट की सहायता से खोज कर देते हैं। इस प्रकार से ज्ञान निर्माण परिवेश में प्रश्नोत्तर प्रविधि को तकनीकी के आधार पर संचालित किया जा सकता है।

शिक्षण में प्रदर्शन का प्रयोग व्याख्यान में दृष्टान्त देने तथा जांच आधारित शिक्षा के अवसर प्रदान करने के लिये किया जाता है। शिक्षक जब किसी पढ़ाये जाने वाले प्रकरण पर प्रदर्शन विधि का प्रयोग करता है तो वह उस प्रदर्शन द्वारा कार्य को छोटे - छोटे पदों में करके दिखाता है ताकि छात्र भी एस कार्य को दोहरा सकें। प्रदर्शन का अंतिम लक्ष्य सिर्फ कार्य को दोहराने तक सीमित नहीं होता है बल्कि समस्या समाधान के लिये अप्रत्याशित बाधा को कैसे पहचानें व कैसे दूर किया जाये, यह सिखाना होता है। प्रदर्शन किये जाने के पश्चात शिक्षक की भूमिका छात्रों को प्रदर्शन में सहायता एवं मार्गदर्शन करने की होती है।

प्रदर्शन द्वारा शिक्षण में तकनीकी के प्रयोग द्वारा छात्रों द्वारा प्रदर्शन करने के लिये एक आभासी वातावरण तैयार किया जा सकता है। इस आभासी वातावरण के द्वारा प्रदर्शन विधि की प्रभावशीलता को कई गुना बढ़ाया जा सकता है। तकनीकी आधारित प्रदर्शन प्रत्यय निर्माण एवं समस्या समाधान हेतु शिक्षण का एक प्रभावी माध्यम है। एक अच्छा प्रदर्शन छात्रों में ध्यान केन्द्रित करने, प्रभावी अधिगम एवं अच्छी प्रगति को बढ़ावा देता है।

शिक्षा के क्षेत्र में प्रदर्शनी से तात्पर्य उन प्रोजैक्ट, प्रदर्शनी अथवा उत्पादों से है जिनके द्वारा छात्र यह प्रदर्शित करते हैं कि क्या सीखा है। एक अच्छी प्रदर्शनी अपने आप में अधिगम अनुभव व शैक्षिक मूल्यांकन का साधन दोनों होती है। प्रदर्शनी का आयोजन छात्रों में चिन्तन को बढ़ावा व चुनौतीपूर्ण समस्याओं को हल करने के लिये प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से किया जाता है। प्रदर्शनी के लिये छात्र तकनीकी की सहायता लेकर उसे और अधिक प्रभावी बना सकते हैं। जिसके द्वारा छात्रों में मौखिक सम्प्रेषण, आनलाइन साक्षरता, योजना बनाने, समूह कार्य करने, लक्ष्य निर्धारित करने आदि में सहायता मिलती है।

18.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो

1. 30 से अधिक
2. प्रत्यक्ष और प्राथमिक अनुभव
3. स्वतः क्रिया

अभ्यास प्रश्न 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो

1. पूर्व में ही
2. पारंपरिक श्यामपटट
3. सूचनाओं

अभ्यास प्रश्न 3

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो

1. दल शिक्षण
2. विशेषज्ञता एवं क्षमताओं
3. तात्कालिक प्रतिपुष्टि

अभ्यास प्रश्न 4

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो

1. छोटे - छोटे
2. अधिगम गति
3. अधिगम
4. भौतिक एवं संगठनात्मक

अभ्यास प्रश्न 5

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो

1. सूचनाओं
2. प्रश्नों के द्वारा
3. मस्तिष्क उद्वेलन तथा विचारां

अभ्यास प्रश्न 6

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो

1. प्रदर्शन
2. आभासी वातावरण
3. अधिकाधिक इन्द्रियों

अभ्यास प्रश्न 7

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो

1. प्रदर्शनी
2. बहुमुखी दत्त कार्य

18.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. वृहद समूह एवं तकनीकी का अर्थ स्पष्ट करते हुए वृहद समूह शिक्षण में तकनीकी के प्रयोग की मान्यताऐं, उनके प्रबंधन एवं वृहद समूह में प्रयोग की जा सकने वाली प्रमुख तकनीकों की चर्चा कीजिये?
2. दल शिक्षण के दौरान ध्यातव्य बिन्दु, उद्देश्य एवं दल शिक्षण में तकनीकी की चर्चा कीजिये?

3. सहयोगपूर्ण शिक्षण में तकनीकी का प्रयोग एवं ध्यान देने योग्य बातों की चर्चा कीजिये?
4. पूछताछ विधि एवं प्रदर्शन एवं में तकनीकी का प्रयोग से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिये?
5. प्रदर्शनी में तकनीकी का प्रयोग, उसकी प्रमुख तकनीकें एवं प्रदर्शनी के स्वरूप को स्पष्ट कीजिये?

18.15 संदर्भ ग्रंथ सूची

- बैरन, राबर्ट ए.; बायर्न, डौन. आर. (2004), सामाजिक मनोविज्ञान, दिल्लीर: पीयर्सन एजूकेशन प्रा. लि.।
- श्रीवास्तव, डा. डी. एन., समाज मनोविज्ञान।
- पाठक,पी.डी.(2006),शिक्षा मनोविज्ञान, आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।
- माथुर, डा. एस.एस. (1999), शिक्षा मनोविज्ञान, आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।
- पाठक, डा. आर.पी.(2007), उच्च शिक्षा मनोविज्ञान,नई दिल्लीः राधा पब्लिकेशन्स।
- श्रीवास्तव, डा. रामजी, आलम, डा. काजी गौस (1998), आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान, मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली।
- Solso, R.L. (2001), Cognitive Psychology, Bangalore; Pearson Education.
- Pestonjee, D.M. (2003), Third Handbook of Psychological and Social Instruments (2 vol.) Concept Publishing Company.
- Myers, D. (2011), Social Psychology (English) 10th Edition: McGraw Hill Education (India) Private Limited.

इकाई – 19

दूरस्थ विधि के द्वारा शिक्षण

Teaching through distance mode

शिक्षा में विभिन्न माध्यमों जैसे- रेडियो, टेलीविजन, वेब-कांफ्रेंसिंग, डिजिटल अवयव, ईबुक्स और ऑनलाइन पाठ्यक्रम के उपयोग हेतु सामग्री तैयार करना

Preparing material for use of various media in education such as radio, television, web-conferencing, digital contents, e-books and online courses

इकाई की रुपरेखा

19.1 प्रस्तावना

19.2 उद्देश्य

19.3 दूरस्थ शिक्षण विधि : संप्रत्यय

19.4 शिक्षा में विभिन्न माध्यमों के उपयोग हेतु सामग्री तैयार करना

19.5 रेडियो के उपयोग हेतु सामग्री तैयार करना

19.6 टेलीविजन के उपयोग हेतु सामग्री तैयार करना

19.7 वेब-कांफ्रेंसिंग, डिजिटल अवयव, ई-बुक्स और ऑनलाइन पाठ्यक्रम के उपयोग हेतु सामग्री तैयार करना

19.7 सारांश

19.8 शब्दावाली

19.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

19.10 निबंधात्मक प्रश्न

19.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

19.1 प्रस्तावना

शिक्षा मानव के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त चलने वाली सतत और उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है । व्यवस्था की दृष्टि से शिक्षा के तीन रूप औपचारिक, निरौपचारिक और अनौपचारिक हैं, जिसमें औपचारिक शिक्षा की योजना बहुत ही जटिल है। फलस्वरूप कुछ लोग इस औपचारिक शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। इसलिए औपचारिक शिक्षा से वंचित वर्ग के लिए शिक्षा की लचीली और प्रभावी योजना निरौपचारिक शिक्षा के रूप में उपलब्ध करायी जा रही है। भारत में यह शिक्षा दो रूपों में चलायी जा रही है – शिक्षा गारन्टी योजना और दूरस्थ शिक्षा। प्रस्तुत इकाई में आप दूरस्थ विधि के द्वारा शिक्षण – शिक्षा में विभिन्न माध्यमों जैसे - रेडियो, टेलीविजन, वेब-कांफ्रेंसिंग, डिजिटल अवयव, ईबुक्स और ऑनलाइन पाठ्यक्रमों के उपयोग हेतु सामग्री तैयार करने के सन्दर्भ में विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

19.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

- दूरस्थ शिक्षा का अर्थ समझ सकेंगे और उसे परिभाषित कर सकेंगे।
- दूरस्थ विधि के द्वारा शिक्षण की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- शिक्षा में विभिन्न माध्यमों के उपयोग को बता सकेंगे।
- ऑनलाइन पाठ्यक्रमों के उपयोग हेतु सामग्री तैयार करने की प्रक्रिया को समझ सकेंगे।
- रेडियो, टी. वी. और इंटरनेट शिक्षा को कैसे प्रभवित करते हैं के विषय में बता सकेंगे।
- शिक्षा में डिजिटल अवयवों जैसे – ई- बुक्स की भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे।

19.3 दूरस्थ शिक्षण विधि : संप्रत्यय

शिक्षा मानव के विकास का मूलाधार है। किसी भी राष्ट्र का विकास शिक्षा के अभाव में असम्भव है, चाहे वह राष्ट्र कितने ही प्राकृतिक संसाधनों से आच्छादित क्यों न हो। आज के बदलते परिवेश में परिवर्तन की धारा ने शिक्षा को विशेष रूप से प्रभावित किया है। जहाँ एक ओर मानवीय सम्बन्धों में बदलाव आया है, वहीं तकनीक के बढ़ते चरण ने शिक्षा की दशा व दिशा दोनों में ही परिवर्तित किये हैं। विद्यार्थियों की वर्तमान पीढ़ी में कुछ अभूतपूर्व परिवर्तन देखे जा सकते हैं। वे विद्यालयी शिक्षा को तो सहर्ष स्वीकार करते हैं, परन्तु इसके बन्धनों से परे शिक्षा की अपेक्षा भी करने लगे हैं। इस परिस्थिति में दूरस्थ शिक्षा द्वारा विकास की सम्भावनाएँ तलाशी जा रही हैं। शिक्षा के विविध स्तरों यथा-प्राथमिक, माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा में विस्तार, उत्कृष्टता तथा समावेशन के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए मुक्त और दूरस्थ शिक्षा एवं मुक्त शैक्षिक संसाधनों का विकास अत्यंत आवश्यक है। दूरस्थ शिक्षा की स्थिति पर दृष्टिपात करने पर यह तथ्य सामने आता है कि सम्पूर्ण विश्व में अधिकांश विकासशील देशों ने मुक्त विश्वविद्यालयों की आवश्यकता को महसूस किया है। फ्रांस और ब्रिटेन जैसे विकसित देशों ने मुक्त और दूरस्थ शिक्षा का मार्ग प्रशस्त किया है। ऑनलाइन शिक्षा के मामले में संयुक्त राज्य अमेरिका निर्विवाद रूप से विश्व का नेतृत्व कर रहा है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में शिक्षा को व्यापक स्तर पर लाने हेतु दूरस्थ शिक्षा अग्रणी भूमिका निभा सकती है, क्योंकि बिखरी हुई जनसंख्या का वृहत क्षेत्र शिक्षा से अछूता है। जन-जन तक ज्ञान का प्रकाश पहुँचाने के लिए प्रौद्योगिकी की अग्रणी भूमिका है। दूरस्थ शिक्षा के क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली सूचना सम्प्रेषण तकनीक के अनेक माध्यम हैं जैसे - रेडियो प्रसारण, दूरदर्शन, ई-बुक्स, कम्प्यूटर नेटवर्क, फैक्स, टेलीकान्फ्रेन्सिग और ऑनलाइन पाठ्यक्रम आदि।

भारत में दूरस्थ शिक्षा का वर्तमान संप्रत्यय पूर्व की गृह शिक्षा, प्राइवेट अध्ययन, बाह्य अध्ययन स्वतंत्र अध्ययन आदि की अवधारणा के समान है जो कि भारत में यह 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में प्रचलित था। ऐसे विद्यार्थी जो औपचारिक शिक्षा के पाठ्यक्रम को किसी कारणवश सफलतापूर्वक पूर्ण नहीं कर पाते थे, वे स्वतंत्रता पूर्वक अध्ययन करते थे और नियमित शैक्षिक संस्थान द्वारा आयोजित की जाने वाली परीक्षाओं में सम्मिलित होते थे, जिन्हें प्राइवेट विद्यार्थी की संज्ञा दी जाती थी। इस प्रणाली में नियमित

शैक्षिक संस्थानों की भांति संसाधनों की कोई विशेष आवश्यकता नहीं होती है। इसमें अध्यापन तथा शिक्षण की विधियों और प्रविधियों के साथ ही समय का निर्धारण विद्यार्थियों के अनुकूल लचीला रखा जाता है।

सामान्यतः दूरस्थ शिक्षा से तात्पर्य दुर्गम स्थानों पर रहने वाले उन व्यक्तियों की शिक्षा से लिया जाता है, जो किसी कारण से किसी स्तर की औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाए या नहीं कर पा रहे हैं, परन्तु दूरस्थ शिक्षा का अर्थ इससे पूर्णतः भिन्न है। वास्तव में दूरस्थ शिक्षा निरौपचारिक शिक्षा की वह प्रणाली है जिसके द्वारा शिक्षक और शिक्षण संस्थाओं से दूर बैठे उन विद्यार्थियों के लिए शिक्षा की व्यवस्था की जाती है जो किसी कारण से किसी स्तर की औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाए या नहीं कर पा रहे हैं, लेकिन उनमें इसको प्राप्त करने की इच्छाशक्ति, रूचि और साहस है। क्योंकि इस प्रणाली में शिक्षक अपने से दूर बैठे विद्यार्थियों की सिखाने में सहायता करते हैं, इसलिए इसे दूरस्थ शिक्षा अथवा दूरवर्ती शिक्षा (Distance Education) कहा जाता है। कुछ विद्वान इसे दूर अध्ययन (Distance Learning), गृह अध्ययन (Home Study), परिसर बाहर अध्ययन (Off Campus Study) भी कहते हैं। फ्रांस, अमेरिका और जर्मनी में दूरस्थ शिक्षा को क्रमशः टेलीएसाइनमेंट, स्वतंत्र अध्ययन और फर्ननटेर्रीचिट के नाम से जाना जाता है। अतः दूरस्थ शिक्षा औपचारिक, अनौपचारिक और निरौपचारिक शिक्षा का सम्मिलित रूप है। **होलमबर्ग** के अनुसार-"दूरस्थ शिक्षा में खुले अधिगम को सम्प्रेषण के माध्यमों और शिक्षा तकनीकी के द्वारा सम्पादित किया जाता है। विभिन्न सम्प्रेषण माध्यमों के द्वारा विद्यार्थियों के लिए अधिगम सामग्री भेजी जाती है और उसका आबंटन उनके द्वारा उपलब्ध किये गए स्थान तक प्रेषित की जाती है।" दूरस्थ शिक्षा अंशकालिक होती है जिसमें विद्यार्थी घर बैठे ही ज्ञानार्जन करता रहता है। उसकी रूचि और आवश्यकता का विशेष ध्यान रखा जाता है। **इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के एक बुलेटिन** के अनुसार – "दूरस्थ शिक्षा वह शिक्षा है जिसमें शिक्षक अथवा शैक्षिक संस्थान तथा शिक्षार्थी के मध्य मुख्य रूप से दूर का सम्बन्ध होता है, चाहे वह शिक्षा किसी भी विषय की हो तथा उसमें किसी भी सम्प्रेषण माध्यम का प्रयोग किया गया हो।"

अंग्रेजी भाषा में शार्ट हैण्ड का विकास करने वाले आइजक पिटमैन को दूरस्थ शिक्षा का जनक कहा जाता है, उन्होंने 1840 में दूर बैठे शार्ट हैण्ड सीखने के इच्छुक लोगों को शार्ट हैण्ड के पाठ डाक द्वारा प्रेषित किए और उन्हें दूर बैठकर ही शार्ट हैण्ड में प्रशिक्षित किया। उसके पश्चात जर्मनी, अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, न्यूज़ीलैंड, आस्ट्रेलिया, जापान और भारत आदि देशों में इसका प्रचार – प्रसार हुआ। दूरस्थ शिक्षा को आन्दोलन का रूप देने में डी स्कूलिंग सोसाइटी के लेखक इवान इलिच का बहुत बड़ा योगदान है। **वेडीमेयर** के अनुसार-"सभी सीखने वालों में स्वयं सीखने की क्षमता उत्पन्न करना ही दूरस्थ शिक्षा है।" दूरस्थ शिक्षा और पत्राचार –शिक्षा में बहुत ही सूक्ष्म अन्तर है। दूरस्थ शिक्षा में विभिन्न जनसाधारण साधनों का प्रयोग किया जाता है, जबकि पत्राचार-शिक्षा में छपे हुए साधनों के प्रयोग पर अधिक बल दिया जाता है। **पीटर्स** के मतानुसार – "दूरस्थ शिक्षा ज्ञान देने का कौशल उत्पन्न करने तथा दृष्टिकोण बनाने का एक तरीका है।"

ब्रिटेन की संसदीय समिति की एक रिपोर्ट के आधार पर 1969 में खुले विश्वविद्यालय की स्थापना की गयी। इसी का अनुसरण करते हुए अमेरिका ने भी 1971 में अपने यहाँ खुले विश्वविद्यालय की स्थापना

की। एशिया में सर्वप्रथम खुले विश्वविद्यालय की स्थापना जापान में हुई। भारत में दूरस्थ शिक्षा का आरंभ सामान्यतः बी.बी.सी. लन्दन से प्रसारित अंग्रेजी भाषा शिक्षण के पाठों से माना जाता है, लेकिन इसका शुरुआत दूरदर्शन पर प्रसरित शैक्षिक कार्यक्रमों से 1959 में ही गयी थी । कालांतर में केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड ने 1961 में पत्राचार शिक्षा प्रारम्भ करने की संस्तुति की जिसके परिणामस्वरूप 1962 में दिल्ली विश्वविद्यालय में पत्राचार शिक्षा का श्री गणेश हुआ, परन्तु वास्तविक रूप से खुली शिक्षा की शुरुआत सर्वप्रथम 1977 में मदुराई विश्वविद्यालय ने अपने परिसर में 'खुला विश्वविद्यालय विंग' स्थापित करके की। इसके पश्चात 1980 के दशक तक देश के लगभग 25 विश्वविद्यालयों और 19 प्रादेशिक विद्यालयों के द्वारा अपने परिसरों में पत्राचार शिक्षा संस्थान अथवा निदेशालय की स्थापना की गयी। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सारथी समिति ने 1976 में अपनी रिपोर्ट में खुली शिक्षा प्रारम्भ करने और राष्ट्रीय खुले विश्वविद्यालय स्थापित करने की संस्तुति की। फलस्वरूप 1982 में हैदराबाद में आन्ध्र प्रदेश मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना की गयी, वर्तमान में जिसे डॉ. बी. आर. अम्बेडकर मुक्त विश्वविद्यालय, हैदराबाद के नाम जाना जाता है। इसके पश्चात वर्ष 1985 में इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली और वर्ष 1987 में कोटा मुक्त विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान) की स्थापना से लेकर अब तक स्थापित लगभग 14 खुले विश्वविद्यालय सुचारू रूप से दूरस्थ शिक्षा के क्षेत्र में प्रतिदिन नवाचार के कीर्तिमान स्थापित कर अपना विशेष योगदान दे रहे हैं। इस प्रकार ये विश्वविद्यालय प्रगतिशील व्यक्तियों के लिए सफलता के स्वर्णिम अवसर प्रदान कर रहे हैं।

अभ्यास प्रश्न :-1

1. शिक्षा मानव के विकास का------------------- है।
2. फ्रांस और ब्रिटेन जैसे विकसित देशों ने ------------और------------- शिक्षा का मार्ग प्रशस्त किया है।
3. जन-जन तक ज्ञान का प्रकाश पहुँचाने के लिए -----------------की अग्रणी भूमिका है।
4. एशिया में सर्वप्रथम खुले विश्वविद्यालय की स्थापना -------------------- में हुई।
5. मदुराई विश्वविद्यालय ने अपने परिसर में ------------------------ स्थापित की।

19.4 शिक्षा में विभिन्न माध्यमों के उपयोग हेतु सामग्री तैयार करना

सूचना क्रांति के इस युग में शिक्षा और शैक्षिक प्रक्रिया दोनों के अर्थ बदल रहे हैं । चिरकाल से ही शिक्षा का लक्ष्य मानव का निर्माण रहा है। इसका तात्पर्य यह है कि मानव और उसके लघु संस्करण (बालक) में निहित मूलभूत गुणों का समाज सम्मत दिशा में बांछित विकास। भारतीय मनीषियों ने तो शिक्षा को 'सा विद्या या विमुक्तये' कहकर मोक्ष प्राप्ति का साधन माना है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य को मार्गदर्शन प्राप्त होता है। शिक्षा के माध्यम से ही समाज अपनी संस्कृति और सभ्यता को संरक्षित करते हुए एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करता है। वर्तमान औपचारिक शिक्षा जन सामान्य को शिक्षित करने में पूर्णतः सफल नहीं हो पा रही है, क्योंकि इसे विद्यालयी सीमाओं में बंधित कर दिया गया है। वास्तव में शिक्षा एक मुक्त प्रक्रिया है जिसे किसी समय, स्थान, व्यक्ति-विशेष या पाठ्यक्रम आदि तक सीमित नहीं

किया जा सकता है । आप अपने समुदाय में सामाजिक सदस्यों, प्राकृतिक वातावरण, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु और घटनाओं आदि से जो कुछ भी अनुभवों के रूप में अर्जित करते हैं, वही वास्तविक शिक्षा है । इसे आप नैसर्गिक रूप से बिना किसी अवरोध या दबाव के ग्रहण करते हैं । इस प्रकार उचित और प्राकृतिक ढंग से शिक्षित नागरिकों के अनुकरणीय कार्यों के फलस्वरुप ही समाज और राष्ट्र निरन्तर उन्नति के शिखर की ओर अग्रसर होते हैं । दूरस्थ शिक्षा आपको दबावमुक्त शैक्षिक वातावरण उपलब्ध कराती है । दूरस्थ शिक्षा में सबसे महत्वपूर्ण कार्य पाठ्य सामग्री तैयार करना है । इसमें शिक्षक सामने नहीं होते बल्कि वे आधुनिक संचार तकनीक के माध्यम से अपनी उपयोगी शैक्षिक कार्य नीति के साथ आपका मार्गदर्शन करते हैं । समेकित बहुआयामी शैक्षिक कार्य नीति में मुद्रित सामग्री, दृश्य-श्रव्य सामग्री (रेडियो, टेलीविजन, ई-बुक्स, इंटरनेट और वेब-कांफ्रेंसिंग आदि) और सम्पर्क कार्यक्रम व्यवस्था सम्मिलित हैं । इस प्रणाली में मुद्रित पाठ्य सामग्री डाक द्वारा छात्रों को उपलब्ध करायी जाती है और साथ ही समय-समय पर वेब रेडियो के माध्यम से नियमित रूप से उपयोगी शैक्षिक कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है । अध्ययन केन्द्रों पर सम्पर्क कार्यक्रमों को संचालित किया जाता है जिनमें पोस्टर प्रस्तुतिकरण, कैसेट्स और इन्टरनेट के माध्यम से शिक्षण को रोचक, ज्ञानवर्धक और विषय केन्द्रित बनाने का प्रयास किया जाता है । दूरदर्शन और इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के संयुक्त प्रयासों से इनसेट के माध्यम से शिक्षा चैनल 'ज्ञान दर्शन' की शुरुआत 26 जनवरी, 2001 को हुई है । इसके माध्यम से दूरस्थ शिक्षा के क्षेत्र में एक नए प्रयोग का सूत्रपात हुआ है । शिक्षा के इन विविध माध्यमों के उपयोग हेतु सामग्री तैयार करने के तरीके भी भिन्न-भिन्न हैं । रेडियो, टेलीविजन, वेब-कांफ्रेंसिंग, डिजिटल अवयव, ई-बुक्स और ऑनलाइन पाठ्यक्रम आदि शैक्षिक माध्यमों के लिए उपयोगी सामग्री तैयार करने की शैली अलग –अलग है । यह एक सृजनात्मक, चुनौतीपूर्ण और कलात्मक कार्य है । चूँकि माध्यम अलग-अलग हैं इसलिए उनकी आवश्यकताएँ भी भिन्न हैं । इन माध्यमों हेतु उपयोगी सामग्री तैयार करने के लिए बोलने और लिखने के अतिरिक्त पाठकों-श्रोताओं, दर्शकों और छात्रों की जरुरत को भी ध्यान में रखा जाता है । अतः इन सभी माध्यमों की लेखन-शैली, भाषा और प्रस्तुति में अन्तर देखने को मिलता है ।

अभ्यास प्रश्न 2

सही विकल्प का चयन करें -

1. चिरकाल से ही शिक्षा का लक्ष्य मानव/पशु का निर्माण रहा है ।
2. इनसेट के माध्यम से शिक्षा चैनल 'ज्ञान दर्शन' की शुरुआत 1 फ़रवरी 2004/26 जनवरी, 2001 को हुई है ।
3. भारतीय मनीषियों ने तो शिक्षा को 'सा विद्या या विमुक्तये' कहकर स्वर्ग/मोक्ष प्राप्ति का साधन माना है ।
4. वास्तव में शिक्षा एक मुक्त/बंधित प्रक्रिया है ।
5. दूरस्थ शिक्षा आपको दबावमुक्त/दबावयुक्त शैक्षिक वातावरण उपलब्ध कराती है ।

19.5 रेडियो के उपयोग हेतु सामग्री तैयार करना

रेडियो मनोरंजन के साथ-साथ शिक्षा प्राप्ति का भी एक सशक्त श्रव्य साधन है। रेडियो का आविष्कार वर्ष 1895 में महान इलेक्ट्रिकल इंजीनियर और भौतिक शास्त्री जी.मार्कोनी द्वारा किया गया। भारत में रेडियो पर पहला प्रसारण 23 जुलाई, सन् 1927 को हुआ था। इसके पश्चात वर्ष 1936 में भारत में सरकारी 'इम्पेरियल रेडियो ऑफ इंडिया' की शुरुआत हुई जो स्वतंत्रता के बाद ऑल इंडिया रेडियो या आकाशवाणी बन गया। विविध भारती भारत मे सार्वजनिक क्षेत्र के रेडियो चैनल आकाशवाणी की एक प्रमुख प्रसारण सेवा है। इसकी शुरुआत 3 अक्टूबर, सन् 1957 को हुई थी। भारत में रेडियो के श्रोताओं के बीच ये सर्वाधिक सुनी जाने वाली और बहुत लोकप्रिय सेवा है। इसमें सब कुछ ध्वनि, स्वर और शब्दों की शैली पर आश्रित है। रेडियो के उपयोग हेतु सामग्री तैयार करने वालों को अपने श्रोताओं का पूरा ध्यान रखना पड़ता है। चूँकि रेडियो के श्रोता को बुलेटिन के प्रसारण की प्रतिक्षा करनी पड़ती है, इसलिए वह समाचार पत्र की तरह रेडियो समाचार बुलेटिन को कहीं भी और कहीं से भी नहीं सुन सकता। रेडियो में समाचार पत्र की भांति पीछे लौटकर सुनने की सुविधा नहीं होती है। यदि रेडियो बुलेटिन में कुछ भी भ्रामक या मनपसन्द कार्यक्रम नहीं है और संभव है कि श्रोता तत्काल स्टेशन बन्द कर दे या फिर अन्य किसी स्टेशन के कार्यकम को सुने। मूलतः रेडियो एकरेखीय माध्यम है और रेडियो पर प्रसारित शैक्षिक कार्यक्रमों की सामग्री का स्वरुप, ढाँचा और शैली इसी आधार पर तैयार की जाती है। इसमें शब्दों और आवाज की लयबद्धता, उतार-चड़ाव और गम्भीरता ही सब कुछ है। रेडियो प्रसारणकर्ताओं के लिए अपने श्रोताओं को बाँधकर रखना सबसे कठिन चुनौती है। यह चुनौती एफ एम रेडियो के युग में दिन-प्रतिदिन बड़ती जा रही है।

रेडियो पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों को मुख्य रूप से दो श्रेणियों में बाँटा गया है पहली श्रेणी उन कार्यक्रमों की है जो सामान्य रूप से प्रसारित होते हैं। इसमें सभी तरह के प्रादेशिक, देश-विदेश के समाचार, विभिन्न विषयों पर प्रसारित वार्ताएं, राष्ट्रीय और सांस्कृतिक रूचि के कार्यक्रम भी सम्मिलित हैं। दूसरी श्रेणी उन कार्यक्रमों की है, जो किसी विषय विशेष को प्रदान करने हेतु विषय विशेषज्ञों की सहायता से प्रसारित किये जाते हैं। ये एक प्रकार से निश्चित क्रम में व्यवस्थित किये हुए विषय विशेष के पाठ ही होते हैं, जिन्हें सुदूरवर्ती क्षेत्रों के घरों में बैठे हुए श्रोता या विद्यार्थी सुनकर आवश्यक ज्ञान की प्राप्ति करते रहते हैं।

रेडियो के उपयोग हेतु सामग्री तैयार करने के लिए कुछ आधारभूत तथ्यों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

- रेडियो पर प्रसारित कार्यक्रम का चुनाव करते समय श्रोताओं की आवश्यकता और मानसिक स्तर का ध्यान रखना चाहिए। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महव के कार्यक्रमों को भी अवश्य सम्मिलित किया जाना चाहिए।
- रेडियो पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों को प्रभावशाली और रोचक बनाने के लिए भली-भाँति तैयारी की जानी चाहिए। विषय विशेषज्ञ को कार्यक्रम की नियमावली का पूरा ज्ञान होना चाहिए और उसे रेडियो बुलेटिन के रिकार्डिंग के तरीकों की जानकारी भी होनी चहिये।

- रेडियो पर प्रसारित कार्यक्रम सुनने के लिए होते हैं, इसलिए उनके लेखन में त्रुटियाँ न हो इसका विशेष ध्यान रखना जरुरी हो जाता है। लेकिन एक महत्वपूर्ण तथ्य कभी नहीं भूलना चाहिए कि कार्यक्रम प्रसारित होने से पूर्व उद्घोषक या वाचनकर्ता उसका वाचन करता है जिससे वह श्रोताओं तक पहुँचता है। इसलिए कार्यक्रम का कथानक ऐसे तैयार किया जाना चाहिए कि उसके वाचन में वाचनकर्ता को कोई परेशानी न हो। यदि कार्यक्रम का कथानक कॉपी टाईप की हुई और साफ-सुथरी नहीं है तो उसके वाचन के दौरान वाचनकर्ता द्वारा गलत वाचन की अधिक संभावना रहती है, जिससे श्रोता भ्रमित हो जाते हैं। प्रसारण के लिए तैयार की जा रही कार्यक्रम के कथानक की कॉपी को कंप्यूटर के द्वारा ट्रिपल स्पेस में टाईप किया जाना चाहिए। कॉपी के दोनों ओर पर्याप्त हाशिया छोड़ा जाना चाहिए और एक पंक्ति में अधिकतम 12 -13 शब्द ही होने चाहिए। पंक्ति के अंत में कोई शब्द विभाजित नहीं होना चाहिए और पृष्ट के अंत में कोई पंक्ति अधूरी नहीं होनी चाहिए। कथानक कॉपी में कोई जटिल और उच्चारण में क्लिष्ट शब्द, संक्षिप्ताक्षर और अंकों की बड़ी संख्या आदि नहीं लिखने चाहिए जिनके उच्चारण में वाचनकर्ता को असहजता महसूस हो। वैसे रेडियो पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों में अत्यधिक आँकड़ों और संख्याओं का प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि सामान्य श्रोताओं को उन्हें समझ पाना बहुत ही कठिन होता है।
- सामान्यतः रेडियो पर लगभग चौबीसों घंटे कोई - न – कोई कार्यक्रम प्रसारित होता रहता है। श्रोता के लिए समय का फ्रेम हमेशा आज होता है। इसलिए रेडियो कार्यक्रमों में आज, आजकल, आज शाम आदि का प्रयोग किया जाता है। इसी तरह ... बैठक कल होगी या ... कल हुई बैठक में ... का प्रयोग किया जाता है। इसी महीने, इसी वर्ष, अगले वर्ष या पिछले वर्ष आदि का प्रयोग करना चाहिए।
- संक्षिप्ताक्षरों के प्रयोग में भी सावधानी रखनी चाहिए। अच्छा तो यही रहता है कि उनका प्रयोग ही न किया जाए और यदि बहुत ही जरुरी हो तो कार्यक्रम के आरंभ में पहले उसे पूरा दिया जाना चाहिए, उसके बाद संक्षिप्ताक्षर का प्रयोग किया जाना चाहिए। संक्षिप्ताक्षरों के प्रयोग करने से पूर्व उनकी लोकप्रियता पर भी ध्यान देना जरुरी होता है। जैसे- यूनिसेफ, सार्क, एचडीएफसी बैंक आदि का प्रयोग सीधे भी किया जा सकता है।
- सामान्यतः किसी भी तरह के लेखन का कोई सूत्र नहीं होता। रेडियो के उपयोग हेतु सामग्री तैयार करने में भी नहीं। देशकाल, परिस्थिति और वातावरण के अनुरूप प्रयोगशीलता भाषा के साथ-साथ माध्यम को भी सम्वृद्ध करती है। भाषा जन सामान्य तक पहुँचने का माध्यम है और इसलिए रेडियो पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों की भाषा ऐसी होनी चाहिये कि सभी को आसानी से समझ में आ सके, परन्तु साथ ही भाषा के स्तर और गरिमा के साथ कोई समझौता भी न करना पड़े।
- रेडियो के उपयोग हेतु सामग्री तैयार करने के लिए सरल, सुगम और स्पष्ट भाषा का प्रयोग करना चाहिए। वाक्य छोटे, सीधे और स्पष्ट होने चाहिए। वाक्यों को लिखने से पूर्व कार्यक्रम की प्रमुख बातों को ठीक से समझने का प्रयास करना चाहिए अन्यथा आप इन्हें लिखने का जटिल तरीका अपनाते हैं।

इस प्रकार रेडियो के लिए लेखन की संरचना उल्टा पिरामिड शैली पर आधारित है, जो की लेखन की सबसे प्रचलित, प्रभावी और लोकप्रिय शैली है । जनसंचार माध्यमों में सर्वाधिक लेखन इसी शैली में किया जाता है। इस शैली में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य को सबसे पहले लिखा जाता है और उसके बाद घटते हुए महत्वक्रम में अन्य तथ्यों को लिखा जाता है। इस शैली में कोई निष्कर्ष नहीं होता है। इस शैली में कथानक को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है – इंट्रो या लीड या मुखड़ा, बॉडी और समापन ।

अभ्यास प्रश्न :-3

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये |

1. रेडियो का आविष्कार वर्ष 1895 में महान इलेक्ट्रिकल इंजीनियर और भौतिक शास्त्री --------------------द्वारा किया गया।
2. भारत में रेडियो पर पहला प्रसारण 23 जुलाई,------------------- को हुआ था।
3. रेडियो मनोरंजन के साथ-साथ शिक्षा प्राप्ति का भी एक सशक्त -------------------- है।
4. मूलतः रेडियो ------------------- माध्यम है।
5. श्रोता के लिए समय का फ्रेम हमेशा ------------- होता है।

19.6 टेलीविजन के उपयोग हेतु सामग्री तैयार करना:

टेलीविजन देखने और सुनने का एकरेखीय माध्यम है । जे. एल. बेयर्ड द्वारा टेलीविजन का आविष्कार 25 मार्च, सन् 1925 में किया गया। दूरस्थ शिक्षा में इसका बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है । शिक्षण की प्रारम्भिक अवस्था में श्रव्य (Tele) पर अधिक बल दिया जाता था। कालान्तर में मनोविज्ञान के विकास ने दृश्य (Vision) को भी महत्वपूर्ण बना दिया । अन्ततः आधुनिक तकनीकी युग में श्रव्य और दृश्य दोनों की सामान रूप से जरुरत महसूस होने लगी । फलस्वरूप शिक्षण की दुनिया में टेलीविजन का प्रादुर्भाव हुआ । यह संप्रेषण और संचार क्रिया का एक शक्तिशाली माध्यम है, जो शिक्षा प्राप्ति में विद्यार्थियों के सुनने और देखने सम्बन्धी ज्ञानेन्द्रियों के प्रयोग पर बल देता है। वास्तव में टेलीविजन का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम वर्ष 1936 में बी.बी.सी. लन्दन द्वारा अपने देश के नागरिकों के लिए उपलब्ध कराया गया। उसके पश्चात सयुंक्त राज्य अमेरिका में वर्ष 1958 में सर्वप्रथम विज्ञान विषय गया। भारत में इसका पहला प्रसारण 15 सितम्बर सन् 1959 को प्रयोगात्मक आधार पर आधे घण्टे के लिए शैक्षिक और विकास कार्यक्रमों के लिए नेशनल नेटवर्क ऑफ़ इण्डिया के रूप में नई दिल्ली से किया गया। इसकी नियमित शैक्षिक सेवा का उद्घाटन और प्रयोग किसानों के कृषि-दर्शन कार्यक्रम से 16 अगस्त सन् 1965 से आरम्भ हुई। उस समय टेलीविजन का प्रसारण सप्ताह में सिर्फ तीन दिन आधा-आधा घंटे के लिए होता था। तब इसको 'टेलीविजन इंडिया' नाम दिया गया था। बाद में सन् 1975 में

दूरदर्शन के लोगो का प्रारूप

इसका हिन्दी नामकरण ‘दूरदर्शन’ कर दिया गया। यह दूरदर्शन नाम इतना लोकप्रिय हुआ कि टेलीविजन का हिंदी पर्याय बन गया। टेलीविजन पर सन् 1986 में शुरु हुए रामायण और महाभारत के प्रसारण के दौरान रविवार को सुबह देश भर की सड़कों पर कर्फ्यू जैसा सन्नाटा पसर जाता था। लोग अपने महत्वपूर्ण कार्यक्रमों से लेकर अपनी यात्रा तक इस समय पर स्थगित कर देते थे। इसके बाद भारत में 16 दिसम्बर 2004 को निशुल्क डी.टी.एच. सेवा की शुरूआत हुई। संचार-क्रान्ति के मौजूदा दौर में भी कश्मीर से कन्याकुमारी तक 92 प्रतिशत भारतीय घरों तक पहुंचने वाला आकाशवाणी के अतिरिक्त टेलीविजन एकमात्र माध्यम है। टेलीविजन ने मनोरंजन के साथ-साथ लोगों को शिक्षित करने में भी अहम भूमिका अदा की है। अपने कार्यक्रमों के माध्यम से मीडिया में एजुटेंमेंट की आधारशिला टेलीविजन ने ही रखी है। इस प्रकार टेलीविजन मनोरंजन, सूचना और शिक्षा का बहुउद्देशीय साधन है।

टेलीविजन के उपयोग हेतु सामग्री तैयार करना भी एक कलात्मक, सृजनात्मक और चुनौतीपूर्ण कार्य है। इसकी आधारभूत शर्त दृश्य के साथ लेखन है। दृश्य से तात्पर्य कैमरे से लिए गए शॉट्स जिनके आधार पर कार्यक्रम का ताना-वाना बुना जाता है। यदि शॉट्स घने जंगल के हैं तो कथानक में भी घने जंगल की बात लिखी जाएगी, समुद्र या झील की नहीं। इसमें दृश्यों का महत्व सबसे अधिक है और इसके लिए आलेख या कथानक लिखते समय इस बात पर ध्यान देने की जरुरत होती है कि आपके शब्द पर्दे पर दिखने वाले दृश्य के अनुकूल हों। इसमें कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक तथ्यों को बताने की कला का प्रयोग किया जाता है। इसलिए टेलीविजन के लिए कथानक लिखने की आधारभूत शर्त दृश्य के साथ लेखन है। टेलीविजन पर कथानक को दो तरह से प्रस्तुत किया जाता है। इसका प्रारंभिक हिस्सा जिसमें मुख्य तथ्य होते हैं को बिना दृश्य के प्रस्तोता द्वारा पढ़ा जाता है। दूसरा भाग वह होता है जिसमें प्रस्तोता के स्थान पर तथ्यों से सम्बंधित दृश्य दिखाए जाते हैं। किसी भी टेलीविजन चैनल पर तथ्यों को देने का मूल आधार रेडियो के सामान होता है अर्थात सूचना देना। ये सूचनाएँ कई सोपानों से होकर दर्शकों के पास पहुँचती हैं। ये सोपान हैं – फ्लेश, ड्राई एंकर, फोन इन, एंकर –विजुअल, एंकर –बाइट, लाइव और एंकर-पैकेज। टेलीविजन लेखन इन सभी रूपों को ध्यान में रखकर किया जाता है। जहाँ आवश्यकता के अनुरूप वाक्यों का प्रयोग किया जाता है। शब्द का कार्य दृश्य को अग्रसित करना है ताकि वह दूसरे दृश्यों से संयुग्मन कर सके। उसमें निहित भाव को सामने लाना होता है, ताकि कथानक के सभी आशय खुल सकें। अक्सर टेलीविजन पर कथानक लिखने की एक प्रचलित शैली दिखाई देती है। पहला वाक्य दृश्य के वर्णन से प्रारम्भ होता है। जैसे - वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा के गाँधी भवन में हो रही ये सभा...। इस प्रचलित शैली में आसानी यह है कि बिना किसी कल्पनाशीलता के टेलीविजन के उपयोग हेतु सामग्री तैयार करने का आधारभूत अनुशासन पूरा हो जाता है, लेकिन इसमें शब्दों की भूमिका निरर्थक हो जाती है। दर्शक जो अपने नेत्रों से देख रहा है, उसकी पुनरावृत्ति की कोई आवश्यकता नहीं है। टेलीविजन केवल दृश्य और शब्द ही नहीं होता, इसके बीच में कई तरह की ध्वनियाँ होती हैं। टेलीविजन में दृश्य और शब्द अर्थात विजुअल और वॉयस ओवर के साथ दो तरह की ध्वनियाँ और होती हैं। एक तो वे कथन जो प्रसारण के लिए तैयार किये जाते हैं और दूसरी वे प्राकृतिक ध्वनियाँ जो दृश्य के साथ-साथ चली आती हैं। टेलीविजन के उपयोग हेतु सामग्री तैयार करते समय इन दोनों तरह की आवाजों का ध्यान रखना बहुत ही महत्वपूर्ण होता है।

इस प्रकार छोटे-छोटे वाक्यों और सुगठित संपादन से टेलीविजन के उपयोग हेतु तैयार की गयी सामग्री बोधगम्य, प्रभावपूर्ण और रोचक बन जाती है । टेलीविजन में आप कितनी सरल, सम्प्रेषणीय और प्रभावी भाषा लिख रहे हैं, इसका मूल्यांकन करने के लिए आप लिखी गयी सामग्री को बोल-बोलकर पढ़ें । इस प्रक्रिया में आपको स्वयं यह महसूस होगा कि आपके द्वारा लिखी भाषा में कितना प्रवाह है, उसे पढ़ने में वाचनकर्ता को कोई परेशानी तो नहीं होगी अथवा उसे दर्शक सरलता से समझ तो जायेंगे । भ्रामक अर्थ उत्पन्न करने वाले शब्दों जैसे-निम्नलिखित,उपरोक्त, क्रमांक और द्वारा आदि के प्रयोग करने से बचना चाहिए । साफ-सुथरी और सरल भाषा लिखने के लिए अनावश्यक विशेषणों, अलंकारिक, सामासिक, तत्सम शब्दों और अतिरंजित उपमाओं आदि के प्रयोग से भी वचना चाहिए। इनके प्रयोग से भाषा कई बार बोझिल होने लगती है और विषय को नीरस बना देती है । मुहावरों के प्रयोग से भाषा आकर्षक, प्रभावपूर्ण और रुचिकर बनती है । इसलिए कथानक में मुहावरों का प्रयोग भी देशकाल, वातावरण और परिस्थति के अनुसार करना चाहिए । इस प्रकार वाक्य छोटे, प्रचलित, सरल और तारतम्यपूर्ण होने चाहिए ताकि दर्शकों को कुछ टूटता या छूटता हुआ-सा न लगे अर्थात विद्वता से रहित, सहज और जनसामान्य की भाषा का प्रयोग करना चाहिये ।

अभ्यास प्रश्न :-4

सही विकल्प का चयन करें –

1. जे. एल. बेयर्ड द्वारा टेलीविजन का आविष्कार 25 मार्च, सन् 1925/20 मार्च,1920 में किया गया ।
2. शिक्षण की प्रारम्भिक अवस्था में दृश्य (Vision)/श्रव्य (Tele) पर अधिक बल दिया जाता था ।
3. टेलीविजन का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम वर्ष 1936 में बी.बी.सी. लन्दन/प्रसार भारती नई दिल्ली द्वारा अपने देश के नागरिकों के लिए उपलब्ध कराया गया ।
4. टेलीविजन मनोरंजन, सूचना और शिक्षा का निरर्थक/बहुउद्देशीय साधन है ।
5. भारत में 16 दिसम्बर 2004 को निशुल्क डी.टी.एच./एमडीएच सेवा की शुरूआत हुई।

19.7 वेब-कांफ्रेंसिंग, डिजिटल अवयव, ई-बुक और ऑनलाइन पाठ्यक्रम के उपयोग हेतु सामग्री तैयार करना

21वीं सदी को सामान्यतः सूचना प्रौद्योगिकी में आयी क्रान्ति की सदी के रूप में जाना जाता है। छात्र, शिक्षक, शोधार्थी और सभी व्यवसायों से जुड़े दूरदर्शी लोगों का पहला आकर्षण कम्प्यूटर बन चुका है जो कि सूचना प्रौद्योगिकी का आधार है । शिक्षा, सेवा, स्वास्थ्य और आर्थिक गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु सूचना प्रौद्योगिकी है । इसके माध्यम से आपको सभी तरह की अनुसन्धान सामग्री जैसे-शोध पत्र, पुस्तकें और पत्रिकाएँ आदि की मुक्त और सर्व सुलभता को प्रोत्साहन मिला है । सम्पूर्ण विश्व के शिक्षा पटल पर संचार और सूचना प्रौद्योगिकी का प्रभाव देखने को मिल रहा है । आभासी (Virtual) विश्वविद्यालय की संकल्पना अपना आकार ले रही है, जिसके माध्यम से कोई भी छात्र घर बैठे कम्प्यूटर और इन्टरनेट के द्वारा पढ़ाई पूरी कर सकता है । इसके लिए वेब-कांफ्रेंसिंग, डिजिटल अवयव, ईबुक्स और ऑनलाईन पाठ्यक्रम की आवश्यकता होती है ।

इंटरनेट कम्प्यूटर आधारित सूचना सेवा है । इसका उद्भव संयुक्त राज्य अमेरिका में सन् 1969 में ए.आर.पी.नेट के रूप में हुआ था। ए.आर.पी.नेट से तात्पर्य यह है कि इसका प्रयोग केवल मिलिटरी के लोग ही कर सकते थे। इसका पूरा नाम एडवान्स रिसर्च प्रोजेक्ट नेटवर्क ऑफ़ अमेरिका था। कालांतर में यह सेवा शैक्षिक नेटवर्क के साथ मिश्रित होकर यूज़नेट न्यूज़ के नाम से जानी जाने लगी । इंटरनेट वर्क प्रणाली का संक्षिप्त रूप इंटरनेट है। यह कम्प्यूटर प्रणालियों का एक नेटवर्क है जिस कारण विश्व एक गाँव के रूप में परिवर्तित हो गया है। इसने वैश्विक रूप से लोगों के साथ सम्प्रेषण करने का एक विस्तृत मार्ग दिखाया है। यह अत्यधिक समय और धन खर्च किये बिना शुद्ध और पर्याप्त सूचना प्रदान करता है। नयी पीढ़ी के लिए इंटरनेट पर वेब-कांफ्रेंसिंग करना और ई-बुक्स पढ़ना जीवन का हिस्सा बन चुकी है । जो लोग इंटरनेट के अभ्यस्त हैं, या जिन्हें इंटरनेट की सुविधा आसानी से उपलब्ध है, वे स्वयं को घंटे-दो-घंटे में अपडेट करते रहते हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के अधिकारी ही नहीं अब तो केन्द्र और राज्य सरकारों के मंत्री आदि भी वेब-कांफ्रेंसिंग के माध्यम से सूचनाओं का विनिमय करते हैं।

भारत में कम्प्यूटर साक्षरता की दर बहुत तेजी से बढ़ रही है। पर्सनल कम्प्यूटर का प्रयोग करने वालों की संख्या में भी दिन-प्रतिदिन इजाफ़ा हो रहा है। इंटरनेट युक्त मोबाइलों का प्रचलन भी तेजी से बढ़ रहा है। क्योंकि इंटरनेट पर आपको कुछ ही पलों में विश्वभर की जानकारी प्राप्त हो जाती है । दुनियाभर की चर्चाओं-और परिचर्चाओं में आप वेब-कांफ्रेंसिंग के माध्यम से सम्मिलित हो सकते हैं । लोगों को उपयोगी सुझाव दे सकते हैं । ई-बुक्स लिखकर अपने विचारों से लोगों को अवगत करा सकते हैं । आक्सफोर्ड या किसी अन्य विदेशी विश्वविद्यालय में हो रहे प्रोफ़ेसर के व्याख्यान को सुनकर उससे सम्बंधित प्रश्न पूछ सकते हैं। वेब-कांफ्रेंसिंग के लिए मुख्यतः एक कप्यूटर, कैमरा, स्पीकर, माइक्रोफोन, कोडर/डिकोडर और इंटरनेट आदि उपकरणों की जरुरत होती है । इससे दो या दो से अधिक लोंगों के मध्य सजीव सम्प्रेषण होता है। इसके माध्यम से आप किसी मीटिंग की सभी गतिविधियों को देखने और सुनने के अतिरिक्त जरुरी दस्तावेजों का आदान-प्रदान भी कर सकते हैं।

इंटरनेट पर आप अन्य डिजिटल अवयवों से भी लाभ प्राप्त कर सकते हैं। ई-बुक्स भी एक ऐसा ही डिजिटल अवयव है जिसके माध्यम से आप महत्वपूर्ण विषयों की जानकारी कागज की बजाय आभासी रूप में प्राप्त कर सकते हैं। सामान्यतः ई-बुक्स (इलैक्ट्रॉनिक पुस्तक) का अर्थ है डिजिटल रुप में पुस्तक। ई-बुक्स कागज की बजाय डिजिटल संचिका के रुप में होती हैं, जिन्हें कम्प्यूटर, मोबाइल एवं अन्य डिजिटल यंत्रों पर पढ़ा जा सकता है। इन्हें इण्टरनेट पर भी छापा, बाँटा या पढ़ा जा सकता है। ये पुस्तकें कई फाइल फॉर्मेट में होती हैं जिनमें पी.डी.एफ. (पोर्टेबल डॉक्यूमेण्ट फार्मेट), एक्सपीएस आदि शामिल हैं। इनमें पी.डी.एफ. सर्वाधिक प्रचलित फॉर्मेट है। ई-बुक्स को पढ़ने के लिए कम्प्यूटर अथवा मोबाइल पर एक सॉफ्टवेयर की आवश्यकता होती है, जिसे ई-बुक्स पाठक (e-Book Reader) कहते हैं। पीडीएफ ई-बुक्स के लिए एडॉब रीडर तथा फाक्सिट रीडर नामक दो प्रसिद्ध ई-बुक्स पाठक हैं। इनमें से एडॉब तो पी.डी.एफ. फार्मेट की निर्माता कम्पनी एडॉब है, ये आकार में काफी बड़ा है तथा पुराने कम्पूटरों पर काफी धीमा चलता है। फाक्सिट ई-बुक्स रीडर इसका एक नि:शुल्क और कम वजन वाला विकल्प है। ई-बुक्स को पढ़ने के लिए अब कुछ हार्डवेयर उपकरण अलग से भी उपलब्ध हैं। इनमें

अमेजन.कॉम का किण्डल तथा एप्पल इंक का आइपैड शामिल है। ई-बुक्स बनाने के निम्नलिखित दो तरीके हैं -

- कम्प्यूटर पर टाइप की गई सामग्री को विभिन्न सॉफ्टवेयरों के द्वारा ई-बुक्स रुप में बदला जा सकता है।
- छपी हुई सामग्री को स्कैनर के द्वारा डिजिटल रुप में परिवर्तित करके उसे ई-बुक्स का रुप दिया जा सकता है।

अमेजन.कॉम की किण्डल ई-बुक का प्रारूप

ई-बुक्स के सस्ता होने का कारण यह है कि इन पर पहली बार आने वाली लागत के बाद सामान्यतः कोई लागत नहीं आती। एक बार ई-बुक्स विकसित और प्रकाशित होने के बाद लेखक उसकी अनंत फाइलें बनाने के लिए स्वतंत्र है। इसलिए लेखक की लागत बहुत कम होती है और इसका लाभ पाठक तक पहुँचता है। भारत में भी ई-बुक्स का प्रचलन तेजी से जोर पकड़ रहा है और अंग्रेजी के साथ-साथ भारतीय भाषाओं में भी ई-बुक्स खूब दिखने लगी हैं। दिल्ली में सितंबर 2012 में हुए विश्व प्रसिद्ध दिल्ली पुस्तक मेले में ई-बुक्स को मुख्य थीम बनाकर भारतीय प्रकाशकों के संगठन ने भी ई-बुक्स में अपनी रुचि प्रकट की। यह एक नए क्षेत्र में उभरते हुए अवसरों का भी सकेत है। इस प्रकार ई-बुक ऐसी तकनीकी किताब है, जो लेखक, प्रकाशक और पाठक सभी के लिए फ़ायदे का सौदा है। हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के लेखक ई-प्रकाशक के माध्यम से अपनी ई-बुक्स प्रकाशित करवा सकते हैं। ई-बुक पढ़ने के लिए आपको खास तौर पर ई-बुक रीडर खरीदने की जरूरत नहीं है। आप इसे अपने कंप्यूटर, लैपटॉप, टैबलेट और मोबाईल पर भी पढ़ सकते हैं। इसलिए गूगल ई-बुक्स अपनी सुलभता के कारण तेजी से लोकप्रिय हो रही हैं। इस प्रकार वेबकांफ्रेंसिंग, डिजिटल अवयव ,ई-बुक और ऑनलाइन पाठ्यक्रम के उपयोग हेतु सामग्री तैयार करने के लिए हिन्दी वेब जगत में कई साहित्यिक और शैक्षिक पत्रिकाएँ चल रही हैं। हिन्दी की वेब दुनिया अभी अपनी शैशवावस्था में है। डायनामिक फ़ौंट की कमी के कारण अधिकतर हिन्दी की साईटें खुलती ही नहीं हैं और यदि खुल भी जाती हैं तो उनमें कोई नयी सामग्री नहीं होती।

इंटरनेट क्योंकि सूचनाओं और विभिन्न विषयों के आंकड़ों का एक वृहद भंडार गृह है अतः इसकी शैक्षिक उपयोगिता भी अत्यधिक है। इसकी सहयता से आप संसार में अग्रगामी शोधों और शिक्षाविदों के साथ अंतःक्रिया कर सकते हैं। इस पर विविध विषय से सम्बंधित नवीनतम और विश्वसनीय जानकारी कम खर्च में आसानी से प्राप्त की जा सकती है। विश्व के आधुनिकतम विश्वविद्यालय अपने पुस्तकालयों को डिजिटल रूप प्रदान कर रहे हैं और दुनिया के साथ जुड़कर नवीन ज्ञान का सृजन कर रहे हैं। मुक्त विश्वविद्यालय के सामान कई सामान्य विश्वविद्यालय भी छात्रों के लिए ऑनलाइन पाठ्यक्रम उपलब्ध करवा रहे हैं। भारत में मुख्य रूप से सिक्किम मनिपाल विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय और पंजाब तकनीकी विश्वविद्यालय आदि प्रमुख विश्वविद्यालय हैं जो ऑनलाइन पाठ्यक्रमों का भी संचालन कर रहे

हैं। वेबकांफ्रेंसिंग, डिजिटल- अवयव ,ई-बुक और ऑनलाइन पाठ्यक्रम के उपयोग हेतु सामग्री तैयार करने के लिए आपको निम्नलिखित तथ्यों को जानना आवश्यक है –

- सर्वप्रथम आपको कंप्यूटर संचालन के साथ-साथ इंटरनेट की जानकारी का होना अत्यंत महत्वपूर्ण है।
- वेबकांफ्रेंसिंग के समय कक्ष का वातावरण शान्त होना चाहिए और आपको समय सीमा का भी ध्यान रखना चाहिए।
- जब आप वेबकांफ्रेंसिंग करना चाहते हैं उससे पूर्व आपको आवश्यक उपकरणों जैसे- कैमरा, स्पीकर्स, पॉवर सप्लाई (एस.यू.पी.) और अन्य सम्बंधित उकरणों की जाँच कर लेनी चहिए और साथ ही जरुरी तथ्यों को लिखने के लिए पेन और कॉपी को भी अपने पास टेवल पर रखना चहिए।
- आप जिस विषय से सम्बंधित जानकारी ई-बुक और ऑनलाइन पाठ्यक्रम के माध्यम से लोगों तक पहुँचाना चाहते हैं उसकी भाषा साफ-सुथरी और सरल भाषा होनी चहिये।
- वेब आधारित सामग्री सहजानुभुत और संगत फार्मेट में ही तैयार की जानी चाहिए।
- दृश्यों के सम्मुख संपूरक अनुशीर्षक होने चाहिए और स्व -अधिगम सामग्री में ग्राफ्स, फ्लो-चार्ट, सारणी और चित्र के प्रावधान सहित संकेत भाषा व्याख्या को महत्व दिया जाना चाहिए।
- आपके विषय की भाषा स्पष्ट और अतिरंजित उपमाओं से मुक्त तथा ज्ञानवर्धक होनी चाहिए। लोगों की धार्मिक भावनाओं को आघात पहुँचाने वाली भाषा के प्रयोग से वचना चाहिए।
- पहले सम्पूर्ण विषय को वर्ड की फाईल में लिखना चाहिए उसके पश्चात उसे पी.डी.एफ फाईल में परिवर्तित कर सम्बंधित साईट पर अपलोड कर देना चाहिए। आप विषय से सम्बंधित पोस्टर प्रस्तुतिकरण भी तैयार कर सकते हैं, और कम शब्दों में अधिक जानकारी लोगों को प्रदान कर सकते हैं।

इस प्रकार आप कम समय में उपयोगी जानकारी प्राप्त करने के साथ ही लोगों को अपने ज्ञान से भी परिचित करा सकते हैं। इससे आपके लिए आय के नए श्रोत का मार्ग प्रशस्त होता है। इस प्रकार दूरस्थ शिक्षा में स्वयं अधिगम सामग्री (SLM) को विकसित करके छात्रों को विषय वस्तु से अवगत कराया जाता है। इसका सर्वसुलभ साधन इंटरनेट है । वेब- कांफ्रेंसिंग, ई-बुक्स और ऑनलाइन पाठ्यक्रम आदि के माध्यम से आप नि:संकोच अध्ययन करने में सक्षम सक्षम होते हैं।

अभ्यास प्रश्न :-5

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये।

1. शिक्षा, सेवा, स्वास्थ्य और आर्थिक गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु -------------------- है।
2. ई-बुक्स (इलैक्ट्रॉनिक पुस्तक) का अर्थ है --------------------------।

3. ई-बुक्स को पढ़ने के लिए कम्प्यूटर अथवा मोबाइल पर एक --------------- की आवश्यकता होती है।
4. पीडीएफ ई-बुक्स के लिए ------------ तथा-------------- नामक दो प्रसिद्ध ई-बुक्स पाठक हैं।
5. हिन्दी की वेब दुनिया अभी अपनी ------------------ में है।

19.8 सारांश

शिक्षा के विविध स्तरों यथा-प्राथमिक, माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा में विस्तार, उत्कृष्टता तथा समावेशन के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए मुक्त और दूरस्थ शिक्षा एवं मुक्त शैक्षिक संसाधनों का विकास अत्यंत आवश्यक है। फ्रांस और ब्रिटेन जैसे विकसित देशों ने मुक्त और दूरस्थ शिक्षा का मार्ग प्रशस्त किया है। **पीटर्स** के मतानुसार – "दूरस्थ शिक्षा ज्ञान देने का कौशल उत्पन्न करने तथा दृष्टिकोण बनाने का एक तरीका है।" वास्तव में शिक्षा एक मुक्त प्रक्रिया है जिसे किसी समय, स्थान, व्यक्ति-विशेष या पाठ्यक्रम आदि तक सीमित नहीं किया जा सकता है। रेडियो, टेलीविजन, वेब-कांफ्रेंसिंग, डिजिटल अवयव, ई-बुक्स और ऑनलाइन पाठ्यक्रम आदि शैक्षिक माध्यमों के लिए उपयोगी सामग्री तैयार करने की शैली अलग –अलग है। यह एक सृजनात्मक, चुनौतीपूर्ण और कलात्मक कार्य है।

रेडियो के उपयोग हेतु सामग्री तैयार करने वालों को अपने श्रोताओं का पूरा ध्यान रखना पड़ता है । रेडियो पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों को मुख्य रूप से दो श्रेणियों में बाँटा गया है पहली श्रेणी उन कार्यक्रमों की है जो सामान्य रूप से प्रसारित होते हैं। रेडियो के लिए लेखन की संरचना उल्टा पिरामिड शैली पर आधारित है, जो की लेखन की सबसे प्रचलित, प्रभावी और लोकप्रिय शैली है। टेलीविजन आधुनिक समय में देखने और सुनने का एकरेखीय महत्वपूर्ण माध्यम है । इसकी आधारभूत शर्त दृश्य के साथ लेखन है। छोटे-छोटे वाक्यों और सुगठित संपादन से टेलीविजन के उपयोग हेतु तैयार की गयी सामग्री बोधगम्य, प्रभावपूर्ण और रोचक बन जाती है । वेब-कांफ्रेंसिंग के लिए मुख्यतः एक कप्यूटर, कैमरा, स्पीकर, माइक्रोफोन, कोडर/डिकोडर और इंटरनेट आदि उपकरणों की जरुरत होती है। इससे दो या दो से अधिक लोंगों के मध्य सजीव सम्प्रेषण होता है।

सामान्यतः ई-बुक्स कागज की बजाय डिजिटल संचिका के रुप में होती हैं, जिन्हें कम्प्यूटर, मोबाइल एवं अन्य डिजिटल यंत्रों पर पढ़ा जा सकता है। इन्हें इण्टरनेट पर भी छापा, बाँटा या पढ़ा जा सकता है। ये पुस्तकें कई फाइल फॉर्मेट में होती हैं जिनमें पी.डी.एफ. (पोर्टेबल डॉक्यूमेण्ट फार्मेट), एक्सपीएस आदि शामिल हैं। गूगल ई-बुक्स अपनी सुलभता के कारण तेजी से लोकप्रिय हो रही हैं। इस प्रकार इंटरनेट के इन सभी प्रारूपों के लिए उपयोगी सामग्री तैयार करने की शर्तें वही हैं जो टेलीविजन पर लेखन कार्य करने के लिए होती हैं। आवश्यकता है तो केवल सृजनात्मक दृष्टिकोण की जिससे समय के अनुकूल पाठ्य सामग्री तैयार की जा सके।

19.9 शब्दावली

- **सम्प्रेषण** – सूचना और ज्ञान का एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक स्थानान्तरण ।

- **समवर्ती -** जो समान रूप से स्थित रहता हो।
- **पिरामिड** – वर्ग के आधार पर बना त्रिकोणीय प्रारूप जो शीर्ष के एक बिन्दु पर मिलने के लिए झुका होता है ।
- **पाठ्यक्रम** – विद्यालय या महाविद्यालय में अध्ययन हेतु प्रदान किये जाने वाले विषय।
- **कथानक** – किसी रचना की आदि से अन्त तक की सभी बातों की सामूहिक रूपरेखा।
- **दूरदर्शन**– एक ऐसी दूरसंचार प्रणाली जिसके द्वारा चलचित्र व ध्वनि को दो स्थानों के बीच प्रसारित व प्राप्त किया जा सके।
- **ई-बुक्स** – मुद्रित पुस्तक का इलेक्ट्रानिक संस्करण जिसे कंप्यूटर, स्मार्टफोन, टेबलेट और अन्य डिजिटल यंत्रों पर पढ़ा जा सकता है।
- **वेबकांफ्रेंसिंग** – वास्तविक समय का होने वाला सम्प्रेषण प्रारूप जिसमें बहुत से कंप्यूटर्स प्रयोग करने वाले लोग आपस में इंटरनेट के माध्यम से जुड़े होते हैं ।
- **ड्राई एंकर** – जब तक खबर के दृश्य नहीं आते एंकर, दर्शकों को रिपोर्टर से मिली जानकारियों के आधार पर सूचनाएँ पहुँचाता है।
- **बुलेटिन** – संक्षिप्त आधिकारिक कथन अथवा समाचार प्रसारण का सारांश।

19.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न -1

1. मूलाधार
2. मुक्त, दूरस्थ
3. प्रौद्योगिकी
4. जापान
5. 'खुला विश्वविद्यालय विंग'

अभ्यास प्रश्न -2

1 मानव
2 2. 26 जनवरी, 2001
3 मोक्ष
4 मुक्त
5 दबावमुक्त

अभ्यास प्रश्न -3

1. जी.मार्कोनी
2. सन् 1927
3. श्रव्य साधन
4. एकरेखीय
5. आज

अभ्यास प्रश्न -4

1 25 मार्च,1925

2 श्रव्य (Tele)

3 बी.बी.सी. लन्दन

4 बहुउद्देशीय

5 डी.टी.एच.

अभ्यास प्रश्न -5

1. सूचना प्रौद्योगिकी
2. 2. डिजिटल रुप में पुस्तक
3. सॉफ्टवेयर
4. एडॉब रीडर, फाक्सिट रीडर
5. शैशवावस्था

19.11 निबंधात्मक प्रश्न :

1. दूरस्थ शिक्षा से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिये ।
2. भारत में दूरस्थ शिक्षा के भविष्य पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. दूरस्थ शिक्षण विधि के संप्रत्यय को उचित उदाहरणों द्वारा समझाइए।
4. दूरस्थ शिक्षा में रेडियो की भूमिका की व्याख्या कीजिए।
5. रेडियो के उपयोग हेतु सामग्री तैयार करने की प्रमुख शर्तो को समझाइए ।
6. टेलीविजन की विकास यात्रा ने दूरस्थ शिक्षा को किस प्रकार प्रभावित किया है । समझाइए।
7. रेडियो और टेलीविजन के उपयोग हेतु सामग्री तैयार करने की शर्तों में अन्तर स्पष्ट कीजिए ।

8. वेब-कांफ्रेंसिंग किसे कहते हैं। दूरस्थ शिक्षा में इसकी उपयोगिता को उचित उदाहरणों द्वारा स्पष्ट कीजिए।
9. ई-बुक्स से आप क्या समझते हैं। इसके उपयोग हेतु सामग्री कैसे तैयार की जाती है ? समझाइए।
10. इंटरनेट की साइटों को खोलकर किन्हीं दस ई-बुक्स का अध्ययन कीजिए और इससे सम्बंधित एक आलेख लिखिए।

19.12 संदर्भ ग्रंथ सूची:

- बटेस, ए. डब्ल्यू.(1995). टेक्नोलॉजी, ओपन एण्ड डिस्टेंस एजुकेशन, लन्दन : रूटलेज ।
- ओड, एल.के. (1988). *शिक्षा के नूतन आयाम,* जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
- पेर्राटोन, एच. (2000). *ओपन एण्ड डिस्टेंस लर्निंग इन दी डेवलपिंग वर्ल्ड,* लन्दन : रूटलेज।
- रेड्डी, वी. एवं मंजुलिका, एस. (2006). *टुवर्डस वर्चुअलाइजेशन,* नई दिल्ली : कोगन पेज इण्डिया।
- रेस, पी. (1999). द ओपन लर्निंग हैण्ड बुक:सेलेक्टिंग, डिजाइनिंग एण्ड सपोर्टिंग ओपन लर्निंग मैटेरियल्स, लन्दन : कोगन पेज।
- रम्बल,जी.(1986). *द प्लानिंग एण्ड मैनेजमेंट ऑफ़ डिस्टेंस एजुकेशन,* लन्दन : क्रूम हेल्म।
- सक्सेना, एस. (2004). *शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार,* आगरा : साहित्य प्रकाशन।
- साहू, पी.के.(1993). *हायर एजुकेशन एट ए डिस्टेंस,* नई दिल्ली : संचार पब्लिशिंगहाउस।
- शर्मा, एस.आर. (2012). *दूरस्थ शिक्षा,* जयपुर : वाईकिंग बुक्स ।
- शर्मा,बी. डी. (2008). *भारत में शिक्षा प्रणाली का विकास,* नई दिल्ली : ओमेगा पब्लिकेशन्स